गिजू भाई बधेका का शैक्षिक चिन्तन एवं आधुनिक भारतीय बाल-शिक्षा परिदृश्य में इसकी प्रासंगिकता

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, से
शिक्षा शास्त्र में
पी-एच0 डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

2007
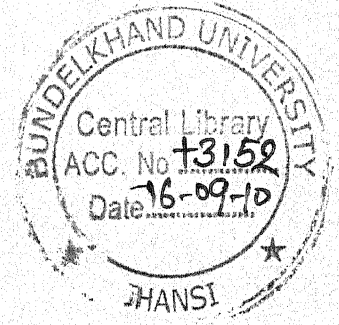
सह - निर्देशक :

डा. दिनेश कुमार शर्मा
रीडर, शिक्षा विभाग
जे0 वी0 जैन कालेज
सहारनपुर

निर्देशक :

डा0 शशिकान्त शर्मा
पूर्व आचार्य, शिक्षा संस्थान
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
झाँसी

शोधकर्त्ताः
अजय बलहारा

शिक्षा संस्थानः-
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

कुलसचिव,

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय,

झाँसी।
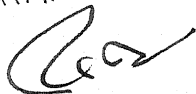
<u>विषय</u> :- <u>पर्यवेक्षक का प्रमाणपत्र</u>

महोदय,

सहर्ष प्रमाणित किया जाता है कि '**गिजू भाई बधेका का शैक्षिक चिन्तन एवं आधुनिक भारतीय बाल-शिक्षा परिदृश्य में इसकी प्रासंगिकता**' शीर्षक शोध-प्रबन्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की पी-एच.डी. उपाधि के लिये लिखा गया है। श्री अजय बलहारा द्वारा मेरे निर्देशन व पर्यवेक्षण में यह शोध-कार्य सम्पन्न किया गया है। यह इनका स्वयं का कृतित्व है, जिसे उन्होंने अत्यधिक श्रम व अध्यवसाय से पूर्ण किया है। यह विश्वविद्यालय द्वारा परीक्षण हेतु प्रस्तुत है।

शोध पूर्णरुपेण शोधकर्त्ता द्वारा स्वयं के ही प्रयासों से सम्पन्न किया गया है। इस कार्य को इन्होंने विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित समयावधि के अंतर्गत पूर्ण किया है। इन्होने मेरे निर्देशन में 200 दिन उपस्थित रहकर शोधकार्य पूर्ण किया है।

सह-निर्देशक
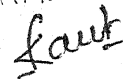
डा0 दिनेश कुमार शर्मा
रीडर, शिक्षा विभाग
जे0 वी0 जैन कालेज
सहारनपुर

निर्देशक
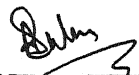
डा0 शशिकान्त शर्मा
(पूर्व आचार्य, शिक्षा संस्थान
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी)
रीडर, शिक्षा विभाग, डी0जे0 कालेज, बड़ौत

उद्‌घोषणा

मैं घोषित करता हूँ कि प्रस्तुत शोध-प्रवन्ध **'गिजू भाई बधेका का शैक्षिक चिन्तन एवं आधुनिक भारतीय बाल-शिक्षा परिदृश्य में इसकी प्रासंगिकता'** मेरा अपना मौलिक प्रयास है तथा मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे इस कार्य से पूर्व इस विषय पर कोई शोध-कार्य नहीं हुआ है।

शोधकर्त्ता

अजय बलहारा
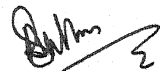
आभार-स्मृति

प्रस्तुत शोध-कार्य को सुव्यवस्थित रूप से सम्पन्न कराने का सर्वाधिक श्रेय मेरे शोध निर्देशक डॉ0 शशिकान्त शर्मा, रीडर, शिक्षा विभाग, डी0जे0 कालेज, बड़ौत एवं सह-निर्देशक डॉ0 दिनेश कुमार शर्मा, रीडर, शिक्षा विभाग, जे0वी0 जैन कालेज, सहारनपुर को है। उनके निर्देशन में सूक्ष्म दृष्टि एवं मूल्यवान सुझावों के फलस्वरूप ही शोधकर्त्ता इस कार्य को पूर्ण करने में सक्षम हो सका है। शोधकर्त्ता यह स्वीकार करते हुए स्वयं को धन्य व कृतकृत्य अनुभव करता है कि डॉ0 शशिकान्त तथा डॉ0 दिनेश कुमार शर्मा ने अपना अमूल्य सहयोग वास्तव में अत्यन्त आत्मीयता और सहजता से दिया है, जिसके लिए शोधकर्त्ता उनका हृदय से आभारी है।

शोधकर्त्ता डॉ0 हरिशरण वर्मा का भी आभार व्यक्त करता है, जिन्होंने शोधकर्त्ता को निरंतर शोध-कार्य हेतु प्रेरित किया तथा उसका मनोबल बढ़ाये रखा। शोधकर्त्ता अपनी सहधर्मिणी श्रीमती सुशीला देवी एवं मित्र संजय भारद्वाज को प्रस्तुत शोध-कार्य को पूर्णता के स्तर तक ले जाने हेतु दिये गये सहयोग के लिए हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करता है।

अन्त में शोधकर्त्ता परिवार के सभी सदस्यों सहित अन्य इष्ट मित्रों का भी आभारी है, जिन्होंने इस कार्य को पूर्ण करने में समय-समय पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हर सम्भव सहायता व सहयोग प्रदान किया।

शोधकर्त्ता

अजय बलहारा

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

1.1 भूमिका :-

शिक्षा बालक के लिये होती है न कि बालक शिक्षा के लिये। कहने का तात्पर्य है कि बालक को केन्द्र बिन्दु मानकर ही शिक्षा की समग्र व्यवस्था विकसित की जानी चाहिये। बालक की वैयक्तिक विशेषताओं, उसकी अन्तर्निहित क्षमताओं को पहचानते हुये उनका सर्वोत्तम विकास करना ही शिक्षा का महती ध्येय है। आत्म-परिपूर्णता के शिखर की ओर अग्रसर व्यक्ति ही समाज को भी नई ऊँचाईयाँ प्रदान करने में सक्षम होते हैं। नूतन विश्व के सृजन में ऐसे सर्वतोमुखी व्यक्तित्व ही अपना योगदान दे सकते हैं जिन्होंने आत्मानुभूति के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया हो।

अतएव शिक्षा की सार्थकता उसकी उपादेयता व प्रभावशीलता के मूल्यांकन के मापदण्ड इन्हीं संदर्भों में निर्धारित किया जाना वांछनीय है। वह शिक्षा पद्धति जो मानवीय व्यक्तित्व की सम्भावनाओं को नकारते हुये उसे किन्हीं अन्य के द्वारा निर्मित ढांचों के अनुरूप ढालने की चेष्टा करती है, वस्तुत: ऐसे यंत्र-मानव ही तैयार करती है, ऐसे संवेदना शून्य रोबोट जो अन्य मशीनों की भांति उत्पादन के साधन मात्र होते हैं। आत्मिक सुखानुभूति से वंचित, भौतिक चकाचौंध से भ्रमित, विलासिता के पंक-कुण्डों में डूबते उतराते आधे अधूरे मानव इस संसार को क्या कुछ नया दे पाएंगे, कदाचित विनष्ट ही कर देंगे।

शिक्षा जागरण है, प्रकाशन है, बहिर्गमन है, विकास है, वह दिशाबोध प्रदान करती है दिग्भ्रमित नहीं करती। चैतन्य बनाती है, मूर्छित नहीं, ज्ञान-चक्षुओं को खोलती है. नेत्रों पर श्याम-पट्टिका नहीं बाँधती। सदशिक्षा मुक्ति द्वारा खोलती है, प्रबुद्धता की ओर ले जाती है। वह मानस को रूढ़ियों, अंधविश्वासों, पूर्वाग्रहों व कट्टरताओं की बेड़ियों में नहीं जकड़ती। यदि कोई शिक्षा मनुष्य को भला मानुष भी नहीं बना सकती तो वह शिक्षा नहीं कुशिक्षा है। इससे तो मानव अशिक्षित ही भला।

बालक क्यों सीखे? क्या सीखे? कैसे सीखे? किससे और कब सीखे? क्या इन समग्न प्रश्नों के उत्तर खोजते समय बालक को सर्वथा भुला देना न्यायपूर्ण व युक्ति संगत होगा? क्या बीज से वही अंकुर नहीं फूटता, वही नवोदभिद् नहीं जन्मता, वही फल-फूल वही वृक्ष नहीं विकसित होता जिस वृक्ष की प्रजाति का वह बीज था। बाहर से उसे मिलता है तो मात्र परिवेश. पर्यावरण, शेष तो सब बीज के पास पहले से है, उसके भीतर है। एक सम्पूर्ण विकसित वृक्ष एक लघु बीज में समाहित है प्रच्छन्न है, सुसुप्त है।

विकास व्यक्ति और व्यक्ति के चहुँ ओर व्याप्त सामाजिक पर्यावरण के मध्य होने वाली सतत् अन्त: क्रिया का प्रतिफल है। "नेचर वर्सेज नर्चर" "प्रकृति बनाम पोषण" के द्वन्द्व में कौन विजित होगा ? नि:संदेह समन्वयवादी। आनुवंशिकता तथा पर्यावरण दोनों का ही मानव-विकास में अपना-अपना अद्वितीय योगदान होता है। "पूर्ण मानव" के विकास हेतु दोनों ही सर्वोत्तम होने चाहियें, परन्तु सामाजिक-नैतिक दृष्टि से पर्यावरण को ही नियंत्रित करना अभीष्ट होगा, आनुवंशिकता को नहीं।

एक उत्तम पर्यावरण, पर्यावरण से व्यक्ति की अन्त: क्रिया, अनुभवों की प्राप्ति, अधिगम तथा अन्तिम प्रतिफल के रूप में व्यक्तित्व का विकास। जॉन डी0वी0 के मतानुसार यही शिक्षा है। इससे अहसमत होने का कोई युक्तिसंगत कारण भी नहीं है। परिवेश में स्थिति अनेकानेक साधन वस्तुत: शिक्षा के ही साधन हैं चूंकि वे किसी न किसी रूप में मानव विकास में अपनी विशिष्ट भूमिका रखते हैं। व्यापक अर्थ में शिक्षा जीवन के समस्त अनुभवों का योग तथा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। औपचारिक अथवा स्कूली शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा से प्रधानतया अपने वातावरण के विशिष्ट, नियंत्रित एवं सुनियोजित स्वरूप के कारण ही भिन्न होती है। शिक्षा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अनौपचारिक साधन परिवार से प्राथमिक विद्यालयों का वातावरण जितना अधिक भिन्नता युक्त होता है, बालक को विद्यालय उतना ही भयप्रद लगता है। अत: विद्यालय का वातावरण घर जैसा, या कहना चाहिए उससे भी श्रेष्ठतर व आकर्षक होना चाहिए।

एक ओर माता-पिता का स्नेह व अपनत्व तथा सुरक्षा का अहसास, सहज व स्वाभाविक आपसी सम्बन्धों की मिठास दूसरी ओर भारी-भरकम बस्ता, विद्यालय की यांत्रिक गतिविधियाँ, अध्यापकों के तनावयुक्त, पथरीले, खीज भरे चेहरे, निरन्तर चलने वाली मासिक-अर्द्धवार्षिक-वार्षिक परीक्षाओं की तैयारी का तनाव, परीक्षाफल को लेकर नाना आशकाएँ-दुश्चिताएँ और इन सबके बीच माँ-बाप की आकाश छूती आकांक्षाओं पर खरा उतरने की कोशिश में किताबों की भूल-भूलैया में अपने खोये बचपन को ढूँढता वेचारा बालक। वर्तमान भारतीय बाल-शिक्षा की इस त्रासदी से परिचित तो सभी हैं, अभिभावक भी शिक्षाविद भी। चिन्तकों के स्वर यदाकदा विरोध में भी उठते हैं और उनके भाषण मात्र अनुष्ठान बनकर रह जाते हैं। यथार्थ रूप में परिणत नहीं हो पाती हैं ये मौखिक सांत्वनाएँ, संवेदनाएँ। बाल-कारागरों में बदलते इन बाल-विद्यालयों के कैदी बालकों के मुक्ति अभियान का बीड़ा उठा कर अपना जीवन इस पुनीत कार्य में समर्पित कर देने वाले विरले ही होते हैं।

दुर्भाग्य से, शिक्षा व्यवस्था, जिसका उद्देश्य तत्काल की अनिवार्यताओं से ऊपर उठकर

मानवीय संवेदना से युक्त मूल्य-संहिता का निर्माण करना और उनके लिए सम्यक् बलों का स्रोत बनना होना चाहिए, आज नयी व्यवस्था का उपकरण या दासी बनकर रह गयी है। और अदना मानव मंत्रमुग्ध की भाँति उस अमानवीय व्यवस्था के अनुरूप ढलता जा रहा है। क्या शिक्षा अपने सही रूप को पहचान कर मानव समाज को इस नितांत असहाय स्थिति से उबारने में सहायक हो सकती है? यह गम्भीर प्रश्न आज पूरी मानव सभ्यता के सामने ही उपस्थित हो गया है।

शिक्षा व्यक्ति की सम्पूर्ण सम्भावनाओं को उद्‌घाटित करने की निरंतर प्रक्रिया ही के रूप में स्वीकार हो सकती है। व्यक्ति शिक्षा के माध्यम से एक साँचे में न ढलकर उसके सहयोग से निरंतर आगे बढ़े, ऐसी व्यवस्था आवश्यक है। इस विधा का श्रीगणेश पाटी-पूजा के साथ ही होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य बालक के स्वाभाविक विकास में सहायक होना हो, न कि उसके ऊपर ज्ञान के बोझ को अनजाने लाद देना और उस बोझ को ढोने मात्र में ही व्यक्ति को सार्थकता का एहसास होना। शिक्षा स्वयं इन विसंगतियों को समाप्त नहीं कर सकती है। परन्तु प्रयास करके यह सुनिश्चित किया ही जा सकता है कि शिक्षा उन प्रवृत्तियों को सुदृढ़ न करे जो इन विसंगतियों को जन्म देती हैं।[1]

वात्सल्य, सहानुभूति तथा बालक के व्यक्तित्व में आस्था के गुणों से परिपूर्ण हो। शैक्षिक विचारक तो सदैव इसी पर बल देते रहे हैं, परन्तु वस्तुस्थिति अत्यधिक भिन्न है। बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था रूपी सुरसा-मुख में राजनीति, समाज-संस्कृति, स्वास्थ्य व शिक्षा सभी समाते जा रहे हैं। शिक्षा के व्यापारीकरण की इस प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में विद्यालय - परिवार, विद्यालय- राज्य तथा शिक्षक-छात्र के पारस्परिक सम्बन्धों को नए सिरे से परिभाषित करना तथा शैक्षिक ताने-बाने की उलझती गुत्थियों को सुलझाना समय की सबसे बड़ी माँग बन गया है। इस दिशा में कुछ सार्थक प्रयास करने से पूर्व अतीत के उन महान शिक्षाविदों के प्रेरक-प्रसंगों, शैक्षिक विचारों व शैक्षिक सुधारों हेतु किये गये अनथक प्रयासों का वर्तमान संदर्भों में पुनरावलोकन व अवबोध करना होगा, जिन्होंने अपने समय में शिक्षा जगत को अपनी मौलिकता, सृजनात्मकता व समर्पणशीलता का अप्रतिम योगदान देकर धन्य किया था। इन शिक्षाविद्‌ों में एक परन्तु सर्वथा विलक्षण श्री गिजू भाई थे जिनका पूरा नाम गिरजा शंकर बधेका था। सौराष्ट्र के चितल गाँव में 15 नवम्बर 1885 को जन्मे श्री गिजू भाई ने अपनी शिक्षा दीक्षा पूरी कर वकालत का पेशा अपनाया और इसे त्याग कर फिर बालकों के समर्पित पक्षधर शिक्षक बने। बालक को देव स्वरूप मानने वाले गिजू भाई बच्चों में "मूछों वाली माँ" के रूप में पहचाने जाते थे। उनका नारा था 'बाल देवो भव'।

आधुनिक भारतीय परिवेश में जबकि बाल-शिक्षा अनेकानेक दोषों से आच्छादित हो चुकी है,

---

1- डा0 ब्रह्मदेव शर्मा : शिक्षा, समाज और व्यवस्था, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ एकेडमी, भोपाल, पृ0 195-96

इस अध्ययन के परिणामों से निश्चय ही इन विकृतियों व भटकावों के निवारणार्थ कुछ मार्गदर्शक तत्व उद्घाटित हुए हैं, ऐसा शोधकर्ता को विश्वास है। नामचीन पाश्चात्य बाल-शिक्षा विदों व उनकी पद्धतियों जैसे, मॉण्टेसरी व किंडरगार्टन आदि से तुलना करते हुए भारतीय दशाओं के संदर्भ में गिजू भाई के शैक्षिक चिन्तन, वास्तविक प्रयासों व तौर-तरीकों की उपादेयता व प्रासंगिकता का अध्ययन प्रस्तुत शोध कार्य में किया गया है।

1.2 समस्या कथन :-

दार्शनिक विचारधाराएँ शिक्षा के विभिन्न अंगों यथा, शिक्षा की अवधारणा, उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण-पद्धति, अनुशासन, छात्र, शिक्षक, छात्र-शिक्षक सम्बन्ध, विद्यालय व परिवार का स्वरूप तथा भूमिका आदि को प्रभावित करती है। मानव व उसके अभीष्टतम लक्ष्यों तक ले जाने में शिक्षा कहाँ तक सफल है, यह उसकी उपयोगिता की कसौटी है। वस्तुतः शिक्षा का यह मूल्यांकन परोक्ष रूप से उस दर्शन का मूल्यांकन है जिस पर वह शिक्षा व्यवस्था आधारित होती है। इस प्रकार शिक्षा व दर्शन परस्पर अभिन्न हैं तथा अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रखते हैं।

बाल शिक्षा आज जिस पडाव पर है, उस तक पहुँचने में उसे लम्बा मार्ग तय करना पड़ा है। स्थितियों में यह परिवर्तन स्वयमेव तथा आकस्मिक रूप से नहीं हुआ वरन् यह निश्चय ही जागरूक व प्रबुद्ध चिंतकों द्वारा वैचारिक स्तर पर ही नहीं, व्यावहारिक स्तर पर भी किये गये सक्रिय हस्तक्षेप का प्रतिफल है। ऐसे ही एक शिक्षा-दार्शनिक गिजू भाई के शैक्षिक चिंतन के मौलिक तत्वों की पहचान, विवेचन एवं समीक्षा करने की दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन सम्पन्न किया गया है। प्रस्तावित शोध कार्य का शीर्षक अधोलिखित है-

गिजू भाई बधेका का शैक्षिक चिन्तन एवं आधुनिक भारतीय बाल-शिक्षा परिदृश्य में इसकी प्रासंगिकता

1.3 उद्देश्य:-

प्रस्तावित शोध अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :-

1. गिजू भाई बधेका के शैक्षिक चिन्तन की दिशा के निर्धारित तत्वों अर्थात उनके शिक्षा दर्शन के उद्गम स्त्रोतों की पहचान करना।
2. गिजू भाई के चिंतन के पूर्ण अवबोध की दृष्टि से बाल-शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।

3. गिजू भाई बधेका के शैक्षिक चिन्तन का अधोलिखित परिप्रेक्ष्य में विवेचन करना।

(1) शिक्षा की अवधारण

(2) शिक्षा के उद्देश्य

(3) पाठ्यक्रम

(4) शिक्षण पद्धतियाँ

(5) अनुशासन

(6) बालक

(7) शिक्षक

(8) छात्र-शिक्षक सम्बन्ध

(9) मूल्यांकन व गृह कार्य

(10) विद्यालय

(11) परिवार

4. गिजू भाई द्वारा शिक्षा के विभिन्न पक्षों यथा परिवार शिक्षा, कैशोर्य शिक्षा, नैतिक शिक्षा, धार्मिक शिक्षा व प्रकृति शिक्षा आदि के विषय में दिये गये विचारों का विवेचन करना।

5. गिजू भाई बधेका के शैक्षिक विचारों व उनके द्वारा व्यवहृत बाल शिक्षा-पद्धति का पाश्चात्य शिक्षाविदों द्वारा दी गयी बाल-शिक्षा पद्धतियों से तुलनात्मक विवेचन करना।

6. विभिन्न बाल-शिक्षा पद्धतियों के विद्यालयों के निरीक्षण व अध्ययन द्वारा प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करके सिद्धान्त व व्यवहार में समन्वय करते हुए वर्तमान भारतीय परिस्थितियों में गिजू भाई के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना।

1.4 शोध परिकल्पना:-

किसी भी राष्ट्र की शिक्षा नीति एवं शिक्षा व्यवस्था अनेकानेक कारकों से प्रभावित होती है। विगत व वर्तमान सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक परिस्थितियाँ एवं समस्याएँ, दार्शनिक दृष्टिकोण, वैयक्तिक व राष्ट्रीय आकांक्षाएं एक सुस्पष्ट व व्यवहारिक शिक्षा व्यवस्था के निर्धारक तत्व हैं। समय-समय पर विभिन्न दार्शनिकों, शिक्षाविदों, राजनीतिक चिन्तकों व सामाजिक कार्यकर्ताओं ने न

केवल वैचारिक स्तर पर चिन्तन-मनन किया है, वरन् वास्तविकता की कण्टकाकीर्ण पगडंडियों पर अपने साहसिक व समर्पित प्रयासों के अमिट पद चिह्न छोड़े हैं। इन पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए ही राष्ट्र चहुँमुखी विकास के अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है।

एक शिक्षाविद् तथा अभ्यासी शिक्षक के रूप में गिजू भाई बधेका के शिक्षा जगत को, विशेष रूप से बाल शिक्षा के क्षेत्र में दिये गये योगदान की पहचान, विवेचन तथा मूल्यांकन राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था को कुछ मौलिक तत्व प्रदान करने में सहायक होगा।

एक भारतीय शिक्षाविद् के चिन्तन और व्यवहार तथा पाश्चात्य शैक्षिक विचारकों के विचारों और पद्धतियों में समानताओं के साथ-साथ कुछ मूलभूत अन्तर होना भी स्वाभाविक है, ये अन्तर संस्कृति, दर्शन, सामयिक दशाओं व आवश्यकताओं से जनित भी हो सकते हैं अथवा व्यक्तित्व भेद के कारण भी। इस दृष्टि से देश-काल-परिस्थितियों में परिवर्तनों के अनुरूप इन विचारकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का व्यावहारिक उपयोगिता की कसौटी पर मूल्यांकन करना भी वांछनीय है। शोधकर्ता की परिकल्पना है कि श्री गिजू भाई बधेका के विचार वर्तमान शैक्षिक परिवेश में उपयोगी व प्रासंगिक हैं।

1.5 अध्ययन का सीमांकन:-

प्रस्तावित अध्ययन गिजू भाई के शिक्षा दर्शन की मौलिक विशेषताओं की पहचान, विश्लेषण एवं विवेचन तक सीमित है। अध्ययन का एक उद्देश्य गिजू भाई के शैक्षिक विचारों एवं बालकों तथा किशोरों हेतु अपनायी गयी शिक्षा पद्धति का आधुनिक भारतीय दशाओं में प्रासंगिकता की दृष्टि से मूल्यांकन करना भी है। आपके द्वारा प्रतिपादित शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा पद्धति की वैचारिक पृष्ठभूमि को जानने की दृष्टि से कुछ विशिष्ट शिक्षा-शास्त्रियों के शिक्षा-दर्शन व पद्धतियों, यथा किंडरगार्टन व मॉण्टेसरी से उनकी तुलना भी की जायेगी।

1.6 अध्ययन का महत्व:-

किसी भी देश की शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय भावना के अनुरूप होनी चाहिए। खेद का विषय है कि वर्तमान समय में देश में प्रचलित बाल-शिक्षा पद्धतियों में निज संस्कृति के प्रति अवहेलना का भाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। हमारी मानसिकता ही कुछ ऐसी बन गयी है कि विदेशी सोच हो या विदेशी संस्कृति, हम उससे प्रभावित होकर अन्धानुकरण में लग जाते हैं। पूर्व प्राथमिक व प्राथमिक विद्यालयों के मुख्य द्वार पर लगे पट्टों पर अंकित मांटेसरी तथा के0जी0 जैसे शब्दों को इस बात का

प्रतीक मान लिया जाता है कि ये विद्यालय अधुनातन व श्रेष्ठ हैं। आधुनिक शिक्षा पद्धति के नाम पर कुछ ढकोसलों के अतिरिक्त इनमें नया कुछ नहीं होता। विद्यालय की चारदीवारी के भीतर शायद ही इन पद्धतियों के अनुरूप कुछ शैक्षिक गतिविधियाँ दृष्टिगोचर हों। राष्ट्र की शिक्षा के प्रकाश-स्तम्भों, समर्पित भारतीय शिक्षाविदों व महान चिन्तकों के विचारों को विद्यालयों में क्रियान्वित होते देखना एक दुर्लभ परिघटना है। विद्यालयों का नामकरण भी इन मनीषियों के नाम पर करने में सम्भवतः लज्जा व हीनताबोध अनुभव किया जाता है।

इन परिस्थितियों के संदर्भ में प्रस्तावित अध्ययन का महत्व स्वयं सिद्ध है। शोधकर्ता का विश्वास है कि भारतीय शैक्षिक चिन्तन की दिशा के पुनर्निर्धारण में शोध अध्ययन के निष्कर्ष सहायक होंगे। शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत अध्ययन में भले ही दार्शनिक गवेषणा की गूढ व जटिल पद्धतियों का अनुसरण करने में कुछ शिथिलता बरती गयी है, परन्तु एक अभ्यासरत शिक्षाविद् एवं शिक्षक के व्यक्तित्व व कृतित्व का ज्ञान के विविध झरोखों से अवलोकन करने तथा समय की कसौटी पर उनके खरा होने, न होने की पड़ताल करने में कोई प्रमाद नहीं बरता गया है।

1.7 अध्ययन की शोध विधि, उपकरण एवं स्त्रोत :-

किसी भी शोध कार्य की पद्धति, उसकी विषय सामग्री तथा उद्देश्य आदि के आधार पर शोध विषय के अध्ययन के लिए किसी एक या एक से अधिक विधियों का प्रयोग हेतु चयन किया जाता है। इन्हीं समस्त बिन्दुओं पर सम्यक् विचारोपरान्त शोधकर्ता इस अध्ययन हेतु अनुसंधान की दार्शनिक-विश्लेषण एवं वर्णनात्मक विधि का प्रयोग उचित मानता है।

उपकरण :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा उपकरण के रूप में अनेक साक्ष्यों व साधनों यथा. ग्रन्थों, पुस्तकों, अभिलेखों, पत्र-पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों में प्रकाशित लेखों आदि का प्रयोग किया गया है।

प्राथमिक स्त्रोत :-

इस अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा प्राथमिक स्त्रोत के रूप में गिजू भाई बधेका तथा पाश्चात्य बाल शिक्षा-शास्त्रियों द्वारा लिखित ग्रन्थों एवं लेखों का प्रयोग किया गया है। कुछ मान्टेसरी व किन्डर गार्टन बाल-विद्यालयों का निरीक्षण करके उनमें वास्तविक रूप से अपनायी जा रही शिक्षण पद्धतियों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष जानकारी भी प्राप्त की गयी है।

गौण स्त्रोत :-

अध्ययन में गौण स्त्रोत के अन्तर्गत श्री गिजू भाई बधेका व पाश्चात्य बाल-शिक्षा शास्त्रियों फ्रोबेल व मान्टेसरी के विषय में लिखे गये अन्य लेखकों के ग्रन्थों एवं लेखों का प्रयोग किया गया है।

शोध प्रविधि :-

प्राथमिक एवं गौण स्त्रोतों के व्यापक अध्ययन-मनन के पश्चात सम्बन्धित विषय सामग्री का चयन, सूचनाओं व तथ्यों का संग्रह किया गया है। शोध उद्देश्यों के अनुरूप इन सूचनाओं का सम्यक् विश्लेषण किया गया है तथा विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत इन्हें व्यवस्थित व सारगर्भित रूप से प्रस्तुत किया गया है।

मॉण्टेसरी व किंडरगार्टन नामोल्लेख करने वाले बाल-विद्यालयों के गहन अवलोकन से वांछित सूचनाएँ भी शोधकर्ता द्वारा एकत्र की गयी हैं। वस्तुस्थिति को प्रत्यक्ष रूप जानने-समझने की दृष्टि से इन शैक्षिक संस्थाओं के संस्थापकों, प्रशासकों एवं शिक्षकों से साक्षात्कार करके इस अध्ययन में गुणात्मक शोध की कुछ विशेषताओं को समाहित करने का प्रयास भी किया गया है।

द्वितीय अध्याय

अध्ययन का प्रत्ययात्मक आधार

गिजू भाई मॉण्टेसरी से सर्वाधिक प्रभावित थे। इस तथ्य को उन्होंने स्वयं भी स्वीकार किया है। अत: गिजू भाई के शैक्षिक चिंतन का विवेचन करने से पूर्व बाल शिक्षा के क्षेत्र में योगदान देने वाले मॉण्टेसरी के पूर्ववर्ती विद्वानों तथा दो प्रसिद्ध बाल शिक्षा पद्धतियों यथा, मॉण्टेसरी तथा किंडरगार्टन, की चर्चा करना प्रासंगिक होगा। प्रस्तुत अध्याय का प्रथम भाग इसी से सम्बन्धित है। द्वितीय भाग में भारतीय शिक्षा दार्शनिकों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण शोध कार्यों का उल्लेख किया गया है।

2.1 बाल शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

डॉ0 मॉण्टेसरी के पूर्ववर्ती आचार्यों में जॉन लॉक, कोंडिलेक, जेकब पेरेरा, रूसो, ईटार्ड तथा एडवर्ड सेगुइन के नामों की गणना की जा सकती है। जॉन लॉक में मॉण्टेसरी के महानद का क्षीण-प्रवाही निर्झर मात्र विद्यमान है। कोंडिलेक और पेरेरा ने उस निर्झर को कुछ विपुलता प्रदान करके एक नाले की प्रतिष्ठा प्रदान की है। रूसो ने तो मानो नदी ही प्रवाहित कर दी। उसकी दो धारायें बनीं-एक में पेस्टोलोजो और फ्रॉबेल सैर के लिए निकल पड़े, और दूसरी में ईटार्ड एवं सेगुइन के प्रबल प्रवाह आकर मिल गए। ये प्रवाह उच्छृल गतिमान हुए, जोर से बहे तथा बाढ़ से उफनकर छलछलाने लगे। उसी से निर्मित हुआ मॉण्टेसरी का महानद, जो आज अपने अविच्छिन्न, अविरल, अद्‌भुत प्रवाह से शिक्षण की भूमि पर सतत बह रहा है। जॉन लॉक से लेकर एडवर्ड सेगुइन तक के चरित्रों को लेकर एक अविच्छिन्न यात्रा-प्रदेश ही है। (मॉण्टेसरी शिक्षक 14)

जॉन लॉक:- जॉन लॉक का जन्म सन् 1632 में हुआ था तथा सन् 1704 में देहावसान हुआ था। उनका जन्म स्थान इंग्लैण्ड में समरसेट था। शिक्षा विषय पर शिक्षा के बारे में कतिपय विचार उनके स्वानुभवों का परिणाम थी। एक अन्य पुस्तक युवकों के स्व-शिक्षण के विषय में लिखी गयी। लॉक के अनुसार शिक्षण वैयक्तिक होना चाहिए और शिक्षण की सामग्री शिक्षार्थी के अनुरूप होनी चाहिए।

बालकों को स्वतंत्रता देने सम्बन्धी उनके विचार अधिक स्पष्ट और सुदृढ़ हैं। वे कहते हैं कि, 'जिस तरह आप बड़े लोग स्वतंत्र हैं, उसी तरह बालक भी स्वतंत्र हैं। वे जो भी अच्छा काम करते हैं, वह स्वतंत्रता की वजह से ही संभव हो पाता है। वे अपने-आप में स्वाधीन और संपूर्ण हैं। जो काम आपको तो पसंद हो, पर जिसमें बालक का मन या उसकी रुचि न हो, उससे वह काम हर्गिज न कराया जाये। बड़े लोग भले ही संगीत या वाचन में रूचिशील हों, पर अगर उनसे कोई काम ऐसे क्षण कराया जाये कि उन्हें न रुचे, फिर भी अगर कोई जबरन कराना चाहे तो उन्हें थकान आ जाती है ओर

उनके प्रयास निरर्थक जाते हैं। ऐसी ही बात बालकों के संबंध में हैं। बालकों में काम का एक समय अथवा कहें, ऋतु आती है, उस समय वे काम को आसानी से पूरा कर सकते हैं। अगर शिक्षण के उस क्षण को पहचाना जा सके तो पढ़ाने की माथापच्ची ही मिट जाए। इससे समय भी बचता है और उकताहट भरी मेहनत से बचाव होता है। बालक स्वतंत्रता देने से बालक की यथार्थ कमियों एवं मानसिक झुकाव को जाना जा सकता है। जिस क्षण बालक यह अनुभव करता है कि उसकी देखरेख करने वाला कोई नहीं, सचमुच उसी क्षण वह अपने व्यक्तित्व को वास्तविक रूप में प्रकट करता है। यहां से शिक्षक उसे पहचान कर जैसा चाहे वैसा स्वरूप निर्मित कर सकता है।'

गिजू भाई कहते हैं कि ये अंतिम पंक्तियां भले ही इस समय स्वतंत्रता के दर्शन पर पानी फेरती दिखायी दे रही हों, पर इस बात में कोई संशय नहीं कि स्वतंत्रता के सिद्धांत का मूल जॉन लॉक की विचारधारा में विद्यमान है। लॉक इंद्रियों की शिक्षा के विचार को छूते हैं, पर ये विचार स्पष्ट नहीं हैं। इंद्रियों की निरोग स्थिति उत्पन्न की जाए, ऐसी बात कहकर ये इंद्रिय शिक्षण को समाप्त करते प्रतीत होते हैं।

कोंडिलेक (1715-1780):- ये लॉक के विचारों से प्रभावित थे। विश्व के संपर्क में आने से इंद्रियों को होने वाले अनुभव पुस्तक से इनके विचारों की जानकारी मिलती है। इंद्रिय-शिक्षण का स्वतंत्र प्रबंध करने की बजाय अवलोकन-शक्ति और तुलना-शक्ति का प्रशिक्षण करने का था। यद्यपि सीधे-सीधे तो कोंडिलेक ने इंद्रियों को शिक्षित करने का कुछ भी काम नहीं किया, तथापि बौद्धिक शिक्षण में इंद्रिय-शिक्षण का महत्वपूर्ण स्थान है- ये विचार रूसो तक संप्रेषित हुए, इसमें कोंडिलेक के विचारों की सार्थकता है।

जेकब पेरेरा:- कोंडिलेक के बाद पेरेरा आए। ये पुर्तगाली समाज से आए स्पेन के यहूदी थे। 18वीं सदी बहरों-गूगों की शिक्षा में शोध के लिए सुप्रसिद्ध है। पेरेरा द्वारा निर्मित पद्धति की सूक्ष्म बातों को पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं है। एडवर्ड सेगुइन ने शोध करके उनके शिक्षण के कतिपय सिद्धाँत ढूँढ़ निकाले हैं। पेरेरा के विचारों से निम्न तथ्य उभरते हैं -

1. समस्त इंद्रियाँ और प्रत्येक विशिष्ट इंद्रिय शिक्षण में एवं विकास में सक्षम हैं। विकास के परिणामस्वरूप इनकी शक्ति को अनेक गुणी एवं अनंत बनाया जा सकता है।
2. एक इंद्रिय का व्यायाम दूसरी इंद्रिय की सक्रियता का प्रेरक एवं परीक्षक है।
3. सूक्ष्म विचार एवं तुलना आदि मनःव्यापार इंद्रियगम्य अनुभवजनित हैं।
4. इंद्रियगम्य अनुभव (संवेदना) करने की शक्ति को बढ़ाने में मानसिक विकास का मूल निहित है।

पेरेरा ने अपने अन्वेषण बधिरों-मूकों के लिए किये थे। इन विचारों का सामान्य बालकों के साथ संबंध जोड़ने वाला तो रूसो था। रूसो बहुधा उनके यहाँ जाता था। पेरेरा के विचारों ने रूसो पर बहुत प्रभाव डाला था। एमील में अपनी शिक्षा संबंधी रचनात्मक योजना निर्मित करके रुसो ने पेरेरा को पुनर्जन्म दिया है ऐसा कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी।

रूसो (1712-1778):- अपने अन्य समकालीनों की भाँति रूसो भी लॉक के परिचय में आया था। लॉक ने शिक्षण में स्वातंत्र्य को स्थान देने का शुभारंभ किया था। रूसो ने इस विचार को विशालता प्रदान करके शिक्षण में नए विचार की बुनियाद डाली। पेस्टोलॉजी और फ्रॉबेल ने स्वतंत्रता की इसी बुनियाद पर भव्य भवन निर्मित किये और शिक्षण विचार का पुनरुद्धार किया। रूसो के यही विचार मॉण्टेसरी पद्धति की स्वतंत्रता के मूल में निहित है। गिजू भाई के मतानुसार मॉण्टेसरी का बालमंदिर इन विचारों की बुनियाद पर नहीं है, तथापि शिक्षण में स्वतंत्रता की प्रबल हिमायत करने के नाते पहले रूसो को नमस्कार करने के बाद ही अन्य देवों का अभिवादन किया जा सकता है। रूसो का स्वतंत्रता का विचार इस प्रकार है-

"मनुष्य जन्म से सदैव स्वतंत्र है। स्वतंत्रता मनुष्य का लक्षण है। पूर्ण मनुष्यता उसमें है कि जो पर-प्रमाण से पर-अभिप्रायों से आंदोलित हुए बिना स्थिर रहता है, जो अपनी निजी आँखों से ही देखता है, अपने ही हृदय से अनुभव करता है, और जो मात्र स्वतंत्र प्रज्ञा का ही अधिकार स्वीकार करता है। अतएव शिक्षा का प्रबंध ऐसा होना चाहिए कि जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य अपना स्वाभाविक विकास करे और जीवन के हर प्रकार के अटपटे बाह्य संयोगों में मात्र स्व-वृत्ति का अनुसरण करके ही जीवन-कार्य संपादित करें।"

रुसो ने शिक्षण के प्राचीन किलों को ऐसी स्वतंत्रता के विचार से हिला डाला। अस्पष्ट होते हुए भी उसके विचार प्रबल प्रपात की भाँति प्रवाहित हुए और पुरानी रूढ़ियों को तोड़फोड़ कर मैदान बना डाला ताकि स्वतंत्रता की इमारत निर्मित की जा सके। जिस तरह से मॉण्टेसरी की स्वतंत्रता का भूतकाल रूसो में देखा जा सकता है उसी तरह मॉण्टेसरी पद्धति की इंद्रिय-शिक्षा की झाँकी भी रूसो के विचार में देखने को मिल जाती है। मॉण्टेसरी के इंद्रिय-शिक्षण में जिस संस्कारिता अथवा सूक्ष्मता का विचार है, वह रूसो में अस्पष्ट है। इंद्रियों के शिक्षण-उपकरणों के संबंध में रुसो की पद्धति शास्त्रीय नहीं मानी जा सकती। इंद्रिय-शिक्षण में मॉण्टेसरी-पद्धति का एकीकरण का सिद्धांत रूसो में दिखाई देता है, पर इस सम्बन्ध में उसकी दृष्टि निर्मल नहीं।

ईटार्ड:- गिजू भाई की दृष्टि में मॉण्टेसरी के सच्चे पूर्वाचार्य तो ईटार्ड और सेगुइन हैं। मंदबुद्धि के बालकों को शिक्षा देकर जो ज्ञान कराया जा सकता है, सामान्य बुद्धि के बालकों को वही ज्ञान

स्व-शिक्षण से प्रदान किया जा सकता है। यह विचार ईटार्ड और सेगुइन के प्रयत्नों का आभारी है। गिजू भाई का मानना है कि अगर ये दोनों शिक्षाविद् न हुए होते तो इस पद्धति का इतनी जल्दी जन्म ही न हुआ होता। मॉण्टेसरी पद्धति सामान्य बुद्धि वाले बालकों के लिए है। पर इसका आधार मूढ़ और मंदबुद्धि बालकों को दिया जाने वाला शिक्षण-दर्शन है।

ईटार्ड का जन्म 1775 में फ्रांस के ओरेईसन गाँव में हुआ था। वे कोई काम-धँधा करना चाहते थे, पर फ्रेंच-विप्लव की वजह से उनकी दशा बदल गयी। युद्ध की अवधि में वे फौजी दवाखाने में सहायक सर्जन के बतौर काम करते थे। यहीं उनको अपनी जीवन-प्रवृत्ति हाथ लगी। 21 वर्ष की उम्र में पेरिस के एक मूक-बधिर विद्यालय में चिकित्सक के रूप में इन्होंने काम शुरू किया। वहाँ इन्हें 11-12 वर्ष की उम्र का एक बालक मिला। वह बालक इंसानी संपर्क-संसर्ग के बिना अभी तक जंगल में भटकता था। ईटार्ड ने उस बालक को अनेक विधियों से शिक्षा देने का यत्न किया, पर उन्हें बहुत सफलता नहीं मिल सकी। हालांकि वह जंगली बालक कुछ हद तक सामाजिक बना था और कुछ बातें समझना सीखा भी था, तथापि वह मनुष्य के साधारण स्तर तक ही नहीं बढ़ सका था। साम्य के द्वारा सिखाने का संपूर्ण सिद्धांत मॉण्टेसरी ने ईटार्ड से लिया है।

अपने प्रयोगों के प्रति मॉण्टेसरी जिस धैर्य का अनुरोध करती हैं, वही ईटार्ड करते हैं। उनका सूत्र था 'प्रयोगकर्ता थके नहीं', 'एक बार तो जंगली के बराबर जंगली बन जाओ।' काम में सफलता पाने के लिए बहुत परेशान हो जाने की ईटार्ड की वृत्ति मॉण्टेसरी की समर्थ गुरू है। मॉण्टेसरी पद्धति में अवलोकन का महत्त्व तथा बालक के अनुरूप शिक्षण का प्रबंध करने की जरूरत ईटार्ड के प्रयोग से उभरकर आई है।

सेगुइनः- एडवर्ड सेगुइन का जन्म सन् 1812 में फ्रांस के केलेंसी गाँव में हुआ था। ईटार्ड से उन्होंने चीराफाड़ी और वैद्यक सीखी थी। हालांकि ये ईटार्ड के शिष्य थे और ईटार्ड से इन्होंने मूर्खों के प्रति जीवन समर्पित कर देने की प्रेरणा ली थी, तथापि अपने जीवन के आदर्श इन्होंने संत साइमन और उनके संप्रदाय से लेकर गढ़े थे। सेगुइन की शिक्षण-पद्धति को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है-

1. शिक्षण के सिद्धांत,
2. क्रियातंतुओं का शिक्षण,
3. इंद्रियों का शिक्षण,
4. बुद्धि एवं नीति का शिक्षण।

शिक्षण के सिद्धांत- सेगुइन का पहला सिद्धांत व्यक्तित्व को सम्मान देने का है। वे कहते हैं,

'पहली नजर में सब बच्चे एक सरीखे नजर आते हैं। अगली दृष्टि में उनमें अनेक फर्क नजर आते हैं। अधिक बारीकी से देखने पर उनमें विभेदों को समझे जाने योग्य तथा नियंत्रित करने योग्य एकता के समूह दिखाई देते हैं। शिक्षण में हमें कुछ मनोवृत्तियों को अनुकूल बनाना है, कुछ का विरोध करना है, अपूर्णताओं में पूर्णता लानी है, व्यक्तिगत विशेषताओं का अवलोकन करना है, विचित्रताओं के प्रति सावधानी बरतनी है तथा भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियों को अनुकूलता प्रदान करनी है।

सेगुइन का दूसरा सिद्धांत है कि मनुष्य अपने जीवन में प्रति क्षण अनुभव करता है, ज्ञान अर्जित करता है और क्रियाशील रहता है। मनुष्य मनुष्यता प्राप्त करे, इसके लिए उसे शरीर, मन एवं क्रियाशक्ति की श्रेष्ठतम शिक्षा दी जानी चाहिए। ये तीनों क्रियाएँ मनुष्य में एक साथ चलती हैं तथापि इनकी शिक्षा के क्रम में पहले शारीरिक, फिर मानसिक और अंत में क्रियात्मकता को रखा जाना चाहिए। एक की शिक्षा के बिना दूसरी को क्षति पहुंचती है। अकेली मानसिक शिक्षा शारीरिक और क्रियात्मक शक्ति का उल्टे ह्रास करती है।

असंख्य विद्यार्थियों को कक्षा में इकट्ठा करके उनकी व्यक्तिगत रूचि-अभिरूचि जाने बिना उन्हें सिपाही की एक टुकड़ी समझकर सामुदायिक शिक्षा देने का सेगुइन विरोध करते हैं। उसकी शारीरिक, मानसिक या अन्य शक्तियों का वैयक्तिक रूप से विचार किये बिना शाम पड़े उनके गले में शिक्षण के पाँच डोज उतार देने की विधि की सेगुइन निंदा करते हैं। वे मात्र स्मरण-शक्ति पर अधिक बल देने वाली तथा शरीर एवं मन के धर्मों का पक्षाघात उपजाने वाली शिक्षा की भी निंदा करते हैं। यहाँ हमें ज्ञात होता है कि मॉण्टेसरी के विचारों के लिए सेगुइन ने कैसी सरस भूमिका तैयार की थी। बालक के व्यक्तित्व को सम्मान देने का सिद्धांत मॉण्टेसरी सिद्धांत की आधार-भूमि है। इसकी नींव का पहला पत्थर सेगुइन रखते हैं।

क्रियातंतुओं का शिक्षण - इंद्रिय शिक्षण की बुनियाद पर बुद्धि एवं अन्य प्रकार की शिक्षा का भवन निर्मित करने का श्रेय सेगुइन को जाता है। शरीर, स्नायु एवं इंद्रिय शिक्षण के संबंध में मॉण्टेसरी ने सेगुइन से काफी अवदान प्राप्त किया है। सेगुइन ने जो कुछ शिक्षण-पद्धति मूढ़ बालकों को शिक्षित करने के लिए संयोजित की थी। मॉण्टेसरी के समीप के, लेकिन बहुत बड़े पूर्वज हैं, यह बात मूढ़ बालकों हेतु इनके द्वारा निर्मित शिक्षा पद्धति से ज्ञात होती है। यही नहीं, इन्हीं के माध्यम से मॉण्टेसरी-पद्धति में प्रयुक्त होने वाले साधनों (शैक्षिक उपकरणों) की विशेषताओं का ज्ञान मिलता है।

इंद्रिय-शिक्षण- इस विषय में मॉण्टेसरी ने सेगुइन से काफी-कुछ लिया है।

बुद्धि तथा नीति का शिक्षण- सेगुइन बुद्धि का शिक्षण वाचन और गणित शिक्षण से शुरू

करते हैं। इन विषयों से स्मृति को व्यायाम मिलता है और बालक की समझदारी का क्षेत्र व्यापक होता है। भाषा ज्ञान के बढ़ने पर बालक अधिक सामाजिक और व्यवहारकुशल बनता है। सेगुइन में यही बुद्धि का शिक्षण है।

गिजू भाई मानते हैं कि जब अध्यापक में यह विश्वास जागता है कि मूढ़ बालक में भी शक्ति और सक्षमताएं होती हैं तो नीति का शिक्षण दिया जाता है। याने जब अध्यापक यह मानने लगे कि निश्चय ही ये मूढ़ बालक विकास करेंगे, तो यही नीति की शिक्षा का वातावरण समझा जाना चाहिए। अध्यापक को जब दृढ़ विश्वास हो कि मूढ़ बालक के लिए किये गये प्रत्येक कार्य से उसकी अंतरात्मा जगमगा उठेगी, उसमें सचेतन क्रियाएं स्फुरित हो उठेंगी, उसमें परिश्रमयुक्त सृजन का विकास होगा, बस इसी को नीति का शिक्षण माना गया है। सामान्य तौर से वातावरण ही सच्चा नीति शिक्षण है, मॉण्टेसरी का यही विचार यहाँ प्रच्छन्न रूप से दिखाई दे रहा है।

किंडरगार्टन-पद्धति

इस पद्धति की स्थापना पेस्टोलोजी के शिष्य फ्रेडरिक फ्रॉबेल (1783-1852) ने की थी। 'किंडर' यानी बालक, और 'गार्टन' यानी बाग। इस तरह इस पद्धति का अर्थ होता है, बालकों का बाग। 'किंडरगार्टन' जर्मन शब्द है। बालकों को मारपीट से और शिक्षकों के जंगलीपन आदि से बचा लेने का श्रेय रूसो के बाद पेस्टोलॉजी और फ्रॉबेल को ही प्राप्त हुआ है। तत्कालीन समय में गिजू भाई की इन स्कूलों के विषय में प्रतिक्रिया है कि आज भारत में चल रही किंडरगार्टन-पद्धति को देखकर फ्रॉबेल दुःख के साथ कह सकते हैं, "यह मेरे द्वारा चलाई गई पद्धति नहीं है।" आज अपने देश में किंडरगार्टन-पद्धति का ऐसा विकृत रूप खड़ा हो गया है। फ्रॉबेल तो यूरोप की किंडरगार्टन पाठशालाओं में जाकर भी यही कहेंगे, "इनमें मेरी मूल कल्पना और सिद्धान्त नहीं है।" उनका नारा था 'आओ अपने बच्चों के लिए जीवित रहें।'

फ्रॉबेल ने किंडरगार्टन-पद्धति की रचना एक फ्लॉसफी के अर्थात् तात्त्विक चिन्तन के आधार पर की है। वे अपनी पद्धति के मुख्य तीन सिद्धान्त मानते हैं-(1) एकता, (2) आन्तरिक विकास, और (3) पारस्परिक सम्बन्ध। उन्होंने इन तीन सिद्धान्तों को प्रकृति और मनुष्य के सम्बन्धों के सार-रूप में खोज निकाला है। फ्रॉबेल की पद्धति की रचना आज के विज्ञान पर आधारित मनोविज्ञान की दृष्टि से नहीं हुई है। वह तात्त्विक और धार्मिक समझदारी पर अथवा दर्शन पर आधारित है।

खिलौनों से लगते किंडरगार्टन के साधनों के मूल में फ्रॉबेल की कल्पना वाले उपयुक्त सिद्धान्त हैं। प्रत्यक्ष व्यवहार में आज शिक्षक भी इन साधनों और सिद्धान्तों के बीच के सम्बन्ध को न तो समझ पाते हैं और न इनको अमली रूप देने की कोई सम्भावना देखते अथवा जानते हैं। यूरोप और अमेरिका

के किंडरगार्टनिस्टों ने शिक्षा में स्वतंत्रता और स्वयं-स्फूर्ति की दृष्टि से पद्धति में बहुतेरे सुधार किये हैं। कई किंडरगार्टन विद्यालय मॉण्टेसरी के साधनों का उपयोग करते हैं, जबकि कुछ विद्यालयों में किंडरगार्टन के साधनों का उपयोग मॉण्टेसरी सिद्धान्त के अनुसार किया जाता है। किंडरगार्टन-पद्धति में शिक्षक केन्द्र में रहता है। शिक्षक का काम ज्ञान पिलाने, रुचि उत्पन्न करने और प्रेम पाने का होता है। शिक्षक के अभाव में बालक अपना काम अपने-आप एक मिनट के लिए भी चला नहीं पाते। किंडरगार्टन-पद्धति मानती है कि तीन से छह साल की उम्र तक बालक परावलम्बी होता है। इसलिए छोटे बालकों को उनके सब कामों में प्रेमपूर्वक मदद देनी चाहिए।[1]

मॉण्टेसरी-पद्धति

मॉण्टेसरी-पद्धति का अर्थ है जीवन-विकास की पद्धति। आबाल-वृद्ध सबके लिए यह अनुकूल है। जिसे जीवन की खोज करनी हो, इस पद्धति के माध्यम से वैसा कर सकता है। आज इस पद्धति के सिद्धांतों के अनुकूल वातावरण रचने वाली पाठशालाओं में तीन में से ग्यारह वर्ष के बालक आत्मानुसंधान कर रहे हैं। जो लोग इस दिशा में कार्यरत हैं उन्हें भरोसा है कि इसी पद्धति की राह पर चलकर समग्र शिक्षण का प्रबंध किया जा सकता है।

विकास की क्रिया एक चेतन-क्रिया है। यह भीतरी क्रिया है। हर तरह के अनुकूल या प्रतिकूल बाहरी वातावरण में भी यह क्रिया चलती ही रहती है। अनुकूल वातावरण इस क्रिया को गति देता है, जबकि प्रतिकूल वातावरण इसे कुछ समय के लिए रोक देता है। आखिरकार यह क्रिया आगे बढ़ने की ही है, क्योंकि विकास का स्वभाव प्रगति है। मॉण्टेसरी-पद्धति यह मानती है कि मनुष्य स्वयं विकासशील प्राणी है। प्रतिक्षण वह विकास के लिए संघर्ष करता है, विकास के लिए ही क्रिया करता है, और उसकी प्रत्येक क्रिया उसे विकास की तरफ ले जाती है।

प्रत्येक जीवंत प्राणी अपने स्वरूप को पूर्णता तक पहुँचाने के लिए विकास करता है। वनस्पति और मनुष्येतर प्राणियों का अध्ययन हमें इसी सत्य का दर्शन कराता है। प्रत्येक बालक में बीज रूप में पूर्ण मनुष्य विद्यमान रहता है। इस भावी मानव को अपनी संपूर्णता के साथ प्रकट करने का पुरूषार्थ ही विकास ही क्रिया है। प्रत्येक बीज एक-दूसरे से भिन्न होता है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का भविष्य एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न होता है। विकास ही दिशाओं और रूपों में भिन्नता है, इसी से विकास में रोचक व रोधक वातावरण का अर्थ सापेक्षता के साथ विद्यमान रहता है। इन कारणों से हम किसी के विकास का निर्माण हर्गिज नहीं कर सकते। अधिक से अधिक हुआ तो विकास की दिशा को देखकर हम विकास की पोषक वस्तु को सामने रख देते हैं और अवरोधक को पीछे हटा देते हैं। ऐसा भी होता है कि जिसे हम अवरोधक कहते हैं वह भी विकास के मार्ग में अपने अवरोधक-स्वरूप की

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 46

वजह से बहुधा विकास में सहयोगी बन जाता है। थोड़ा और गहरे उतरने पर ऐसा भी लगता है कि रोचक-रोधक शब्द एक सीमा तक ही जाते हैं, फिर तो प्रत्येक परिस्थिति प्रगति को पोषण करने वाली बन जाती है।

मनुष्य को अपना परम लक्ष्य प्राप्त करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। बंधन में बँधा हुआ मनुष्य चल नहीं सकता। आज का मनुष्य तरह-तरह के परंपरा-प्राप्त उत्तराधिकारों से बँधा हुआ तो है ही। इन बंधनों के ऊपर हम अपनी पसंद के सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, व्यावहारिक नियमों के और ऐसे अन्य बंधन डालकर उसे और भी अधिक बांध देते हैं और फिर उसे 'सच्चा इंसान' बनाने के लिए शिक्षा का प्रबंध करके मुस्कारते हैं। ऐसा करके हम उसे स्वत्व से, स्वदेश से, स्वानुभव से बहुत दूर ले गए हैं। इसके प्रमाण स्वरूप स्वयं को तथा संसार को समझने के लिए व्यर्थ भटकता 'आज का मनुष्य' हमारे सामने मौजूदा है। मनुष्य को उच्चकोटि की मानवता प्राप्त करने के लिए स्वभावानुसार स्वयं-विकास की राह पकड़नी चाहिए-यही एकमात्र रास्ता है। इसके लिए मनुष्य को स्वतंत्र होना चाहिए। मॉण्टेसरी-पद्धति की महत्ता बालक को शुरू से ही ऐसी स्वतंत्रता प्रदान करना है। इस पद्धति का अगर कोई एकमात्र प्राण जानने योग्य है, तो वह है स्वतंत्रता। स्वतंत्रता याने संपूर्ण स्वाधीनता। मनुष्य अपने विकास की भूख को तृप्त करने, अपनी ही शक्ति से, अपनी ही विवेक-बुद्धि से, अपनी ही आंतरिक भावना से प्रेरित होकर और अपने आंतरिक प्रवाहों से बाध्य होकर जो कोई भी काम करना शुरू कर देता है, उन्हीं को स्वतंत्र काम समझना चाहिए। बौद्धिक विकास के लिए जहां मनुष्य स्वयं अपनी मर्जी से दूसरों की सहायता लेता है तो वहाँ वह पराधीन नहीं होता। इसी तरह विकास के निमित्त सहायता तलाशने वाले को, उसकी मर्जी हो तो, सहायता देने वाला व्यक्ति पराधीन नहीं बनाता। मॉण्टेसरी-पद्धति अपने शैक्षिक उपकरणों के माध्यम से विकास को पोषित करने वाली ऐसी सहायता प्रदान करती है। स्वतंत्रता के सिद्धांत की सफलता का कारण इसी में विद्यमान है। यहीं पता लगता है कि मॉण्टेसरी-पद्धति में स्वतंत्रता का अर्थ विकास करने वालों के पक्ष में स्वाधीनता और विकास चाहने वाले के पक्ष में पोषक व प्रेरक ऐसी सहायता देना है। मार्गदर्शक परिस्थिति न भी होगी, तब भी मनुष्य विकास तो साधेगा ही, क्योंकि आत्मा का स्वभाव है प्रत्यन करना। लेकिन ऐसा करने में उसे बहुत अधिक समय लगेगा और उसे अपनी शक्ति का अपव्यय करना पड़ेगा। मनुष्य को अब तक किये गये विकास का, विकास करने की रीति का और विकास की सामग्री का लाभ लेना ही चाहिए। इन तीनों को 'सहायता' या 'परिस्थिति' के नाम से हमें जानना होगा। स्वाधीन बनने के लिए मनुष्य को इस परिस्थिति की आवश्यकता पड़ेगी ही। मॉण्टेसरी-पद्धति का साहित्य, वातावरण आदि ऐसी ही एक परिस्थिति है। इस परिस्थिति से बाहर निकलकर विकास ढूँढने का

स्वातंत्र्य मॉण्टेसरी-पद्धति में नहीं है।[1]

डॉ0 मॉण्टेसरी की दृढ़ मान्यता है कि, 'इन्द्रियों के विकास के बाद ही बुद्धि का यथार्थ विकास जन्म लेता है। बुद्धि का सम्पूर्ण विकास इन्द्रिय-विकास पर ही अवलंबित है। इन्द्रिय-शिक्षण की इस दृढ़ एवं व्यवस्थित बुनियाद पर ही बालक का विशुद्ध तथा दृढ़ मन निर्मित होता है।' इनकी यह भी मान्यता है कि इन्द्रिय-शिक्षण के इस उचित समय में (तीन से सात वर्षो के बीच) अगर इन्द्रिय शिक्षण की उपेक्षा की जाती है तो बालक का बुद्धिबल लगभग पंगु बना रह जाता है।

मॉण्टेसरी-पद्धति में बालक का शिक्षण दो दृष्टियों से किया जाता है - एक, जीवनशास्त्र की दृष्टि से, दूसरा समाजशास्त्र की दृष्टि से। बालक जितना प्रकृति-प्रदत्त गुणों से संचालित है, उतना ही उसे सामाजिक बनना होगा। बालक की सामाजिक स्थिति आज अपरिहार्य है। चेतन मात्र के लिए प्रकृति ने जन्म, वृद्धि तथा क्षय के नियम बना रखे हैं। मानव प्राणी के प्राकृतिक-विकास की मीमांसा करने वाला शास्त्र जीवन-शास्त्र कहलाता है तथा समाज में रहते हुए अपने जीवन को वह अधिक से अधिक सुखी कैसे बना सकता है, उसके नियमों की रचना करने वाला शास्त्र समाजशास्त्र स्वाभाविक मानवीय गुण प्राप्त नहीं कर सकता। इसके अलावा मनुष्य को अपने स्व-विकास के लिए जिस तरह से जीवन शास्त्र की दृष्टि से संबंध करने की जरूरत है, वैसे ही कहीं मनुष्य सामाजिक व्यवहारों में दु:खी न हो जाए या कहीं मुश्किल में न आ फंसे, इसके लिए उसे समाज के नियमों तथा व्यवस्था संबंधी ज्ञान की जरूरत है। मनुष्य का सर्वांग सुन्दर विकास हो तथा मनुष्य सामाजिक बन रह सके, इसके लिए इन्द्रिय-विकास की परिपूर्णता की जरूरत है। इन्द्रियों का विकास मानवीय शरीर का स्वभाव है। इस विकास को अपनी पराकाष्ठा तक पहुंचाने में शिक्षा की उपयोगिता निहित है। समाज में रहना बालक की स्वाभाविकता है, लेकिन बालक को समाज में सुव्यवस्थित रूप से योग्य बनने की कला अर्पित करना शिक्षा की ही विशेषता है। डॉ0 मॉण्टेसरी की मान्यता है कि बालक को जीवनशास्त्र तथा समाजशास्त्र की दृष्टि से अगर वांछित शिक्षण देना हो तो उसकी इन्द्रियों की सर्वांग सुन्दर शिक्षा का प्रबंध शुरू से ही किया जाना चाहिए। इसके लिए सही समय है - तीन से सात वर्ष की उम्र के बीच का। इस समय बालक के शारीरिक-गठन का है। इस समय में इन्द्रिय शिक्षण से बालक की अवलोकन क्षमता विकसित होती है और उसी से उसकी बौद्धिक क्षमता भी विकसित होती है। यही नहीं, इससे बालक अपने आसपास के अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों को यथार्थ रीति से समझने लगता है, और या तो उनके अनुकूल हो सकता है या उनका सामना करके उनका मुकाबला कर सकता है। इस तरह की शक्ति से रहित बालक समाज में नहीं रह सकता। इसीलिए इस उम्र में इन्द्रियों की समुचित शिक्षा की आवश्यकता है। त्रुटिविहीन इन्द्रियों को सम्पूर्ण शक्ति के

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 73

विकास की पराकाष्ठा तक पहुँचाने का काम शिक्षाविदों का है।[1]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से बाहर जाकर वह आज की स्थिति में वैयक्तिक विकास साधने में सक्षम नहीं है। सामाजिक व्यवहार, रहन-सहन, शिष्टाचार आदि के ज्ञान की और इनके पालन की स्वयं अपने विकास के लिए ही आवश्यकता है। विकास हेतु जीवन चलाने के लिए भी उसे अनेक रीति से सामाजिक बनना पड़ता है। इस प्रकार मनुष्य की स्वतंत्रता पर समाज का अंकुश स्वाभाविक रूप से आया हुआ है और उसे मनुष्य ने स्वेच्छा से स्वीकार भी किया है। यह अंकुश जिसे परिमाण में मनुष्य को स्वतंत्र रख पाता है अथवा मनुष्य उसे अपनी स्वतंत्रता संभाल कर स्वीकार करता है, उसे परिमाण में वह सहायक है, लेकिन जब समाज व्यक्ति के ऊपर अधिक आक्रमण कर बैठता है, अथवा व्यक्ति समाज के दबाव को स्वतंत्रता के विनाश की हद तक स्वीकार करता है, तो वह अंकुश अपकारक बन जाता है। सच है सामाजिक अंकुश को व्यक्ति-स्वातंत्र्य का सनातन नियम या स्वरूप बांध नहीं सकता। इसमें देश, काल, समाज एवं व्यक्ति को लेकर फर्क पड़ता ही है। अतएव व्यक्ति-विकास को मानव विकास का लक्ष्य मान कर और सामाजिक अंकुश को इस लक्ष्य तक पहुँचने का एक साधन मानकर, उसके नियम एवं स्वरूप का निर्णय किया जाना आवश्यक है। जब सामाजिक अंकुश व्यक्ति-विकास का दुश्मन बन जाता है तो उसे उलट डालने की आवश्यकता तो स्पष्ट ही है। इस प्रकार से निर्णित सामाजिक अंकुश को स्वीकारना हर विकास चाहने वाले व्यक्ति का धर्म है।

मॉण्टेसरी-पद्धति इस नियम को स्वीकार करके व्यक्ति-स्वातंत्र्य के प्रदेश को एक रीति से बांध देता है। यह प्रदेश भी एक अन्य मर्यादा से मर्यादित है। यह मर्यादा है धर्म-नीति की। सामाजिक अंकुश की भाँति यह मर्यादा भी एक साधन ही है। विकास के लिए सामाजिक जीवन जिस तरह से अनिवार्य है, उसी तरह से नैतिक व धार्मिक जीवन भी अनिवार्य है। संसार का कारोबार व्यवस्थित रीति से चलाने के लिए स्थूल से लेकर सूक्ष्म तक की कितनी ही व्यवस्था है। इस व्यवस्था को भले नैसर्गिक कहो या दैवी, लेकिन यह है; और इसका अनुभव होता है बुद्धि से और जहाँ बुद्धि काम नहीं करती वहां हृदय से होता है। ये विषय विज्ञान के तराजू पर तोले नहीं जा सकते, और मानव-बुद्धि की मर्यादा के भीतर भी नहीं आते। ये बातें जीवन के उच्च्व प्रदेश की हैं। इसके पीछे रहने वाले तत्त्व को गिजू भाई नीति अथवा धर्म कहते हैं। उनके अनुसार विकासगामी मनुष्य स्वभावतः नीति एवं धर्म-परायण होता ही है। लेकिन जिसे हम आज धर्म और नीति के नाम से पहचानते हैं, उसमें नीति और धर्म कितना है, इस प्रश्न को न छेड़ते हुए भी वे कहते हैं कि धर्म और नीति अंतःवृत्ति की चीजें हैं। भिन्न-भिन्न स्तरों पर खड़े व्यक्तियों को धर्म और नीति को समझने में अंतर पड़ने का यही कारण

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, पृ0 96-97

है। देश काल और समाज के संबंध में धर्म-नीति की कल्पना में बड़ा फर्क दिखायी देता है। इसके मूल में यही कारण है। सच कहा जाए तो विकास चाहने वाली प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा अपनी नीति और अपने धर्म को स्वतंत्र स्थिति में ही समझ सकती है और बहुधा बहिर् धर्म और नीति के बंधन को तोड़कर भी चलती है। उसकी प्रगति के साथ धर्म नीति का ख्याल (परशेप्सन) बढ़ता और बदलता जाता है। अतः धर्म-नीति हमेशा सापेक्ष रहती है। गिजू भाई समर्थन करते हैं कि मॉण्टेसरी-पद्धति में इस वृत्ति के विकास को भरपूर अवकाश मिलता है।

धर्म तथा नीति की वृत्ति एक ताकत है। इन दोनों के अभाव में मनुष्य की अपनी ही हीन वृत्तियों की गुलामी है। निर्बल वृत्तियों के अधीन रहने वाला व्यक्ति सचमुच स्वतंत्र नहीं होता। अतः मॉण्टेसरी-पद्धति का स्वातंत्र्य धर्म या नीति संबंधी निर्बलता का हर्गिज पोषण नहीं करता। वह स्व के याने अपने ही तंत्र के अधीन है। ऐसा मनुष्य नीति-धर्म को समझ सकता है और पालन कर सकता है। स्वातंत्र्य याने नीति, धर्म एवं सामाजिक शिष्टाचार के मध्य बहती गंगा। स्वातंत्र्य याने समाज और धर्म-नीति, धर्म एवं सामाजिक शिष्टाचार के मध्य बहती गंगा। स्वातंत्र्य याने समाज और धर्म-नीति की जड़ दीवारों से चारों ओर बांधा हुआ तालाब नहीं। गिजू भाई मानते हैं कि मॉण्टेसरी पाठशालाओं के स्वातंत्र्य को उच्छृंखलता कहना लोक मान्यता की बहुत बड़ी भूल होगी। वर्तमान पाठशालाओं की जड़ व्यवस्था की दृष्टि से कदाच लग सकता है कि मॉण्टेसरी पाठशाला में अव्यवस्था है, पर वह ऊपरी दृष्टि से ही। दो किनारों के बीच चलकर अपने आंतरिक विचार को दिमाग के समक्ष साकार करने के लिए जूझता-आंदोलित करता बालक अगर किसी को भटकता हुआ लगे तो यह मॉण्टेसरी-पद्धति का दोष नहीं, देखने वाले की गलती है। जीवन में जहाँ स्वतंत्रता की बात कोसों दूर है अभी, वह शिक्षा में स्वतंत्रता लाने की बात चौंकाने जैसी है। लेकिन अभी तक हमारे जीवन में स्वतंत्रता का भाव अगर नहीं आया तो इसका कारण है स्वतंत्रता प्राप्त न होना, अगर यही समझ लें तो सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि अनेक प्रकार की स्वतंत्रता की लड़ाइयाँ पहले ही समाप्त हो जाएं और मानव जाति स्वतंत्रता जैसी पवित्र व उच्च वस्तु को प्राप्त करें। मॉण्टेसरी-पद्धति मानव जाति को 'स्वातंत्र्य' की अमूल्य भेंट देने अवतरित हुई है। गुलामों को जुल्मी सत्ता से, शासित को शासक के चंगुल से, गरीब को पूंजी से, व्यक्ति को समाज से, अंतरात्मा की आवाज को शास्त्र-वचन से, अंतःस्फूर्ति को बुद्धि से, चेतन को जड़ता से और ज्ञान और अज्ञान से आजादी दिलाने वाली पद्धति मॉण्टेसरी-पद्धति है। भावी नागरिकों के शरीर, मन तथा आत्मा का स्वराज्य स्वातंत्र्य में हैं और उसका मूल स्वातंत्र्य- शिक्षण में है। डॉ0 मॉण्टेसरी इसकी आद्य प्रणेता हैं।

मॉण्टेसरी-पद्धति का एक अंग स्वातंत्र्य है और दूसरा अंग है स्वयं-स्फूर्ति। विकास स्वातंत्र्य

और स्वयं-स्फूर्ति पर आधारित होना चाहिए। जो विकास आंतरिक कारणों से नहीं अपितु बाहरी कारणों से होता है, जिसके पीछे दंड और पुरस्कार आदि होते हैं वह विकास कहलाने का हकदार नहीं है। हम बालक का बहुविध विकास साधने के लिए अनेक तरह के कृत्रिम उपायों का आयोजन करते हैं। परिणामस्वरूप आज का व्यक्ति सिर्फ बहिर्मुखी बनकर रह गया। वास्तविक जीवन-उद्देश्य उसके हाथ न लगने के कारण वह आजीवन असंतुष्ट और दुखी रहता है। इसका उपाय यही है कि शिक्षण में स्वयं-स्फूर्ति को स्थान दिया जाना चाहिए। आजकल बालक को जाने बिना, उसकी आंतरिक जरूरतें क्या हैं, इसे तय किये बिना, उसके लिए पाठ्यक्रम का निर्धारण करते हैं, समय-चक्र बनाते हैं और तरह-तरह की तर्क-सिद्ध पद्धतियों से उसे अच्छी से अच्छी तरह पढ़ाने की खूब मेहनत करते हैं और इसके बावजूद भी जब उसे समझ में नहीं आता तो शिक्षक अच्छे-बुरे तरीके काम में लाते हैं और शिक्षा उलझे हुए धागों को और अधिक उलझा डालते हैं। स्वयं-स्फूर्ति के आधार पर शिक्षण को आयोजित करने क बजाय हम शिक्षण के अनुरूप स्वयं-स्फूर्ति की उम्मीद रखते हैं - मानो कोई भूख के अनुरूप भोजन बनाने की बजाय भोजन के अनुरूप भूख जगाने की भूल करे।[1]

बालक का विकास अन्तर्निहित कारणों का प्रतिफल है, शिक्षा के द्वारा विकास के लिए समुचित वातावरण निर्मित किया जाना चाहिए। इसीलिए मॉण्टेसरी-पद्धति में अमुक बातें ही सीखनी चाहिए, अमुक नहीं, यह कैसे हो सकता है? काल का बंधन इसमें कैसे संभव हो? समय-चक्र तो यहां चले भी कैसे? पढ़ाना और परीक्षा लेना इसमें कैसे हो? और जहाँ शिक्षण कर्म आंतरिक कारणों से होता है-स्वयंजनित होता है, वहाँ दंड और पुरस्कार का प्रश्न अपने-आप समाप्त हो जाता है। आंतरिक विकास की प्रत्येक क्रिया आनंद के साथ ही होती है और होनी चाहिए। यह आनंद तभी मिलता है कि जब विकास की क्रिया में बाहरी वातावरण विक्षेप न डालें। स्वयं-स्फूर्ति और स्वयं-शिक्षण साथ-साथ चलते हैं। जो शिक्षण आंतरिक जरूरत से होता है वह मनुष्य को स्वयं प्राप्त करना पड़ता है। उसके लिए दूसरों की कोशिशें बेकार हैं। इससे यह सिद्धान्त फलित होता है कि कोई किसी को सिखा नहीं सकता। यहां मॉण्टेसरी-शिक्षक के गौण स्थान की महिमा को समझा जा सकता है। मॉण्टेसरी-पाठशाला विकास के लिए आवश्यक सामग्री का प्रबंध करे और बालक स्वयं को यथेच्छ शिक्षित करे, यही स्वाभाविक है।[2]

सामान्यतया समस्त प्रवृत्तियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है - एक बहिर् प्रवृत्ति और दूसरी अंत:प्रवृत्ति। ऊपर से दोनों प्रवृत्तियाँ एक ही तरह की दिखाई देती है, पर उनमें जो भेद है वह है उनके पीछे रहने वाला उद्देश्य। बहिर् प्रवृत्ति का उद्देश्य है किसी निश्चित बाहरी कार्य को सिद्ध करना। इस उद्देश्य से प्रवृत्ति करने वाला व्यक्ति उससे पूरी तरह से वाकिफ होता है और इरादे के साथ उसे सिद्ध

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, पृ0 76

2- वही, पृ0 77

करता है। बहिर्-प्रवृत्ति का अंत बहिर् प्रवृत्ति की सिद्धि में है और व्यक्ति को वहीं जाकर संतोष मिलता है। बहिर् प्रवृत्ति कोई भी व्यक्ति अपने आंतरिक विकास के लिए नहीं करता, अपितु बाहरी दुनिया में अपनी व्यवस्था के लिए या ऐसे ही किसी कारणवश करता है। बहिर् प्रवृत्ति में मनुष्य किसी क्रिया को यथासंभव कम परिश्रम और कम समय में करना चाहता है। अंतः प्रवृत्ति का हेतु है आंतरिक विकास को साधना। इस हेतु की साधना में ही मनुष्य ही तृप्ति निहित है। यह तृप्ति भी मनुष्य बहिर् क्रिया करके प्राप्त करता है। बहिर् क्रिया करके अंतःतृप्ति कैसे प्राप्त करे इसका मनुष्य को अता-पता नहीं लगता, लेकिन वह अंतः तृप्ति के साधनों की ओर सहज ही आकर्षित होता है और उनका बार-बार परिचय पाकर, बार-बार उनका उपयोग एवं उपभोग करके उनसे तृप्ति हासिल करता है। प्रवृत्ति जब तक आंतरिक उद्देश्य को सिद्ध नहीं करती, तब तक बहिर् क्रिया के अनंत पुनरावर्तन में ही उसे आनंद आता है। जो क्रियाएँ आंतरिक भूख को नहीं मिटा सकतीं। वे पुनरावर्त्तन की वृत्ति को नहीं जगा सकती। बहिर् प्रवृत्ति और अंतः प्रवृत्ति में यही अंतर है कि पहली में पुनरावर्तन का अभाव है जबकि दूसरी में पुनरावर्तन का कोई अंत नहीं। एकाग्रता और पुनरावर्तन का प्रकार दोनों एक-साथ चलते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि जो-जो साधन बालकों को पुनरावर्तन तथा एकाग्रता में उत्तेजित करते हैं, ये तमाम साधन विकास के साधन हैं। मॉण्टेसरी पद्धति के सब साधन प्रमुख रूप से इसी सिद्धान्त को सामने रखकर बनाए गए हैं।[1]

मॉण्टेसरी एवं किंडरगार्टन में अंतर

मान्यता है कि 'मॉण्टेसरी' और 'किंडरगार्टन' दोनों एक ही चीज है अथवा किंडरगार्टन पाठशाला में मॉण्टेसरी-पद्धति के उपकरण लाकर रख दें तो वह मॉण्टेसरी-पद्धति बन जाती है। जिस प्रकार से किंडरगार्टन का साहित्य मनोविनोदपूर्वक ज्ञान देने के लिए प्रयुक्त होता है, उसी तरह की बात मॉण्टेसरी-उपकरणों के साथ लागू होती है। यह एक बहुत बड़ी भूल है।

वस्तुतः किंडरगार्टन और मॉण्टेसरी का परस्पर कोई लेना-देना नहीं। दोनों पद्धतियों में कुछेक मुद्दों पर सतही समानता दिखायी देती है, पर दोनों में आकाश-पाताल का अंतर है और यह अंतर सैद्धांतिक है।

किंडरगार्टन में मनोरंजन के साथ ज्ञान दिया जाता है, जबकि मॉण्टेसरी में बालक स्वयं आनंदित होकर ज्ञान प्राप्त करता है। गहनता से देखें तो कहा जा सकता है कि किंडरगार्टन में ज्ञान शिक्षण का प्रश्न है जबकि मॉण्टेसरी में वह विकास का प्रश्न है। हालांकि विकास का परिणाम ज्ञान-प्राप्ति ही है।

किंडरगार्टन शिक्षा का प्रबंध करता है और इस कारण वहाँ शिक्षक नामक व्यक्ति अनिवार्यतः

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, पृ0 77-78

अपरिहार्य बन जाता है, जबकि मॉण्टेसरी में बालक को अपना विकास अपने-आप करना होता है, अत: वहां शिक्षक का व्यक्तित्व अत्यंत गौण हो जाता है। पर-प्रेरणा में और स्व-प्रेरणा में जो अंतर है, पर-प्रकाश में और स्व-प्रकाश में जो फर्क है, वही फर्क किंडरगार्टन और मॉण्टेसरी शिक्षण-पद्धतियों में है। इस फर्क का मूल मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की मान्यताओं और स्वीकार में निहित है।

दोनों पद्धतियों में यह बात तो स्वीकार्य है ही कि शिक्षण का आधार रस है। लेकिन किंडरगार्टन-पद्धति रस को उत्पन्न करने में विश्वास करती है, जबकि मॉण्टेसरी-पद्धति रस की स्वयं-उत्पत्ति में आस्था रखती है। किंडरगार्टन-पद्धति बालकों को रस के घूंट पिलाकर ज्ञान की भूख जगाती है, जबकि मॉण्टेसरी-पद्धति सच्ची आंतरिक भूख का इंतजार करती है। अब तक की तमाम शिक्षण-पद्धतियाँ और किंडरगार्टन-पद्धति दोनों यूं मानकर चलते हैं कि हम बालक को जैसा चाहें वैसा बना सकते हैं, क्योंकि बालक का मन 'कोरे कागज' जैसा होता है। जबकि मॉण्टेसरी-पद्धति की मान्यता है कि कोई आदमी किसी को पढ़ा-लिखा नहीं सकता। याने हर आदमी खुद अपना गुरू है। ज्ञानोपार्जन हमारे लिए उतना ही जरूरी है, जितना जीना। बालक का मन कोरा-कागज नहीं है अपितु उसमें एक मनुष्य विद्यमान रहता है। ऐसी विरोधी मान्यता के कारण ही एक पद्धति में रस को उंडेलना पड़ता है, जबकि दूसरी पद्धति में रस भीतर से फूटता है।[1]

किंडरगार्टन-पद्धति में सामूहिक शिक्षा की व्यवस्था है। उसमें बालकों के व्यक्तिगत विकास की बहुत कम गुंजाइश है। सामूहिक शिक्षा के कारण कक्षा की व्यवस्था का स्वरूप कुछ निम्नानुसार होता है - एक निश्चित स्थान पर बालक एक कतार में बैठते हैं। उनको अपनी इच्छा के अनुसार काम करने की मनाही होती है। अपनी मनपसंद वृत्ति का अनुसरण करने की अपेक्षा इस पद्धति में शिक्षक के प्रेमपूरित आदेश का अनुसरण करना होता है।

किंडरगार्टन में बालकों की गतिविधियाँ शिक्षक-प्रेरित होती हैं। उसमें बालकों के लिए उपयोगी विषय रहते हैं। बालकों के लिए प्रकृति, प्राणी आदि के परिचय की व्यवस्था होती है। किन्तु इन सबका परिचय कराने की रीति पर प्रेरित है।

किंडरगार्टन में समय-चक्र की, कुछ अंशों में पाठ्यक्रम की ओर रूचि जगाकर सिखाने की व्यवस्था है, मनोविज्ञान की दृष्टि से किंडरगार्टन-पद्धति मानती है कि अपनी छोटी उम्र के कारण बालक लम्बे समय तक एकाग्र नहीं रह पाते। इसलिए थोड़े-थोड़े काम के बाद उनके वास्ते आराम की व्यवस्था की गयी है। उत्तेजित रस के कारण किंडरगार्टन में बालक आकुल-व्याकुल बनता है और स्थिरता के बदले उसमें चंचलता और शान्ति के बदले उत्तेजना बढ़ती है। किंडरगार्टन-पद्धति में सामाजिक जीवन के विकास के लिए अच्छी गुंजाइश है, परन्तु उसमें इस बात की कोई कल्पना नहीं

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, पृ0 90

है, कि उपेक्षित व्यक्तियों का समूह कितना पंगु बन जाता है।

किंडरगार्टन में बालकों की विशिष्ट शक्तियों की अवगणना होती है, इसलिए छोटी उम्र में बालकों को जिन-जिन विषयों का ज्ञान कराया जा सकता है, उन सब विषयों का समावेश इस पद्धति में नहीं किया गया है।

मॉण्टेसरी पद्धति में प्रत्येक साधन किसी विशिष्ट उद्देश्य से, विशिष्ट शिक्षण के लाभ हेतु बनाया गया है। कोई अमुक साधन बालक अपनी मनमर्जी से, चाहे जिस ढंग से प्रयुक्त नहीं कर सकता। जिस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए जिस ढंग से साधन का इस्तेमाल करना तय किया है उससे भिन्न रीति से इस्तेमाल करना डॉ0 मॉण्टेसरी को मान्य नहीं। इस सम्बन्ध में किंडरगार्टन वालों का मॉण्टेसरी से मतभेद है। किंडरगार्टन वाले कहते हैं कि इस तरह से साधनों के उपयोग को विशिष्ट और मर्यादित कर देने से बालक की सृजनशक्ति एवं कल्पनाशक्ति पर अंकुश लग जाता है। इसके जवाब में कहा गया है कि मॉण्टेसरी के साधनों से जो विशिष्ट लाभ अर्जित किये जा सकते हैं, भले ही बच्चे उन्हें अर्जित करें परन्तु उन साधनों के द्वारा उनकी अन्य दिशा में कल्पनाशक्ति और सृजनाशक्ति विकसित करने में रुकावट न आनी चाहिए। उल्टे, इससे तो साधन की उपयोगिता में अभिवृद्धि होती है। डॉ0 मॉण्टेसरी इस बात का विरोध करती हैं। इनकी मान्यता है कि अमुक एक साधन को बालक एक बार अलग गलत ढंग से काम में लेने लगेगा तो बाद में उसे सही इस्तेमाल की तरफ लौटा लाना याने साधन के वास्तविक उपयोग का लाभ दे पाना असंभव अथवा कठिन हो जायेगा। इसका यह अर्थ नहीं कि मॉण्टेसरी पद्धति में सृजनशक्ति और कल्पनाशक्ति के विकास की गुंजाइश नहीं। ऐसा कहा जाता है कि जब बालक किसी भी साधन का दुरुपयोग करे तो पता लगाया जाना चाहिए कि उस समय उस दुरुपयोग के पीछे बालक में विकास की कौन-सी शक्ति काम कर रही है। बालक की जो सृजनशक्ति अथवा कल्पनाशक्ति मॉण्टेसरी पद्धति के साधनों के दरुपयोग द्वारा प्रकट होती दिखायी दे, उस सृजनशक्ति और कल्पनाशक्ति के स्वरूपों को पहचानकर उसे तृप्ति, वेग और विकास मिलने जैसे साधन बालक को दिये जायें, और वे साधन उससे ले लिये जायें जिनका बालक सही उपयोग नहीं कर सका।[1]

अनेक शिक्षाशास्त्रियों की मान्यता है कि मॉण्टेसरी के साधनों के किंडरगार्टन के साहित्य में अच्छी-खासी अभिवृद्धि होती है, हालांकि वे साधन किंडरगार्टन की तुलना में आकर्षक नहीं हैं, सृजन-शक्ति और कल्पना-शक्ति के पोषक भी नहीं है।[2]

बाल-पाठशालाओं के बालकों का सच्चा शिक्षण शरीर के विकास में है, समस्त इंद्रियों के द्रुत विकास में है। अनुभव तथा अवलोकन पर दुनिया का परिचय कर पाना संभव है। इसलिए

1- गिजू भाई बधेका - साधनों की मीमांसा, मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 56

2- वही, पृ0 50

पाठशाला-समय का अधिकांश भाग बालकों के मनोविनोद के लिए रखा जाना चाहिए। किंडरगार्टन पाठशालाओं में जिस तरह से खेल खिलाये जाते हैं, उसी तरह सिर्फ खेल खिलाने में ही खेलों की समाप्ति नहीं हो जानी चाहिए। देशी खेलों की जानकारी का जीवन में सम्पूर्ण स्थान है, परन्तु बालक अपने खेल अपने-आप तलाश कर लेते हैं, यह सदैव ध्यान रहना चाहिए। वस्तुतः सभी लोक-क्रीड़ाएं बालकों की मुक्त-क्रीड़ा के परिणामस्वरूप हैं। बालकों को अमुक मर्यादा के क्षेत्र में मुक्त छोड़ देना चाहिए।[1]

किंडरगार्टन की पाठशालाओं में अक्षर सिखाने के लिए खण्ड-पद्धति का उपयोग किया जाता है। इस पद्धति का मेल न तो संयोगीकरण-पद्धति के साथ हो पाता है और न पृथक्करण-पद्धति के साथ ही हो पाता है। इस खण्ड-पद्धति में बालकों को पहले अक्षरों के हिस्सों का पूरा परिचय कराया जाता है और बाद में पूरा अक्षर सिखाया जाता है। इसमें यह माना गया है कि बालक खण्डों को जल्दी पहचान सकेंगे, क्योंकि चन्द्राकार, रेखा या लकीर जैसे नाम देकर पहले खण्डों की पहचान करायी जा सकती है और बाद में पूरा अक्षर बनाया जा सकता है। असल में यह पद्धति उल्टी है। इसमें अक्षर के जो खण्ड बनते हैं, उनको क से भिन्न दो नए नाम देकर क के उच्चारण में और क दिखाकर सिखाने में दो चन्द्र और एक रेखा को बालक के दिमाग में नाहक ही घुसाया जाता है। इसमें बालक को पहले दो चन्द्र खण्ड और एक रेखा सीखनी होती है और बाद में इनको भूलकर इनसे बने क का उच्चारण सीखना होता है। मन की स्वाभाविक रचना से यह क्रिया उल्टी है। असल में जिस तरह बालक दूसरी चीजों को पूरी-पूरी देखकर पहचानता है, उसी तरह क को देखकर वह उसको क के रूप में पहचानने की शक्ति रखता है। इसलिए चूँकि बुद्धि की मदद से उत्पन्न की गयी यह पद्धति बालक की बुद्धि को भ्रम में डालती है, इसलिए छोड़ देने लायक है।[2]

जिन दिनों यूरोप में किंडरगार्टन-पद्धति का आरम्भ हुआ होगा, उन दिनों उसके बारे में इन विचारों की कोई कल्पना भी किसी ने नहीं की होगी। ये आलोचनाएँ न तो फ्रॉबेल के व्यक्तित्व को लेकर हो सकती हैं और न स्वयं फ्रॉबेल ने बालकों पर जो महान् उपकार किए हैं, उनके बारे में ही हो सकती हैं। किंडरगार्टन-पद्धति उसके वाद में विकसित पद्धतियों के लिए सीढ़ी-स्वरूप है। आज उसमें जो अधिक दोष दिखाई देते हैं, शायद वे इसलिए हैं कि बाल-शिक्षा के क्षेत्र में अनेक सुधारात्मक परिवर्तन हुए हैं।

किंडरगार्टन शब्द पर किसी को कोई आपत्ति हो नहीं सकती। वस्तुतः जिस स्थान में बालकों का विकास निरंतर होता रहता है, वह स्थान 'बाल-वाटिका' ही है। हमारे देश की किंडरगार्टन पाठशालाओं का स्वरूप जितना हास्यास्पद है, उतना ही दयाजनक भी है। गिजू भाई का मत था कि

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 42

2- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 29

पुरानी पाठशालाएं और आज की किंडरगार्टन पाठशालाएं, दोनों, मिलकर आज बालकों का कितना अहित कर रही हैं, इसका पता लगाने के लिए कोई जांच-समिति नियुक्त की जानी चाहिए।[1]

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि मॉण्टेसरी और किंडरगार्टन दोनों को एक समझना पहाड़ सी भूल है। इस भूल की वजह से हमारे देश में जिन-जिन वर्तमान किंडरगार्टन विद्यालयों में मॉण्टेसरी के उपकरण व्यवहृत किये जाते हैं, वहाँ-वहाँ उनका दुरूपयोग होता है। इससे मॉण्टेसरी-पद्धतिजनित परिणाम प्राप्त नहीं होते। अत: विचार एवं व्यवहार में से ऐसी मान्यताएँ तत्काल दूर होनी चाहिएँ।[2]

2.2 सम्बन्धित शोध कार्यो का पुनरावलोकन

गिजू भाई के विषय में अनेकानेक विद्वानों व प्रबुद्धजनों द्वारा लिखे गये लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में तो अवश्य प्रकाशित हुए हैं। परन्तु उनसे सम्बन्धित किसी शोध कार्य का उल्लेख शोधकर्ता को शोध-विषयक ग्रंथों में प्राप्त न हो सका। अत: अन्य भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षा-दार्शनिकों से सम्बन्धित शोध कार्यों का पुनरावलोकन शोधकर्ता इस दृष्टि से तर्कसंगत मानता है कि गिजू भाई के शिक्षा दर्शन एवं प्रयोगों की मौलिकता एवं नवीनता, अन्य शिक्षाविदों के विचारों के साथ उनकी समानता व असमानता आदि के सम्बन्ध में एक अंतर्दृष्टि का विकास करने में यह सहायक सिद्ध होगा।

सुब्रमण्यम, आर.एस. (1958)- "वर्तमान भारत के संदर्भ में महात्मा गाँधी व रवीन्द्रनाथ टैगोर की शैक्षिक विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन" करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महात्मा गाँधी का योगदान उनके जीवन दर्शन में निहित है। गाँधी जी ने शिल्प कार्य को अपनी शिक्षण प्रणाली की धुरी बनाया। उनका विश्वास था जिस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए निरन्तर संघर्ष आवश्यक है, उसी प्रकार अज्ञानता, उत्पीड़न और अन्याय से मुक्ति प्राप्त करने के लिए शिक्षा आवश्यक है। उन्होंने मात्र शिक्षा को ही निश्चित गन्तव्य पर ले जाने की एक गतिशील शक्ति के रूप में माना। उनकी शिक्षा योजना का केन्द्रीय उद्देश्य चरित्र निर्माण है। शिक्षा में टैगोर के प्रयोग पश्चिमी विचारों और सड़ी-गली व्यवस्थाओं को हटाकर स्वदेशी सामग्री से सामाजिक ढाँचा बनाने के निश्चित सामाजिक उद्देश्य पर आधारित हैं। वे शिक्षा के माध्यम से एक आदर्श सार्वभौमिक समाज प्राप्त करना चाहते हैं। टैगोर ने ऐसी शिक्षा के विचार को ग्रहण किया जो केवल सूचना ही प्रदान न करे अपितु सम्पूर्ण संघर्षों के साथ जीवन का सामंजस्य भी स्थापित करे। वे भारत की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शिक्षा प्रणाली के पुन: निर्माण की आवश्यकता अनुभव करते थे।

खुजाविन्दाविल, के. (1965) द्वारा - "जॉन ड्यूवी तथा महात्मा गाँधी के शैक्षिक सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन" किया गया। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य महात्मा गाँधी व जॉन ड्यूवी के

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 48)

2- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी पद्धति क्यों है? क्या है? बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 70

शैक्षिक सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन करना है। इस अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष हैं- ड्यूवी का प्रायोगिक विद्यालय एक आदर्श विद्यालय है, जिसने उनके विचारों को लोकप्रिय बनाया जबकि गाँधी जी की योजना में ऐसा कोई विद्यालय नहीं है। ड्यूवी के विद्यालय को उसके छात्रों, अभिभावकों व प्रशंसकों का सच्चा व हार्दिक समर्थन प्राप्त है, जबकि गाँधी जी के बेसिक शिक्षा प्रयोग में कोई ऐसा जागरूक प्रयास अभिभावकों का सहयोग लेने में नहीं किया गया। ड्यूवी के इस विद्यालय में अनेक जीवनोपयोगी व्यवसाय सम्मिलित किये गये जबकि बेसिक शिक्षा की योजना में कताई के अतिरिक्त अन्य हस्तकलाओं की उपेक्षा की गयी।

ललिता, एच. (1967) द्वारा अपने शोध कार्य में "गाँधी और ड्यूवी के शैक्षिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन" किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य गाँधी और ड्यूवी के शिक्षा दर्शन में समानता और विभिन्नता का विश्लेषण करके वर्तमान शिक्षा प्रणाली के संदर्भ में उनका मूल्यांकन करना था। निष्कर्षों में पाया गया कि गाँधी जी व ड्यूवी को मिली परिस्थितियों की भिन्नता का प्रभाव उनके दर्शन की भिन्नता के रूप में दिखायी देता है। गाँधी जी टॉलस्टाय, रस्किन और गीता से प्रभावित हैं जबकि ड्यूवी विलीयन के आदर्शवाद और विलियम जेम्स के प्रयोजनवाद से प्रभावित हैं। गाँधी जी और ड्यूवी के सत्य के सम्बन्ध में भिन्न विचार हैं। गाँधी जी सत्य को भगवान के तुल्य मानते हैं जबकि ड्यूवी सत्य को क्षणिक व व्यर्थ समझते हैं। गाँधी जी प्राचीन भारतीय रहन-सहन तथा शिक्षा में विश्वास रखते हैं, इसलिए इन्होंने इसे एक आदर्श रूप में लेकर अपने शिक्षा के सिद्धान्त का निरूपण किया जबकि ड्यूवी ने अपने पथ प्रदर्शक के रूप में प्रजातंत्र, विज्ञान और तकनीकी उन्नति को लिया।

गाँधी जी ने शिक्षा को मुक्त करने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा अर्थात उनकी दृष्टि में शिक्षा मनुष्य के मानसिक अनुशासन को प्रशिक्षित करती है जिससे वह चिन्तन करने और कार्य करने की शक्ति स्वतंत्र रूप से प्राप्त करता है जबकि ड्यूवी ने शिक्षा को जीवन का एक भाग माना अर्थात यह माना कि जीवन का अनुभव प्राप्त करके मनुष्य शिक्षित होगा।

गाँधी जी और ड्यूवी दोनों ने ही व्यक्तिगत और सामाजिक शिक्षा के उद्देश्यों पर बल दिया, किन्तु वे इन उद्देश्यों के लिए अपने उपागमों में भिन्न थे। गाँधी जी का आदर्श समाज धार्मिक, ग्रामीण व परम्परागत है जबकि ड्यूवी का आदर्श समाज उन्नति करने वाला है, औद्योगिक तथा वैज्ञानिक है। परन्तु ये दोनों इस बात पर सहमत हैं कि शिक्षा जीवन लिए है। शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया सतत् तथा जीवनपर्यन्त चलने वाली है। गाँधी जी ने शिक्षा में राज्य के लिए किसी कार्य का अनुमोदन नहीं किया जबकि ड्यूवी के लिए प्रजातांत्रिक सरकार केवल लोगों की सेवा करने के लिए ही अस्तित्व

रखती है। गाँधी जी के शिल्प केन्द्रित बेसिक स्कूल का विचार, ड्यूवी के प्रयोगशाला के विचार, जहाँ करके सीखने को प्रोत्साहित किया जाता है, से समानता रखता है।

आचार्य, एस.आर. (1967) द्वारा "उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा के सिद्धान्त तथा अभ्यास पर प्रसिद्ध भारतीय शिक्षाविदों का योगदान का अध्ययन" किया गया। प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इस कालखण्ड में भारत में राष्ट्रीय शिक्षा के आंदोलन के जन्म तथा विकास के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना के विकास क्रम की प्रक्रिया का स्वरूप भी तय हुआ था, जिनमें इन प्रसिद्ध व्यक्तियों का महत्वपूर्ण योगदान था। भारतीय शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षण पद्धतियाँ और संगठन पहले से ही निर्धारित हुए थे तथा उनकी पुनः परीक्षा राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक थी।

एम.टी.एम.जी. (1968) ने "महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों में व्यक्तित्व का प्रत्यय" विषय का स्पष्टीकरण व अवबोध करने की दृष्टि से अपना शोध कार्य सम्पन्न किया।

राबिन्सन्, बी.ए. (1970) के द्वारा अपना शोधकार्य "शिक्षा में प्रयोजनवाद का आलोचनात्मक अध्ययन- बेसिक शिक्षा के संदर्भ में" शीर्षक के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में बेसिक शिक्षा तथा उपयोगितावाद का जिसे भारत में गाँधी जी ने तथा अमेरिका में डीवी ने प्रतिपादित किया, आलोचनात्मक विश्लेषण करना और प्रयोजनवाद के उद्भव व विकास तथा वर्तमान वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान के विकास के संदर्भ में भारतीय शिक्षा में बेसिक शिक्षा की उत्पत्ति का अध्ययन करना था। शोध निष्कर्ष के रूप में पाया गया कि शिक्षा में प्रयोजनवाद, प्रजातांत्रिक वैज्ञानिक विधियों तथा प्रयोगात्मक वृद्धि से गहन रूप से जुड़ा था। उसने शिक्षा को कार्य-केन्द्रित बना दिया। दोनों विचारधाराओं में एकीकृत व परस्पर सम्बन्धित शिक्षण पर जोर दिया गया। दोनों दर्शन बौद्धिक अभ्यासों पर आधारित शैक्षणिक अध्ययनों के विपरीत नहीं थे परन्तु वे उसे समाज के संदर्भ में वैयक्तिक वास्तविक अनुभवों के आधार पर निश्चित करना चाहते थे। शिक्षा के सिद्धांतों ने एक नए सामाजिक क्रम की ओर उचित मार्ग दर्शन करते हुए समाज को एक नई दिशा प्रदान की।

सिद्दीकी, ए.एम. (1971) का शोध प्रबंध "महात्मा गाँधी का समाजवाद का प्रत्ययः राजनीति और शिक्षा पर अपने अभिप्राय के विशेष संदर्भ में" विषय पर आधारित है।

सिंह, आई.बी. (1972) ने "गुरू रवीन्द्रनाथ टैगोर का शिक्षा-दर्शन" शीर्षक के अंतर्गत अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया। प्रस्तुत शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन का अध्ययन करना है। टैगोर ने देशी शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया तथा एक नये ढंग से उसे स्पष्ट किया। वे

यह अनुभव करते हैं कि शिक्षा में अत्यधिक जागृति पैदा किये बिना काम नहीं चलेगा। यदि आर्थिक पक्ष की अवहेलना कर दी जाये तो शिक्षा का योगदान अधूरा रह जायेगा। टैगोर मानते हैं कि शिक्षण के साथ-साथ सामाजिकता का विकास भी अनिवार्य है, तथा विद्यालय के आसपास सौन्दर्य बनाये रखना चाहिए। टैगोर ने बन्धुत्व व समानता की भावना को महत्व दिया और राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर विभिन्न संस्कृतियों के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया।

डे., जी.के. (1972) द्वारा "अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना के लिए शिक्षा में टैगोर का योगदान" विषय पर अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत किया गया।

सैन, ए. (1973) द्वारा महात्मा गाँधी के शैक्षिक दर्शन विषय पर अपना शोधकार्य संचालित किया गया। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य गाँधी जी का स्थान एक प्रमुख शैक्षिक दार्शनिक के रूप में सुनिश्चित करना था। प्रस्तुत अध्ययन से जो बातें स्पष्ट हुईं उनके अनुसार बेसिक शिक्षा जीवन के लिए शिक्षा है जो स्वार्थ रहित समाज पर आधारित है। बेसिक शिक्षा के पीछे विचार है कि हस्तकला ही एक मात्र सीखने का साधन है। उचित भावना से कार्य में लगने से यह बच्चे के पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में मदद करती है। यह कार्य के लिए बच्चे की स्वाभाविक आवश्यकताओं को पूरी करती है। गाँधी जी का दृढ़ विश्वास था कि बेसिक शिक्षा द्वारा ही सौ प्रतिशत आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सकती है। शोधकर्ता इस निष्कर्ष पर भी पहुँचता है कि बेसिक शिक्षा का भविष्य साधारण रूप से अच्छा प्रतीत नहीं होता और नई पीढ़ी पर बेसिक शिक्षा के प्रभाव की घोषणा करना कठिन भी है।

भट्ट, जे.एन. (1973) द्वारा "विनोबा भावे के शैक्षिक दर्शन का अध्ययन" शीर्षक से प्रस्तुत शोध का उद्देश्य विनोबा भावे के शैक्षिक दर्शन का अध्ययन उनके जीवन दर्शन के संदर्भ में करना था। अध्ययन यह प्रकट करता है कि विनोबा भावे के अनुसार जीवन के लिए शिक्षा केवल एक प्रक्रिया मात्र नहीं है, अपितु एक लक्ष्य के साथ प्रक्रिया है तथा आत्मज्ञान शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। उनका मानना था कि पाठ्यक्रम जीवन से सम्बन्धित, श्रमपूर्ण कार्यों से सम्बन्धित व जीवन के लिए लाभदायक बनाना होना चाहिए। शिक्षण विधि में अध्यापक को अपने आध्यात्मिक नेतृत्व पर अधिक विश्वास रखना चाहिए।

गिगू, पी.एन. (1976) ने - "गाँधी जी का शैक्षिक दर्शन तथा विश्व शान्ति" शीर्षक के अंतर्गत अपना शोधकार्य प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य थे- गाँधी जी के दर्शन की व्याख्या शिक्षा के सम्बन्ध में करना, शैक्षिक संस्थाओं में गाँधी जी के शैक्षिक दर्शन की व्यावहारिकताओं का पता लगाना तथा संसार में शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से शैक्षिक संस्थाओं में शिक्षण के सम्बन्ध में गाँधी जी के शैक्षिक दर्शन की व्यावहारिकता का विश्लेषण करना। शोधकर्ता की मान्यता है कि

विद्यालयों में गाँधी के शैक्षिक दर्शन से विद्यार्थियों का बहुमुखी विकास संभव हो सकता है। विद्यार्थियों में गाँधी जी का दर्शन शिक्षकों को आध्यात्मिक संकेत देता है कि विद्यार्थी, शारीरिक शक्ति, बुद्धि तथा भावना की एक इकाई होता है। गाँधी दर्शन आत्मज्ञान से उत्पन्न आध्यात्मिक शान्ति के स्रोत की शिक्षा देता है। यह शिक्षार्थियों को व्यक्तिवाद से परे सम्पूर्ण मानव जाति की ओर ले जा सकता है जहाँ से परम लक्ष्य की प्राप्ति संभव हो जाती है। गाँधी जी का शैक्षिक दर्शन जाति-धर्म रंग या राष्ट्र को छोड़कर "मानव समाज की सेवा" पर जोर देता है तथा विश्व में स्थायी शान्ति की स्थापना करना चाहता है।

सिंह, एस.एन. (1977) द्वारा अपने शोध कार्य में "बर्ट्रेण्ड रसेल के शिक्षा सिद्धान्तों का अध्ययन" किया गया। शोधकर्ता के अनुसार रसेल शिक्षा को एक ऐसा यंत्र मानते हैं जो मनुष्य को अच्छा जीवन व्यतीत करने में सहायक हो। ये शिक्षा को अच्छी मानसिक आदतों तथा जीवन व विश्व के प्रति अच्छा दृष्टिकोण विकसित करने का साधन मानते हैं। मानसिक स्वतंत्रता और रचनात्मक मनोवेगों की स्वतंत्रता रसेल का आदर्श है। ये मानवतावादी आदर्शों को मानते हैं क्योंकि ये आदर्श ही मनुष्य को सद्जीवन जीने योग्य बना सकते हैं। रसेल धार्मिक शिक्षा के विरोधी हैं तथा परम्परावादी नैतिकता के योगदान की भी आलोचना करते हैं क्योंकि इनके अनुसार यह बालकों को अंधविश्वासी, संदेहपूर्ण, संकुचित मानसिकता वाले और कायर बना देती है।

मिश्रा, आर.एस. (1977) द्वारा अपने शोधकार्य में "शिक्षा दार्शनिकों टी0पी0 नन, बर्ट्रेण्ड रसेल, रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं महात्मा गाँधी पर प्रकृतिवादी दर्शन के प्रभाव का अध्ययन" किया गया है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य प्रकृतिवादी दर्शन के अनुसार नन, बर्ट्रेण्ड रसेल, रवीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों की व्याख्या करना था। दर्शन व शिक्षा के क्षेत्र में प्रकृतिवादी विचारधारा का अर्थ स्पष्ट करते हुए शोध में प्रकृतिवाद के संदर्भ में शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधियों और शिक्षक आदि के विषय में इन दार्शनिकों के विचारों का विश्लेषण किया गया।

रानी, ए. (1979) द्वारा अपने शोध - "भारतीय शिक्षा पर आदर्शवादी विचारधारा का प्रभाव- टैगोर अरविन्द घोष व महात्मा गाँधी द्वारा इस विचारधारा को दिये गये योगदान के संदर्भ में" अध्ययन का प्रारूप यह ज्ञात करने के लिए तैयार किया गया कि गाँधी, टैगोर व अरविन्द के आदर्शवादी विचारों का भारतीय शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ा। शोध में आदर्शवादी विचारधारा के उदय का उल्लेख करते हुए आदर्शवाद के विभिन्न महत्वपूर्ण तत्वों तथा इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। शोधकर्ता द्वारा शिक्षा के विभिन्न अंगों को आदर्शवादी शिक्षा के संदर्भ में देखते हुए तीनों दार्शनिकों के विचार रखे गए हैं। अन्त: में उनके योगदान की चर्चा की गयी है।

भट्टाचार्य, आर. (1981) द्वारा "रवीन्द्रनाथ टैगोर का शिक्षा-दर्शन समीक्षा" नामक शोध प्रबंध के उद्देश्य टैगोर के शैक्षिक सिद्धान्तों का विश्लेषण करना और पश्चिमी व भारतीय विचारकों के शैक्षिक सिद्धान्तों से उनका तुलनात्मक अध्ययन करना थे। सार रूप में शोधकार्य का निष्कर्ष है कि टैगोर के शैक्षिक विचारों में इनकी कविता, धार्मिक विचारों व सत्य के बोध की सुगन्ध है। उनके अनुसार शिक्षा की प्रत्येक योजना का उद्देश्य शरीर, आत्मा व बुद्धि के पूर्ण विकास द्वारा "मानवता की साधना" होना चाहिए। टैगोर के शैक्षिक चिन्तन में एक ओर तो पूर्णता, स्वतंत्रता तथा आनन्द है और दूसरी ओर सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों पर बल दिया है।

बी.आर., देव (1981) द्वारा "महात्मा गाँधी के दर्शन में आध्यात्मिक तत्व" विषय पर शोध कार्य करते हुए गाँधी दर्शन के आध्यात्मिक आधारों की खोज की गयी है।

अभ्यंकर (1982) एस.व्यास (1986) एस.वी. उर्मिल तिवारी (1989) द्वारा "जे0 कृष्णमूर्ति के शिक्षा दर्शन तथा समकालीन भारतीय शैक्षिक प्रणाली में उसकी उपयदेयता का अध्ययन" संचालित किया गया।

सिंह, एस.पी. (1983) ने अपने शोध कार्य में "प्लेटो एवं श्री अरविन्द के शैक्षिक सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन किया।" अध्ययन से प्रकट हुआ कि प्लेटो और अरविन्द के दृष्टिकोणों में विभिन्नता होते हुए भी कुछ समानताएं हैं। दोनों ही मनुष्य, जाति तथा समाज के स्तर को बदलने के लिए दार्शनिक विचार तथा विश्लेषण पर स्थिर रहे और भविष्य के अपने अनुमान में आशावादी रहे। निष्कर्ष रूप में शोधकर्ता कहता है कि प्लेटो की मनोवैज्ञानिक उपलब्धियाँ अपूर्ण हैं क्योंकि मनोविज्ञान ने उसके बाद काफी लम्बा सफर तय किया है, तो भी वे शैक्षिक अभ्यास के लिए महत्वपूर्ण हैं। अरविन्द का वेदान्त तथा योग पर आधारित सम्पूर्ण चिंतन और कुछ नहीं बल्कि व्यावहारिक मनोविज्ञान है। प्लेटो राज्य की एकता पर बहुत बल देते हैं, वह समानता को बढ़ाना चाहते हैं जबकि अरविन्द परस्पर कार्य और अन्त:क्रिया की वकालत करते हैं।

प्लेटो की शिक्षा का उद्देश्य सरकार के लिए अच्छे नागरिक तथा प्रशासक तैयार करना है जबकि अरविन्द का उद्देश्य व्यक्ति को सम्पूर्ण पूर्णता प्रदान करना तथा दैवीय प्राणी तैयार करना है। अपने प्रस्तावों से दोनों सीखने वालों की आंतरिक शक्ति को शिक्षित करना चाहते हैं ताकि वे अपनी योग्यताओं को व्यावहारिक बनाने में योग्य हो सकें। प्लेटो एक योजना पर चिंतन कर चुके हैं जबकि अरविन्द ने किसी योजना पर विचार नहीं किया, उन्होंने केवल निश्चित नियमों तथा सिद्धान्तों की ओर संकेत किया। दोनों ही दार्शनिकों द्वारा शिक्षक तथा शिष्यों के गहन व्यक्तिगत सम्बन्धों को स्वीकार किया गया है।

वैद्य, एन.के. (1985) के शोध का मुख्य उद्देश्य दो समकालीन शिक्षाविदों एनीबेसेन्ट तथा मोहनदास कर्मचन्द गाँधी के शैक्षिक दर्शन का अध्ययन करते हुए उनके शिक्षा सम्बन्धी विचारों में समानता व असमानता की खोज करना है। अध्ययन का मुख्य सार है कि ऐनी बेसेन्ट और गाँधी जी ने शिक्षा के द्वारा अपना सम्पूर्ण जीवन मानव मात्र की सेवा में अर्पित किया। इन्होंने मानवतावाद व समाजवाद के संदेश को अपनी संस्थाओं में तथा शैक्षिक कार्यक्रमों के द्वारा प्रसारित किया। बेसिक शिक्षा संस्थाओं ने प्राचीन भारतीय शिक्षा के प्रभाव को प्रतिबिम्बित किया और आध्यात्मिक तथा भौतिक जीवन के मूल्यों को समझने में सहायता की दोनों ने अपने ढंग से पूर्वी शैक्षिक दर्शन का पश्चिमी संस्कृति तथा विज्ञान से संश्लेषण करने का प्रयत्न किया। इन शिक्षाविद्ों का मत था कि मूल्यों का पुन: निर्धारण केवल शिक्षा द्वारा ही सम्भव होगा। शिक्षा की योजनाओं के सिद्धान्तों पर कार्य करना और इनका प्रयोग करके वर्तमान शैक्षिक योजनाओं में पूर्णरूपेण सुधार लाना समय की पुकार है।

एम., राय (1986) द्वारा "पंडित मदनमोहन मालवीय के शैक्षिक विचारों का अध्ययन" किया गया। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य मालवीय जी के परिवार तथा सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना मालवीय जी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों, महत्व और प्रकृति का अध्ययन करना तथा मालवीय जी के अनुसार छात्रों के उत्तरदायित्व, पाठ्यक्रम पर उनके विचार, धार्मिक शिक्षा, स्त्री शिक्षा आदि का अध्ययन करना था।

बाखें, एस.एम. - "लोकमान्य तिलक एवं स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन तुलनात्मक अध्ययन" शीर्षक से प्रस्तुत इस अध्ययन में एम.एस., बाखे द्वारा लोकमान्य तिलक तथा स्वामी विवेकानन्द के कार्यों एवं गतिविधियों के आधार पर राष्ट्रीय संदर्भ में इनके शैक्षिक विचारों का अध्ययन किया गया है। शोध का निष्कर्ष है कि तिलक तथा विवेकानन्द ने शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को स्वयं को पहचानने में समर्थ बनाना माना है। बालक के विषय में इनका विचार है कि वह स्वयं में एक वास्तविकता है। इनके अनुसार शिक्षा का कार्य व्यक्तित्व में योग्यताओं का विकास करना तथा जीवन का गहन अर्थबोध कराना है। शिक्षा पूर्ण वृद्धि के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। यह वास्तव में एक प्रक्रिया है जो मस्तिष्क से प्रारम्भ होती है। ज्ञान एक प्रतिरूप है जो अपने अनुभव को एक रचनात्मक रूप देने के लिए बनाया जाता है। शिक्षक इसी प्रतिरूप के अन्दर छिपी हुई शक्तियों के जगाने तथा बाह्य संसार को इसके लिए साधन के रूप में प्रयोग करने का कार्य करते हैं। मनुष्य जो कुछ करता है, स्वयं के स्वार्थ से प्रेरित होकर ही करता है। अत: एक शिक्षक के लिए बालक के प्रेरक तत्वों को समझना आवश्यक है अर्थात शिक्षक का कार्य बालक को चिन्तन, मनन, तर्क एवं स्वतंत्र निर्णय करने के योग्य बनाना है। तिलक एवं विवेकानन्द के अनुसार शिक्षण व्यवसाय एक श्रेष्ठ व बुनियादी व्यवसाय

है, अत: जो व्यवसाय जितना श्रेष्ठ होगा उत्तरदायित्व उतना ही महान होगा।

पी., धर (1990) द्वारा "रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं महर्षि अरविन्द के शिक्षा दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन" शीर्षक से अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत किया गया। इस शोध प्रबंध का उद्देश्य गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं महर्षि अरविन्द के शिक्षा दर्शन के विभिन्न पक्षों - शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि, अनुशासन व स्वतंत्रता और छात्र-शिक्षक सम्बन्ध आदि का तुलनात्मक अध्ययन करना था। इस शोध कार्य का निष्कर्ष यह है कि इन दोनों शिक्षाविद्ों के विचारों विशेषत: मातृभाषा द्वारा शिक्षा, अंतर्राष्ट्रीय भ्रातृत्व, मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों और बालक के चतुर्मुखी विकास का आज की परिस्थितियों में विशेष महत्व है।

बहल, पी0 (1990) ने रविन्द्र नाथ टैगोर तथा महर्षि अरविन्द के शिक्षा दर्शन का शिक्षा के विभिन्न पक्षों के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया। निष्कर्ष रूप में शोधकर्ता का मत है कि दोनों शिक्षाविदों के शैक्षिक विचार विशेषतया, शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृ-भाषा का महत्व, मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों का प्रयोग तथा बालक के सर्वांगीण विकास पर बल, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुत मूल्यवान हैं। अध्ययन साहित्य के विश्लेषण पर आधारित है।

शंकर, एच. (1991) द्वारा अपने शोध कार्य में महर्षि अरविन्द एवं रुसो के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। यह शोध प्रबन्ध इन शिक्षाविदों से सम्बन्धित साहित्य के विश्लेषण पर आधारित है। महर्षि अरविन्द के अनुसार बालक की प्रच्छन्न शक्ति को बाहर निकालना ही शिक्षा है। "स्व", सार्वभौम तथा राष्ट्र में एकता स्थापित करना शिक्षा का कार्य है। इनकी शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को सम्पूर्णता प्रदान करना तथा दैवीय प्राणी तैयार करना है। ये शिक्षक व शिष्यों के मध्य गहरे व्यक्तिगत सम्बन्धों को स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार बुद्धि के सर्वतोमुखी विकास के लिए धार्मिक व नैतिक शिक्षा आवश्यक है। रुसो ने सर्वप्रथम प्रकृतिवाद का विचार रखा तथा बालक का महत्व बताते हुए बाल केन्द्रित शिक्षा पर बल दिया और शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार पर सुनियोजित पाठ्यक्रम को अपनाया।

वी.वी., गोगेली (1991) ने "नई शिक्षा नीति के प्रकाश में आचार्य विनोबा भावे के शिक्षा दर्शन का अध्ययन" करते हुए उन तत्वों को इंगित किया हैं जिनकी झलक नयी शिक्षा नीति में मिलती है।

द्विवेदी, कमला (1991) ने "गाँधी के शिक्षा दर्शन का अध्ययन" करते हुए उनके शैक्षिक विचारों का अरस्तु, कान्ट, हीगल, हाब्स, लाक, शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया है।

हरि शंकर (1991) ने महर्षि अरविन्द तथा रूसो के दार्शनिक एवं शैक्षिक दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन किया। स्वरूप की दृष्टि से निष्कर्ष सामान्य एवं सतही हैं निष्कर्षों में गहन विश्लेषण का

अभाव स्पष्टत: परिलक्षित है।

विजय, नन्द (1992) द्वारा "डा0 राजेन्द्र प्रसाद के शैक्षिक विचारों तथा आधुनिक भारत में उनकी प्रासंगिकता" विषय पर अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत किया गया है।

कौर, आर.जे. (1992) द्वारा "श्री अरविन्द एवं महात्मा गाँधी के शिक्षा-दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन एवं आधुनिक शिक्षा अवस्था में सार्थकता" विषय पर शोध कार्य सम्पन्न किया गया। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य श्री अरविन्द और महात्मा गाँधी के शिक्षा दर्शन के प्रमुख तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन करना था। शोध कार्य मुख्यत: दोनों दार्शनिकों के साहित्य के विश्लेषण पर आधारित है। इसमें शिक्षा दर्शन के विभिन्न पक्षों यथा शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि एवं शिक्षक के महत्व के विषय में दोनों दार्शनिकों के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि आज की परिस्थितियों में दोनों शिक्षाविदों का दर्शन अत्यन्त प्रासंगिक है।

तृतीय अध्याय

गिजू भाई बधेका का जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं प्रेरणास्रोत

3.1 जीवन-परिचय :- गिजू भाई बधेका का जन्म चित्तल, सौराष्ट्र (गुजरात) में 15 नवम्बर, 1885 में हुआ था। उनका पूरा नाम था गिरिजाशंकर भगवान जी बधेका। इस पूरे नाम की अपेक्षा लोग उन्हें गिजू भाई कहकर ही पुकारते थे। 1897 में उनका प्रथम विवाह स्व0 हरिबेन के साथ हुआ जबकि 1906 में श्रीमती जड़ीबेन के साथ द्वितीय विवाह हुआ। 1907 में वे पूर्वी अफ्रीका चले गये तथा 1909 में वापस भारत आ गये। 1910 में उन्होंने बम्बई में कानून की पढ़ाई आरम्भ की तथा 1913 में वे बढ़वाण कैम्प में हाई कोर्ट लीडर हो गये। वकालत में वे पूरी तन्मयता के साथ केस का बारीकी से अध्ययन करके मुकदमे में जिरह करते थे। परन्तु वकालत में उनका मन अधिक दिन तक न लग सका। उस दौर में राष्ट्रीय शिक्षा व राष्ट्रीय आंदोलन को गति प्रदान करने के लिए देश भर में अनेक संस्थाएं जन्म ले रही थीं। भाव नगर गुजरात में भी एक ऐसी ही संस्था थी जिसका नाम था दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन। मोटा भाई के नाम से विख्यात हरगोविन्द भाई भाव नगर के स्टेशन मास्टर थे। गिजू भाई उनके पास रहकर अध्ययन करते रहे। मोटा भाई दक्षिणामूर्ति भवन के संस्थापकों में से थे। बाद में इन्हीं के आह्वान पर गिजू भाई वकालत छोड़कर शिक्षण की ओर उन्मुख हुए। शिक्षा के क्षेत्र में पर्दापण करने के पश्चात् उनकी अदालत अब परिवार व विद्यालय बन गये और उन्होंने उन अबोध बालकों की वकालत करने का बीड़ा उठाया जो अपने माता-पिता व शिक्षकों की नासमझी के कारण उनकी डांट-डपट व मारपीट का शिकार बन रहे थे। वे इसे स्वयं स्वीकार करते हुए कहते हैं - यदि मैंने अपने वकालत के पट्टे को बहाल रखा होता तो कदाचित् आज किसी न्यायाधीश की कचहरी में मैं अपने एकाध दोषी या निर्दोष मुवक्किल का केस लड़ रहा होता; परन्तु डॉ0 मॉण्टेसरी की प्रभावपूर्ण रचनाओं से मेरे जीवन में परिवर्तन आया और मैं सौभाग्यशाली हूँ कि आज आपके समक्ष निर्दोष बालकों की वकालत करने के लिए खड़ा हूँ।[1]

1915 में वे श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन के कानूनी सलाहकार बन गये तथा 1916 में दक्षिणामूर्ति विद्यालय भवन के आजीवन सदस्य बने। उस समय वे केवल 31 वर्ष के थे। इस संस्था के द्वारा एक बाल भवन चलाया जाता था जिसका नाम था विनय भवन। इस विनय भवन के आचार्य के रूप में गिजू भाई ने 4 वर्ष तक कार्य किया। 1920 में उन्होंने 'बाल मंदिर' की स्थापना की तथा वकालत छोड़कर पूरी तरह बाल शिक्षा के लिए समर्पित हो गये और इस क्षेत्र में उन्होंने नये-नये प्रयोग किये।

बाल-शिक्षा के प्रति उनके इस लगाव का कारण मनोवैज्ञानिक था। उन्होंने अपने बचपन में

1- गिजू भाई बधेका - बाल जगत की उषा, बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 37

जिस प्रकार शिक्षा प्राप्त की थी उसका अनुभव बहुत यातनापूर्ण था। उन्हें अपने बचपन में शिक्षा प्राप्ति के दौरान डांट-डपट तथा मारपीट सहन करनी पड़ी। इन्हीं कटु अनुभवों ने उन्हें बाल शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा दी। गिजू भाई की मान्यता थी कि बच्चों को कठोर अनुशासन में रखकर अच्छी तरह शिक्षित नहीं किया जा सकता। यदि उन्हें पूरी स्वतंत्रता देकर तथा उनके साथ दुलार भरा व्यवहार कर उनको शिक्षा दी जाए तो उनके व्यक्तित्व का सही दिशा में विकास हो सकता है।

गिजू भाई ने मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति का गहन अध्ययन किया तथा इसके सिद्धांतों का भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल रूपान्तरण किया। इसके लिए भावनगर की दक्षिणामूर्ति को गिजूभाई ने अपनी कार्यस्थली बनाया तथा दक्षिणामूर्ति बाल मंदिर को अपनी शैक्षणिक प्रयोगशाला बनाया। 1916 से 1936 के बीच उन्होंने अपना अधिकांश समय बच्चों के सान्निध्य में उन्हें शिक्षा देते हुए बताया। उन्होंने शिक्षा के प्रति अपनी गहरी निष्ठा, लगन तथा कर्मठता से अपने शैक्षिक विचारों को साकार करने का प्रयास किया। उन्होंने शाला को बच्चों के लिए एक ऐसे स्थल में बदल दिया जहाँ वे सारे कष्ट भूलकर प्रेम और खुशी के साथ मुक्त वातावरण में शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। उन्होंने नयी-नयी शैक्षिक गतिविधियों का सूत्रपात किया जो बच्चे का सम्यक् विकास कर सकती थीं। वे बच्चों से निरंतर संवाद करते, उन्हें नयी-नयी प्रेरणाएं देते तथा प्रेम के साथ उनके कोमल हृदय को जीतकर उसमें अपेक्षित संस्कार अंकुरित करने योग्य बनाते थे।

गिजू भाई का दक्षिणामूर्ति बाल मंदिर बच्चों के सम्यक् इन्द्रिय विकास, शान्ति की क्रीड़ा, शैक्षिक भ्रमण, शारीरिक कार्य, कथा कहानी श्रवण जैसी प्रवृत्तियों का केन्द्र था जिसमें बच्चे हँसते-खेलते मनवांछित गतिविधियों में भाग लेते हुए शिक्षा प्राप्त करते थे। गिजू भाई द्वारा भावनगर में तख्तेश्वर मन्दिर के पास टेकड़ी पर स्थापित बाल मंदिर का उद्घाटन 1922 में कस्तूरबा गांधी के कर-कमलों से हुआ था। उन्होंने 1925 में भावनगर में प्रथम मॉण्टेसरी सम्मेलन आयोजित किया जिसके साथ उन्होंने पहला अध्यापन मंदिर भी स्थापित किया। द्वितीय मॉण्टेसरी सम्मेलन 1928 में गिजू भाई की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

गिजू भाई ने 1930 में गाँधी जी के सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेते हुए शरणार्थी शिविरों में निवास किया तथा वहाँ भी अक्षरज्ञान योजना आरम्भ की। सूरत में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए वरना परिषद का गठन किया। 1937 में गिजू भाई ने श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन से स्वयं को मुक्त कर लिया। 1937 में ही उन्हें गुजरात के लोगों ने सम्मानित किया। एक सम्मान समारोह में गिजू भाई के ये उद्गार उनके हृदय की अंतरतम् भावनाओं को व्यक्त करते हैं- "आज मुझे जो यह सम्मान दिया जा रहा है, इसके लिए मैं पहला उपकार किसका मानूं? अगर मेरे मित्र गोपालदास दरबार द्वारा प्रदत्त

मॉण्टेसरी-साहित्य से मेरे भीतर चेतना का संचार न हुआ तो? अगर मैंने अपने चारों ओर के बालकों को माता-पिताओं द्वारा तिरस्कृत न देखा होता तो ? बचपन में मैं जिन पाठशालाओं में पढ़ता था उन जगहों और शिक्षकों की मलिनता को मैंने स्मरण न रखा होता तो? और नित-हमेशा मेरे साथ बसने वाले मेरे बच्चों की मूक-वाणी से मुझे ये स्वर न सुनाई दिये होते कि 'बापू ! हम भी इंसान हैं, हमें देखो, हमारी बातें सुनो, हमें इंसाफ दो, हमें इज्जत दो, हमें माता-पिता के अज्ञान और मिथ्या-प्रेम से बचाओ, हमारी आजादी के लिए लड़ाई लड़ो।' तो? और श्री दक्षिणामूर्ति नामक संस्था ने (भावनगर में) बालमंदिर शुरू करके मुझे बाल-हृदय के समीप आने और उसमें मॉण्टेसरी के सिद्धान्तों का साक्षात्कार करने का अवसर प्रदान न किया होता, तो? और अगर संपूर्ण गुजरात के बालकों की आंतरिक इच्छा ने मेरे मन में उदित होकर मुझे मॉण्टेसरी का झंडा फहराने की भगवान द्वारा प्रेरणा न दी होती, तो ? तो मैं किसका उपकार मानता? और इस उपकार को स्वीकार करने का अवसर जिसने मुझे दिया, उस शारदा-मंदिर का भी मैं क्यों कर उपकार मानता?"[1]

1938 में उन्होंने राजकोट में अध्यापन मंदिर स्थापित किया जो शिक्षा के क्षेत्र में उनका अंतिम अवदान था।

गिजू भाई का समस्त जीवन बालशिक्षा के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग करते हुए व्यतीत हुआ। वे बच्चों के साथ स्वयं को सदैव ताजा महसूस करते थे। शिक्षा के क्षेत्र में अनवरत् व्यस्तता गिजू भाई की चरम उपलब्धि थी। वे विविध विषयों के शिक्षण के साथ बच्चों में सत्य, अहिंसा, करूणा, सहयोग, सहकार जैसे मानवीय गुणों के विकास पर अधिक बल देते थे तथा शिक्षा के क्षेत्र में उन गतिविधियों को अपरिहार्य मानते थे जिनसे इन गुणों का विकास हो।

गिजू भाई ने शिक्षा में जो प्रयोग किये उन्हें वे साथ ही साथ लिपिबद्ध भी करते थे इस तरह उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी विपुल साहित्य की रचना की। वे बाल साहित्य के अद्‌भुत रचयिता थे। उन्होंने बच्चों, शिक्षकों तथा अभिभावकों के लिए अलग-अलग पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने लम्बे अरसे तक 'शिक्षण पत्रिका' का सम्पादन किया जिसमें उन्होंने नियमित रूप से लिखा। इस पत्रिका में भी बच्चों, अभिभावकों तथा शिक्षकों के लिए अलग-अलग सामग्री होती थी। गिजू भाई ने गुजराती में 200 से अधिक बाल-पुस्तकों की रचना की जिनकी गुजरात में बहुत लोकप्रियता थी। इन कृतियों का अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत लोगों के लिए गिजू भाई का साहित्य बहुत मूल्यवान है। गिजू भाई का जीवन बालकों को समर्पित एक शिक्षक का तथा एक सर्जनात्मक लेखक का आदर्श जीवन था।

गुजरात में ही गांधी जी ने गिजू भाई से 16 वर्ष पूर्व जन्म लिया था। गांधी जी यदि राष्ट्र पिता

1- गिजू भाई बधेका - बाल जगत की उषा, बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 27

थे तो 'बालकों के गांधी' गिजू भाई बालकों के लिए 'मूछों वाली माँ' थे। गाँधीजी भारत के हर बच्चे के लिए 'कुछ शिक्षा' जरूरी मानते थे ताकि देश का हर बालक संस्कारवान बन सके। इसी के लिए उन्होंने अपना बुनियादी शिक्षा का दर्शन प्रतिपादित किया। गाँधीजी के शिक्षा दर्शन को जिन लोगों ने समझा तथा प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में जिन शिक्षाविद्रों ने मौलिक कार्य किया उनमें गिजू भाई बधेका का नाम अग्रणी है, जिनके बारे में स्वयं गाँधीजी ने लिखा था, "गिजू भाई के बारे में कुछ लिखने वाला मैं कौन हूँ? उनके कार्यों ने तो मुझे सदैव मुग्ध किया है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि उनका कार्य आगे बढ़ चलेगा।"

शिक्षा जगत के इस कर्मठ व बाल हित के लिए समर्पित नायक का 54 वर्ष की आयु में 23 जून 1939 को बम्बई में निधन हो गया।

गिजू भाई का साहित्य पूरे भारत की अमूल्य धरोहर है, क्योंकि उनकी कृतियाँ शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत कर्मियों का ही नहीं माता-पिता का भी पथ आलोकित कर सकती हैं। अब जबकि भारतीय शिक्षा का अंग्रेजीकरण और अधिक हो रहा है, गिजू भाई की कृतियाँ और भी मूल्यवान और प्रासंगिक हो जाती हैं। इनका प्रचार-प्रसार तथा इनके अनुसार शिक्षा का रूपाकार बदलना समय की मांग है।

तत्कालीन शैक्षिक स्थिति :- सन् 1835 में मैकाले का विवरण-पत्र प्रस्तुत हो चुका था। 1854 के वुड घोषणा पत्र ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति का ढाँचा स्वीकृत कर दिया था। इन लोगों को व ब्रिटिश शासकों को विश्वास था कि वे करोड़ों भारतीयों के दिल-दिमाग को अंग्रेजी शिक्षा द्वारा पूरी तरह बदल देंगे। मैकाले ने गर्वपूर्वक अपने पिता को लिखे पत्र में घोषणा की थी- "मुझे पक्का विश्वास है कि यदि शिक्षा की हमारी योजना को आगे बढ़ाया गया तो तीस वर्ष बाद बंगाल के संभ्रांत वर्गों में एक भी मूर्तिपूजक शेष नहीं रहेगा और यह परिणाम बिना किसी धर्मांतरण के, बिना उनकी धार्मिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप किये ही निकल सकेगा।"

अलेक्जेंडर व डफ ने 1835 में प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा था - "जब रोमन लोग किसी नये प्रदेश को जीतते थे तो वे तुरंत उसका रोमनीकरण करने में जुट जाते थे। अर्थात् वे अपनी अधिक विकसित भाषा और साहित्य के प्रति रूचि जगाकर विजेता लोगों के संगीत, रोमांस, इतिहास, चिंतन और भावनाओं, यहां तक कल्पनाओं को भी रोमन शैली में प्रवाहित होने की स्थिति उत्पन्न कर देते थे, जिससे रोमन हितों का पोषण व सुरक्षा होती थी। क्या रोम इसमें सफल नहीं हुआ।"

अंग्रेजों की सांस्कृतिक विजय की यह तमन्ना आंशिक रूप से ही पूरी हो रही थी। भारत में भारतीयों के मन में इस शिक्षा के प्रति आक्रोश था। श्रीमती एनी बेसेंट ने राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन

को गति प्रदान की। स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, श्री अरविन्द, लाला लाजपत राय, विपिनचंद्र पाल, लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गांधी आदि ने राष्ट्रीय शिक्षा की वकालत की। राष्ट्रीय जागरण की लहर चल पड़ी।

राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए गुरूकुल संस्थाएं, डी.ए.वी. कालेज, विद्यापीठ निरंतर प्रयास करने लगे। राष्ट्रीय शिक्षा परिषद, रामकृष्ण मिशन, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज जैसी अनेक संस्थाएं भारतीय शिक्षा में राष्ट्रीय प्रयोग करने लगीं।

उस समय देश में गाँधी जी की आँधी प्रारंभ हो गयी थी। स्वराज्य आंदोलन को गाँधी जी का नेतृत्व मिल गया था। गाँधी जी की प्रेरणा से देश में राष्ट्रीयता की लहर चल पड़ी थी। महात्मा गाँधी ने स्पष्ट कहा था कि उनके राष्ट्रीय आंदोलन का एक प्रमुख अंग शिक्षा-सुधार है। गाँधी जी के इस शैक्षिक प्रयोग पर सन् 1985 में लेखक ने एक लंबा लेख लिखा था जो 'मंथन' के राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन विशेषांक में प्रकाशित हुआ था।

भारतीय शैक्षिक क्षितिज पर गाँधी जी के अवतरण के पूर्व ही अनेक शिक्षा-चिंतकों ने आंग्ल शिक्षा-प्रणाली की व्यर्थता का अनुभव करते हुए तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली की कटु आलोचना की थी। भारतीय संस्कृति का पुनरूत्थान करने, युवकों में स्वदेश-प्रेम का स्फुरण करने एवं शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के लिए उस समय यह अनुभव किया जा रहा था कि सात समुद्र पार से लाई गई शिक्षा प्रणाली के विकल्प के रूप में कोई राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली विकसित की जाये। कुछ प्रयोग इस दिशा में किये जा रहे थे। ऐसे ही समय में 1914 में गाँधी जी जब दक्षिण अफ्रीका से लौटे तो कुछ समय गुरूदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के शैक्षिक प्रयोग शांति निकेतन के सानिध्य में रहे। वहाँ पर गाँधी जी के विचारों के अनुसार कुछ दिन के कार्य को देखकर गुरूदेव ने कहा था "गाँधी जी के इस प्रयोग में स्वराज्य की कुंजी है।"

गाँधी जी के शिक्षा सम्बन्धी विचार किताबी ज्ञान पर आधारित नहीं थे। जनवरी 1897 में गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका वापस लौटकर डरबन में अपने परिवार के साथ रहने लगे। उस समय उनके तीन बच्चे थे जिनकी आयु क्रमशः 10, 8 और 5 वर्ष थी। उनकी शिक्षा का प्रश्न जब उपस्थित हुआ तो सबसे पहले उनके मन में शिक्षा संबंधी विचार उठे। गाँधी जी के शब्दों में, "बच्चे एक सुव्यवस्थित घर में कुदरती तौर पर जो शिक्षा ग्रहण करते हैं, वह छात्रावासों में मिलना असंभव है। इसलिए मैंने अपने बच्चों को अपने साथ रखा।" कुछ धंधों के माध्यम से गाँधी जी ने अपने बच्चों को शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। सन् 1904 में गाँधी जी ने अपने साथियों के सहयोग से डरबन से चौदह मील दूर एवं फीनिक्स स्टेशन से ढाई मील दूर 20 एकड़ भूमि पर फीनिक्स परिवार नाम से एक आश्रम की

स्थापना की और वहां के बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध किया। सन् 1909 में ट्रांसवाल नामक स्थान पर टाल्स्टाय आश्रम की स्थापना करके गाँधी जी ने उपयोगी शिक्षा-पद्धति खोज निकालने का संकल्प लिया। फीनिक्स परिवार के अनुभव उनके पास थे ही। टाल्स्टाय आश्रम में उन्होंने अपनी दो मूलभूत धारणाओं को मूर्तरूप दिया। उनकी पहली धारणा यह थी कि सच्ची शिक्षा माता-पिता ही दे सकते हैं। अत: उन्होंने आश्रम में अपने को पिता के स्थान पर रखकर कार्यारंभ किया। उनकी दूसरी धारणा थी कि सच्ची शिक्षा की नींव चरित्र-निर्माण है। अत: टाल्स्टाय आश्रम में चरित्र-निर्माण पर बल था।

गाँधी जी जब भारत आये तो कुछ समय शांति निकेतन में रहने के बाद उन्होंने अहमदाबाद के समीप साबरमती आश्रम की स्थापना की। साबरमती आश्रम में उन्होंने उत्पादक उद्योगों की ओर बालकों का ध्यान आकृष्ट किया और साक्षरता के साथ-साथ किसी उद्योग को सीखने के लिए बालकों को प्रोत्साहित किया। साबरमती के बाद गाँधी जी वर्धा जिले के सेवाग्राम में रहने लगे और यहां पर भी आश्रम के बच्चों पर उनके शिक्षा-प्रयोग चलते रहे।

सन् 1920 में राष्ट्रीय आंदोलन के क्रम में गाँधी जी ने यह अनुभव किया कि जो छात्र अंग्रेजी शिक्षा का बहिष्कार करके राष्ट्र के स्वाधीनता-आंदोलन में भाग लेने चले आये हैं, उनकी शिक्षा का प्रबंध कहीं न कहीं होना चाहिए। इसी चिंतन की प्रक्रिया में उन्हें राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना की आवश्यकता की अनुभूति हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि महाराष्ट्र में तिलक विद्यापीठ, बिहार में बिहार विद्यापीठ, उत्तर प्रदेश में काशी विद्यापीठ और गुजरात में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना हो गई। अन्य विद्यापीठ भी स्थापित हुए महात्मा गाँधी की प्रेरणा से स्थापित गुजरात विद्यापीठ में राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति में समर्थ नागरिकों का निर्माण करने का संकल्प लिया गया। इस विद्यापीठ में शिक्षण की योजना इस प्रकार बनायी गयी कि इसके प्रत्येक कार्य से छात्रों को देश प्रेम तथा राष्ट्रीयता की प्रेरणा प्राप्त हो। पाठ्यक्रम में भारतीय साहित्य, भारतीय संस्कृति, भारतीय सभ्यता और भारतीय इतिहास को प्रमुख स्थान दिया गया। पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के शिक्षण की भी उत्तम व्यवस्था की गई। शिक्षा का माध्यम गुजराती भाषा को बनाया किन्तु हिन्दी व संस्कृति के अध्ययन पर बल दिया गया और अंग्रेजी को भी स्थान दिया गया। शिक्षक प्राय: स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी थे। इन शिक्षकों के आचरण में सच्चरित्रता, वाणी में तेजस्विता, व्यवहार व कर्म में देश-प्रेम व्याप्त था। शिक्षण व्यवसाय इन शिक्षकों के लिए जीविका का आधार न था। इन्होंने शिक्षण कार्य को स्वतंत्रता आंदोलन व राष्ट्र-विकास का महत्वपूर्ण अंग माना था। विद्यार्थी प्राय: वह थे जिन्होंने राष्ट्र की पुकार पर अंग्रेजी शिक्षा का बहिष्कार किया और स्कूल कॉलेज छोड़कर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े थे। अपने समय

में गुजरात विद्यापीठ बहुत सफल रहा।

जामिया मिलिया की स्थापना 29 अक्टूबर 1920 को अलीगढ़ में हुई। पंडित जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में "यह असहयोग आंदोलन का स्वस्थ बच्चा था।" गाँधी जी ने मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली के साथ मिलकर जामिया मिलिया की स्थापना की। बेसिक शिक्षा की योजना गाँधी जी के निर्देशन में वर्धा सम्मेलन में प्रस्तुत की गई।

जिस प्रकार समूचे देश के परिदृश्य में गाँधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व किया और स्वाधीनता संग्राम के साथ-साथ शिक्षा में सुधार का नेतृत्व किया उसी प्रकार गुजरात में गिजू भाई ने शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों की शिक्षा में सुधार का काम किया। इसीलिए उन्हें 'बच्चों का गाँधी' पुकारा गया।

3.2 व्यक्तित्व

गिजू भाई सर्वतोमुखी व्यक्तित्व के स्वामी थे। उनका व्यक्तित्व एवं स्वभाव निम्नलिखित गुणों से परिपूर्ण था।

प्रत्यक्ष स्वानुभव में विश्वास :- गिजू भाई पठन-पाठन व चिंतन तक सीमित रहने वाले विद्वान न थे। अपने चिंतन को वे यथार्थ के धरातल पर विकसित करने की इच्छा रखते थे। वे कहते हैं - "मैंने पढ़ा और सोचा तो बहुत-कुछ था, परन्तु मुझे अनुभव नहीं था। मैंने सोचा, मुझे स्वयं अनुभव भी करना चाहिए। तभी मेरे विचार पक्के बनेंगे। तभी यह मालूम हो सकेगा कि मेरी आज की कल्पना में कितनी सच्चाई और कितना खोखलापन है।"

इस हेतु वे शिक्षा विभाग के बड़े अधिकारी के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि वे उन्हें प्राथमिक पाठशाला की एक कक्षा सौंप दें। अधिकारी जरा हँसे और बोले- 'रहने भी दो भाई! यह काम तुमसे नहीं बनेगा। लड़कों को पढ़ाना और सो भी प्राथमिक पाठशाला के लड़कों को, ऐसा काम है, जिसमें एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ता है। तुम तो लेखक और विचारक ठहरे! मेज पर बैठकर लेख लिखना सरल है और कल्पना में पढ़ा देना भी सरल है; कठिन है, केवल प्रत्यक्ष काम करना और उसे पार उतारना।' गिजू भाई ने कहा - 'इसीलिए तो मैं स्वयं अनुभव करना चाहता हूं। अपनी कल्पना में मुझको वास्तविकता लानी है।'[1]

आत्म-विश्वास :- गिजू भाई में आत्मविश्वास कूट-कूट कर भरा था। वे निर्णय लेने के पश्चात् कदम पीछे नहीं हटाते थे। पाठशाला में जब वे अपने चिंतन को व्यावहारिक रूप दे रहे थे, पग-पग पर उन्हें कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। उन्हें अपने स्वप्न को यथार्थ में परिणित करना ही था यह उन्होंने ठान लिया था। विद्यालय में स्वच्छता व छात्रों में साफ-सुथरा रहने की आदतों का विकास

1- गिजू भाई बधेका - दिवा स्वप्न, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 1

करने का बीड़ा उन्होंने जब उठाया, तो बहुत दिक्कतें आयीं। अधिकारी के रोके भी उनके कदम न रूके, न ही संकल्प में कमी आयी। वे कहते हैं कि-"आखिर मैं तो पाठशाला के अन्दर जितनी कोशिशें हो सकेंगी, कर छूटूँगा। बालकों में वैसी आदत पैदा करूंगा। यही नहीं, फुरसत मिलने पर इस सम्बन्ध में सार्वजनिक रूप से आंदोलन भी करूंगा और साहब, सच तो यह है कि लोग कितने ही बेपरवाह क्यों न हों, इसमें शक नहीं कि हमारे विद्यालयों का यह गन्दा वातावरण हजारों रोगों का घर है। हमको इसे मिटाना ही होगा।"[1]

अपने अधिकारी की शंकाओं का समाधान करते हुए वे उसे विश्वास दिलाते हुए कहते हैं- 'पढ़ाने की पद्धति के परिवर्तन पर मुझे पूरा विश्वास है। मैं आपको काम करके दिखाऊँगा और इस सम्बन्ध में आपको पूरा विश्वास भी दिला सकूँगा।'[2]

अपने सिद्धान्तों में अटूट आस्था:- गिजू भाई किसी भी विपरीत परिस्थिति में हताश या निराश नहीं होते थे। घर का काम सिखाने के नाम पर एक माँ द्वारा अपनी कला-प्रतिभा सम्पन्न पुत्री को बालमंदिर से हटा लेने पर गिजू भाई की इस प्रतिक्रिया से स्थिति के प्रति उनकी विवशता, क्षोभ व खीज के साथ-साथ क्रांतिकारिता तथा बालक ही नहीं मानव मात्र से उनका अपनत्व भाव व प्रेम भी प्रकट होता है - "हमें अपनी छाती को तो ठिकाने रखना ही पड़ता है, पर उसके अंदर एक धध ाकती-सी आग जलती रहती है। एक बार जब यह आग चारों ओर फैल जाएगी, तो यह शिक्षा के पुराने मापदंडों, ब्याह की रूढ़ियों और माता-पिता सहित सबको जलाकर राख कर देगी। अपने देश के भावी चित्रकारों को खोते समय हमारे मन की क्या स्थिति होगी? क्या किसी को अंदाज है कि इसके कारण देश का कितना जबरदस्त नुकसान हो रहा है? फिर भी हमारे हृदय से तो यही उद्‌गार निकलते हैं कि माता-पिता अपने बालकों के भविष्य के विषय में कभी निराश न हों। क्योंकि जो बालक हमको छोड़कर चले गये हैं, वे भी हमारे बालक तो हैं ही, और हम भी उन्हीं के हैं। उन्होंने हमको बार-बार विश्वास दिलाया है कि वे हमारे ही हैं और हम उनके ही हैं।" यह गहन मानव-प्रेम ही उनके अपने संघर्षपूर्ण कंटकाकीर्ण मार्ग पर अविचल गतिमान रहने का आधार था।

बाल-स्वभाव:- गिजू भाई बालकों के बीच ही बालक नहीं थे, वे हर समय ऐसा ही बने रहने की कामना करते थे। वे बाल्यावस्था को मानव-जीवन की शुद्धतम व पवित्रतम अवस्था मानते थे, संभवत: इसीलिए वे बाल-स्वभाव में जीने की इच्छा रखते थे। अपनी दीर्घायु का रहस्य प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि-"कई बार मुझे ख्याल आता है कि जब कभी कोई मास्टर मर जाता है तो बालकों को जो छुट्टी मिलती है उससे उन्हें खुशी होती है या शिक्षक के मरने से?"

पर वे छुट्टी ही क्यों चाहते हैं? क्या यह इच्छा शिक्षक की मृत्यु चाहने के बराबर नहीं है?

1- गिजू भाई बधेका - दिवा स्वप्न, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 38

2- वही, पृ0 20

बालमंदिर के बालक छुट्टी नहीं चाहते। ऐसा क्यों? शायद वे मुझे मरते देखना न चाहते हों? तब तो मैं बहुत जीऊँगा, लम्बी अवधि तक जीने की कैसी सुन्दर रीति है! बालकों को स्वतंत्रता दो, उन्हें प्रेम दो, शिक्षक के हाथ में दीर्घायु होने की कुंजी आ गई! मनोविनोद की बात है, पर मेरी ऐसी मान्यता भी है। मैं 72 वर्ष की उम्र तक यों का यों बाल-स्वभाव के साथ जीने की आशा रखता हूँ। मुझे सिर्फ इतना ही ध्यान देना है कि मेरे बालक कभी पाठशाला में छुट्टी हो, ऐसी कामना न करें। आज तो वे छुट्टी के नाम से मुझ पर चिढ़ते हैं। कई बार ऐसा भी कहते हैं कि मैं पागल हूँ अथवा स्वप्न में वे ऐसा भी देखते हैं कि मैं पागल हो गया हूँ, क्योंकि मैं पूरे समय उनके लिए पाठशाला खुली नहीं रखता।[1]

कमियों को स्वीकार करने का साहसः- गिजू भाई निरंतर आत्म-विकास की दिशा में क्रियाशील रहते थे। उनकी मान्यता थी कि एक शिक्षक को सदैव छात्र बने रहना चाहिए, जानने-सीखने-सोचने-प्रयोग करने की इच्छा से परिपूर्ण। वे अपनी कमियों व कमजोरियों से भिज्ञ थे तथा उन्हें स्वीकारने में कोई संकोच उनमें न था। एक अधिकारी के साथ उनके वार्तालाप से यह स्वयं सिद्ध है- "मैं समझता हूँ कि मॉण्टेसरी-गणित पद्धति अच्छी है। वह स्वाभाविक है, मैंने उसका वाचन और मनन किया है, पर अनुभव अभी नहीं कर पाया हूँ। उन्होंने मुझसे पूछा- 'अगले साल तुम यहाँ डिप्टी का, अध्यापन मंदिर के शिक्षक का और गणित के प्रयोगकर्ता का स्थान ग्रहण करोगे? मैंने जवाब में कहा – 'जी, सो तो जैसी प्रभु की इच्छा हो! लेकिन इस बार के लिए तो मैं आपसे यह कहे देता हूँ कि गणित के विषय में मैं कोई खास नई बात नहीं दिखा सकूंगा।'[2]

गिजू भाई अपनी रूचि-अरूचि की चर्चा करते-करते यह भी स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति को अपनी रूचि का कार्य मिलने पर ही वह उसे उत्तमता से सम्पन्न करता है। लेखन में गिजू भाई की रूचि थी, पर प्रूफ-रीडिंग उन्हें उबाता था। इसे स्वीकार करते हुए वे कहते हैं कि-"कल मुझे सपना आया। मैं उकताया-ऊबा-सा प्रूफ देख रहा था। अर्थ स्पष्ट है। प्रूफ देखना मुझे अच्छा नहीं लगता। जो मुझे अच्छा नहीं लगता, उसे करने में मेरी तपश्चर्या होगी या मेरी शक्तियों का ह्रास? प्रूफ देखने के काम से स्वयं 'पत्रिका' से मुझे ऊब न आए तो अच्छा!"[3]

बालकों को दण्ड देने का गिजू भाई विरोध करते थे। परन्तु शुरू से ऐसा न था। गिजू भाई स्वीकार करते हैं कि पूर्व में वे बालकों को दण्ड दिये जाने में आस्था रखते थे, परन्तु अपनी गलती का अहसास होने पर उन्होंने इसे बिल्कुल त्याग दिया।[4]

अध्ययनशीलताः- गिजू भाई का अध्ययन व्यापक था। शिक्षा सम्बन्धी साहित्य का उन्हें विशेष अनुराग था। वे पुस्तकें पढ़ते, उन पर मनन करते, उनके उत्तम तत्वों की खुले मन से प्रशंसा करते

1- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 32
2- गिजू भाई बधेका - दिवा स्वप्न, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 28
3- गिजू भाई बधेका - चलते फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 31
4- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 36

तथा आवश्यकता होने पर असहमति व आलोचनात्मक टिप्पणी व्यक्त करने से भी न झिझकते। पुस्तक पढ़ना अर्थात स्वाध्याय उनके लिए एक नशा था। वे स्वयं कहते हैं - "पर आज रूस पर कैसे उतर आया? किताब भी एक तरह का नशा है। सभी तरह का वाचन एक नशा है। इसे जब हम शराबी की भाँति नशे में बाहरी संसार को भुला देना चाहते हैं, तब हम पुस्तक का नशा चढ़ा लेते हैं। आज 'टुवर्ड्स न्यू एजुकेशन' अर्थात् 'नवीन शिक्षा की ओर' नामक किताब पढ़ने में आई तो उसका नशा चढ़ा और इतना लिखा गया।"[1]

कर्म-प्रधान चिंतन युक्त व्यक्तित्वः- गिजू भाई उभयमुखी व्यक्तित्व रखते थे। वे पर्याप्त चिंतन मनन करते थे, तत्पश्चात अपने विचारों को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए वांछित कर्मों में जुट जाते थे। अपने कार्यों के परिणामों का वस्तुनिष्ठ ढंग से मूल्यांकन करने के पश्चात वे पुनः बेहतर परिणाम प्राप्त करने के लिए चिंतन करते थे। वस्तुतः चिंतन व कर्म की एक चक्रीय गति रखने वाला उनका जीवन था। उनका कहना है कि "मूर्ख लोग अक्सर अन्तर्मुखी लोगों को आलसी कहते हैं और बहिर्मुखी को उद्योगी। दोनों मामलों में वे गलत हैं। वस्तुतः अन्तर्मुखी और बहुर्मुखी दोनों वृत्तियों के लोग उद्योगी हैं; दोनों की मूल्यवत्ता उनके विचार अथवा काम की उपयोगिता पर निर्भर हैं। मैं जानता हूं कि मेरा स्वभाव बहिर्मुखी ज्यादा है। अलबत्ता, मुझमें अन्तर्मुखी वृत्ति के लक्षण हैं, परन्तु वे बहिर्मुखी के अंतर्गत रहते हैं, इसलिए मैं हमेशा कर्म प्रधान हूँ तथा कर्म के साथ ही मुझे चिन्तन-मनन करना अधिक अनुकूल लगता है।"[2]

विनोद-प्रियताः- सदैव गम्भीर चर्चा-परिचर्चा या लेखन में व्यस्त रहते हुए भी गिजू भाई हास्य विनोद से पूर्ण वार्तालाप का अवसर निकाल ही लेते थे। ऐसे ही एक वार्तालाप की चर्चा करते-करते वे उन लोगों को खरा जवाब भी दे देते हैं जो कहते थे कि त्रैमासिक में हल्के लेख हों। "उल्लू की तरह भारी-भरकम चेहरा ताने रखकर दिन-रात शिक्षाशास्त्र की ही चर्चा करते रहना किसे अच्छा लगेगा? भजिए की बात शिक्षाशास्त्र के पारे को हल्का करती है। मैं चाहता हूँ कि हरभाई भजिया-क्लब बनाएं। मॉण्टेसरी के स्वातंत्र्य और स्वयं-स्फूर्ति के साथ ही भजिए खाए जा सकते हैं, अन्यथा पाचन या खुराक विकृत होने की आशंका रहेगी, ऐसा मैं सबको बताऊंगा।[3]

बालकों को गीत सुनाते हुए गिजू भाई को क्या महसूस हुआ, वे बताते तो हैं बड़े विनोदपूर्ण ढंग से परन्तु निश्चय ही ये पंक्तियां उनके आत्मविश्वास, संकल्प व दृढ़ इच्छाशक्ति की परिचायक हैं। "मैंने 'नथ घड़ दे सोनारा रे, मोरी नथ घड़ दे सोनारा' पद गाया। मेरा राग तो गधे को भी मोहित करने वाला था। लेकिन संतोष इतना ही था कि वह बेसुरा न था। किसी तरह काम चला। मैंने मन में कहा, भगवान् ने मुझको एक कण्ठ और दे दिया होता, तो क्या कहना था?"[4]

1- गिजू भाई बधेका - चलते फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 84
2- वही, पृ0 75-76
3- वही, पृ0 30
4- गिजू भाई बधेका - दिवा स्वप्न, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 46

भारत में बालकों के लिए प्राणवान साहित्य के अभाव की बात कहने के पश्चात वे विनोदी ढंग से दोषियों में स्वयं को भी शामिल कर लेते हैं। उनके शब्द हैं - "हमारे लेखक व साहित्यकार मुझ पर ही बिफरेंगे। मुझे ही उधेड़ेंगे, 'तो लिखो न तुम्हीं प्राणवान साहित्य?' पर मैं भी तो तमाम मुर्दे लेखकों में शामिल हूँ न! मुझ में ही प्राण होते तो 'बसंत आकर गया', 'कुत्ता बोला और गधा रेंगा', 'घास खाई और जूतियाँ पहनीं' जैसी रचनाएं ही लिखता क्या।"[1]

रूस की प्रशंसा करते-करते गिजू भाई को लगा, बहुत हो गया। घबराये, परन्तु क्यों? क्या ठंड से? अथवा अपना देश ही सबसे अच्छा, इसलिए। "मैं रूस पर विमोहित तो नहीं हो गया? नहीं रे भाई, मुझे इतनी फुर्सत नहीं। मैं ऐसा पागल नही कि मन में कहने लगूं, 'हे भगवान अगला जन्म रूस में देना।' मुझे वहां जन्म नहीं लेना। मैं ठंड से डरता हूँ। अपने को तो यह गरम देश ही अच्छा लगता है। हे भगवान! मुझे तो इस हिन्द में ही फिर से जन्म देना।"[2]

लेखन में, कहानियों में गधे का उल्लेख गिजू भाई अक्सर करते थे। कारण पूछे जाने पर उनका उत्तर भी बहुत विस्तृत था, उसका एक छोटा भाग ही यहाँ उनकी विनोद प्रियता की बानगी के लिए पर्याप्त है- "बहुत सारे लोग मुझसे पूछते हैं, 'आप गधे को क्यों चाहते हो? उसके बारे में क्यों लिखते हो? कहानी में भी उसका उल्लेख क्यों लाते हैं? 'मेरी मर्जी, तुम्हारा क्या जाता है?' यह सभ्य उत्तर नहीं है, न अपने-आप में पूरा उत्तर है। मेरे घर के पिछवाड़े गधे बँधते थे और बाल्यावस्था में मैंने उन्हें बार-बार देखा था, इस कारण तो मैं उसका प्रेमी नहीं बना। ऐसा तो मैं कह सकता हूँ। कोई यों भी कह सकता है कि कीटभ्रमर न्याय की वजह से मैं 'गधामय' हो गया होऊँगा और हर कोई अपने आपको चाहता है, इस न्याय से गधे को चाहता होऊँगा।"[3]

प्रयोगशीलता का साहसः- गिजू भाई ने विद्यालय में अपने विचारों को क्रियान्वित करने हेतु प्रयोग प्रारम्भ किये। परन्तु समस्यायें विकट थी, संघर्ष चौतरफा था। बाधाओं व प्रतिरोधों से मुसीबतों व असहयोग से गिजू भाई घबराने वालों में से न थे। उनका जीवट, साहस, प्रयोग में अटूट आस्था और लक्ष्योन्मुखता उन्हें कर्तव्य-पथ से विचलित कर देने वाली हर शक्ति से कहीं अधिक बलशाली थी। वे कहते हैं - "मेरे साथी शिक्षकों का मुझ में जरा भी विश्वास नहीं। वे तो मुझको निरा मूर्ख समझते हैं और हाँ, शायद मैं मूर्ख हूँ भी। वैसे तो मैं अनुभवहीन ठहरा। लेकिन उनकी इन मान्यताओं और सिखाने की इन रीतियों को तो भई मैं हाथ जोड़ता हूँ। इनको देख कर मुझको तो बस कंपकंपी ही छूटती है। इससे तो मैं जो करता हूँ, वह लाख दरजे ठीक है। मेरे विद्यार्थी मुझको देखकर भाग तो नहीं जाते। वे मुझसे पर्याप्त प्रेम करते हैं। वे मेरा आदर भी करते हैं। आज्ञा भी पालते हैं। इन शिक्षकों को देखकर तो इनके छात्र भाग खड़े होते हैं और पीठ पीछे इनकी नकल करते हुए मैंने उनको अपनी

1- गिजू भाई बधेका - चलते फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 83

2- वही, पृ0 84

3- वही, पृ0 73-74

आंखों देखा है! एक भी लड़का ऐसा नहीं, जो शिक्षक के पास जाकर प्रेम से खड़ा हो सके और हँसकर बातचीत करे। वे कक्षा में चुपचाप बिना हिले-डुले बैठते हैं, पर जब बाहर निकलते हैं, तो इतना ऊधम मचाते हैं कि पूछो न बात ! अपने विद्यार्थियों को मैंने उचित स्वतंत्रता दी है। वे कक्षा में जो थोड़ी गड़बड़ कर लेते हैं, उससे अधिक गडबड़ बाहर कभी नहीं मचाते। लेकिन मेरे साथी तो मुझ पर यह आरोप लगाते हैं कि मैं लड़कों को बिगाड़ रहा हूँ, उनको उद्दण्ड बना रहा हूँ - केवल कहानियाँ सुनाता रहता हूँ और पढ़ता बिल्कुल नहीं हूँ, खेला-खेला कर उलटे उनको आवारा बना रहा हूँ। अच्छा है; देखा जाएगा। यह सब होते हुए भी मुझको कभी भूलना नहीं चाहिए कि मेरा काम विकट है - मुझको तो यह मानकर ही अपना काम करते रहना चाहिए।"[1]

गिजू भाई अपने सिद्धान्तों का प्रयोग विद्यालय के अन्य बालकों पर ही नहीं, घर पर अपने बच्चों पर भी करते थे। वे कहते हैं - "मेरे परिवार में मार-पीट बिल्कुल ही बन्द हो चुकी है। मैं खुद तो अपने बच्चों को कभी मारता और पीटता हूँ ही नहीं, पर अपने परिवार में भी मैंने सबको खबरदार कर दिया है कि वे घर के बच्चों को किसी भी हालत में कभी मारे-पीटे नहीं और मेरे परिवार के सब लोग इस पर ठीक तरह से अमल कर रहे हैं। एक समय था, जब मुझको भी गुस्सा आया करता था। मैं भी अपने बच्चों पर हाथ चला दिया करता था। लेकिन इस सबको रोकने के लिए मुझको बड़ी तपस्या करनी पड़ी है।"[2]

कर्तव्यनिष्ठा एवं मानवीय प्रयासों में आस्था:- गिजू भाई विद्यालयों के हालात देखकर उद्विग्न व दुखी तो थे परन्तु निराश व हताश नहीं। सकारात्मक व सशक्त हस्तक्षेप से स्थिति में परिवर्तन संभव है। उनका मानना था कि - हम अपनी प्राथमिक पाठशालाओं में इससे भी अधिक काम कर सकते हैं; इतना काम कर सकते हैं कि वर्तमान प्राथमिक शिक्षा का रूप ही बदल जाए; कायापलट ही हो जाए। लेकिन बात यह है कि इसके लिए काम करने वालों की जरूरत है। दुनिया की जो सूरत आज है, वह पहले नहीं थी- सूरत बदलने का यह काम मनुष्यों ही ने तो किया है न? आवश्यकता है लगन की, प्रखर आत्मविश्वास की, अखण्ड एकनिष्ठा की। यह जरूरी नहीं है कि अंग्रेजी पढ़े-लिखे ही अच्छे प्रयोग कर सकें। अपने शिक्षक साथियों से वे कहते हैं कि परिणाम की चिन्ता तो प्रयोग करने वाले को जितनी होती है, उतनी दूसरों को कभी हो ही नहीं सकती। आप वेतन-वृद्धि की इच्छा से अच्छे परिणाम की चेष्टा करते हैं और मैं प्रयोग के लिए प्रयोग करता हूँ, जिससे मेरा उद्देश्य सिद्ध हो और कार्यक्षेत्र व्यापक बने। मुझको चिन्ता रहती है कहीं मेरी निष्फलता मेरे बाद के प्रयोगकर्ताओं के लिए बाधक न बन जाए।[3]

गिजू भाई का मानना था कि शिक्षक की अपने व्यवसाय के प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता एवं समर्पण

1- गिजू भाई बधेका - दिवा स्वप्न, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 29-30
2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 85
3- गिजू भाई बधेका - दिवा स्वप्न, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 89

भावना होनी चाहिए। वह उपासना भाव से अपने कर्तव्य का संपादन करे। गिजू भाई स्वयं भी इन गुणों से ओत-प्रोत थे। अधिकारियों की चाटुकारिता में उनका विश्वास न था।

विनम्रता:- महापुरुषों का एक लक्षण विनयशीलता या विनम्रता भी होता है। विनय सच्चे ज्ञान से प्राप्त होता है। गिजू भाई स्वयं को एक साधारण जन के रूप में ही देखते थे। वास्तव में फलों से लदा वृक्ष ही नीचे की ओर झुकता है, इन पंक्तियों से स्पष्ट है - "हम छोटे लोग हैं। मैंने छोटे मुँह बड़ी बात कह दी, पर कोई परवाह नहीं। अगर हृदय में हिम्मत बाँधकर तथा ईश्वर में दृढ़ आस्था रखकर हम चलेंगे तो यही ईश्वर हमें सब कामों सक्षम बनायेगा। आपका और मेरा काम प्रयत्न करना मात्र है। मैंने तो यथा-मति, यथाशक्ति अपना प्रयत्न कर लिया, अब आप लोगों का कर्तव्य खड़ा होता है। भगवान् आपकी सहायता करे।"[1]

अपने सभी कर्मों को वे ईश्वरीय प्रेरणा व आदेश मानते थे। मनुष्य अपना कर्तव्य करे, फल ईश्वरेच्छा आधीन है। गीता का यह कर्मयोग उन्होंने अपने जीवन में उतारा और उस पर आचरण किया।[2]

गिजू भाई का अध्ययन व्यापक था। गिजू भाई अन्य लेखकों व विद्वानों के विचारों पर मनन करते, उनका विश्लेषण करते तथा अपने लेखों में उनकी चर्चा करते थे। इस सम्बन्ध में उनका यह कथन उनकी विनम्रता का द्योतक है।

अविचल कर्तव्यनिष्ठता:- गिजू भाई के शिक्षण, अनुशासन व मूल्यांकन आदि के तौर-तरीके उनके सहयोगी शिक्षकों को अजीबोगरीब लगते थे। वे उन्हें लेकर नाना प्रकार की बातें करते, उनका उपहास करते तथा उन्हें नीचा दिखाने का प्रयास करते। परन्तु गिजू भाई जिस महान लक्ष्य को सम्मुख रखकर अपने प्रयोग कार्य संचालित करते थे, उसमें तन्मयता से जुटे रहे तथा लेश मात्र भी विचलित नहीं हुए।

गिजू भाई विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा के पक्षधर नहीं थे। इसका विद्यालयों में उन्हें कोई औचित्य नजर नहीं आता था, पर उन्हें लगता था कि इस विषय पर यदि वे अधिक बोलेंगे तो अनावश्यक रूप से लोगों को उनका विरोध करने का मुद्दा हाथ लग जायेगा, और वे जिस महत्वपूर्ण कार्य में संलग्न है उसमें बाधा उत्पन्न होगी। उनकी एकाग्रता भंग होगी। इसीलिए वे बड़े विनोदपूर्ण ढंग से कहते हैं - मैं इतना जानता हूँ कि लोग धर्म समझकर जिसकी शिक्षा देते हैं वह धर्म तो नहीं और वह शिक्षा धर्म की भी नहीं। पर मैं क्यों चिन्ता करूँ? धर्म को चिन्ता होगी तो वह अपनी आप संभालेगा। सब सबकी संभालें और आज का जमाना तो 'जीओ और जीने दो' का है। मैं धर्म में अव्यवस्था क्यों पैदा करूँ?' उसकी शान्ति में खलल पहुंचाने का मुझे क्या अधिकार है?[3]

आत्म-निरीक्षण करने की क्षमता:- गिजू भाई अपनी कमियों के प्रति सचेत थे तथा उन्हें दूर करने

1- गिजू भाई बधेका - बाल मंदिर के शिक्षकों से, ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 33

2- गिजू भाई बधेका - कहानी को पूछने योग्य कैसे बनायें, कथा कहानी का शास्त्र, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 103

3- गिजू भाई बधेका - चलते फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 87

के लिए सजग रहते थे। किसी व्यक्ति के लिए ऐसा कर पाना तभी संभव होता है जब वह वस्तुनिष्ठ ढंग से आत्मावलोकन करने की क्षमता से युक्त हो। इस क्षमता के कारण ही अपनी कमियों के कारणों को पहचान पाना भी उनके लिए संभव हो सका। वे कहते हैं- "अंकगणित मुझे अच्छा नहीं लगता। मेहनत करके जितना कुछ सीखा था, वापिस भूल गया हूँ। जहाँ बहुत जरूरत थी, वहाँ भी गणित को सीखने के प्रति अनादर का भाव था। मुझे गणित की महत्ता बताने बिठा दो तो बहुत कम आँकू। प्राथमिक शाला के पाठ्यक्रम में मैं इसे बहुत हल्का स्थान देता हूँ।

एक बार दूसरी कक्षा में गणित की पढ़ाई चल रही थी। अध्यापकजी श्यामपट्ट पर सवाल समझा रहे थे। लड़के उनके सामने मुँह फाड़े देख रहे थे। एक विद्यार्थी को झपकी आ गयी और अध्यापकजी ने उस पर चाक का प्रहार किया। मैं ही हूँ वह लड़का। क्या मुझे उस रोज वह सब अच्छा लगा होगा? कहीं गणित के प्रति मेरी अरूचि का, भले ही दूर का हो, पहला कारण वह सजा तो नहीं थी? आगे चलकर इस विषय में रूचि बढ़ाने के मार्ग में कहीं यही मूल मनोभाव विरोध का काम तो नहीं कर रहा था? खुद गणित पढ़ाने के खिलाफ मेरी शिक्षण सम्बन्धी विचारधारा कहीं मेरे निजी कटु-अनुभव की परिणति तो नहीं थी?

गिजू भाई कहते हैं कि हमारी वर्तमान रूचि-अरूचि, पक्ष-विपक्ष, पसंद-नापसंद के पीछे बचपन के कैसे-कैसे खट्टे-मीठे अनुभव विद्यमान रहते हैं, यह हमें खोजने की जरूरत है। आज हम जो हैं, उसकी जड़ें हमारे बाल्यकाल में हैं। हम बाल्यकाल में बँध जाते हैं। बालकों को कड़ुए-मीठे अनुभव कराने से पहले यह सोचने की जरूरत है कि उनका कैसा पक्का असर जीवनपर्यन्त स्थाई रह जाता है और वह नुकसान कर बैठता है।[1]

गिजू भाई अपने छात्रों के नाम कम ही याद रख पाते थे। इस ओर ध्यानाकर्षित कराये जाने पर वे स्पष्टीकरण देते हैं जो उनकी अपनी प्रवृत्तियों का आत्मनिरीक्षण करने की क्षमता का द्योतक है। "दुनिया को देखने की मेरी दृष्टि दार्शनिक मूल्य ग्रहण करने की बजाय आंतरिक मूल्य ग्रहण करने की अधिक है। हाँ, इतना अवश्य कहूंगा कि अगर मुझे अपने काम को आगे बढ़ाने के लिए कुछ चेहरों को याद रखने की जरूरत पड़ती तो निश्चित रूप से मुझे वे याद रहते। अर्थात् अगर मैं व्यापारी, राजनीतिज्ञ या चित्रकार जैसा होता तो अलग ही बनता। पर मैं ठहरा अध्यापक। बच्चों के चेहरों की बजाय मेरा उनके मन-मस्तिष्क से सम्बन्ध रहता है। पढ़ाते समय मैं उनके दिमाग की तरफ देखता हूँ न कि उनके चेहरों की ओर। चेहरों और स्मृति-विस्मृति के बारे में मुझे इतना ही कहना है।"[2]

सर्जनात्मकता:- निश्चित पगडंडियों से हटकर नये मार्ग निर्मित करना साहस व सर्जनात्मकता का लक्षण है। मौलिक व सर्वथा नूतन विचारों की अविरल धारा सर्जनात्मक लेखन में ही देखी जाती है।

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 30

2- गिजू भाई बधेका - चलते फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 69

मन में उमड़ते भाव जब तक कागज पर न उतारें, चैन कहाँ। गिजू भाई कहते हैं - "इस समय रात के तीन बजे हैं। इतना लिख लेने के बाद मुझे आराम लगता है; मन-मस्तिष्क का भार हल्का हो गया लगता है। अगर मेरे लेखन को विद्वान लोग सर्जन कहें तो (मैं तो इसे सर्जन ही मानता हूँ, क्योंकि यह मेरे उत्कृष्ट मनोभावों का अवतार है) मैं कहूँगा कि सर्जन द्वारा शान्ति मिलती है और इसका यह प्रमाण है। सोचता हूँ, प्रेमी लोग आधी रात में उठकर प्रेम-पत्र क्यों लिखते होंगे। उत्कट मनोभावों को आविर्भूत करने के लिए ही तो !" गिजू भाई भी प्रेमी थे, पर बालक के समाज के या ठीक-ठीक कहा जाए तो सम्पूर्ण मानव जाति के, अतः जागृत मनोभावों को लेखबद्ध करना उनके लिए जन-हितार्थ परमावश्यक कार्य था। इस कार्य में समय का कोई बंधन गिजू भाई को स्वीकार्य न था।

संवेदनशीलता:- गिजू भाई के शरीर में एक 'माँ' का हृदय धड़कता था। दुनिया भर के बालक उनके अपने बालक थे। ऐसा संवेदनशील व ममत्व से परिपूर्ण व्यक्तित्व रखने वाले गिजू भाई की व्यथा इन शब्दों में अभिव्यक्त हो रही है -"यह बात सही है कि हमारे समक्ष बालकों के स्वस्थ एवं सुखी जीवन के कतिपय उदाहरण हैं, जो हमारे लिए मार्गदर्शक के समान हैं। ऐसी मार्गदर्शक बाल-शालाएं और सुखी घर अभी गिने चुने हैं - यह बात जितनी हमारे लिए प्रसन्नतापूर्ण है, उतनी ही विषादपरक भी है। जहाँ पर लाखों बालकों को पर्याप्त खाना नहीं मिलता हो, वहाँ पर अगर धनवानों के बच्चे सुखी हों तो यह बात इस दुनिया में एक बड़ी ही दुःखदायी और महान आपत्तिजनक बात गिनी जायेगी। इसी प्रकार जहाँ लाखों बालक मार खाते हों वहाँ उनके माता-पिता और अध्यापक सुख की नींद कैसे सो सकते हैं? दुनियाभर के बालक उनके ही तो हैं। इन बालकों के प्रति लापरवाह बनकर शालाएं और घर भी आखिरकार अपने बालकों के सुख को स्थायी नहीं बना सकेंगे। हजारों दुःखी बालकों के बीच कुछ बालकों का सुखी रहना दुखी रहने से भी कहीं अधिक भयंकर हो जायेगा। अंततः दुःख का यह मगरमच्छ नन्हीं-नन्हीं सुख की इन मछलियों को भी निगल जायेगा।[1]

संवेदनशील गिजू भाई बालक को रोते देख, बेकार भटकते देख, पिटते देख, रोग-ग्रस्त देख भावुक हो उठते थे तथा उनके दुख दूर करने के लिए उपाय सोचने लगते थे।

3.3 प्रेरणा स्त्रोत

वकालत का पेशा छोड़कर गिजू भाई क्यों शिक्षण कार्य की ओर उन्मुख हुए, इसका कोई एक निश्चित कारण नहीं पहचाना जा सकता है। यह उनके जीवन की बहुत सी घटनाओं एवं अनुभवों का मिश्रित प्रभाव था। कारण कुछ भी रहा हो, वास्तविकता यह है कि जैसे नदी का जल सागर से मिलने को व्याकुल रहता है वैसे ही उनका बाल-हृदय बालकों के साथ रहने को आकुल था। उनको जीवन मिला ही था बालकों के लिए। वे कहते हैं - "मॉण्टेसरी-पद्धति के शिक्षा-सम्बन्धी उपकरण मैंने देखे

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 92

होते या न भी देखे होते, पांच वर्षों तक पद्धति का गहन अध्ययन करके मैंने इससे इतना अनुभव अर्जित किया होता या न भी किया होता, किन्तु अपने बालकों के विकास में हम कब, कहाँ बाधक बन जाते हैं, कहाँ-कहाँ उनके मन की स्थिति को समझे बिना हम उनकी कोमल भावनाओं को दबाते रहते हैं, अपने हठपूर्ण आग्रहों के कारण, अपने तर्कों-वितर्कों के द्वारा और अपने अन्य प्रयत्नों से हम उनको कब कैसे अपने जैसा ही बनाने की उधेड़-बुन में लगे रहते हैं, इन बातों के ज्ञान को मैं अपना स्थाई ज्ञान मानता हूँ। मुझको लगता है कि जीवन भर मॉण्टेसरी-पद्धति की उपासना करने के लिए और उसका प्रचार करते रहने के लिए उसका इतना ज्ञान पर्याप्त है।"

जैसे ही उन्होंने यह नयी दृष्टि ग्रहण की, वैसे ही वे बाल-जीवन की गहराइयों में उतरने लगे। "जब मैं देखता कि मेरे पड़ोस के एक सेठजी अपने बेटे को अपनी गोदी में लिये उसको चुटकियाँ भरते और गालियाँ देते, कि 'नासपीटे ! तुझको पढ़ना थोड़े ही है रोज-रोज स्कूल ले जाते हैं', तो मेरा अंतर्मन रो उठता। मुझको अपनी पाठशाला का विद्यार्थी-जीवन याद हो जाता। अनेक प्रकार की सख्तियों का वह प्राचीन वधस्थल मानो मुझको पुकार-पुकारकर कह रहा हो, 'उठ, खड़ा हो! वकालत छोड़ और बाल-जीवन के चरणों में अपनी सारी शक्ति और सारा सामर्थ्य अर्पित कर दे!' मैं भाग उठा। मैंने पाँच वर्षों तक इस नयी शिक्षा-पद्धति की उपासना की और उसके सार्वदेशिक और सार्वभौमिक जीवन-तत्वों का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया।[1]

मॉण्टेसरी का प्रभाव:- गिजू भाई मारिया मॉण्टेसरी से अत्यधिक प्रभावित थे। इसी कारण उनका झुकाव मॉण्टेसरी पद्धति की ओर था। इसका बीजारोपण हुआ मॉण्टेसरी की पुस्तक 'मॉण्टेसरी मदर' द्वारा जिसने उनके जीवन की दिशा ही बदल दी। अपने दृष्टिकोणों में आमूल परिवर्तन लाने का श्रेय वे इसी पुस्तक को देते हैं। वे स्वयं कहते हैं कि अगर उनको किसी ने पहले ही सावधान कर दिया होता कि 'मॉण्टेसरी मदर' नामक पुस्तक पढ़ने से उनकी जीवन-धारा ही बदल जायेगी, जीवन एक नए प्रकाश में जगमगा उठेगा और उनको एक नयी क्रांतिकारी दृष्टि प्राप्त हो जायेगी, तो उनके जैसा एक वकील इस पुस्तक को अपने हाथ में थामता या नहीं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। वे कहते हैं- "वस्तुत: किसी भी घटना के घटित होने के मूल में एक कार्यकारण परंपरा को स्वीकार करना ही पड़ता है। मैंने तो सोचा तक नहीं था कि इस एक पुस्तक के पढ़ते ही मेरा जीवन बदल जायेगा। मैंने अपने जीवन में ऐसे कितने ही अनुभव प्राप्त किये हैं कि जिनको मैं अद्वितीय और आसाधारण रूप से प्रगतिशील मानता हूँ। ऐसे प्रत्येक अनुभव में मुझको हर बार यह अनुभव हुआ है कि जैसे किसी अंधे को आंखें मिल जाएँ तो उसको यह सारा संसार ही दिव्य, अद्‌भुत, अवर्णनीय, अनिर्वचनीय लगने लगता है। ऐसा ही एक अनुभव उक्त पुस्तक को पढ़ने से मुझको भी हुआ।

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 50

मुझको लगा कि अपने विद्यार्थी जीवन में मैंने जो सीखा, अफ्रीका के प्रवास में जो मेरे हाथ नहीं लगा, वकालत की पुस्तकों में जो नहीं मिला, अनेकानेक ग्रंथों के स्वाध्याय से और मित्रों के साथ की चर्चा-परिचर्चा द्वारा जो समझ में नहीं आया, वह इस छोटी-सी पुस्तक में मिल गया। मेरी इस बात में रंचमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है। परिणामस्वरूप बाल-जीवन, शिक्षण-जीवन, समाज-जीवन और मानव-जीवन को मैं एक अलग ही अंदाज से देखने लगा।

मैं इन विचारों को पढ़कर आनंद-विभोर हो उठा कि बालक स्वतंत्र है, सम्मान-योग्य है, क्रियाशील और शिक्षण-प्रिय है। मेरे अपने चिंतन-मंथन ने भी इस विचार को पुष्ट किया। तभी तो मैं इस नए सत्य को अपने आंतरिक अनुभव द्वारा ग्रहण कर सका। बस, तभी से मैं इन विचारों की चर्चा अपनी मित्र-मंडली में, घर में पत्नी के साथ, अथवा अपने हम-पेशा साथियों के बीच करने लगा और इनको अपने व्यवहार में लाने लगा।"[1]

गिजू भाई का कहना है कि वैसे, 'मॉण्टेसरी-मदर' एक साधारण-सी पुस्तक मानी जाती है - खासतौर से डॉ0 मारिया मॉण्टेसरी द्वारा लिखी गयी काव्यात्मक और शास्त्रीय विवेचन वाली इनकी अन्य पुस्तकों की तुलना में। इस पुस्तक में शिक्षा-सम्बन्धी उपकरणों की चर्चा आधी-अधूरी है और लेखन, वाचन और गणित के प्रयोगों को लेकर भी इसमें बहुत कम लिखा गया है, पर इसमें बाल-सम्मान का विवेचन और विश्लेषण जिस प्रभावपूर्ण और सरल शैली में हुआ है, और बाल-शिक्षण की जो नयी दिशा इसमें उद्घाटित हुई है, उनको आंदोलित कर देने के लिए वह बहुत पर्याप्त थी।

गिजू भाई, मारिया मॉण्टेसरी की एक अन्य पुस्तक 'मॉण्टेसरी मैथड' से भी अत्यधिक प्रभावित थे। इसकी प्रशंसा में वे कहते हैं कि शिक्षण-साहित्य में यह एक अद्वितीय पुस्तक है। इसकी भाषा पढ़कर आँसू छलछला आते हैं। स्वानुभव एवं स्व-परिश्रम का इसमें मार्मिक वर्णन किया गया है। शिक्षा सम्बन्धी ग्रंथों में यह एक उच्च कोटि का ग्रंथ समझा जायेगा। इसमें जो नैसर्गिक प्रतिभा है, जो स्व-स्फुरण है, स्वतंत्रता के विचार-पक्ष की जो खुमारी व मिठास है, वह दूसरे ग्रंथ में बहुत कम देखने को मिलती है। आने वाली पीढ़ी के लिए यह एक अनुपम विरासत है तथा शिक्षा-जगत् में एक बेशकीमती रत्न है। इस ग्रंथ में स्थान-स्थान पर नवजीवन का आदर्श जगमगा उठता है। देश-देशांतरों के विद्वान् भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से लोगों के उद्धार हेतु जो प्रयत्न कर रहे हैं। वैसे ही शिक्षा सम्बन्धी प्रयासों का मूल है यह ग्रंथ। इसमें भावना की जितनी ऊँचाई है, उतनी ही विज्ञान की गहन दृष्टि है। बार-बार पढ़ने पर भी पाठक इससे तृप्त नहीं हो पाते।[2]

स्वाध्याय की प्रवृत्तिः- पुस्तकें पढ़ने का गिजू भाई को नशा था। पुस्तकें सर्वोत्तम शिक्षक होती हैं, परम मित्र होती हैं। इस बात की सच्चाई से वे परिचित थे। अतः स्वाध्याय की प्रवृत्ति उनमें सदैव

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 56
2- गिजू भाई बधेका - महान् शिक्षाविद् डॉ0 मारिया मॉण्टेसरी, मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 12

बनी रहती थी। देशी-विदेशी बाल साहित्य व बाल-शिक्षा साहित्य में उनकी विशेष रूचि थी। रूसी साहित्य से वे विशेष रूप से प्रभावित थे, इसे वे स्वीकारते हैं - "पिछले पखवाड़े मैंने एक 'साम्यवादी अंडर ग्रेजुएट की डायरी' पढ़ी। किसी रूसी लेखक द्वारा लिखी गयी वह अंग्रेजी में रूपांतरित थी। बढ़िया पुस्तक थी। शैली प्राणवान और सरल प्रवहमान। प्रगल्भ भी, विचारपूर्ण थी।"[1]

एक अन्य पुस्तक की प्रशंसा करते वे नहीं थकते। उसे पढ़कर उन्हें अपने देश में बाल-साहित्य के गिरते स्तर पर चिंता हो उठती है। वे कहते हैं - "Red Corner Book पढ़ें। कितना सुन्दर और सशक्त बाल-साहित्य है। हमारे पौरुषहीन साहित्य की उसमें गन्ध तक नहीं है। वहाँ तो पूरे देश की भावना मूर्तिमंत है। बालकों को जो चीज सिखानी है, उससे सम्बन्धित प्रबल पाठ उसमें विद्यमान हैं। पुस्तक में लिखी 'किसके लिए' रचना पढ़ें। शुरू में कविताएं देखें। अगर किसी को शंका हो कि 'एंजिन और हल की प्रवृत्ति से कैसी कविता और कैसा काव्य?' तो मैं कहूंगा कि उसमें छपी 'एंजिन' की कविता पढ़िए। हमारे यहाँ कौन सा प्राण फूटा है, जो इस प्रकार की कविता के रूप में फूट निकला हो। सौन्दर्य के नाम पर हमारे काव्य में निष्प्राणता के सिवा और क्या है?"[2]

गिजू भाई का अपना साहित्य-सृजन कल्पना की उपज नहीं, जीवन के यथार्थ अनुभवों का प्रतिफल है। वे कहते हैं - ऐसी परिस्थिति से गुजरते-गुजरते मैंने जो अनुभव प्राप्त किये हैं, उन्हीं के आधार पर मैंने यह लिखा है। मैं स्वयं अलग-अलग तरीके अपनाकर देख-समझ रहा हूँ।[3]

बाल्यकाल में परिवार का प्रभाव:- बाल्यावस्था के प्रभाव मानव-मन पर अमिट-चिह्न छोड़ जाते हैं। बड़ा होने पर चाहे उनका विस्मरण हो जाये परन्तु अचेतन-मन में वे बसते ही हैं और गाहे-बगाहे अलग-अलग ढंग से मानव- व्यवहार को प्रभावित करते हैं। बचपन में माँ-बाप की अन्तर्कलह, आकस्मिक घटनायें भावात्मक आघात, अभावग्रस्तता आदि के प्रभाव आजीवन मानव-व्यक्तित्व पर दीख पड़ते हैं। भयप्रद कहानियों के ऐसे ही दुष्प्रभाव की चर्चा करते हुए गिजू भाई कहते हैं - "मैंने बाल्यकाल में भूत-प्रेत और राक्षसों की अच्छी-बुरी अनेक कहानियाँ सुनी हैं। उनका अच्छा-बुरा प्रभाव बचपन में जबरदस्त था और आज भी मैं उनके प्रभाव से मुक्त नहीं हुआ। बचपन में मैं अकारण डरता था।

लार्ड लिटन की Haunted House कहानी सुनकर मुझे सोते समय भय की कंपकंपी होने लगती है। वैसे मैं वैज्ञानिक अभिवृत्ति वाला हूँ। 'हॉंटेड हाउस' की कहानी भूतों को सिद्ध करने की बजाय उन्हें अप्रमाणित अधिक करती है। बड़ी उम्र में हम जो भय महसूस करते हैं, वह बाल्यावस्था में लगे भय का प्रभाव मात्र है। जिस किसी बालक को बाल्यावस्था में कभी डराया नहीं गया अथवा जो कभी डरा नहीं, वह बड़ी उम्र में आदमी नहीं डरता।" (चलते-फिरते शिक्षा 57)

1- गिजू भाई बधेका - चलते फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 18
2- वही, पृ0 83
3- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 25
4- गिजू भाई बधेका - चलते फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 57

बालकों की अभिवृत्तियों के निर्माण में पारिवारिक वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। व्यक्ति में रूढ़िवादिता, पूर्वग्रह-ग्रस्तता, मतान्धता एवं अन्धविश्वासों के पनपने की शुरूआत घर से ही होती है और वह भी बाल्यावस्था में। गिजू भाई मानते हैं कि बालक हमसे बहुत कुछ सीखते हैं। हम उनको जो बातें सिखाते हैं, उनकी तुलना में हम जिस तरह अपना जीवन बिताते हैं, उससे वे बहुत अधिक सीखते हैं। एक प्रचलित अंधविश्वास की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि हमने अपने माता-पिता से पूछा : "अगर कोई साँप हमारा रास्ता काटकर चला जाए तो उससे हमको नुकसान क्यों होता है?" हमको जवाब मिला : "तुम इससे क्या समझो? अपने बड़े-बूढ़े जो कह गए सो यों ही नहीं कह गए।" बालक हमसे पूछता है : "पैर हिलाने से माँ क्यों मर जाती हैं?" जवाब में हम उससे कहते हैं : "चुप रहो। बहुत अक्ल मत बघारो। तुम इतना भी नहीं समझते कि पैर नहीं हिलाने चाहिएँ।"

वे स्वीकार करने में नहीं हिचकते कि उनमें जो अंधविश्वास मौजूद हैं, वे उसको अपने विद्यालय से नहीं मिले। वे तो उन्हें घर से, अपने माता-पिता के अपने अंधविश्वासों से मिले हैं। इस पर वे पूछते हैं - "क्या डरपोक बनाना चाहते हैं? क्या हम उनको भोले भाव से सब कुछ सही मान लेने वाला बनाना चाहते हैं? क्या हम उनको शास्त्रीय दृष्टि से रहित और तर्क रहित बुद्धि वाला बनाना चाहते हैं? यदि हमको यह सब नहीं करना है, तो हम स्वयं किसी भी अंधविश्वास को न मानें और किसी को अंधविश्वासी बनाएं।"[1]

किशोरावस्था के अनुभव:- किशोरावस्था में गिजू भाई का झुकाव कथा-कहानियों के बजाय वास्तविकता की ओर अधिक था। साहस, संघर्ष वृत्ति, उद्यम शीलता, अन्वेषणशीलता तथा परिस्थितियों पर विजय हासिल करने के गुण इस अवस्था में उनमें भरपूर विकसित हो चुके थे। ये नैसर्गिक गुण जो किशोरावस्था में भिन्न-भिन्न प्रकार से अभिव्यक्ति पा रहे थे निरंतर बढ़ते रहे और जब गिजू भाई ने शिक्षा जगत में पर्दापण किया तो उनहें नई राहें मिलीं। वे अपने अनुभव बयान करते हुए कहते हैं कि जब हम किशोरावस्था में थे, तब कहानियाँ सुनने के बजाय हमने सचमुच छोटे-बड़े साहसिक काम किये थे। अंधेरा, शमशान, एकान्त जगहें हमारे लिए सुपरिचित थीं। बहादुरी के वेग को हम आमने-सामने की टोलियों द्वारा लड़कर बहाते थे। लड़ाई के हम जबरदस्त शौकीन थे। गाँव में जब कथा-वाचक महाभारत की कथा सुनाते थे, तब रात को दो बजे तक सुनते थे और दिन के समय योद्धा बनकर युद्ध लड़ते थे। एक बार तो बाईस लड़कों की हमारी टोली ने जाल के पेड़ की डालियाँ काटकर गदाएं बनाईं और उन्हें विश्व-विजयी बनने के लिए हममें से एक लड़के की उंगली काटकर उसका लहू चढ़ाया। माता-पिता जब हमें नितान्त नन्हें छोकरे समझते थे, तब हम बड़े-बड़े पराक्रम रचते थे।[2]

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता बनना, माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 57-58

2- गिजू भाई बधेका - कथा कहानी का शास्त्र, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 48

स्वयं के बालकों से प्रेरणा:- बालकों के अंतर्मन को समझने की ललक गिजू भाई में अपने नन्हें बेटे की चेष्टाओं को देखकर उत्पन्न हुई। उनके चिंतन व कर्म को स्फुरण प्राप्त हुआ और वे सक्रिय हो उठे। वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि "मेरे एक नन्हें से पुत्र ने मेरे सम्पूर्ण जीवन को ही क्रियाशील बना डाला। अपने पुत्र की सहज और स्वाभाविक क्रियाएँ देख-देखकर मैं आनंदित होने लगा। बच्चे से बातें कैसे करें, कैसे हाथ पकड़कर उसको चलाएँ, उसको क्या-क्या अच्छा लगता है और क्या-क्या अच्छा नहीं लगता है, कौन-कौन सी चीजें उसके लिए अनुकूल हैं और कौन-कौन सी प्रतिकूल हैं- मानो ये सारी बातें मुझको अपने-आप ही सूझने लगीं। संक्षेप में मेरे जीवन में एक जबरदस्त परिवर्तन आ गया।"

परिवार में बच्चों से उन्होंने बहुत कुछ नवीन उद्दीपन व सूझ प्राप्त की जो उनके व्यावहारिक शिक्षा दर्शन का आधार बनीं। वे कहते हैं कि - "मेरी अपनी भी एक गृहस्थी है। मैं भी अपने अनुभव से यह जानता हूँ कि घर में बालक कुछ-न-कुछ मांगते ही रहते हैं। वे हमको बराबर हैरान और परेशान करते रहते हैं। हमारे सिर पचाते रहते हैं। लेकिन अगर उनको खुद ही अपना काम करते रहने का रास्ता दिखा दिया जाये और उनके मार्ग में आने वाली कठिनाइयाँ दूर कर दी जाएँ, तो वे जरूर ही अपने सब काम खुद ही करना सीख जायेंगे। हमारी गलती यह है कि हम उनको गुलामों की तरह पराधीन हालत में रखते हैं। घर में अपने सारे काम खुद ही कर लेने की अनुकूलता आप उनके लिए कर दीजिए।"[1]

बाल-शिक्षाविद ए.एस. नील का प्रभाव:- बाल शिक्षाविद् ए.एस. नील से भी गिजू अत्यन्त प्रभावित थे। वे स्वीकारते हैं कि कहानी को अपने बाल-शिक्षण में इतना महत्व देने की प्रेरणा गिजू भाई को इन्हीं से प्राप्त हुई थी। उनका कहना है - मुझे कहानी कहने का शौक है। मैं इसमें नये-नये प्रयोग करता रहता हूँ पर नील की कहानी कहने की मौलिकता अद्भुत है। सामने बैठे कहानी के श्रोताओं में से ही पात्र उठा लेने की उसकी जबरदस्ती खूबी है। दूसरी खूबी है श्रोताओं के बीच चलने वाली बातचीत में से अपनी कथा के सूत्र बुनते चलना।[2]

अन्य बालकों की भाँति बेटी बबली को भी कहानियाँ बहुत प्रिय थीं पर जब गिजू भाई ने कहानी कथन की नील द्वारा बतायी गयी पद्धति का उपयोग किया तो उसका प्रभाव ही अलग था।

वे स्वीकार करते हैं कि -"आजकल मैं घर में और पाठशाला में दोनों जगह नील की पद्धति से कहानियाँ सुनाने लगा हूँ। 'डॉमिनीज फाइव' का अनुवाद भी शुरू किया है। गुजराती में 'मास्टरजी और वे पांच' (आगे चलकर 'रखडुं टोली' नाम रखा गया) नाम रखना थोड़ा विचित्र और नवीन ही लगेगा पर जैसी नील और उसकी कहानियों में विचित्रता और नवीनता है; ऐसा ही कुछ नाम उसका

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 69

2- गिजू भाई बधेका - चलते फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 10

पुस्तक का होना चाहिए। तभी लोगों के मन में उसे पढ़ने का आकर्षण पैदा होगा न!"[1]

बाल मनोविज्ञान के गहन ज्ञान की समझ नील को थी, उसकी कहानियों से ही यह सिद्ध होता है। गिजू भाई ने उनसे बहुत कुछ ग्रहण किया, परन्तु इसका श्रेय वे नील को देते हुए उनकी अतिशय प्रशंसा करते हैं - नील अपनी कहानी में बहुत सारी बातें कह देता था। बाल मनोविज्ञान की बातों का तो पार ही नहीं था। फिर भूगोल की, इतिहास की, विज्ञान की, नये-नये देशों की, खोजों और यंत्रों की, आज के सुधारों की और ऐसी-ऐसी कितनी ही बातें जोड़ता चलता था, बड़ी ही सहजता के साथ। कहानी थोड़ी-सी भी भारी हुई नहीं कि तत्काल बड़ी आश्चर्यजनक रीति से वह ऐसा रस डाल देता था कि सब स्तब्ध होकर सुनते रहते।[2]

अफ्रीका प्रवास के अनुभव:- अपने अफ्रीका प्रवास के दौरान गिजू भाई ने अफ्रीका के एडवोकेट सोलिसिटर स्टीवेंस के यहां काम किया। जब वे किसी काम के बारे में स्टीवेंस से कुछ पूछते तो उनका जवाब होता 'अपना दिमाग लगाओ।' गिजू भाई शुरू में इससे बड़ा परेशान होते। वे कहते हैं - और इसका कारण? कारण यह था कि छुटपन से ही मेरा दिमाग गुलाम बन चुका था। जब मुझे जो कुछ करना हो, पूछ-पूछ कर ही करना पड़े; जब मुझे बिना-समझे, बिना-विचारे जो कुछ पढ़ाया, वह पढ़ना पड़े; जब मुझे जैसा कहा जाए वैसा गम्भीरता से स्वीकारना ही पड़े; जब मुझे घर या शाला में ऐसी शिक्षा मिली हो कि स्वतंत्र विचार सूझे ही नहीं; जब जहाँ-जहाँ मैं दिमाग लगा सकूँ वहाँ-वहाँ मेरी बजाय पिता, माता या अध्यापक अपना दिमाग लगाते हों, तब भला मेरा दिमाग कैसे काम कर पाएगा? ऐसे में अगर स्टीवेंस के बोल सुनने पड़ें तो कैसा आश्चर्य! बालकों में स्वतंत्र चिंतन एवं समस्या समाधान क्षमता का मार्ग अवरुद्ध करने वाले तत्वों को गिजू भाई ने बड़े सटीक तरीके से इंगित किया है। वे स्वयं भुक्तभोगी रहे अत: इस दिशा में वे बार-बार माँ-बाप व शिक्षकों को सचेत करते हैं।

मामा हरगोविन्द का प्रभाव:- गिजू भाई के मन को वकालत से हटाकर बाल-शिक्षण की ओर मोड़ने का श्रेय उनके मामा हरगोविन्द उर्फ मोटा भाई को है। नैतिक शिक्षा व आचरण शिक्षा सम्बन्धी गिजू भाई के विचारों को रूपाकार तो बाद में मिला, परन्तु उसके बीज मामा मोटा भाई के आचरण को देखकर पड़ गये थे। वे कहते हैं - मैं अपने मामाजी के घर पर रहते हुए अध्ययन करता था। मेरे मामा स्टेशन-मास्टर थे। जब भी वे संध्यादि नित्य कर्म में बैठे होते थे तब महाराजा भावसिंहजी को भी प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। उन्होंने कभी भी जल्दबाजी में संध्या पूरी नहीं की। इस निर्भयता और दृढ़ता ने मेरे मन पर जो छाप छोड़ी वैसी किसी भी नीति-कथा ने नहीं छोड़ी। उनके जीवन से जो सत्य प्रवाहित होता था वह मुझे बहुत अच्छा लगता था। उनकी संध्या उनका रोजाना का व्यायाम थी,

1- गिजू भाई बधेका - चलते फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 7

2- वही, पृ0 19

उनकी निर्भयता उनकी आत्मा का परिमल थी। उनके व्यायाम ने तो मुझ पर प्रभाव नहीं डाली, लेकिन उनका परिमल तो मेरी आत्मा में सहज ही प्रविष्ट हो गया है।

विद्यालयों के प्रत्यक्ष अनुभवः- स्कूलों का प्रत्यक्ष अनुभव गिजू भाई को था। अपनी सूक्ष्म अवलोकन क्षमता एवं संवेदनशीलता से विद्यालयों को उन्होंने निकट से देखा जाना, उससे उनका हृदय व्यथित हो उठता था जब वे विद्यालय की दुर्दशा देखते थे। वे स्वीकार करते हैं कि जब-जब मैं अपनी प्राथमिक पाठशालाओं पर दृष्टिपात करता था तब-तब मेरा हृदय दु:ख से भर जाता था और कई दिनों तक वे उदास रहते थे। वे कहते हैं - "कुछ अर्से पहले मैंने एक प्राथमिक पाठशाला देखी थी। मैंने कभी कल्पना तक नहीं की थी इतनी भयंकर गंदी प्राथमिक पाठशाला भी कभी हो सकती है। पूरा आंगन कबूतरों की बीटों से सड़ा हुआ था और उन्हीं पर बालक चल-फिर रहे थे या बैठे थे। कबूतर की बीटों की बदबू में ही अध्यापक और विद्यार्थी सांस ले रहे थे।

पाठशाला के प्रांगण में और भीतर कागजों के डूचे और कबूतर के घोंसलों का कचरा इधर-उधर उड़ रहा था। विद्यालय की दीवारें जैसे अब गिरीं तब गिरीं। मकड़ी के जालों का तो पार ही न था। ऊपर से पुराने लकड़ों का कचरा नीचे गिर रहा था।

उन्हें एक और विद्यालय देखने की भी याद ताजा है। वह एक अंधेरी कोठरी मात्र थी। उसका आंगन सीलन भरा था अत: बदबू मारता था, हवा और रोशनी का वहां अभाव था। उस कमरे में लड़के यूं भरे हुए थे मानो किसी गाड़े में कुत्तों को बेरहमी से ठूँस दिया गया हो। उनके कपड़े भला स्वच्छ कैसे रह सकते थे? हर तरह से सुन्दर स्वास्थ्य को विकृत बना डालने वाला वातावरण था। उनके अनुसार ऐसी गंदी, हवा और रोशनी से रहित पाठशालाएं बालकों के लिए जीवित नरक हैं, उन्हें पहले ही झटके में रोग का शिकार बनाने वाली भयंकर रोग-पाठशालाएं हैं। विद्यालयों की इस दिशा में सुधार लाया जाये तथा विद्यालयों का वातावरण उत्तम, स्वास्थ्यवर्धक व प्रेरक होना ही चाहिए। इस दिशा में भी कुछ करना है, यह संकल्प उनके द्वारा लिया गया तथा इस दिशा में उन्होंने निरंतर प्रयास भी किये।[1]

स्कूली जीवन की स्मृतियाँः- अपने छात्र-जीवन की स्मृत्तियाँ गिजू भाई को सदैव कचोटती थीं, विद्यालय जिसमें वे पढ़े उसकी दशा, वातावरण, तौर-तरीके थे ही ऐसे। वे भला कैसे भूल सकते थे उन कड़वे अनुभवों को जबकि वे इतने तीव्र व गहन थे। किसी अन्य के अनुभवों को आधार बनाकर लिखने की आवश्यकता तो उन्हें तब होती जब उन्होंने विद्यालय-व्यथा का अनुभव स्वयं न किया होता। वे कहते हैं- "मुझको खुद को वह याद आती है, और इस वक्त बड़ी ही शर्म के साथ उस पाठशाला को याद करना पड़ रहा है। पाठशाला के मधुर संस्मरणों के साथ रले-मिले कड़वे स्रोतों

1- गिजू भाई बधेका - हम किसके लिए लड़ें, ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 50

को विस्मृत करने के लिए मधुर संस्मरणों को अधिक याद करना पड़ता है। लेकिन कक्षा में तंबाकू खाने वाला शिक्षक मुझसे भुलाये नहीं भूलता। रौब जमाने के लिए ही वह लड़कों को पीटता। न पढ़ाता होता तब 'नक्शा देखो', 'गिनती लिखकर लाओ', ऐसा काम सौंपने वाला शिक्षक कैसे भूला जा सकता है? तड़ातड़ तमाचे खाते लड़कों को मैंने अपनी आँखों से देखा है, और कभी-कभार मेरा गाल भी चमचमाया है। मैं विश्वासपूर्वक बता रहा हूँ कि शिक्षक को हमसे कोई लेना-देना नहीं था। हम गृहकार्य करके ले आते। भौंहें चढ़ाए शिक्षक उसे लेते और घंटी बजते ही पाठशाला में हम ऐसे छूटते जैसे पिंजरे से कुत्ते भाग छूटते हैं। जब कभी मास्टर बीमार होते तो हम बहुत खुश होते, 'हा ! हा ! आज पढ़ना नहीं है। कोई मर जाता और पाठशाला में छुट्टी होती तो हमारे मजे ही मजे थे। मैं आपके सामने कोई अपना जीवन-चरित्र सुनाने को खड़ा नहीं हुआ हूँ, अपितु शिक्षण का एक युग चित्रित करने खड़ा हुआ हूँ। यह चित्र बहुत लंबा है, बहुपक्षी है, फिर भी कूंची के मोटे-मोटे हाथ मारकर उसे व्यक्त करना चाहूँगा।"[1]

अधिकारियों का सहयोग:- गिजू भाई को अपने प्रयोगों को संचालित करने हेतु प्रेरित करने में उनके विद्यालय के अंग्रेज अधिकारियों का योगदान भी रहा। यद्यपि शुरूआती दिनों में उनके साहब आशंकित थे परन्तु उन्होंने गिजू भाई को अपने अधिकार क्षेत्र में जितना संभव था, उतना समर्थन व सहयोग प्रदान किया। एक अवसर पर डायरेक्टर महोदय ने जब गिजू भाई द्वारा तैयार कराये गये नाटक देखे तो गद्‌गद् होकर उनकी प्रशंसा की। ऐसे समय में जब दूसरे लोग गिजू भाई के तौर-तरीकों के प्रति शंका व अविश्वास रखते थे, उच्चाधिकारी की भूरि-भूरि प्रशंसा उनके उत्साह को निश्चय ही कई गुना बढ़ाने वाली थी। एक साधारण व्यक्ति की तरह अत्यंत सरल भाव से वे इसे स्वीकार करते हैं - "डायरेक्टर महोदय ने कहा-

Bravo! you are success! Go on with your experiments. This is something! Rest is sham and bosh!

डायरेक्टर के इन शब्दों ने मेरे साहब के मन में कैसी गुदगुदी और कितना गर्व पैदा किया होगा, आप ही सोच लें ! मैं तो प्रसन्न था ही।"

3.4 कृतित्व

बाल साहित्य के सृजन के लिए लेखक में बालकों के प्रति रुचि, समानुभूति, संवेदनशीलता व आत्मीयता का भाव होना आवश्यक है। बच्चों में बच्चा जैसा बन जाना, उनके साथ खेलना, मनोविनोद करना तथा उनकी जिद मानना, ये कुछ ऐसी क्रियाएं हैं जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी आंतरिक सरल भावनाओं का पुनः संस्कार करने में सक्षम हो पाता है। बाल साहित्य का क्षेत्र अति

1- गिजू भाई बधेका - बाल जगत की उषा, बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 30

मनोवैज्ञानिक व संवेदनात्मक है।

बाल साहित्य तथा बाल शिक्षा से सम्बन्धित साहित्य में गिजू भाई की देन महत्वपूर्ण है। अपने शैक्षिक प्रयोगों के साथ-साथ गिजू भाई ने विपुल साहित्य की रचना की। उनके प्रणीत साहित्य की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं -

1-बालकों, अभिभावकों व शिक्षकों के लिए अलग-अलग साहित्य की रचना,

2-ऐसे साहित्य की रचना जो बच्चों, अभिभावकों व शिक्षकों को प्रेरणा देता है कि बालकों में दया, प्रेम, करुणा, सत्य, अहिंसा, परोपकार, त्याग व मैत्री जैसी उदात्त मानवीय गुणों का विकास हों। अपनी रचनाओं में उन्होंने बालकों की स्वाभाविक रुचियों व क्षमताओं का ध्यान रखा। उनकी आयु एवं विकास के अनुकूल साहित्य की रचना की। उस समय बाल साहित्य में उपदेशात्मक शैली का बोल बाला था। उपदेश के बोझ तले कविता व कहानी की स्वाभाविकता, उसका रस व आत्मा दम तोड़ देती थी। ये कहानियाँ या कविताएँ बाल मन को प्रभावित करने तथा उन पर अमिट प्रभाव छोड़ने में सर्वथा असमर्थ थी। गिजू भाई को बाल साहित्य का सम्राट कहा जा सकता है। बाल मन में ऐसी गहरी पैठ रखने वाले लेखक ही ऐसे सर्जनात्मक साहित्य का सृजन कर सकते हैं।

उन्होंने 200 से भी अधिक पुस्तकों का गुजराती में प्रणयन किया। उनके जीवन काल में उनकी बहुत सी रचनाएँ अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी थीं। उनकी कृतियों का अनुवाद हिन्दी सहित अनेक भारतीय भाषाओं में हो चुका है। हिन्दी में अनूदित उनकी कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

1. दिवा-स्वप्न
2. प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ
3. प्राथमिक विद्यालय में भाषा-शिक्षा
4. ऐसे हों शिक्षक
5. कथा-कहानी
6. माँ-बाप बनना कठिन है
7. माता-पिता से
8. माता-पिता की माथापच्ची
9. कथा कहानी का शास्त्र
10. बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा
11. प्राथमिक विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा
12. मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति
13. शिक्षकों से

चतुर्थ अध्याय

शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न अंगों पर गिजू भाई के विचार

प्रस्तुत अध्याय में गिजू भाई के शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न विचारों का विस्तृत विवेचन किया गया है। शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न अंगों में-शिक्षा की अवधारणा, शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण-पद्धति, छात्र, शिक्षक, छात्र-शिक्षक सम्बन्ध, मूल्यांकन, विद्यालय, परिवार आदि सम्मिलित होते हैं। गिजू भाई द्वारा शिक्षा के इन सभी अंगों पर गहन चिंतन किया गया है।

4.1 शिक्षा की अवधारणा

शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम व विषय वस्तु शिक्षा-व्यवस्था के प्रमुख अवयव हैं - क्यों? क्या? व कैसे? इन तीन प्रश्नों के ही विषय में गिजू भाई कहते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में जो तीन बड़े और गम्भीर प्रश्न हैं, वे हैं - क्या पढ़ाना? किसलिए पढ़ाना? और कैसे पढ़ाना? इन प्रश्नों के सही हल पर ही उपयोगी और ठोस शिक्षा की रचना की जा सकती है। शिक्षा से जुड़ी किसी भी योजना में इन तीन बातों को समान रूप से ध्यान में रखना चाहिए और इन तीनों के बीच तालमेल इस तरह बैठाना चाहिए कि परिणाम सुन्दर और लाभप्रद निकले। क्या पढ़ाना और किसलिए पढ़ाना, इसका ब्यौरा व्यक्ति की, समष्टि की और राष्ट्र की तात्कालिक और स्थायी आवश्यकताओं पर अवलम्बित है। इस कारण जो पढ़ाना है, उसकी पद्धति तो बदलती ही रहती है। इसीलिए शिक्षा की योजना भी बराबर बदलती रहती है। इसी तरह शिक्षा के विधि-विधान की रचना भी उस समय के शिक्षा-शास्त्री और समर्थ विचारक किया करते हैं।

शिक्षा यदि मनुष्य व समाज का विकास करने में तथा जीवन के सभी पक्षों को सबल बनाने में समर्थ नहीं होती है तो उसकी सार्थकता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है। गिजू भाई वर्तमान शिक्षा की इन्हीं दुर्बलताओं की संकेत करते हुए कहते हैं कि जिस कारण से विद्यालयों में दी जाने वाली बौद्धिक शिक्षा से हमारे हृदयों को बल नहीं मिल पाया, धार्मिक शिक्षा लेने के बावजूद भी हम में धार्मिक संकीर्णता विद्यमान रही है, जिस कारण से हम में मनुष्य-मनुष्य के बीच, धर्म-धर्म के बीच, जाति-जाति के बीच और देश के विभिन्न राज्यों के बीच अभेद्य अलगाव उत्पन्न हो रहा है, उस कारण को, यानी हम में व्याप्त रूढ़िवादिता को कैसे तोड़ा जाए, यह प्रश्न वर्तमान शिक्षा के सामने विचारणीय है। गिजू भाई की आशायें शिक्षा शास्त्रियों पर टिकी हैं। वे कहते हैं कि "शिक्षा प्रदान करने वाले लोग समाज के नेता हैं। वे समाज के स्मृतिकार हैं, समाज की जीवन डोर उन्हीं के हाथ में है और समाज में कल्याणकारी कार्य करना भी उन्हीं के हाथ में है। आज का समाज और एक अंधेरे कुएं में पड़ा सड़ रहा है। उसे वहां से बाहर निकालकर स्वच्छ करना और उसका कल्याण करना

शिक्षाशास्त्रियों का परम धर्म है।"[1]

गिजू भाई की धारणा है कि मनुष्य को शिक्षा देने की शुरूआत करने से पहले ही उसमें कई तरह के संस्कार मौजूद रहते हैं। कई संस्कार वह अपने साथ लेकर आता है। कई संस्कार उत्तराधिकार के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी उसमें उतर आते हैं, तो कई संस्कार उसे समष्टि के विकास के उत्तराधिकार रूप में मिले होते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य इस समष्टि का अंग है अत: उसे समष्टि के विकास के परिणाम का फल मिलता है। समष्टि का ही अंग होने से उसे समष्टि के विकास के पहलू का भी फल मिलता है। फिर वैयक्तिक और पूर्वजों के संस्कार के विषय में भी कुछ मानना चाहिए। संस्कारों को मनुष्य अपने पूर्वजन्म के जीवन में से लाता है, ऐसा मानने के भी कारण हैं। इसके अलावा मनुष्य के स्थूल जन्म से पहले के गर्भावस्था के दिनों में पड़े संस्कार भी एक अलग संस्कार-समूह हैं। जन्म के बाद माता, पिता, जाति, गली, समाज और संक्षेप में कहें तो जिन्हें सम्पूर्ण वातावरण के संस्कार कहा जाता है, उन सभी का जबरदस्त प्रभाव बालक पर विद्यालय में पढ़ने आने से पहले पड़ चुका होता है। गिजू भाई के अनुसार संक्षेप में ये प्रभाव निम्न प्रकार हैं -

1. पूर्वजन्मों के संस्कार,
2. समष्टि के विकास का फल,
3. पूर्वजों का उत्तराधिकार,
4. जन्म से पूर्व गर्भावस्था में पड़े प्रभाव,
5. समाज का प्रभाव,
6. वातावरण का प्रभाव।

वे कहते हैं कि ऐसे प्रभाव वाला, ऐसे संस्कार वाला, ऐसी पूर्व जन्मागत वृत्तियों वाला मनुष्य जब शिक्षा लेने बैठता है तो शिक्षा उसकी इस सम्पूर्ण स्थिति की उपेक्षा करती है, और मनुष्य जिस स्थिति पर खड़ा है, वहाँ से उसे ऊपर ले जाने की बजाय वह मनुष्य को स्वयं अपनी इच्छा के मुताबिक गढ़ना चाहती है। ऐसे समय बलवान व्यक्ति शिक्षा के समक्ष बगावत खड़ी करके अपने निजी स्वभाव का अनुसरण करता है, पर सभी लोग ऐसे बलवान सत्वशील नहीं होते। निर्बल मनुष्य प्रचलित प्रणाली के गुलाम बनकर उसके बल से दब जाते हैं और अपने स्वभाव को छिपा देते हैं। स्वभाव नष्ट तो होता नहीं। स्वभाव का नाश करने में शिक्षा कभी सफल नहीं रही, न कभी रह सकेगी। परन्तु स्वभाव को उन्नत करने में, उच्चगामी करने में तथा उसकी दिशा बदलने में शिक्षा सफल हो सकती है। मनुष्य के विकास-क्रम पर गौर करें तो पता लगेगा कि मनुष्य धीरे-धीरे जड़ता से चेतनता की ओर बढ़ता गया है, अश्लीलता से वह ग्राम्यता में गया है, ग्राम्यता से शिष्टता में गया

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 8

है और वहाँ से मनुष्यता में पहुंचा है। शिक्षा-प्रबन्ध प्रत्येक मनुष्य को मनुष्यत्व प्रदान करना चाहता है, मनुष्य जहाँ जिस कक्षा में खड़ा है, वहाँ से आगे बढ़ाने की उसकी मति नहीं है। अत: शिक्षा के दबाव से मनुष्य की स्वाभाविकता टल जाती है और उसमें अस्वाभाविकता आ जाती है, मनुष्य की दृष्टि में प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता और कीमत में फर्क पड़ जाता है। अश्लीलता की कक्षा में खड़े मनुष्य को भी मनुष्यत्व का वेश पहनना पड़ता है और अपने स्वभाव पर लेपन करना पड़ता है। आज प्रत्येक शिष्ट कहलाने वाले तथा गिने जाने वाले मनुष्यों से सत्य कहलवाएं तो उन्हें कहना ही पड़ेगा कि इतनी अधिक शिक्षा मिलने के बावजूद उसमें से ग्राम्यता तो क्या, अश्लीलता भी नहीं गई। अगर वे भलीभांति आत्मनिरीक्षण करें तो उन्हें पता लगेगा कि वे तो अपनी ग्राम्यता और पामरता को ढँक कर बैठे हैं, वह अब भी उनमें से नष्ट नहीं हुई। जब दबाववश नीच वृत्तियों पर उच्च वृत्ति का चोला पहनना पड़ता है तो नीच वृत्तियाँ किसी न किसी एकान्त स्थल से, किसी छिद्र में से निकलने का प्रयास करती हैं। शिष्ट माने जाने वाले और कहे जाने वाले लोगों से एक ही प्रश्न है कि वे अपने निजी जीवन में कितने ग्राम्य, कितने अशिष्ट और कितने अश्लील हैं? जैसे-जैसे सुधारने का दंभ बढ़ता है, जैसे-जैसे दंभ की परत और मोटी होती है, वैसे-वैसे गुप्त ग्राम्यता का बल प्रबल होता है- गुप्त अश्लीलता में अधिक रस आता है। जिन लोगों की जाहिर ग्राम्यता स्वाभाविक है, वे लोग व्यवहार में या जीवन में कुछ ही ग्राम्य हैं। गिजू भाई मानते हैं कि जो लोग अपने स्वाभाविक जीवन में अश्लील नहीं तो बहुत असभ्य लगते हैं वे अपने नीतिगत जीवन में बहुत शुद्ध होते हैं।

इसे स्पष्ट करते हुए वे अफ्रीका के जंगली लोगों का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि अफ्रीका के जंगली लोगों में कम से कम विकार हैं, लेकिन हमारे सुशिक्षित एवं पैरों से सिर तक वस्त्रों से ढंके रहने वाले लोग विकारों से भरपूर हैं, यह बात सिद्ध करने के लिए प्रमाण की जरूरत नहीं है। ग्राम्यता में पलने वाले गांव के लोग और कई कारीगर तो ऐसे हैं कि जिनके होठों पर अश्लील शब्द और गंवारू भाषा सूखती तक नहीं। ऐसे तमाम लोग निश्चय ही हल्के और नीति की दृष्टि से पतित हैं, ऐसा नहीं है। सच्चाई तो यह है कि इन लोगों पर शिक्षा का दंभी आवरण चढ़ा हुआ नहीं होता, अत: वहां किसी दुराव-छिपाव की जरूरत नहीं पड़ती, उनके हृदय में स्वयं जो बोलते हैं, उसका अर्थ अति परिचय के कारण कुछ नहीं रहता। गिजू भाई के अनुसार इतना तो स्वीकार कर ही लेना चाहिए कि ग्रामीण लोग शिष्ट नागरिकों की तुलना में अधिक निर्दोष होते हैं।[1]

गिजू भाई शिक्षा को जीवन-व्यापी प्रक्रिया मानते हैं। वे कहते हैं कि इस प्रवृत्ति का उद्‌गम हमारे भीतर से है। उद्‌गम का मूल है अंतरात्मा की भूख। कोई आदमी किसी को सिखा नहीं सकता। विकास की आधारशिला है अनुभव। अनुभव स्वतंत्र क्रिया में निहित है, और स्वतंत्र क्रिया बाहरी

1- गिजू भाई बधेका - कथा कहानी का शास्त्र, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 152-153

अविरोध में एवं भीतर के यथेच्छ, अनवरत, प्रतिहत आविष्कार में निहित है। नयी दृष्टि शिक्षा में इसी आविष्कार का पोषण करेगी, मार्ग के अवरोधकों को हटाकर व्यक्ति के समक्ष अपने जीवन उद्देश्य को सिद्ध करने की अनुकूल स्थितियां जुटाएगी।

विकास गिजू भाई की दृष्टि में जीवात्मा का अनादि, अविरल प्रयत्न है। इस प्रयत्न में जो भी सहायक है उसका स्वीकार और अन्य सबका त्याग। यह नयी दृष्टि त्याग-स्वीकार की, विधि-निषेधों की सुंदर मर्यादा निर्मित करती है। गिजू भाई मॉण्टेसरी पद्धति को इस नयी दृष्टि के रूप में स्वीकार करते हुए कहते हैं कि मॉण्टेसरी के नए प्रकाश में संचालित नई पाठशालाओं में 'सिखाने' की बजाय 'सीखने' की तरफ, पाठयपुस्तकीय शिक्षण के बजाय स्वलेखन की तरफ, अनुकरणों की बजाय स्वयंभू, सृजन की तरफ बढ़ती गति को हम देखेंगे। नयी दृष्टि याने मात्र संशोधन-परिवर्द्धन नहीं, समाधान नहीं, समझौता नहीं अपितु नौका-संतरण की नयी दिशा-क्रांति, विप्लव।

बालक-शैक्षिक प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु :- गिजू भाई का मत है कि अब तक लोगों ने सिर्फ यही सोचा है कि बालकों को क्या पढ़ायें और कैसे पढ़ायें, पर हर बार यही बात उनके दिमाग में नहीं आई कि किसे पढ़ाना है? याने लोगों का ध्यान विषय की तरफ गया है, विषयी अथवा विधेय की तरफ नहीं। विषय का निर्माण करते समय लोगों की दृष्टि संकुचित हो जाती है, क्योंकि वे अपने से तेजस्वी मनुष्य की कल्पना नहीं कर पाते, अतएव आज के लोगों से अधिक प्राणवान लोग बनाने का विचार रंचमात्र भी उनके दिमाग में नहीं आता।

मनुष्य ने स्वभाववश भावी मनुष्य को अपने जैसा ही बनाना चाहा है और इसी तरह का कदम उठाया है। यही कारण है कि हमारे बीच एक ही गांधी, एक ही टैगोर और एक ही लेनिन या एक ही मैजिनी है। ये लोग मनुष्यों द्वारा निर्मित शिक्षण-प्रणाली की जड़ता से निकलकर भागे हैं, तभी महान् बने हैं या फिर इन लोगों ने स्वयं शुद्ध और सच्ची शिक्षा अर्जित की है, उसी का परिणाम हैं।[1]

सीखने के साधनों का चयन करते समय तथा वातावरण का निर्माण करते समय विचारणीय बिन्दु बालक ही होना चाहिए। वस्तुतः शैक्षिक मूल्यवत्ता का आरोपण उस वस्तु पर किया जाता है, जिससे व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, कला विकास रसिकता-विषयक, नैतिक अथवा आत्मिक शक्ति का विकास होता है। उपरिलिखित विचारों के अनुसार सोचे तो उक्त सिद्धान्त को यों व्यक्त कर सकते हैं-जिस वस्तु के द्वारा मनुष्य की कोई न कोई शारीरिक, मानसिक, कला-विषयक, नैतिक अथवा आत्मिक शक्ति प्रकट होती है तथा जिसे बार-बार उपयोग में लाने से ये शक्तियां विकसित होती हैं, उस वस्तु में शिक्षण-विषयक मूल्यवत्ता का आरोपण करना उचित लगता है। किसी भी साधन द्वारा किसी भी वृत्ति को प्रकट करने का साधन वह है जो आंतरिक वृत्ति को उत्तेजक के रूप में

1- गिजू भाई बधेका - साधनों की मीमांसा, मॉण्टैसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 55

प्रभावित करता है। साधन की उत्तेजक के बतौर प्रभावित करने की शक्ति में ही असली मूल्यवत्ता समाहित रहती है। उत्तेजन के परिणामस्वरूप शक्तियों का विकास तो स्वाभाविक और अनिवार्य परिणाम है।[1]

बालक को शरीर, मन आदि की वर्द्धमान जरूरतों के प्रमाण में विकास के साधनों की तथा क्षेत्र की विशालता की जरूरत पड़ती है। विकास की भूख अंदर से आनी चाहिए। प्रचलित उपकरणों का चुनाव विकास करने वाले बालक को ही आवश्यकता के अनुरूप करना है। पर हमें उसके लिए उपकरणों के चयन का तथा क्रिया का क्षेत्र बढ़ाते जाना चाहिए। इस क्षेत्र को यथा-काल तथा यथा मर्यादा बढ़ाते जाने की जानकारी में शिक्षा की सच्ची क्रिया विद्यमान रहती है।[2]

बाल शिक्षा की औपचारिक व्यवस्था की आवश्यकता की ओर संकेत करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि इंद्रियों का तथा मन का विकास व्यवस्थित योजना के बिना संभव नहीं है। रूप-रंग आदि का परिचय, भाषा का प्राथमिक ज्ञान, मन के साधारण व्यापार आदि बालक के भीतर स्वाभाविक रूप से चलते रहते हैं। उन सबों में निपुणता लाने के लिए विशिष्ट प्रयत्न और विशिष्ट वातावरण की जरूरत पड़ती है।[3]

डॉ0 मॉण्टेसरी लिखती हैं – 'बालक के जीवन हेतु सर्वोत्तम परिस्थिति पैदा कर दो और फिर उसे स्वतंत्र छोड़ दो, बस उसका अध्ययन संभव हो जाएगा।' यह सर्वोत्तम परिस्थिति क्या है, यह हमें जानना है। मनुष्य के पूर्वज जंगलों और गुफाओं में रहते थे। उस वातावरण में उन्होंने अनेक तरह से अपना विकास किया था, पर आज वह परिस्थिति नहीं रही, बदल गयी। डॉ0 मॉण्टेसरी सर्वोत्तम परिस्थिति के बारे में लिखती है – 'अपने विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति को जिन-जिन चीजों की जरूरत है, वे सब वह जिस वातावरण से प्राप्त करता है, वही वातावरण जीवन के विकास हेतु सर्वोत्तम है।' इस वजह से शाला के वातावरण का निर्णय अत्यावश्यक है। शाला-वातावरण की रचना शास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर की जानी चाहिए। अब तक का मनोविज्ञान ऐसे शास्त्रीय वातावरण में पलते बालक के अध्ययन पर निर्मित न होने से ही इसके सिद्धांतों को बार-बार बदलना पड़ता है। अपने दो-चार लड़कों को घर की परिस्थिति में अथवा कतिपय बालकों को शाला की कृत्रिम परिस्थिति में देखकर हम मनोविज्ञान के नियम नहीं बना सकते। भावी मनोविज्ञान उक्त शास्त्रीय वातावरण में विकासमान बालक का अवलोकन करके अपने सिद्धांत निर्मित करेगा तभी शिक्षा का मार्ग सरल एवं शुद्ध हो सकेगा। बालक सदैव अपना शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास करता रहता है। इस त्रिविध विकास की सम्पूर्णता में ही शिक्षण-कार्य की कृतकृत्यता समा जाती है। इस त्रिविध विकास की संभावना के लिए अनुकूलता पैदा करने का काम शिक्षण संस्थाओं का है।[4]

1- गिजू भाई बधेका – प्राथमिक विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 112
2- गिजू भाई बधेका – बाल गृह, बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 67
3- वही, पृ0 63
4- गिजू भाई बधेका – मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 58-59

मनुष्य की शिक्षा साधर्म्य, वैधर्म्य और क्रम- इन तीनों को समझने में, बुद्धि के विवेक में, दूसरों के अनुभवों को तीव्रता से अनुभव करने में तथा अदृष्ट या अज्ञात की कल्पना करने में निहित है। यह शिक्षा प्रकृति के विशाल प्रांगण से प्राप्त कर पाना बहुत मुश्किल है। कारण यह है कि प्रकृति से ऊपर के तत्व सीधे-सीधे प्रत्यक्ष नहीं मिलते और फिर प्रकृति मनुष्य के लिए बहुत विशाल होती है। अत: मनुष्य सरलता व सफलतापूर्वक तभी शिक्षा ग्रहण कर सकता है कि जब प्राकृतिक साधन प्राकृतिक तत्वों के प्रतिनिधि हों और वे प्रत्यक्ष रीति से शिक्षा प्रदान करने वाले हों।[1]

इस प्रकार जहां तक विकास की प्रक्रिया चलती है वहां तक बढ़ती हुई जरूरतों के मुताबिक योग्य परिस्थिति को ढूंढ लेना प्राणि-मात्र की सहज स्वाभाविक प्रकृति है। इस प्रकृति का विरोध होने पर प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। प्राणी अगर वहीं का वहीं रहता है या बढ़ता नहीं तो क्षीणकाय होकर आखिर मृतप्राय हो जाता है या मर जाता है।[2]

गिजू भाई कहते हैं कि बालक के शारीरिक रोगों के लिए दवा देकर इलाज करो, मानसिक रोगों के लिए मनसचिकित्सक के पास जाओ, अन्य रोगों के लिए शिक्षाशास्त्री की दृष्टि से बालक का अवलोकन करो और उसके वांछित विकास के लिए तदनुकूल वातावरण प्रदान करो।[3]

अन्य रोगों से उनका तात्पर्य है शिक्षा-सम्बन्धी कठिनाइयां या असामान्य व्यवहार। बालक के व्यवहार के गहन अवलोकन से इन कठिनाइयों या समस्याओं के मूल कारण स्वत: उजागर हो जाते हैं। सर्जनात्मक वृत्ति मनुष्य में विद्यमान रहने वाली एक सहज वृत्ति है। यह सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वर की तथा मनुष्य की सर्जनात्मक वृत्ति का परिणाम है। शारीरिक, मानसिक तथा हार्दिक-तीनों क्षेत्रों में मनुष्य सर्जन किये जा रहा है। हमारे आसपास की सौन्दर्यपूर्ण सम्पूर्ण स्थूल कृति मनुष्य के अंतरतम में विद्यमान शारीरिक सर्जनात्मक वेग का ही फल है; बौद्धिक सर्जनात्मक वृत्ति का परिणाम है हमारी तत्त्वमीमांसाएं, ज्ञान संग्रहालय तथा आश्चर्यजनक आविष्कार। इसी तरह मनुष्य की हार्दिक सर्जनात्मक वृत्ति का वेग बहने के साथ ही उसमें से संगीत आदि हृदयस्पर्शी कलाओं का जन्म हुआ। शिक्षा अर्थात् मनुष्य की उपर्युक्त त्रिविध सर्जनात्मक वृत्तियों को सम्पूर्णतया विकसित करने योग्य वातावरण, अनुकूलता तथा मदद देना। यह मदद मिलते ही मनुष्य अपने भीतर से वास्तविक स्वरूप से बाहर आएगा, वह स्वयं को जानेगा, अपने मूल स्वरूप को वह उत्तरोत्तर आगे बढ़ायेगा और उसे पूर्णता तक पहुंचाने का प्रयत्न करेगा।[4]

गिजू भाई का मत है कि सूर्य का प्रकाश सर्वत्र है, सबों का स्पर्श करता है। लेकिन काँच में सूर्य का स्वच्छ प्रतिबिम्ब पड़ता है, जबकि पत्थर के ठीकरे में नहीं पड़ता और धातु के बर्तन में अस्पष्ट ही पड़ता है। ठीक इसी तरह वातावरण भी किसी का स्पर्श करता है, किसी को छूता है और

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 79

2- वही, पृ0 57

3- गिजू भाई बधेका - बाल मंदिर के शिक्षकों से, ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 56

4- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 64

किसी में गहरे उतरकर उसे आन्दोलित कर देता है। मूल शक्ति वातावरण में नहीं, उसे ग्रहण एवं धारण करने में है। मूल शक्ति को जीने और विकसित होने की अनुकूलता प्रदान करता है। बाग और मेरी सूचना वातावरण रूपी है, सौन्दर्य-प्रिय आत्माओं से लेकर सौन्दर्य-अंध आत्माओं तक के दर्शन हो सकते हैं। कोई बालक सौन्दर्य-प्रेमी कैसे है, इस बात का निश्चय करने के लिए तो हमें उसके घर चलना चाहिए, उसके साथ रहना चाहिए, उसके माता-पिता के सर्वांग जीवन को देखना चाहिए। पर अगर वह भी एक वातावरण है, यही लगता है और यही अर्थ लें, तब तो बालक की पूँजी - उसके बीज में हमें जाना चाहिए, कैसा बीज है यह, किस प्रकार का और किस स्तर का है, पूँजी कैसी है और कितनी है? इसका हमें पता लगाना होगा। इस शोध का अर्थ हमारे अपने ही आत्म-ज्ञान की शोध। इस शोध का अर्थ है क्या, कैसे, कहाँ का शोध। लेकिन शिक्षक को - बालक के जीवन-दृष्टाओं व नेताओं को तो यह शोध करने पर ही मुक्ति है। जब तक वे यह ज्ञात नहीं करेंगे तब तक अधूरे और अतृप्त ही रहेंगे।[1]

गिजू भाई की मान्यता है कि विकास का कारण भीतर है। किस प्रकार का विकास ढूँढना है, यह प्रत्येक जीवात्मा का अपना प्रश्न है। यह संपूर्ण जगत प्रत्येक जीवात्मा के लिए एक समान आकर्षक याकि पोषक नहीं है। भीतर के किसी हेतु की वजह से पदार्थों में आकर्षित करने की शक्ति होती है। अगर वह आंतरिक हेतु न हो, या मिट जाए तो समस्त पदार्थ आकर्षण-विहीन लगने लगें अथवा अस्तित्वहीन लगें। प्रत्येक बालक अपने किस आंतरिक हेतु को सिद्ध करना चाहता है यह कौन कह सकता है? और उसका निर्माण तो मूर्ख ही करने बैठेगा। उस आतंरिक हेतु को सिद्ध करने के लिए हम बालक के सामने समुचित व्यवस्था कर दें तो बालक विकास के मार्ग पर जा सकता है।[2]

"मनुष्य जाति का भविष्य नन्हें बालकों के कदमों से चलकर प्रगति कर रहा है।" गिजू भाई फिलिप्स ब्रुक्स के इस विचार को सुन्दर और सत्य मानते हैं। बालक नन्हें हैं, उनके पैर नन्हें हैं पर भविष्य उन्हीं के कदमों पर आगे बढ़ रहा है। इस वाक्य में कितनी सुन्दर रीति से बाल-जीवन की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है! वे कहते हैं कि कितनी अनुदारता से हम लोग आज बालकों को समझ रहे हैं? कदाचित हम लोग बालकों से 'पीछे कदम-प्रयाण' कराने में लगे हैं, क्योंकि उन्हें आगे बढ़ाने में हमारी रूचि नहीं है; हम उन्हें आगे बढ़ने के साधन उपलब्ध करना नहीं चाहते। साधन के बगैर आगे बढ़ने वाले बालकों को हम बाँधकर रख लेते हैं। क्या हम भी उनके साथ आगे बढ़ने के प्रयाण में शामिल होंगे? हम बालकों के पीछे-पीछे तो चलें।[3]

अंतस्थ शक्तियों का प्रकटीकरण एवं विकास की प्रक्रियाः- गिजू भाई शिक्षा को अन्तर्निहित शक्तियों के नैसर्गिक विकास की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। शिक्षा की समग्र व्यवस्था इन्हीं की

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 40

2- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 77

3- गिजू भाई बधेका - चलते फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 49

दृष्टि से निर्मित होनी चाहिए ताकि बालक को अपने आंतरिक रूझानों को पूर्णरूपेण विकसित करने के लिए वांछनीय वातावरण व साधन उपलब्ध हो सकें। गिजू भाई कहते हैं कि जब हम किसी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति को देखते है। तो उससे प्रभावित हो जाते है। वाह, क्या अद्‌भुत शक्ति है, ऐसा कहते हुए उसके समक्ष झुक जाते हैं। बात ठीक भी है। प्रतिभा सम्मान और नमन की पात्र होती है। पर दो-पाँच व्यक्ति ही प्रतिभा-सम्पन्न क्यों है? क्या प्रतिभा कुदरती वरदान है अथवा प्रतिभा जीवात्मा को अनुकूल वातावरण में मिली अनुकूल रुझान की शिक्षा है? लोगों की मान्यता है कि प्रतिभा कुदरती है; शिक्षण से वह नहीं आती। गिजू भाई को भी यही लगता है कि प्रतिभा कुदरती हो या न हो, पर वह शिक्षा के द्वारा तो सम्भव नहीं है। वे कहते हैं कि आजकल सैकड़ों-हजारों नहीं अपितु लाखों लोग अपने धंधों से अनेक कारणों से ऊबे हुए हैं, वे सुखी नहीं हैं। इसका कारण यह है कि गलत-व्यवसायों में आ फँसे हैं। ऐसा नहीं है कि वे होशियार न हों, अथवा दुःखी होना चाहते हों। कारण वही है जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है कि जो धंधा उन्हें चाहिए था, वह उन्हें मिला नहीं या वे प्राप्त नहीं कर पाए, क्योंकि वैसी पढ़ाई की कहीं व्यवस्था नहीं थी, क्योंकि चालू विद्यालयों और माता-पिता ने उनको जहां-तहां जो उपलब्ध हुआ वहीं पढ़ाया और बेचारे जैसे-तैसे धंधे में उतर गए। या फिर पेट के लिए बेचारों को जो हाथ लगा उसी को पकड़ लेना पड़ा। इस स्थिति के प्रति सचेत करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि जब तक विद्यालयों में शिक्षण का ऐसा वातावरण नहीं मिलता कि जो व्यक्ति के आंतरिक रुझान को प्रकट कर सके; जब तक विद्यालयों के रुझानों के अनुरूप प्रवृत्तियों में तैयारी की व्यवस्था नहीं होगी बल्कि अमुक-अमुक विषय ही पढ़ाए जायेंगे और उनके परिणामस्वरूप अमुक धंधों के लिए तैयारी की ही व्यवस्था की जायेगी, तब तक लोग गलत धंधों में पड़ते रहेंगे; असंतुष्ट एवं दुःखी जीवन बितायेंगे या फिर किन्हीं समाधान भरे प्रयासों में अपनी जीवन-शक्ति खो बैठेंगे।

गिजू भाई कहते हैं कि कई बार ऐसा देखा गया है कि खराब शिक्षण से भागकर जिन लोगों ने अपने आप शिक्षा ग्रहण की, वे लोग प्रतिभाशाली देखने को मिले हैं। प्रतिभा अर्थात् अपनी अंतस्थ शक्तियों का भरपूर विकास। काव्य-शक्ति का मनोनुकूल विकास अर्थात् प्रतिभा-सम्पन्न कवि; लेखन-वृत्ति का मनोनुकूल सम्पूर्ण विकास अर्थात् प्रतिभा-सम्पन्न लेखक। मनुष्य में प्रतिभा के बीज होते ही हैं; प्रत्येक मनुष्य मनुष्य के होने के कारण उसमें प्रतिभा के बीज विद्यमान रहते हैं। किसी मनुष्य में कवि की प्रतिभा होती है, किसी में संगीतकार की, तो किसी में कुम्हार की। दुनिया के कुम्हारों में सर्वश्रेष्ठ कुम्हार बनना, उस व्यवसाय की महत्ता बढ़ाना, उसमें नये अनुसंधान करना, उसे धन-सम्पन्न बनाना, उसे प्रतिष्ठा दिलानी, इतना कुछ जो कर सके वह कुम्हार की प्रतिभा है और यह

प्रतिभा उसमें हो सकती है। इतना कुछ करने के लिए अगर कुम्हार को पूर्ण अवसर मिल जाए तो इसे प्रतिभा ही कहेंगे।

गिजू भाई की दृष्टि में प्रतिभा के लिए फकत अनुकूल वातावरण की जरूरत है। आज के विद्यालय अनुकूल वातावरण देने लगें और पढ़ाने की पीड़ा छोड़ दें तो अवश्य ही अनेक प्रवृत्तियों में अनेक प्रतिभाएं प्रकट हो सकती हैं। बाकी तो आज के विद्यालय प्रतिभाओं को चूर-चूर करने वाले मजबूत और प्रतिष्ठित कारखाने मात्र हैं।[1]

शिक्षा स्वातंत्र्य एवं स्वयं-स्फूर्ति के साधन रूप में:- शिक्षा व्यक्ति को स्वातंत्र्य प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करती है। उसकी बुद्धि को स्वतंत्र, विवेकपूर्ण व तार्किक चिंतन करने में सक्षम बनाने वाली शिक्षा ही गिजू भाई की दृष्टि में सच्ची शिक्षा है। सत्यान्वेषण का कार्य व्यक्ति स्वयं के बल पर करें। स्व-विवेक के आधार पर तय करें कि क्या करने योग्य है, क्या नहीं। तत्पश्चात् उस दिशा में वांछित प्रयास करें। यही मुक्ति मार्ग है। स्व-प्रयासों से अर्जित स्वतंत्रता को ही व्यक्ति स्थायी रूप से बनाये रख पाने में सफल होता है। सामाजिक रूढ़ियों के उदाहरण के माध्यम से गिजू भाई इस भाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि मृत्युभोज और सीमंतोन्नयन संस्कार सामाजिक सुधारों के विषय हैं या शिक्षा के? मृत्युभोज करने वाला अर्थात् शास्त्रों की बातों में अंधआस्था रखने वाला (The credulous fool); सीमंतोन्नयन संस्कार करने वाला अर्थात् समाज का गुलाम (the social slave)। वे प्रश्न करते हैं कि इन्हें कौन मुक्त कर सकता है? जिस व्यक्ति को मुक्ति की अन्त:शक्ति न मिली हो, क्या उसे समाज के नियम मुक्ति प्रदान कर सकेंगे? क्या शास्त्र-विरोधियों का विप्लव हमें सही विचारधारा पर ला सकेगा? अगर बालक को पहले से ही तर्क सम्मत विचार करने की तथा सत्य कल्पना की शिक्षा दी जाए तो? मनुष्य को व्यक्ति-स्वातंत्र्य की शिक्षा दी जाए तो? जब मनुष्य ऐसा सोचने लगेगा कि 'शास्त्रों में चाहे जो लिखा गया हो पर क्या मेरी अक्ल गाँव गई है? मैं तो उसी का अनुसरण करूँगा जो मुझे प्रत्यक्ष सत्य लगेगा' 'समाज के साथ चलते हुए मैं विचार और क्रिया की स्वतंत्रता खो बैठा हूँ और एक पंगु-गुलाम बन गया हूँ' जब आदमी का सोच इस प्रकार का हो जाएगा तो क्या सीमंतोन्नयन संस्कार जीनिअस का अन्त हो नहीं जाएगा? गिजू भाई को इसका समाधान शिक्षा में ही नजर आता है, सच्ची शिक्षा में। अगर कोई पूछेगा कि कैसी शिक्षा में? तो मात्र दो-तीन शब्दों में ही उनका उत्तर होगा कि शिक्षा अर्थात् 'स्वातंत्र्य एवं स्वयं-स्फूर्ति की शिक्षा।'[2]

गिजू भाई के अनुसार - "जो शिक्षा बालक को स्वाधीनता के मार्ग पर आगे बढ़ने में मदद करती है वही शिक्षा प्राणवान है।"[3]

गिजू भाई प्रचलित शिक्षा पद्धति की खामियों को उजागर करते हैं - "बच्चों पर जो जुल्म ढाये

1- गिजू भाई बधेका - चलते फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 52-53

2- वही, पृ0 19-26

3- वही, पृ0 31

जाते हैं वह कितना बड़ा अन्याय है, हम स्वयं उसकी क्रियाशक्ति के विकास में बाधा डालते हैं और फिर उससे आज्ञाकारिता, स्वाधीनता, चारित्र्य आदि गुणों की मांग करते हैं, जिनका आधार ही क्रियाशीलता पर टिका होता है।" वे कहते हैं कि जिधर भी देखो, आज की शिक्षा-संगोष्ठियों में एक ही बात सुनाई देती है - 'आज के विद्यार्थियों में चरित्र-बल नहीं रहा।' लेकिन इस सारी चीख पुकार मचाने वाले को वस्तु-स्थिति का पता तक लगाने की इच्छा नहीं कि इस स्थिति का कारण है हमारी शिक्षा पद्धति। यह शिक्षा पद्धति, याने क्रियाशक्ति के विकास का विरोध। याने बालक को क्रिया न करने देना अपितु स्वयं करना, बालक को न पढ़ने देना अपितु स्वयं पढ़ाना, बालक को स्वयं न सोचने देना अपितु उसमें अपने विचार भरना। यह सब क्रियाशक्ति के शिक्षण -विरोधी बाते हैं। चारित्र्य सीनाजोरी करने से नहीं आता। इसका वास्तविक विकास तो मानव-विकास को-उसके शरीर, मन आदि की प्रवृत्तियों को स्वातंत्र्य का परवाना प्रदान करने में निहित है।[1]

सच्चे मानव का विकास करने के साधन के रूप में:- गिजू भाई का मानना है कि अब तक की शिक्षा ने जो कुछ हमें सिखाया है, उससे कैसा मनुष्य तैयार हुआ है, यह हमें ज्ञात करना है और फिर उसके आधार पर शिक्षा का कोई ऐसा स्वरूप निर्मित करना है कि जिससे दुनिया के दुख मिटाये जा सकें।[2]

अपने मंतव्यों से प्रतिबद्ध रहते हुए उन्हीं के लिए जीवन का बलिदान करने वाला व्यक्ति ही गिजू भाई की दृष्टि में सच्चा मनुष्य है। शिक्षा व्यक्ति को स्वयं सद्-असद् विवेक करने में सक्षम बनाने वाली हो। वह परानुभूति रखते हुए जनता के दुख दर्द को अपना दुख-दर्द समझ सके। शिक्षा के द्वारा मनुष्य में निर्मल बुद्धि, क्रिया-शक्ति, प्रेम तथा कल्पनाशक्ति - इन चारों का सम्यक् विकास हो। उसमें सहिष्णुता, मैत्री, सेवा भाव व समानता के गुण विकसित हों।

4.2 शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा एक सौद्देश्य प्रक्रिया है। विभिन्न शिक्षा-दार्शनिकों के पारस्परिक दृष्टि भेद के कारण उनके द्वारा निर्धारित शिक्षा के उद्देश्यों में कुछ भिन्नता भले ही दृष्टिगोचर होती हों, परन्तु वे उद्देश्यों की चर्चा न करें ऐसा कदापि संभव नहीं है। जीवन की प्रत्येक गतिविधि का कोई न कोई पूर्व-उद्देश्य अवश्य होता है। अतः शिक्षा जैसी अति महत्वपूर्ण प्रक्रिया निरुद्देश्य हो, यह कैसे संभव है। शैक्षिक प्रक्रिया को दिशा, क्रमबद्धता व गति प्रदान करने का कार्य सुविचारित, सुनिश्चित व स्पष्ट शैक्षिक उद्देश्यों के बल पर ही हो पाता है।

उद्देश्यों का निर्धारण अनेक कारणों से प्रभावित होता है। दार्शनिक-सामाजिक-आर्थिक दर्शन एवं देश-काल परिस्थितियों का प्रभाव शैक्षिक उद्देश्यों पर पड़ता है। डॉ0 रामशकल पाण्डे का मत

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी पद्धति का सैद्धांतिक विवेचन, मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 45
2- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 22

है कि शिक्षा दर्पण है, जिसमें पड़ती हुई प्रतिच्छाया सम्मुख खड़े व्यक्ति की होगी। वे कहते हैं - "शिक्षा व्यक्ति को अनवरत् रूप से सामंजस्यपूर्ण तथा समृद्ध बनाने की चेष्टा में रत् है। किन्तु समृद्धि की कसौटी, व्यक्ति, समाज तथा काल की विशेषताओं और दृष्टिकोणों पर निर्भर रहती है। इसी प्रकार यद्यपि मनुष्य के विकास तथा समृद्धि आदि के उद्देश्य को शिक्षा के उद्देश्य के रूप में सभी उचित मानते हैं, किन्तु किस प्रकार का विकास या किस प्रकार की समृद्धि, जैसे प्रश्न का?

गिजू भाई शिक्षा के द्वारा अग्रलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति पर बल देते हैं -

वैयक्तिक विकासः- प्रत्येक व्यक्ति अपने विकास के लिए जीवनभर संघर्ष करता है। विकास का ध्येय है- अपनी पूर्णता, अपना परिचय। प्रतिक्षण बालक पूर्णता की तरफ बढ़ता है। जितना-जितना वह पूरी तरह से स्वानुभावी बनता जाता है, उतना-उतना व्यक्तिगत न रहकर समष्टिगत बनता जाता है। उसी परिणाम में वह समतावादी और समभावी बन जाता है, उतने ही परिमाण में वह मुक्त भी बन जाता है। वैयक्तिक विकास में पहला और महत्त्व का कदम गिजू भाई की दृष्टि में है - 'स्व' एवं 'पर' के बीच अन्तर की अच्छी समझ का। इस समझ को सुदृढ़ बनाने के लिए बालक स्वयं को तथा स्वयं से सम्बन्धित वस्तु को दूसरों से अलग करना मांगता है; मेरे और तेरे के बीच स्पष्ट फर्क कर लेता है; अपनी चीज दूसरों को देता नहीं, स्वार्थी व संकीर्ण नजर आता है; सिर्फ अपने 'व्यक्ति' का ही पोषण करता है और 'स्व' के पोषण में 'पर' को भूल जाता है। लेकिन इसी प्रक्रिया से उसे अपने 'स्व' की पहचान हो जाती है और उसके परिणामस्वरूप वह दूसरों के व्यक्तित्व को भी पहचानने लगता है। वह दूसरे व्यक्ति और उसकी मिल्कियत को मान देने लगता है। वह दूसरों से छीनता नहीं। वह दूसरों के आकर्षण का मोल समझता है। अपने अधिकारों को सुरक्षित रखने की माँग करता है। अपने मंतव्य जितनी ही कीमत वह दूसरों के मंतव्य की आँक सकता है। अपनी वजह से वह दूसरों की भावनाओं के बारे में सोच सकता है। संक्षेप में, वह अपने 'व्यक्ति' को भी समझता है और फलतः अपने जैसे ही दूसरे व्यक्तियों को भी समझना सीखता है। सच्चे व्यक्ति-विकास में सच्चा सामाजिक जीवन विद्यमान रहता है। मात्र साथ रहने, खाने-पीने या सामाजिक नियमों के पालन में सच्चा सामाजिक जीवन नहीं है। गिजू भाई की दृष्टि में वर्तमान समाज अपूर्ण है, आधा-अधूरा है तथा नितांत अविकसित व्यक्तियों का समूह होने के कारण भयंकर है। तभी तो उस पर बाहर से नियम लादे जाते हैं। तभी तो आज समाजशास्त्र के प्रश्न विकट बनते जा रहे हैं। वैयक्तिक जीवन-विकास साधने की स्वतंत्रता न मिलने के कारण हम समष्टिगत जीवन के अयोग्य रहे हैं। प्रत्येक वाद्ययंत्र बराबर मिला हुआ हो तो चाहे जितने वाद्य-यन्त्रों को साथ बजाएं, बेसुरे नहीं लगते; उसी तरह से अगर प्रत्येक व्यक्ति का समुचित विकास हो जाए तो उनका समूह सुरीला लगेगा, सुन्दर ढंग से मिश्रित

लगेगा। अतएव सामाजिक जीवन की संयमितता व्यक्ति की संयम-शक्ति पर निर्भर है। सामाजिक जीवन की शुद्धि भी व्यक्ति की पवित्रता पर ही आश्रित है।

गिजू भाई शिक्षा के वैयक्तिक विकास तथा सामाजिक विकास में विलक्षण ढंग से समन्वय स्थापित करते हैं। व्यक्ति व समाज के मध्य वे कोई द्वंद नहीं देखते हैं। गिजू भाई के अनुसार वैयक्तिक विकास की शुरूआत बाल्यावस्था से ही होनी चाहिए। प्रारम्भिक स्थिति में बालक सभी कुछ अपना बनाकर बैठते हैं। यह स्वाभाविक है, होना भी चाहिए। लेकिन इस तथ्य का महत्त्व न जानने वाला व्यक्ति बालक को घटिया व स्वार्थी कहकर उसकी निन्दा करता है। माता-पिता, अध्यापक और धर्माभिमानी लोग उसे परोपकारी, उदार आदि बनने का उपदेश देते हैं और कभी कभार यह उसका कर्तव्य ठहरा देते हैं। लेकिन यह गलत है। ऐसा करके व्यक्ति को विकसित होने देने की बजाय उसे तोड़ा जाता है। मैं, मेरा, ममत्व आदि ही सब, समष्टिगत, निर्ममत्व की बुनियाद है। जो बलवान नहीं होगा, वह दूसरों की रक्षा कैसे कर सकेगा? जो अलग रख पाना नहीं जानता, वह साथ रखने का महत्त्व कैसे समझ सकेगा? जो अपनी जरूरतों का सम्मान नहीं करा सकता, वह दूसरों की जरूरतों का सम्मान कैसे करेगा? इस तरह व्यक्तित्व की पहचान में समूहगत जीवन का बल है। गिजू भाई उक्त वैयक्तिक विकास में आवश्यक ऐसे स्वार्थ तथा व्यापारिक स्वार्थ के बीच बड़ा अन्तर मानते हैं। एक पोषक, दूसरा विघातक; एक विकसित व्यक्ति का प्रदर्शन है, दूसरा अविकसित व्यक्ति का परिणाम; एक उत्कर्ष के मार्ग पर है, दूसरा पतन की ओर जाते मनुष्य का स्वभाव है। बेशक, बालक के उक्त विकासक-स्वार्थ में विकारी स्वार्थ आ जाया करता है, पर वह स्वार्थी समाज की ओर से भेंट मिली होती है उसे। दोनों प्रकार के स्वार्थों को पहचान कर अलग-अलग करने की जरूरत है। एक देने योग्य है, दूसरा दूर रखने योग्य।

गिजू भाई मानते हैं कि अनावश्यक वस्तुएं एकत्रित करने का हमारा रोजमर्रा का स्वभाव होता है। जब परिग्रह निरर्थक है तो उसका पोषण नहीं करना चाहिए। जब तक बालक यह नहीं जान पाता कि उसे किस चीज का अभाव है, याने जब तक वह यह नहीं जानेगा कि अपने वैयक्तिक विकास के लिए उसे सचमुच किस चीज की जरूरत है, तब तक वह ऐसा भाव रखता है। ऐसी स्थिति में उसे आगे ले जाना चाहिए। घर या शाला में जहाँ बालक ऐसा निष्प्रयोजन परिग्रह करे तो शिक्षक को उसे सप्रयोजन परिग्रह की ओर ले जाना चाहिए। उसे उसकी वास्तविक गलती का पता लगाने की ओर ले जाना चाहिए। इसके लिए हमें उसकी इन्द्रियाँ तथा मानसिक शक्तियाँ विकसित करने के प्रयत्न करने होंगे। जो पत्थर और सोने का अन्तर जानता है वह सोना समझकर पत्थर को नहीं उठाएगा और न बहरा वाद्य-यंत्र खरीदेगा या रखेगा। जिस क्षण बालक की इन्द्रियों का समुचित विकास हो जाएगा,

उसी क्षण से वह जानने लगेगा कि निरर्थक क्या है और सार्थक क्या है। उदाहरण के लिए, उस समय वह आवश्यक रंगों की पेंसिलें ही रखेगा, अनावश्यक इकट्ठी पेंसिलें तत्काल छोड़ देगा। उपयोगी परिग्रह ही करेगा। गिजू भाई के कहने का अभिप्राय यह है कि विकासक स्वार्थीपना पोषणीय है, जबकि विकारी स्वार्थ से बालक को हमें हटाना होगा।

वे मानते हैं कि स्वार्थ वृत्ति वैयक्तिक विकास का एक साधन मात्र है। जब तक तरह-तरह के माध्यमों से बालक को अपना व्यक्तित्व गढ़ना होता है, तभी तक वह उन सब माध्यमों में रूचि व रस लेता है। जिन-जिन विषयों द्वारा बालक अपने व्यक्तित्व को गढ़ कर आगे बढ़ जाता है, उनसे गुजरने के बाद उन्हें पीछे छोड़ता जाता है। वांछित पोषण मिलता नहीं कि उन माध्यमों को उसने फेंका नहीं। शक्ति अर्जित कर लेने के बाद मनुष्य स्वत: ही उन शक्ति देने वाले माध्यमों से ऊपर चला जाता है। साधनों में इतनी ताकत नहीं होती कि उसे रोककर रख लें। इससे स्वत: ही उसके साथ का सम्बन्ध टूट जाता है। इसी तरह मनुष्य नीचे से ऊपर उठता जाता है अथवा बंधनों से मुक्त होता जाता है। बालक इसी तरह शिक्षण के साधनों को प्रयोग में लाकर उनसे समृद्ध बनता है और उन्हें छोड़कर ऊपर उठता जाता है। साधनों से होकर गुजरना भी मार्ग का एक कदम है। परिग्रह भी इसी बात का सूचक है। वैयक्तिक विकास के मार्ग में परिग्रह का अर्थ है, उसका मूल्य है; पर अंत में तो उससे मुक्त होना ही हमारा ध्येय होता है। सच्चा महत्व शक्ति को विकसित करने का है, विकासक साधनों को अपने पास रखने का नहीं। साधन व साध्य का भेद बालक धीमे-धीमे अपने-आप समझता जाएगा, वैसे-वैसे ही वह नीचे से ऊपर उठता जाएगा, वैसे ही उसका वैयक्तिक विकास अधिक होगा, वैसे ही वह सामूहिक जीवन व्यतीत करने में अधिक योग्य बनता जाएगा।[1]

बालक जब अपना सच्चा वैयक्तिक विकास करेंगे तभी साधनों का मूल्य समझेंगे और तभी उनको अपने पास रखने का आग्रह छोड़ते जायेंगे; लेकिन वे चिन्ता करेंगे तो सिर्फ इसी बात की कि वे साधन उन्हें कैसे उपलब्ध हों। अगर होगा तो उन साधनों को वे व्यक्तिगत उपाधि या जोखिम मानकर अपने साथ रखने के बदले उन्हें सामूहिक सम्पत्ति के बतौर रखना अधिक पसंद करेंगे। सामूहिक सम्पत्ति रहने देने में बालक कोई आपत्ति नहीं मानेगा। उनका मूल्य जानने के कारण वह उनका दुरूपयोग न होने देगा, न उनकी उपेक्षा होने देगा। अत: बालक जहां-जहां स्वयं परिग्रह के लिए उत्कंठित हो, वहाँ-वहाँ सिर्फ यही देखना है कि वह परिग्रह साधन-रूपी है या नहीं। साधन रूपी परिग्रह के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए, दूसरी तरह के लिए व्यवस्था करने की जरूरत नहीं। संक्षेप में, परिग्रह व्यक्ति-विकासक होना चाहिए।[2]

स्वास्थ्य विकास:- मानव-व्यक्तित्व के अन्य पक्षों के समुचित विकास के लिए उसके शारीरिक

1-गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 17

2- वही, पृ0 19

स्वास्थ्य का उत्तम होना अत्यावश्यक है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है, यह सदैव से ही स्वीकार किया जाता रहा है। स्वस्थ शरीर की चैतन्य इन्द्रियों के माध्यम से ही व्यक्ति बाह्य अनुभवों को शुद्धतम रूप में ग्रहण करने में समर्थ होता है। काया निरोगी होने पर ही वह नाना सुखों का उपभोग कर पाता है। घर व विद्यालय में बालक के शारीरिक विकास के लिए समुचित वातावरण निर्मित किया जाना आवश्यक है। गिजू भाई कहते हैं कि बालक के शारीरिक विकास के लिए कैसा वातावरण होना चाहिए, इस बात का निर्णय शरीर-शास्त्र ने बहुत अच्छे ढँग से किया है। शरीर-शास्त्र द्वारा निर्धारित किया गया वातावरण हमें शाला में पैदा करना ही चाहिए। शारीरिक आरोग्य की दृष्टि से खुली हवा, स्वच्छता, अनुकूल समशीतोष्ण तापमान, स्वच्छ पाखाने और पेशाबघर, स्नानागार, धोने लायक शाला की जमीन, चौड़ी-चौड़ी खिड़कियाँ जिससे पूरा कमरा हवा से भर जाए, पौष्टिक भोजन व नाश्ता, बगीचा और विशाल छतें या बरामदे आदि प्रत्येक मॉण्टेसरी शाला में अत्यंत आवश्यक हैं। इसके बिना सामान्य शारीरिक आरोग्य भी संभव नहीं है।[1]

स्वास्थ्य विकास के सम्बन्ध में गिजू भाई शिक्षकों से बहुत आशा रखते हैं। वे कहते हैं कि "लोगों को स्वास्थ्य का आदर्श चाहिए। शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य का ऐसा आदर्श धनवान लोग नहीं दे सके। पुराने जमाने में संतों ने और शिक्षकों ने कभी लोक के समक्ष यह आदर्श रखा था। क्या आज का पीड़ित और भूखा शिक्षक एक बार फिर से यह आदर्श स्थापित करने के लिए तत्पर बनेगा?"[2]

आध्यात्मिक विकास:- सामाजिक व्यवस्था के सर्वतोमुखी विकास के लिए उसके सभी अंगों का संतुलित व समान गति से विकसित होना आवश्यक होता है। तकनीकी एवं विकास के बल पर समाज में औद्योगीकरण की गति तीव्र हुई, उत्पादन बढ़ा, भौतिक सम्पन्नता, सुख-साधनों में वृद्धि हुई। भौतिकतावादी दर्शन आध्यात्मिक चिंतन पर हावी हो गया। फलतः आधुनिक समाज में गलाकाट प्रतिद्वंदिता, द्वन्द व संघर्ष, तनाव व हताशा, अलगाव व विघटन तथा लूट-खसोट जैसे रोगों के लक्षण उभरने लगे। यह सामाजिक तंत्र में 'संरचनात्मक विलम्बना' का ही परिणान है। गिजू भाई कहते हैं कि आज की दुनिया पैसे के पीछे छटपटा रही है। पैसा ही भगवान् है और पैसा ही इस संसार का जीवन-सूत्र बन गया है। पैसे के लिए आज मनुष्य तरह-तरह के काम कर रहा है। पैसे के लिए वह अपना सर्वस्व तक खो देने को तैयार है। पैसे कमाने की प्रवृत्ति में मनुष्य मनुष्य नहीं रहा अपितु एक यंत्र बन गया है। सुबह से लेकर शाम तक एक इसी बात का ध्यान मनुष्य को रोके हुए है। सपने भी उसे पैसों के ही आते हैं। मनुष्य को रात में या दिन में एकाध क्षण के लिए भी वास्तविक शान्ति, सच्चा आराम शायद ही कभी मिल पाता होगा। 'भागो, भागो, पैसे के पीछे भागो।' यह स्थिति गाँव

1-गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ० 59

2- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 10

में, शहर में, स्वदेश में या विदेश में सर्वत्र एक-सी है और जहाँ ऐसी स्थिति नहीं होती, वहाँ भी लक्ष्मी-पूजक पहुँच ही जाते हैं और वहाँ के लोगों की शान्ति एवं सुख में विक्षेप डालकर उन्हें दु:खी व बेचैन बना देते हैं। इन सबका कारण है हमारी अब तक की प्रचलित शिक्षा का स्वरूप।[1]

गिजू भाई नि:संकोच स्वीकार करते हैं कि हमारी वर्तमान शिक्षा में आध्यात्मिक शिक्षा का स्थान नहीं है। अगर है भी तो अत्यल्प। संपूर्ण तंत्र आधिभौतिक दृष्टि से रचा हुआ है। मनुष्य स्वार्थी बन गया है, उसमें अहं भाव बढ़ गया है, अंह-तुष्टि के लिए वह चाहे जितनी जहमत उठा सकता है लेकिन परमार्थ के लिए एक उंगली तक नहीं उठाता, स्पर्धा के कारण उसके जीवन का माधुर्य उड़ गया, सिर्फ अपने लिए ही जीवन जी रहा है वह, विलास तथा आराम के आदर्श ही उसे प्रिय लग रहे हैं-ये सब बातें अभी तक दी जाने वाली हमारी प्रचलित शिक्षा के कारण ही हैं। एक तरफ गुरू-परम्परा वाली पद्धति समाप्त होने लगी है। आदर्श शिक्षक मिलने बंद हो गये। दूसरी तरफ जीवन को शिक्षा से अलग कर दिया गया तथा शिक्षण तथा धार्मिक जीवन का लोप हो गया है। तीसरी तरफ नंबर देने की, इनाम देने की, मनुष्य को स्पर्धालु बनाने आदि की कुरीतियाँ विद्यालयों में प्रवष्टि हो गयी हैं। इनकी वजह से मनुष्य स्वार्थी, स्पर्धालु, आलसी, आरामतलबी और धर्महीन हो गया। यही कारण है कि सर्वत्र लक्ष्मी पूजन चल रहा है अभी। जीवन का उद्देश्य द्रव्य-प्राप्ति रह गया है। शिक्षाविदों को चाहिए कि धार्मिक जीवन, गुरू-परम्परा तथा आदर्शजीवी शिक्षकों को शिक्षा में अग्रिम स्थान प्रदान करें। उन्हें विद्यालयों से वे तमाम कुरीतियाँ उखाड़ फेंकनी होगी, जिनके कारण वहाँ स्पर्धा उत्पन्न हो रही है। इसी प्रकार लोभ व लालच की तरफ मनुष्य के मन को आकृष्ट करने वाली तमाम पद्धतियों को भी उन्हें दूर करना होगा। मनुष्य जीवन का हेतु है- आध्यात्मिक सुख - यह सिद्ध करने के लिए ही शिक्षा की योजना है। वर्तमान शिक्षा पद्धति मे से उक्त ध्येय-विरोधी तमाम बातों को निकाल बाहर करना है।[2]

चारित्रिक विकास:- गिजू भाई की दृष्टि में शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य चारित्रिक विकास है। परन्तु 'चरित्र' शब्द से गिजू भाई का आशय सर्वथा मौलिक व विलक्षण है। उनके अनुसार बहुत-कुछ जान लेना चारित्र्य नहीं है। सत् और असत् को समझना भी चारित्र्य नहीं है। चारित्र्य का अर्थ है - सच्चे काम करना और झूठे कामों से मुँह मोड़ना और ऐसा आचरण तो उनके अनुसार वही कर सकता है, जिसके हाथ-पैर आदि कर्मेंद्रियाँ और आँख-कान आदि ज्ञानेन्द्रियाँ स्वस्थ हैं, बलवान हैं, तेजस्वी हैं और काबू में हैं। हमेशा काम करते रहने से, हलचल करते रहने से काबू हासिल होता है। कुर्सी पर बैठकर पढ़ते रहने से या सोचते रहने से काबू हासिल नहीं होता। काम ही चारित्र्य की नींव है।[3]

1-गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 11

2- वही, पृ0 11

3- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 104

चरित्र निर्माण के लिए बालकों को साद्देश्य सक्रिय कर्मों में संलग्न रखना आवश्यक है। इसलिए गिजू भाई माता-पिताओं से कहते हैं कि वे अपने बालकों को काम देते रहने की व्यवस्था करते रहें। उनका मत है कि बालकों को पढ़ाने के लिए शिक्षक रखना अपने-आप में कोई काम नहीं है, उलटे यह तो काम का विरोध है। जितने समय तक शिक्षक बालक को जबरदस्ती बिठाकर पढ़ाता है, उतने समय में बालक अंदर-ही-अंदर सड़ता रहता है और गंदा बनने की तैयारी में लगा रहता है। अपने विद्यालय का उदाहरण देकर वे कहते हैं कि "हम तो बालकों को उनका जीवन बनाने के लिए, उनके विकास के लिए, उनकी शक्ति बढ़ाने के लिए उनको काम का वातावरण देते हैं। यहां बालकों का विकास ही लाभ रूप है। घर की सफाई हो जाना या बर्तनों का मंज जाना काम नहीं है। चारित्र्य निर्माण की दृष्टि में इन कामों की कीमत बहुत ही कम है। यदि काम से चारित्र्य बनता है, तो काम अपने-आप में एक मूल्यवान वस्तु बन जाता है और वही परम लाभ है।"[1]

स्वतन्त्र बुद्धि एवं स्वालम्बन का विकास:- गिजू भाई की दृष्टि में अपने आराम एवं विकास के लिए जो मनुष्य अपने जरूरी काम स्वयं करना जानता है वही सच्चा विजेता है, स्वाधीन है, स्वतंत्र है। जिसको दूसरों का सहारा लेना पड़ता है वह सच्चे अर्थों में गुलाम है। वे कहते हैं कि भावी युग के लिए हमें बलवान मनुष्यों की जरूरत पड़ेगी। बलवान मनुष्य, याने स्वाधीन मनुष्य।[2]

विद्यालय व घर पर बालकों के लिए नियम-व्यवस्था माँ-बाप व शिक्षक बनाते हैं तथा उनके पालन पर बल देते हैं। गिजू भाई का मानना है कि इसी तरह से हम लोग बालकों को गुलाम-प्रकृति का बना डालते हैं। जब तक हम घर में या शाला में नियम और उनके पालन की व्यवस्था हमेशा अपने ही हाथ में रखेंगे और बालक जो काम करना चाहता है, वह हमसे पूछकर ही करे, ऐसा तय रखेंगे, तब तक बालक की स्वतंत्र-बुद्धि को हम नष्ट ही करेंगे। पूछकर काम कराने से बालक में पूछकर ही काम करने की वृत्ति पैदा होती है। इस कारण बालक अपनी स्वतंत्र-वृत्ति को खो बैठता है। स्वतंत्र-वृत्ति से रहित बालक गुलाम होता है और गुलाम का अपना दिमाग नहीं होता। गुलाम अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करने से इंकार करता है क्योंकि वह दिमाग को काम में लाने से डरता है। दिमाग को काम में न लाने से फिर काम में लाने का उसमें अविश्वास भर जाता है और अविश्वास के कारण पराधीनता आती है।

उनका सुझाव है कि बालक को अनेक बातों में स्वयं-निर्णय की छूट दी जानी चाहिए; यही नहीं, अगर वह हमसे पूछकर ही करना चाहे तो उसे रोकना चाहिए। चाहे किसी भी कारण से अगर बालक में एक बार परावलम्बन की वृत्ति आ गई तो वह स्वयं विचार करने से काँपने लगेगा। उसे तो हमें ऐसे ही वातावरण में रखना चाहिए कि वह स्व-निर्णय लेने का दायित्व समझे। अगर बालक

1-गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 104-105

2- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी पद्धति का सैद्धांतिक विवेचन, मॉण्टेसरी पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 41

हमसे पूछे कि 'इसका क्या करें?' तो उल्टे हमें भी उससे यही प्रश्न करना चाहिए कि 'हाँ, इसका क्या करें?' साथ ही वे सचेत करते हैं कि बालक के प्रत्येक प्रश्न के पीछे जिज्ञासा का कोई भाव होगा, ऐसा हमेशा मानकर नहीं चलना चाहिए। जो बालक स्वयं समाधान ढूँढने में आलस करते हैं, या जो समाधान ढूंढने की शक्ति खो बैठे हैं, उन्हें सीधे-सीधे समाधान सुझाकर हमें उनकी दुर्बलता को बढ़ाना नहीं चाहिए। इसके बजाय हमें अपनी बुद्धि लगाने से साफ इंकार कर देना चाहिए। गिजू भाई इस संदर्भ में मि0 स्टीवेंस का 'अपना दिमाग लगाओ' सूत्र याद रखने और याद दिलाने को कहते हैं। साथ ही जहाँ-जहाँ बालक अपना दिमाग लगा सके वहाँ-वहाँ उसके स्थान पर हमें अपना दिमाग हर्गिज नहीं लगाना चाहिए, ऐसा भी वे मानते हैं।[1]

व्यावसायिक दक्षता का विकास:- देश में शिक्षित बेरोजगारों की बढ़ती फौज के लिए निर्विवाद रूप से राष्ट्र की दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, गिजू भाई भी ऐसा ही मानते हैं। वे कहते हैं कि विगत डेढ़ सौ वर्षो में हमें जो शिक्षा प्रदान की गयी है उसने हमें सिर्फ बौद्धिक और तार्किक ही बनाया है। शिक्षा में उद्योगों की पढ़ाई को लेशमात्र स्थान नहीं था। परिणामतः हमारे हाथ, पैर, आँख, कान आदि लूले, अपंग व अशक्त बने रह गये। यही नहीं, पर इस अशक्ति के कारण ही और दूसरी तरफ से सिर्फ बौद्धिक-विकास के कारण ही हम अपनी अशक्ति का, अपनी गुलामी का मानो अभिमान करने लगे और यह मानने-मनाने लगे कि काम करना (दूसरों के लिए या अपने लिए) घटिया से घटिया बात है। हमारे जैसे अभागे शिक्षितों ने ही लोगों के मन में यह विचार ठसा दिया कि वे हाथ-पैर न हिलाएं, इसी में उनका बड़प्पन है और अन्य भले अनपढ़ लोगों ने किन्हीं और कारणों की अपेक्षा सिर्फ उक्त कारण से ही उन्हें बड़ा मान लिया। बौद्धिक शिक्षा भी हमें जो मिली, वह भी आधी-अधूरी। सिर्फ स्मरण-शक्ति के बल पर तथा मात्र आँख के उपयोग द्वारा ही जो शिक्षा मिली, वह ऐसी मिली कि उससे वास्तविक लाभ तक न मिला। इस शिक्षा से महान् अनुसंधानिक नहीं बने, महान् योद्धा नहीं बने, विज्ञानवेत्ता नहीं बने, इंजीनियर, चित्रकार, शिल्पी या संगीतज्ञ नहीं बने। बने हैं तो मात्र कारकुन, मास्टर (शिक्षाकर्मी नहीं); और ज्यादा से ज्यादा कुछ बने हैं तो वकील, बैरिस्टर, वैद्य, डॉक्टर- सब के सब हाथ-पैरों की शिक्षा से रहित अपंग- सबके सब या तो नौकरी यानी गुलामी करके जीवन बिताने वाले, या फिर दूसरों को गुलाम बना कर जीने वाले।[2]

गिजू भाई कहते हैं कि अब जमाना बदल गया है। दुनियाभर के शिक्षाविदों की आँखें खुल गई हैं। सिर्फ इतिहास, भूगोल, भाषा ज्ञान या गणित से मनुष्य मनुष्य नहीं बन सकता, यह बात समझ में आ चुकी है। मनुष्य सिर्फ बुद्धि का पुतला ही बनकर रह जाए, ऐसा पामर बना रह जाए कि हाथ-पैर चला भी न सके - ऐसे ख्याल मात्र से आज के शिक्षाशास्त्री थरथरा उठे हैं। यह बात उनके

1-गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 17

2- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 10

दिमाग में आ गई है कि आज तक बालकों को उद्योगों की शिक्षा प्रदान न करने का ही यह परिणाम है कि यह दुनिया नरक के समान बन गई है। उद्योगों की शिक्षा के बिना अब एक दिन भी नहीं चल पायेंगे हम, ऐसी गुहार सम्पूर्ण शिक्षित जगत में मच उठी है। अब शिक्षाशास्त्रियों में भी दो मत नहीं रह गये कि जब तक हाथ-पैर और आँखों को अच्छी शिक्षा नहीं मिलेगी तब तक दिमाग की शिक्षा अधूरी व त्रुटिपूर्ण रहेगी। जो कुछ करने को रहा है, वह बस काम करने को बचा है। शिक्षाविदों को पुराने विचारों से लड़ना है; सिर्फ बुद्धि को प्रतिष्ठा देने के विचार को समाप्त करना है; बुद्धि की शिक्षा के साथ हाथ-पैर की शिक्षा को समाज दर्जा दिलाने के लिए आगे आना है; उन्हें लोक-मानस में इस विचार को स्थिर करना है कि जो व्यक्ति लूला है और जिसे कोई कामकाज करना नहीं आता, उन दोनों में कोई फर्क नहीं है; अपने हाथों पानी का लोटा न लेने वाला और लूला, दोनों एकसमान हैं; इसी तरह अपने बूटों के कस्से न बांधने वाले और अपंग में कोई अन्तर नहीं; इस भावना को फैलाने की आवश्यकता है।[1]

परम्परागत भारतीय समाज की नींव जिस वर्णाश्रम व्यवस्था पर निर्मित थी, समय के साथ वह व्यवस्था शिथिल होने लगी। इस व्यवस्था में मस्तिष्क का कार्य करने वालों को सर्वोच्च एवं श्रम कार्य करने वालों को निम्नतम स्थान दिया गया था। फलतः श्रम में आस्था घटी। यहाँ तक कि सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा स्वयं के कार्यों के लिए भी नौकर रखने की प्रवृत्ति बढ़ी। गिजू भाई इस प्रवृत्ति की मुखर आलोचना करते हैं। उनका मानना है कि स्वावलम्बी व्यक्ति ही स्वतंत्रता का हकदार है और स्वावलम्बन अर्जित करने के लिए दूसरों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति त्यागनी होगी। वे आशावादी दृष्टिकोण रखते हुए कहते हैं कि अब ऐसे युग का शुभारंभ हो चुका है कि अब स्वयं अपना काम करना मनुष्य का पवित्र धर्म व अधिकार समझा जाएगा तथा दूसरों से सेवा-टहल लेने का कृत्य अत्यन्त हेय दृष्टि से देखा जाएगा। ऐसे युग की तैयारी शिक्षाविदों को आज से ही शुरू कर देनी चाहिए। आज से ही सब विद्यालयों में उद्योग का शिक्षण दाखिल कर देना चाहिए। सब विद्यार्थियों को पाठशाला के समस्त कार्यों में रूचि तथा भाग लेने का प्रेरित कर देना चाहिए। आज ही से प्रत्येक बालक को मृत्युपर्यन्त शारीरिक श्रम के गौरव का पाठ पढ़ाना चाहिए और काम करने को बालक तैयार हो सके इसके लिए उसकी शक्ति को विकसित करने का कार्य शुरू कर देना चाहिए। शिक्षण-पद्धति में ऐसे परिवर्तन किये जाने चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप बालक स्वावलंबी, स्वतंत्र तथा भावी प्रजा का सुन्दर अंग बना रहे। बुद्धि-बल तो सिर्फ लोक कल्याण के लिए व्यवहार में आता है, पेट भरने के लिए तो शरीर-बल ही काम आएगा, यह भावी युग की भावना है। बुद्धि-बल का मोल न लिया जाए। परमार्थ के लिए ही इसका उपयोग होना चाहिए। शरीर के द्वारा शरीर का पोषण

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 10-11

करना आने वाले कल का आदर्श है। आदर्शहीन लोगों में ऐसी भावना निभ नहीं सकेगी, यह तय है। अतः ऐसे समय के ग्रहण करके लाने की तैयारी आज से ही शुरू करने का शिक्षाविदों का दायित्व है।[1]

आत्म-अभिव्यक्ति:- बालक जिन गुणों, क्षमताओं व रुझानों को लेकर जन्म लेता है, उनका स्वाभाविक रूप से पूर्ण विकास उसको मिलने वाले वातावरण पर निर्भर होता है। वांछित वातावरण प्रदान करना शिक्षा का कार्य है। ये अन्तर्निहित गुण व्यक्ति में वातावरण के साथ अन्तःक्रिया द्वारा स्वयमेव विकसित होते हैं, पूर्णता को प्राप्त करते हैं। गिजू भाई कहते हैं कि अगर बालक को समाज के अंदर रखना है तो उसे समाज के वातावरण में ही रखना पड़ता है। उसे बोलना सिखाने के लिए भी वहीं रखना पड़ता है जहाँ समाज के लोग-बाग आपस में बोलते हैं। ठीक इसी तरह अगर बालक को अक्षरज्ञान देना हो तो जहाँ अक्षरज्ञान की जरूरत पड़ती हो और जहाँ अक्षरज्ञान का उपयोग होता हो, वहीं बालक को रखना पड़ेगा। तभी बालक अक्षरज्ञान एवं अंकज्ञान आसानी से सीख सकेगा।

गिजू भाई अन्य शिक्षाविदों के इस कथन को पूर्ण उचित मानते हैं कि आप शिक्षा देने की चाहे जैसी व्यवस्था कर लीजिए, बालक को दंड आदि देकर चाहे जितना दबा लीजिए, अपनी योजना के अनुरूप मार्ग पर ले जाने की चाहे जैसी कार्यनीति बना लीजिए, पर बालक उसकी परवाह भी नहीं करेगा। वह उसमें से जब चाहेगा तब छूट निकलेगा और अपने निर्धारित मार्ग पर ही आगे बढ़ेगा। याने प्रत्येक आत्मा को इस संसार में जो-जो कार्य करने हैं, उन्हीं को पूरा करने के लिए वह प्रयत्न करेगी। गिजू भाई कहते हैं कि आपकी सजा, आपकी शिक्षण योजना आदि उसे आगे नहीं ले जा सकेंगे, उल्टे उसके मार्ग में अवरोध ही डालेंगे। ऐसे में अगर आप बालक के लिए कुछ कर सकते हैं तो उसके मार्ग को सीधा कीजिए, मार्ग के कांटे हटाइए, उसके मार्ग के आगे रक्षा के लिए बाड़ बना दीजिए; याने कि उसके लिए अनुकूल वातावरण तैयार करें, उसके विकास के लिए वांछित जलवायु उसे उपलब्ध करायें। बालक को कैसी जलवायु चाहिए, इसका आप अध्ययन कीजिए। माली पौधों को विकसित करना जानता है, जीवशास्त्री जीवों का लालन-पालन करना जानता है, तो हमें मनुष्यों का पोषण- संवर्द्धन करना जानना चाहिए। इस विद्या को जान लेने में हमारा आधा शिक्षक-दायित्व पूरा होता है और लगभग सम्पूर्ण काम पूर्ण होता है।[2]

बालक स्वतंत्र परन्तु पोषक वातावरण में ही आत्म-अभिव्यक्ति की स्थिति को प्राप्त कर सकता है। अन्तर्निहित संभावनाओं का अपने उच्चतम शिखर तक पहुंचना ही आत्म-अभिव्यक्ति है। गिजू भाई का मानना है कि बालकों की स्वतंत्रता का अनुशासन के नाम पर हस्तगत करना उनके विकास को बाधित करना है। आज की पाठशालाओं में बालकों की प्रवृत्तियों को रोक-कर के ही इस

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 11

2- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 57

एक ही उपाय से शांति और व्यवस्था रखी जाती है। परन्तु यह शांति चेतन की नहीं, मृत देह की है। यह व्यवस्था जड़ पदार्थों की है, जीवंत प्राणियों की नहीं।[1]

बालक को आत्म-साक्षात्कार या आत्म-अनुभूति की ओर अग्रसर करने के लिए गिजू भाई मॉण्टेसरी पद्धति के उपकरणों को श्रेष्ठ साधन मानते हैं। उनके मत से मॉण्टेसरी-पद्धति के उपकरणों द्वारा इंद्रियाँ व मन याने सम्पूर्ण मनुष्य दिनों-दिन मुक्त बनता जाता है, यही नहीं वहीं से उसे मुक्त होने की कला व मार्ग सुलभ होते हैं। इस बात को वह व्यक्ति अच्छी तरह से समझता है। जिसने अपने बारे में, स्वयं उसके भीतर क्या कुछ चल रहा है, इस सम्बन्ध में अकेले बैठे बालक को एकाग्रता में डूबे देखा है। बालक एकाएक जैसे जागता है और बोल उठता है, 'ओहो, यह यहाँ कहाँ से आया?' 'मेरे तो पाँच उंगलियाँ हैं।' 'मैं उनसे बड़ा हूँ।', 'कल मुझे यह काम नहीं आता था, आज आने लगा।' 'वह आकाश नीला है।' तो इन वाक्यों के द्वारा बालक अपना आत्म-साक्षात्कार भी करता जाता है- अपनी पूरी पहचान करता जाता है।[2]

शांति व बंधुत्व का विकास:- वर्तमान विश्व में शांति, सहयोग, सह-अस्तित्व, सहिष्णुता, सौहार्द व भाईचारे की स्थापना व विकास की आवश्यकता समय की सबसे बड़ी मांग बन चुकी है। मानव सभ्यता को ही नहीं इस सुंदर ग्रह को भी यदि बचाये रखना है तो तीसरा विश्व युद्ध कभी न हो इसके हर सम्भव उपाय करने होंगे। एक विद्वान का कथन है कि चौथा विश्व युद्ध पत्थरों से लड़ा जायेगा, परन्तु यदि यह ग्रह नष्ट होने से बचेगा तभी सम्भवत: ऐसा हो। चरम विनाशकारी बमों के ढेर पर बैठा मानव इस धरती को अपने साथ-साथ कब ले डूबे, नहीं कहा जा सकता। समस्याओं का स्थायी समाधान उनके मूल कारण तलाश करके उनका निराकरण करने पर ही संभव होता है। रोग के लक्षण प्रकट होने पर उसका उपचार करने से कहीं बेहतर है ऐसे उपाय करना कि रोग उत्पन्न ही न हो। इसी ओर संकेत करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि अनेक दृष्टि से हमारा अर्थशास्त्र बड़ा बांका-टेढ़ा है। निरोग रहने के लिए उपाय करने के बजाय हम बीमार पड़ने के बाद स्वस्थ होने के उपाय तलाश रहे हैं। मनुष्य जाति आपस में लड़ाई-झगड़ा न करे, शान्ति से अपनी आत्मा का विकास करे- इसकी व्यवस्था करने के बजाय हम आत्मा को अवनति की तरफ ले जाते हैं, ऐसा जीवन-स्तर निर्मित करने लगते हैं और अंत में जब लड़ाई-झगड़े फूट पड़ते हैं तो उन्हें दबाने के लिए साधनों पर विचार करते हैं। हम अपराधियों को पैदा न होने के उपाय ढूंढने के बजाय उन्हें जेलों में ठूंसते हैं। ठीक ऐसे ही हम उत्तम शिक्षा का मार्ग निर्मित करने की बजाय गलत मार्गों पर ले जाने के लिए आगे का खर्च और श्रम बढ़ाते हैं।[3]

समता व समानता की भावना का विकास:- गिजू भाई का विश्वास है कि समस्त जीव एक ही

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी पद्धति का सैद्धांतिक विवेचन, मॉण्टेसरी पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 45.
2- गिजू भाई बधेका - मेरी दृष्टि में मॉण्टेसरी पद्धति, बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 25
3- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 9-10

जीवन-शक्ति से उत्पन्न हुए हैं। एक परम सत्ता या परमपिता की संतानें ही हैं सभी मनुष्य। सभी धर्म एक ही लक्ष्य की ओर संकेत करते हैं। किसी भी आधार पर मनुष्य मनुष्य में किये जाने वाले भेदभाव से इस परमपिता के हृदय को कितना ही कष्ट होता होगा, यदि यह अनुभूति हम करने लगें तो प्रेम व भाईचारे का वातावरण होने में क्षण भी नहीं लगेगा। भले ही व्यक्ति-व्यक्ति को लेकर कितने ही सामाजिक भेद परिलक्षित हों तब भी सभी मानव एक बिन्दु को लेकर समान हैं। इसी तत्व में मानवीय भ्रातृत्व निहित है। इसी भाँति आध्यात्मिक जीवन में मुमुक्षु तथा मुक्त दोनों एक ही दिशा के -भले ही अलग-अलग कोटि के हों, पर एक ही मंजिल के प्रवासी होते हैं। उन्हें अपने मार्ग में एक ही प्रकार के अनुभव प्राप्त होते हैं।[1]

ऊँच-नीच, छुआ-छूत की गम्भीर विकृति का शिकार यह देश हुआ। इसका दुष्परिणाम भी सदियों इसने भोगा। यह गम्भीर दोष समाज से हटाना ही होगा। गिजू भाई कहते हैं कि आज का समाज मलिनता का शिकार है। उसने विवेक की मर्यादा को तोड़ डाला है। मलिनता एवं विवेक-भ्रष्टता से इसे बचाने का पुण्य-कार्य शिक्षाशास्त्रियों को ही करना है। अस्पृश्यता के सामाजिक कलंक को दूर करने तथा समाज को निर्मल बनाने के लिए समाज के नेताओं यानी शिक्षाशास्त्रियों को आगे आना होगा। अस्पृश्यता के भूत को दूर भगाने के लिए उन्हें कोई युक्ति निकालनी होगी। शिक्षालयों का भी यह प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए कि शिक्षा के माध्यम से प्रत्येक मनुष्य को समान अधिकार प्रदान करें। अगर जनता के थोड़े-से भाग के निमित्त शिक्षा के द्वार बंद रखे जायेंगे तो शिक्षा वंध्या ही रह जायेगी और शिक्षा का यह उद्देश्य निष्फल ही रह जायेगा कि इसके द्वारा मनुष्य-जीवन का सर्वांग सुंदर विकास करना है और आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त करनी है। बंधुत्व का प्रथम पाठ तो विद्यालय से ही मिलना चाहिए और उसे संकुचित या संकीर्ण भावना के बजाय उदार एवं स्वस्थ भावना-युक्त होना चाहिए। शिक्षाविदों को ऐसा पाठ्यक्रम निर्मित करना चाहिए ताकि पाठशालाओं में विद्योपार्जन करने वाले बालकों का समूह इस पाप-रूढ़ि से स्वतः मुक्त हो जाये। विद्यार्थियों के भावी जीवन का निर्माण अधिकांशतया पाठशालाओं में और उनसे संबद्ध छात्रावासों में होता है। ये स्थल लोक-रूढ़ि को पलटने, नयी रूढ़ि या नए विचारों के बीज रोपने तथा नयी कल्पना देने के प्रबल साधन हैं। पाठशालाएं लोगों के बिना चल नहीं सकती और पाठशालाओं की डोर शिक्षा देने वालों के हाथ में रहा करती है।[2]

एक घटना की चर्चा के माध्यम से गिजू भाई अत्यंत सुंदर ढंग से वर्ण-व्यवस्था पर चोट करते हैं। उनके एक आदरणीय मित्र ने उनके बाड़े में बबूल उगा देखकर कहा, 'अरे भाई! यह बबूल क्यों उगाया है? यह ठहरा शूद्र वृक्ष। जैसे आदमियों में शूद्र होते हैं वैसे ही वृक्ष में भी होते हैं। भला इन्हें

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 180
2- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 8

भी रखा जाता है।' वे कहते हैं कि "मैं सोच में डूब गया। मैंने सरल-सा खुलासा किया, 'हम ठहरे अंत्यजोन्मुखी अत: हमें तो ऐसे ही वृक्ष पसंद आयेंगे।' उन्होंने मेरे प्रति बेरूखी दिखायी और मुझे तथा बबूल को धिक्कारते हुए चले गये। मुझे उस समय दिये गये स्पष्टीकरण से संतोष नहीं हुआ। फुर्सत में विचार आए, 'क्या ऐसा नहीं कि मनुष्य बाहर जिसे धिक्कारता है, वह अपने भीतर रहने वाले धिक्कारने योग्य भाग को धिक्कारता है? हाँ, मनोविज्ञान के अनुसार तो यही कहा जा सकता है। तो क्या मेरे मित्र ने अपने भीतर विद्यमान शूद्रत्व को नहीं धिक्कारा?' सोचता हूँ तब तो शास्त्रों द्वारा बनाये गये शूद्र भी क्या शास्त्रों की उस काल की शूद्रता अर्थात् हल्केपन की वजह से नहीं होंगे? मेरे मित्र ब्राहमण हैं, (आचार और विचार में) इसके बजाय (क्रिया और व्यवहार में) शूद्र जैसे ही हैं।

आँगन में बबूल को देखकर मेरे एक अन्य मित्र की कही बात मुझे याद आती, 'यह बबूल बबूलों में सात्त्विक है, ब्राह्मण है। यह अपने काँटे अपने ऊपर ही रखता है। दूसरे क्षत्रिय बबूलों की तरह दूसरों को नहीं चुभता। कैसा मजेदार वृक्ष है।' उनकी आँखें बड़े प्रेम से टिकी थीं उस पर। उन्होंने बबूल के कितने ही गुण बताए। उनके चले जाने के बाद मुझे पहला प्रसंग याद आया। मैंने सोचा कि मेरा पहले वाला विचार सही था। उसके अनुसार मेरे या मित्र अपने भीतर के सद्गुण को अपने से बाहर भी देख सके। उनके भीतर धिक्कारने योग्य तो कुछ था नहीं, प्रशंसा का भाव ही था, अत: बबूल में भी उन्होंने वही देखा। दोनों मित्रों में से दूसरे वाले सात्त्विक वृत्ति के हैं, सच्चे देशभक्त हैं, स्वाभाविक वृत्ति के हैं और निरभिमानी हैं और बबूल क्या है? ब्राह्मण या शूद्र? मुझे लगता है कि बबूल बबूल है, न ब्राह्मण है न शूद्र! पर वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का आईना है।[1]

गिजू भाई शिक्षकों से कहते हैं कि वे अक्षरज्ञान और अंकज्ञान की शिक्षा देने का मोह न रखें। सीखना तो प्राणिमात्र का कर्त्तव्य है, उसकी जरूरत है। पहले-पहल हमें यह बात सीखने की है कि किस तरह की शिक्षा देने से मानवता का विकास होता है, अंकज्ञान और अक्षरज्ञान की बात इसके बाद की चीज है।[2]

डा0 राधाकृष्णन ने भी कहा है - शिक्षा का सर्वांगीण और मानवीय होना आवश्यक है, इसमें न केवल बौद्धिक प्रशिक्षण बल्कि हृदय शोधन तथा भावना का अनुशासन भी सम्मिलित रहना चाहिए। हृदय और भावना को अपेक्षित करने वाली कोई भी शिक्षा पूर्ण नहीं समझी जा सकती है।[3]

सृजनात्मक क्षमता का विकास:- बालक में सृजनात्मकता का विकास करना गिजू भाई शिक्षा का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य मानते हैं। वे कहते हैं कि अपने ही विचारों का आग्रह रखने वाला मनुष्य अपनी भावी पीढ़ी को अपनी शक्ति तथा अपने ज्ञान की विरासत सौंपने में अपना धर्म और अभिमान समझता है। वही इस बात का निर्णय भी करता है कि बालकों को क्या करना चाहिए और क्या नहीं

1- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 77

2- गिजू भाई बधेका - बाल मंदिर के शिक्षकों से, शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 36

3- सफाया, शैदा व शुक्ला-उदीयमान भारतीय समाज के शिक्षक, धनपत राय पब्लिशिंग कम्पनी (प्रा0) लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ0 225

करना चाहिए। वस्तुतः इस निर्णय में ही बालक की सृजन-शक्ति का हनन छिपा है। घर और विद्यालय दो ऐसे स्थल हैं जहाँ बालकों की सृजनशीलता का सहज स्वाभाविक रीति से विकास होता है और यही वे स्थल हैं जहाँ उनके सृजन को रोकने, विकृत करने अथवा निर्मूल करने का काम होता है।[1]

गिजू भाई के शब्दों में मनुष्य द्वारा किये गये सृजन का हनन लंबे समय से होता चला आ रहा है और होता ही रहता है। जब-जब भी मनुष्य ने अपने सृजन के हनन के खिलाफ बगावत की है, तब-तब स्वयं मनुष्य का हनन हुआ है। इतिहास ऐसे उदाहरणों से अटा पड़ा है। हनन का यह काम हमारी संस्थाएं करती हैं, रूढ़ियों की गुलामी में फंसा हमारा समाज करता है, जड़वत बने हमारे शास्त्र करते हैं, सिर्फ परिणाम देखने वाली हमारी शिक्षण-संस्थाएं करती हैं तथा अज्ञान के अंधकार में निमग्न हमारे घर-परिवार करते हैं। लगता है मानो इन सबने मानवीय आत्मा के आविर्भाव को कुंठित करने का सामूहिक प्रयत्न किया है और नई-नई सोची-समझी कार्यवाही की है। इसके बावजूद कई बीज ऐसे होते हैं जो पत्थर को तोड़कर फूट निकलते हैं और प्रबल आँधी-तूफान में भी स्थिर बने रहते हैं, इसी प्रकार कुछ प्रबल आत्माओं ने उपर्युक्त संस्थाओं के संकीर्ण तट-बंधों को तोड़कर सृजन के सागर में उछाला है और उसमें से भाँति-भाँति के कलात्मक मोतियों का बहुमूल्य उपहार मानव-जाति को प्रदान किया है। इसके विपरीत जहाँ-जहाँ बंधनों में जकड़े हुए गुलाम मनुष्य ने सृजन कार्य किया है, वहाँ-वहाँ वह सृजन रुग्ण एवं विकृत बना है, उसने मनुष्य को ऊपर उठाने के बजाये नीचे गिराया है, वहाँ-वहाँ उस सृजन का, सृजनकर्ता और सिरजनहार का अपमान ही हुआ है। इसके दृष्टान्त हैं ये अनाथालय, कलाकारों की निर्माल्य कृतियाँ, कवियों की उदरपूर्ति वाली हताश काव्यकृतियाँ, ये संगीत की मजलिसें, नाट्य मंच, मासिक पत्र-पत्रिकाएं और प्रदर्शनियाँ आदि।[2]

गिजू भाई की मान्यता है कि शिक्षक के अनुकरण में सृजन नहीं है, सृजन नकल में नहीं है। बनावटी उत्साह के नशे में किया गया सृजन सच्चा सृजन नहीं कहलाता। जब आंतरिक उमंग से, मानो अंतर को ही खाली करने या व्यक्त करने के लिए जहां अंतर स्वयं प्रकट हो जाता है, वही सृजन कहलाता है। इस प्रकार का सृजन काव्य के, संगीत के, चित्र के अथवा किसी भी ललित कला के माध्यम से हो सकता है। सृजन स्वतंत्रता की देन है। जब सृजन स्वयं-स्फूर्त होता है, जब सृजन स्वानुभव से उपजता है, जब सृजन आत्म-साक्षात्कार के लिए होता है, तभी वह सच्चा सृजन कहलाता है। जो विद्यालय ऐसे सृजन की व्यवस्था करता है, वह सच्चा विद्यालय है। इससे भिन्न दूसरे विद्यालय को तो वे कतलखाने की संज्ञा देते हैं। वे कहते हैं कि जब तक हमारे विद्यालय ऐसे सृजन के लिए वांछित सभी प्रकार की व्यवस्था नहीं कर लेते, तब तक उन्हें अपना अस्तित्व बनाये रखने का कोई

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 10

2- वही, पृ0 10

अधिकार नहीं है।[1]

गिजू भाई की दृष्टि में सच्चा सृजन शांति, प्रसन्नता, एकाग्रता, निर्भयता, स्वतंत्रता एवं स्वयं स्फूर्ति द्वारा प्रकट होता है। घरों, शालाओं अथवा समग्र जीवन में जहाँ इन चीजों का अभाव होगा, वहाँ सच्चे सृजन को लेकर संशय ही बना रहेगा। उनके अनुसार हमारी वर्तमान कलाकृतियों की दरिद्रता तथा हमारी ह्रासमान रसिकता इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हम स्वाभाविक सृजनात्मक कार्यों की दृष्टि से आज कहाँ है? यदि हम अपने समग्र जीवन पर दृष्टि डालकर देखें तो ज्ञात होगा कि हमारा जीवन सत्य से कितनी दूर चला जा रहा है। ऐसे में असत्यजीवी जनता के जीवन में से सत्य-स्वरूप सृजन कैसे संभव है?[2]

दंड, पुरस्कार, परीक्षा और प्रदर्शन को गिजू भाई सृजन के प्रखर शत्रुओं के रूप में देखते हैं। वे कहते हैं कि दंड के भय से या तो आदमी छिपकर सृजन करता है या फिर सृजन की उसकी प्रेरणा, उसका प्राण भय के मारे विलुप्त हो जाता है। छिपे हुए अथवा विकृत सृजन के उदाहरण स्वरूप आज हमारे सामने जेलखाने, दवाखाने, पागलखाने खड़े हैं। पुरस्कार और स्पर्धा के कारण उत्पन्न हुए स्वार्थपरायण व्यापार-धंधे, युद्ध तथा राजनीति हमारे समक्ष मौजूद ही हैं। हम जगह-जगह देख रहे हैं कि एक तरफ परीक्षा के कारण बर्हिमुख बना मनुष्य कितना छिछला, दंभी, ढोंगी तथा ठग बन चुका है और वह कितना मिथ्याभिमानी व अहंकारी बन चुका है। दूसरी तरफ हम यह भी देखते हैं कि वही मनुष्य कितना हताश, निरुत्साह, अपनी ही आत्मा का अपमान करने वाला तथा जीवन-रस से विहीन बन चुका है। प्रदर्शनों ने हमें परजीवी, खुशामदी और गुलाम बना डाला है। आज के हमारे कई रंगमंच, सर्कस, संगीत-सम्मेलन और नृत्यांगनाओं के नाच ऐसे ही प्रदर्शनों के प्रतिफल हैं। उपर्युक्त चार कारणों से मनुष्य की आत्मा के सृजन या तो विकृत होते जा रहे हैं या लुप्त हो रहे हैं। यदि हमारे घर और विद्यालय बालकों को इन बुराइयों से बचा सकें तो सच्चे सृजन की आशा की जा सकती है अन्यथा बालकों के तथा समूची जनता के सृजन पर तलवार तो लटक ही रही है।[3]

आत्मनिर्भरता का विकासः- युवा वर्ग में बढ़ती बेरोजगारी की समस्या का मूल कारण उन्हें स्वावलम्बी बनाने में शिक्षा का असमर्थ होना है। वर्तमान समय में तो बेरोजगार युवक का विवाह होना ही कठिन है। परन्तु गिजू भाई के समय में बाल-विवाह का अधिक प्रचलन था। कम उम्र में ही विवाह हो जाते थे। इसी संदर्भ में वे कहते हैं कि "आज का युवक चारों तरफ से परेशान है। एक तरफ उसको पढ़ाई करनी है, दूसरी तरफ पेट भी भरना है, और जिस पर प्रकृति ने और समाज ने कृपा की है, उसको विशेष रूप से एक पत्नी का भरण-पोषण और संरक्षण करना है, एक या एक से अधिक बालकों के पोषण और शिक्षण की व्यवस्था भी करनी है। समाज ने और रूढ़ियों ने आज युवक को

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 16

2- वही, पृ0 16

3- वही, पृ0 17

ऐसी स्थिति में ला पटका है, इसका परिणाम यह हुआ है कि इन चतुर्विध कठिनाइयों का सामना करने के लिए युवक को अपनी सारी शक्ति खर्च करनी होती है। इन सबके कारण वह बराबर अशक्त, निस्तेज और निराश बनता जा रहा है।" उनका कहना है कि पुराने लोगों की यह बात उनके अपने अनुभव में से निकली लगती है कि अपनी पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद ही युवक को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। इससे यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि बाल-विवाह की प्रथा एक भयंकर से भयंकर कुप्रथा है। स्वावलंबन की शिक्षा न मिलने के कारण ही आर्थिक तंगी भुगतते-भुगतते युवक कमजोर बनता जाता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि स्वावलंबन विहीन शिक्षा एक निकम्मी शिक्षा है। यह परिस्थिति उन युवकों और युवतियों को एक बहुत ही कीमती सबक सिखाती है, जो वैवाहिक जीवन को सुखों की आकांक्षा रखते हैं। इससे उनको पता चल जाता है कि कितनी तैयारी के बाद उनको गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना चाहिए।

निर्भयता का विकासः- गिजू भाई का मत है कि निर्भय व्यक्ति ही स्वतंत्र हो सकता है। अतः यदि व्यक्ति स्वातंत्र्य के लक्ष्य को प्राप्त करना है तो उससे पूर्व व्यक्ति में निर्भयता का विकास करना होगा। ऐसा माना जाता है कि बालक में स्वभावतः भय का तत्त्व रहता है। बालक मानव-समाज का प्राथमिक पुरुष है। जब समाज बाल्यावस्था में था, तब समाज के प्रत्येक व्यक्ति को निरंतर अपने चारों ओर अनेक प्रकार के भयों का सामना करना पड़ता था। उस समय का मानव वन्य प्राणियों के साथ सदैव जूझता था। उनसे विजय प्राप्त करने के बावजूद वह उनके भय से मुक्त नहीं था। फिर, उस अज्ञान के युग में कितने ही प्रकार के प्राकृतिक चमत्कार थे, जिनका रहस्य आज हमारे सामने प्रकट हुआ है। चमत्कार की वे बातें आदिमकाल के मनुष्य की बुद्धि से दूर थीं, अतएव उसे उनसे भय लगता था। आज मेघ गर्जन या भूकम्प से हमें भय नहीं लगता, लेकिन उस युग के मनुष्य के लिए तो इन घटनाओं के पीछे देवताओं अथवा अन्य शक्तियों के भयंकर कोप का तत्व प्रमुख था, अथवा ऐसा ही कुछ था कि वह डरकर मर जाता था।

बालकों के अवलोकनकर्ताओं का कथन है कि बालक के हृदय में विद्यमान भय समाज के प्राथमिक पुरुष का भय है। यह भय उसे समाज के उत्तराधिकार स्वरूप प्राप्त हुआ है। जैसे-जैसे मनुष्य विकास की अवस्था में आता गया है, जैसे-जैसे उसका ज्ञान अधिक से अधिक व्यापक होता गया है, जैसे-जैसे उसने अगम्य विषयों के रहस्य को जान लिया है, और जैसे-जैसे उसने भयंकर से भयंकर प्राकृतिक शक्तियों को अपने कब्जे में कर लिया है, वैसे-वैसे उसका भय क्रमशः कम होता गया है। गिजू भाई कहते हैं कि "विज्ञान की शक्ति ने तो मनुष्य को अनेक प्रकार के वहमों और उनसे उत्पन्न होने वाले भय से अनेक प्रकार से बचाया है। आज मनुष्य की वृत्ति दिन-प्रतिदिन भय से मुक्त

होने की है, हालांकि वह अभी भय से मुक्त हो नहीं सका है। बालक को भी ऐसे भय से मुक्त करना हमारा दायित्व है।"[1]

गिजू भाई कहते हैं कि देश के बालकों में भूतप्रेत आदि का भय पैदा करने वाला साहित्य उनके हाथों में नहीं दिया जाना चाहिए। अगर ऐसी भ्रांति में विश्वास पैदा करने जैसी कोई पुस्तक हो तो उसे अपने घर में नहीं लाना चाहिए और किसी पुस्तकालय में हो तो वहां से निकलवा देनी चाहिए। लेखकों-प्रकाशकों से भी विनती करके ऐसे साहित्य के प्रकाशन को रोकना चाहिए। भूतप्रेत को मानना और उनसे भयभीत होना हम लोगों का बुनियादी रोग है -भयंकर रोग।[2]

साथ ही गिजू भाई कहते हैं कि कुछ बातों से व्यक्ति को डरना भी चाहिए। सिर्फ निडरता की बातें करते रहना स्वाभाविक सृष्टि से दूर की बात है। यह भी अपने-आप में एक तरंग है, भ्रमणा है। भूत से भले ही हम न डरें, पर खुलकर आतंक मचाते हाथी से डरना चाहिए, अंधेरे से व्यक्ति न भी डरे, पर अंधेरे में साँप या बिच्छू के काटने की सम्भावना रहती है, यह बात स्वीकार करनी चाहिए। अतः इनसे डरकर ही चलना चाहिए। भय कुदरत के द्वारा प्रदत्त एक वरदान है। समय रहते जो भय को स्वीकार कर लेते हैं और उससे स्वयं को बचा लेते हैं, वे बच जाते हैं। भय को महत्ता दिये बिना बहादुर नहीं, पागल चलता है। सच्चे भय और गलत भय के बीच अन्तर करना हमें सीखना सिखाना चाहिए। भूत से न डरें, पर मारने वाली गाय से हमें डरना चाहिए। अगर इस अर्थ में कोई बालक न डरता हो तो उसे डरना, चौकन्ना रहना, सावधान रहना, ध्यान रखकर दूर रहना सिखाया जाना चाहिए।[3]

वैज्ञानिक बुद्धि का विकासः- वैज्ञानिक दृष्टि याने सूक्ष्म अवलोकन-अनुभव पर आधृत ज्ञान; साम्य-विरोध पर आधृत तुलना। मॉण्टेसरी के उपकरणों को अमल में लाने से यह शक्ति विकसित होती है। यही उसकी प्रच्छन्न विशेषता है। बालक को चाहे विज्ञान सीखने की जरूरत पड़े या न पड़े, पर इतना वैज्ञानिक दृष्टि वाला बालक जब चाहे विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है। इस क्षमता के पैदा होने का नाम ही गिजू भाई की दृष्टि में सच्ची शिक्षा है।[4]

वे कहते हैं कि अपने आसपास और अपने बीच रहने वाले बालकों को हम हर घड़ी इन वहमों का ही पान कराते रहते हैं। ये वहम हमको अपने माता-पिता से मिले हैं। हम इन्हीं अंधविश्वासों अथवा वहमों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी, जाने-अनजाने अपने बालकों में सींचते रहते हैं। इन सबका नतीजा यह निकला कि हम अंधविश्वासी बन गए। आगे हमारे बालक भी अंधविश्वासी बनेंगे और उनके बालक भी अंधविश्वासी ही बनेंगे। यों, पीढ़ी-दर-पीढ़ी अंधविश्वास फैलता रहेगा। अंधविश्वासी मनुष्य यानी अशास्त्रीय मन वाला मनुष्य। वह कभी यह कहता ही नहीं कि, "आप कुछ भी क्यों न

1- गिजू भाई बधेका - कथा कहानी का शास्त्र, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 70
2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 50
3- वही, पृ0 53
4- गिजू भाई बधेका - मेरी दृष्टि में मॉण्टेसरी पद्धति, बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 23

कहें, मुझको तो खुद ही इसकी छानबीन कर लेनी होगी। जब तक बात मेरी समझ में नहीं आएगी, तब तक मैं तो तटस्थ रहना ही पसंद करूंगा।" अंधविश्वासी आदमी डरपोक होता है। मन में अंधविश्वास की बात आते ही अंधविश्वासी मन डर जाता है। किसी अमंगल की चिंता से वह काँप उठता है। भयभीत होकर पसीने से नहा लेता है। कुछ ही क्षणों की अपनी कल्पना में वह न जाने कितने दु:खों का अनुभव कर लेता है।[1]

शिक्षा के द्वारा बालकों में इन वहमों व अंधविश्वासों को दूर किया जाना आवश्यक है। तर्कयुक्त बुद्धि, वैज्ञानिक बुद्धि का विकास उनमें हो, वे जांच पड़ताल करके स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता से युक्त हों अन्यथा देश से इन बुराइयों को निर्मूल नहीं किया जा सकेगा।

सच्ची धार्मिकता का विकास:- यह गिजू भाई सही मानते हैं कि 'धर्मेणहीना: समाना।' लेकिन वे यह भी मानते हैं कि धर्म का तत्व तो अंतर की गुफा में रहता है। इसके लिए तो भीतर के द्वार खोलकर झाँकना पड़ता है। धर्म की वास्तविकताओं का ज्ञान, कर्मकांड या क्रियाडंबर, पांडित्य, हठयुक्त जप-तप आदि उनके मत से धर्म नहीं है, धर्म के सुन्दर कवच मात्र हैं। धार्मिकता का मूल्य इसी भावना के जागृत होने में है, अन्यथा वह दंभपोषी सिद्धान्त बन जाती है। धार्मिकता का अर्थ कीर्तिदान नहीं, स्वार्थपूर्ण समर्पण या प्रतिफल की उम्मीद में की गयी भक्ति नहीं, धार्मिकता एक वृत्ति है। सद्-असद् -विवेक-बुद्धि इस धर्म-मार्ग का आकाश-दीप है। संयमित क्रियाशक्ति में इसकी प्राण-शक्ति विद्यमान रहती है। सद्-असद्-विवेक- बुद्धि याने इंद्रियों की शुद्धि व संस्कारिता तथा मन की निर्मल ग्रहण-शक्ति, मापन-शक्ति व निर्णय-शक्ति और क्रिया-शक्ति का संयमन याने निर्णय-प्रेरित क्रिया के प्रत्यक्ष पुरावर्तन में से उत्पन्न होने वाली क्रिया को करने या न करने का बल। निर्णय-शक्ति एवं बल उपदेश से उद्भूत नहीं होते, न तर्क-विषयक पुस्तकें पढ़ने से हाथ लगते। वे तो इन्हें करने की क्रिया से ही उद्भूत होते हैं।

गिजू भाई के अनुसार अभी तक मनुष्य अपनी कीमत बाहरी स्तुति-निंदा के स्तर पर आँकता रहा है। समाज ने भी उसी को धर्मी कहा है जो धर्म का कवच मजबूती से पकड़े रखता हो; उसी को नीतिमान कहा है जो नीति के बाहरी बंधनों को प्रत्यक्षतया तोड़ता न हो; उसी को अहिंसक गिना है जो चींटी-मच्छर या इंसान को सामने न मारता हो; उसी को व्यवस्थित संयमी व संतुलित कहा है जो किसी प्रसंग को संभाल लेता हो - व्यवहार को निबाह लेता हो। पर सही मनुष्य कोई अन्य हो सकता है। चाहे समाज, धर्म या ईश्वर न हो, पर वह सिर्फ अपने मंतव्यों से ही प्रतिबद्ध रहता है, उन्हीं के लिए अपने जीवन-मरण का बलिदान देता है, उनके परिपालन में ही अपनी सफलता अनुभव करता है। ऐसा मनुष्य ही सच्चा मनुष्य है।

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 57-58

वे कहते हैं कि जब तक कोई स्वत: सद्-असद् का विवेक करना नहीं सीखेगा, जब तक अपनी क्रियाशक्ति से स्वेच्छापूर्वक तटस्थ या संतुलित नहीं रहेगा, जब तक अपने आंतरिक स्वभाव के कारण जनता की तकलीफों को अपनी तकलीफें समझने की उसमें सहिष्णुता नहीं जागेगी, तब तक वह नामधारी मनुष्य ही रहेगा, सच्चा मनुष्य नहीं हो सकता। एक विद्वान ज्ञानात्मक शिक्षण के स्थान पर विवेक-बुद्धि विकसित करने की हिमायत करता है तो दूसरा इतिहास-शिक्षण के द्वारा देश-प्रेम जागृत करने की अपेक्षा विश्व-प्रेम पैदा करने की सिफारिश करता है। बर्गसां जैसे कहते हैं कि मनुष्य तो जन्म से ही पापी है, शैतान है। ऐसी मान्यता पर आधारित शिक्षा-पद्धति ने ही दुनिया को मानो आज निर्बल, श्रद्धाहीन एवं जहाँ-तहाँ पाप देखने वाले मनुष्य भेंट में प्रदान किये हैं। यदि मनुष्य को धर्म के दबाव से मुक्त कर दिया गया होता तो वह आज नीति के रोग से इतना ग्रसित न होता। बर्टेंड रसेल ने कहा है कि यूरोप की वर्तमान शिक्षा में निर्मल बुद्धि का अभाव है, स्वत: विचार करने की क्षमता का अभाव है। नए मनोविज्ञानवेत्ता अस्वातंत्र्य के कारण बीमार पड़े रोगियों की चिकित्सा करके यह व्यक्त कर रहे हैं कि भावी-पीढ़ी का मानसिक स्वास्थ्य स्वतंत्र शिक्षण से निहित है। रूसो से लेकर टॉल्सटॉय तक के शिक्षा-सुधारकों ने स्वतंत्रता में मानवीय दु:खों का उपराम देखा है। एच. जी. वेल्स और कवि टैगोर ने विश्व बुधंत्व की प्रवृत्ति को मनुष्य के सार्वत्रिक एवं सार्वभौमिक आत्मविकास में सर्वोपरि तत्व के रूप में स्थापित किया है। दूसरी ओर महात्मा गाँधी जी हमारे जीवन, हमारी राजनीति, धर्म तथा समाज में सर्वत्र अहिंसा, सत्य एवं सहयोग का उपदेश कर रहे हैं इसीलिए ये द्वितीय ईसामसीह की भांति पूजे जाते हैं।

व्यक्ति की अमूर्त क्षेत्र में जाने, सृजन से दूरस्थ को देखने एवं भावों को तीव्रता से अनुभव करने की शक्ति समझने की, महात्माजी की देश-प्रेम की वाणी ग्रहण करने की, प्रजा दु:ख-दर्दों को अपना समझकर अनुभव करने की क्षमता प्राप्त होती है। गिजू भाई का विश्वास है कि इन तीनों शक्तियों वाला या इनमें से एक-एक शक्ति-युक्त मनुष्य ही समर्थ कवि, महान् शोधक, प्रखर राजनीतिज्ञ और अद्वितीय योद्धा बनता है। पर उनके अनुसार धार्मिकता अभी एक और अधिक तत्त्व की अपेक्षा रखती है, और वह है प्रेम। जीवन की उत्कृष्टता व परम सफलता इस तत्त्व की प्राप्ति में निहित है। इस तत्त्व ने समस्त सचराचर जगत को जोड़ रखा है। यह वस्तु सृष्टि के सम्पूर्ण पदार्थों में जंतुओं आदि से लेकर देवताओं तक की दुनिया में स्वयं विद्यमान है। वैज्ञानिकगण इसे स्थूल वस्तु के प्रति आकर्षण कहते हैं, पशु-जगत में स्वाभाविक प्रेरणा कहते हैं और मनुष्यों में इसे प्रेम के नाम से पहचाना जाता है। यह तत्त्व बालक को माँ के दूध के साथ उपलब्ध होता है और वहाँ से वह आगे विकसित होता है। यह तत्त्व मनुष्य की संजीवनी है। इसके विकास में मनुष्य-जीवन का उद्धार है।

बुद्ध, मुहम्मद, क्राइस्ट और हमारे गाँधीजी इसी एक तत्त्व के कारण पैंगबरों की तरह विख्यात हैं।

गिजू भाई मानते हैं कि जब मनुष्य में प्रेम घटता है तभी जीवन को निचोड़ डालने जैसे कलह-क्लेश खड़े होते हैं। वर्तमान जीवन-प्रणाली, लगता है जानबूझकर मनुष्य को इस तत्त्व से वंचित रख रही है। व्यापार से यह तत्त्व बहिष्कृत हो चुका है। दुनिया में यह तत्त्व प्रतिदिन घिस- मिटकर स्वार्थ के समतुल्य बनता जा रहा है। युद्ध के मैदान में इस तत्त्व का स्वप्न तक नहीं आता। विद्यालय में, बाजार में, कारखाने में अगर कोई इस तत्त्व के आधार पर जीने की बात कहे तो लोग बात को हँसी में उड़ा देते हैं। मित्र-मित्र के बीच, सेठ-नौकर के बीच, पति-पत्नी के बीच का सम्बन्ध भी इस तत्त्व से रहित देखने में आता है। इन्हीं कारणों से आज का मानव धार्मिकता रहित है। महामारी के दिनों में जब कोई अशिक्षित व उजड्ड समझा जाने वाला देहाती विद्वान्, ज्ञानी व प्रतिष्ठित समझे जाने वाले पुत्र-पुत्रियों द्वारा छुतहा रोग लग जाने के भय से परित्यक्ता वृद्धा की आगे आकर सेवा-शुश्रूषा करने लगता है, तो वहां धार्मिकता के दर्शन होते हैं। एक बड़ा राजा गरीबों की झोंपड़ी-झोंपड़ी तक जाकर अगर दीन-दुखियों की सेवा करता है, तो वह धार्मिक कहा जाएगा। कोई मूर्ख बाबा रास्ते जाते प्यासे राहजनों का जब अपनी आधी रोटी में से चौथाई उन्हें खिलाता है और अपने लोटे भर पानी में से आधा पानी पीने को देता है तो उसके हृदय में सच्ची धार्मिकता है, यही समझना चाहिए। गिजू भाई का मानना है कि निर्मल बुद्धि, क्रिया-शक्ति, कल्पना-शक्ति तथा प्रेम-इन चारों के सम्यक्-विकास में मनुष्य की धार्मिक वृत्ति का उदय है।[1]

4.3 पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम से तात्पर्य है-बालक को विद्यालय में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्राप्त होने वाले समस्त अनुभव जो उसके वांछित व्यवहार में परिवर्तन की दृष्टि से आवश्यक माने जाते हैं। गिजू भाई की पाठ्यक्रम की अवधारणा में निम्न विशेषतायें सन्निहित हैं-

पाठ्यक्रम रुचि-आधारित हो:- पाठ्य-वस्तु बालक की रुचि व रुझान के अनुरूप निर्धारित की जानी चाहिए। गिजू भाई कहते हैं - रुचि का कारण है विकास-वृत्ति। भय और प्रीति के कारण जो रुचि पैदा होती है वह तभी तक रहती है जब तक कि भय तथा प्रीति हो। ज्यों ही भय पैदा करने वाला या प्रेम देने वाला दूर हटता है और रुचि समाप्त हो जाती है या क्षीण हो जाती है। उसी परिणाम में स्मृति भी क्षीण हो जाती है। लेकिन इसके विपरीत जब व्यक्ति विकास के परिणामस्वरूप स्वयं ज्ञान हासिल करता है तो जब तक विकास उसे स्पर्श करता है, तब तक वह उसे याद रहता है। विकास की गति के बढ़ते ही नया आनन्द तथा स्मृति-प्रदेश भी बढ़ते जाते हैं। वे कहते हैं कि आपके बच्चे को गणित की संख्याएँ याद नहीं रहतीं, तो उसे गणित सिखाने का आग्रह अभी मत रखो। दूसरी-दूसरी

1- गिजू भाई बधेका - मेरी दृष्टि में मॉण्टेसरी पद्धति, बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 25

और बातें जो बातें उसे याद रह सकें, उनके द्वारा उसके विकास की योजना करो या पढ़ाई की व्यवस्था करो। एक नन्हें बालक का विकास अनेक तरह से होता है। अपनी पैनी नजरों से उसकी रुचियों का पता लगाएं और फिर ऐसा वातावरण दें कि जो उसकी रुचियों का पोषण करे। रुचियों के पोषण के साथ ही रुचि सम्बन्धी विषय का ज्ञान बालक आसानी से समझ जाएगा। वे कहते हैं कि इस दृष्टि से बालक को देखो और उसे सुविधा प्रदान करो।[1]

सीखने की क्रिया में बालक की स्वाभाविक रुचि होनी चाहिए तभी अधिगम सरल व स्थायी होता है। गिजू भाई कहते हैं कि जबरदस्ती पढ़ाने के मोह में माता-पिता बालक को पढ़ाई करा कर वस्तुतः उनका प्रेम खोते हैं, उन्हें पराया बनाते हैं, यह एक भयंकर स्थिति है कि जो हमें सचेत करती है।[2]

उनके अनुसार कोई बालक पाठशाला के लिए अयोग्य नहीं होता है परन्तु पाठशालायें उनके अनुरूप नहीं है अपनी वृत्ति व वैयक्तिक भिन्नतायुक्त विशेषताओं के पोषण का वातावरण न मिलने पर बालक का मन विद्यालय से हट जाता है। गिजू भाई कहते हैं कि जिस काम के वे लायक हैं, शाला उन्हें वह काम सिखाती नहीं।

मस्तिष्क के साथ-साथ हृदय की शिक्षा :- पाठ्यक्रम में ऐसे सभी विषय हों जिससे बालकों का ज्ञानात्मक, भावात्मक व क्रियात्मक विकास हो। गिजू भाई कहते हैं कि मान लें विद्यालयों के शिक्षण-प्रबंध में व्यवहार दृष्टि नहीं है, तब भी लोग तो यही कहेंगे कि उनमें मुख्यतः शैक्षिक दृष्टि है। यदि आज के शिक्षण-विषयों को देखें तो स्पष्ट होगा कि जो दृष्टि वहाँ व्याप्त है वह मात्र बुद्धि का शिक्षण करने वाली है। गणित, इतिहास, भूगोल, वाचन, लेखन आदि सब विषय ज्ञान देने के साथ-साथ मोटे तौर पर बुद्धि का शिक्षण करने वाले हैं। जब ज्ञान-सम्पत्ति का मूल्य बहुत अधिक लगाया जाएगा तो यह बात समझ में आने वाली है कि विद्यालयों में सिर्फ बुद्धि का शिक्षण देने का ही प्रबंध किया जाएगा। ऐसे में संगीत बाहर ही रहेगा। शिक्षा-संचालकों के सामने यदि शिक्षा की यह व्यापक समझ नहीं होगी कि शिक्षा अर्थात् शारीरिक, मानसिक एवं अंतः करण का विकास, तो हृदय की शिक्षा के साधन स्वरूप संगीत एवं चित्र आदि विषय विद्यालयों की परिधि से बाहर ही रखे जायेंगे।[3]

स्वाभाविक इच्छा तृप्ति में सहायक हो :- बालक को जबरन कुछ नहीं सिखाया जा सकता। सीखने के प्रति उसकी स्वाभाविक इच्छा हो तभी अधिगम होता है। गिजू भाई के अनुसार वस्तुतः शिक्षाशास्त्र की ऐसी मान्यता है कि जब बालक स्वेच्छा से कोई काम करता है तो उसके काम को करते-करते उसकी अमुक-अमुक शक्तियों की भूख तृप्त होती है। इस तृप्ति में, स्वाभाविक इच्छा की तृप्ति में

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 34

2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 61

3- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 62

ही बालक की शिक्षा निहित रहती है।"[1]

वे कहते हैं कि यदि जबरदस्ती बालक को विद्यालय भेजा जाएगा तो बालक को उस दिन का पाठ स्मृति में नहीं होगा। जिस बालक पर अकारण ही शिक्षक गुस्सा करेगा, उसे भी पाठ याद नहीं रहेगा। खुद को नहीं अपितु दूसरों को अगर शिक्षक मारता हो, तो उसे देखकर बालक के मन से वह शिक्षक उतर जाता है अथवा जो शिक्षक से डर जाता है कि उसे पाठ याद नहीं रहता। विद्यालय से बाहर कोई जुलूस जा रहा हो और शिक्षक कक्षा में पढ़ रहा हो तो बाहर जाने का मन रहता है। ऐसे में शिक्षक इंकार कर दे तो बालक की स्मृति बहरी हो जाती है।[2]

लड़के-लड़कियों हेतु समान पाठ्यक्रमः- गिजू भाई इस विचार को अमान्य मानते हैं कि लड़कियाँ कुछ विषयों में योग्य बन सकती हैं और लड़के कुछ खास विषयों में ही योग्य बन सकते हैं। उनके अनुसार यह तो एक जुल्म जैसी ही बात है कि अमुक विषयों में लड़के ही तैयार हों और अमुक विषय लड़कियों को आना ही चाहिए। लड़की युद्ध में वीरता दिखाए और लड़का रसोई बनाने में प्रवीणता का परिचय दे, तो हम इसमें बाधक नहीं बनेंगे। माता-पिता के मन से यह भ्रम दूर होना जरूरी है कि बालमंदिर में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के लायक शिक्षा की अधिक व्यवस्था है। वे पूछते हैं कि क्या संगीत और चित्रकला के साथ लड़कों की कोई शत्रुता हो सकती है? क्या ये विषय मनुष्य-जीवन की उत्तमता और सुन्दरता को सिद्ध करने के लिए उत्तम-से-उत्तम साधन नहीं है? जब से हमने संगीत और चित्रकला के साथ शत्रुता शुरू की है, तभी से हम सब व्यवहार-चतुर बनिए ही बनकर रह गए हैं। क्या हमने कभी सोचा भी है कि उसी समय से हमारा जीवन कितना अधिक क्षुद्र और अरसिक बन गया है? और, क्या गणित का विषय लड़कियों के लिए उपयोगी नहीं है? वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि "जिन-जिन विषयों का सम्बन्ध जीवन से है, वे सारे विषय बालक को प्रिय ही होते हैं। इस मामले में लड़के और लड़की के बीच कोई भेद रहना ही नहीं चाहिए। यद्यपि हमारे बालमंदिर में किसी भी विषय का ज्ञान अनिवार्य नहीं है, फिर भी अगर अनिवार्य शिक्षा देनी ही हो, तो गणित और इतिहास की अपेक्षा मैं चित्रकला और संगीत को ऊँचा स्थान दूंगा। यों कहिए कि पहला ही स्थान दूँगा।"[3]

गिजू भाई के मतानुसार मनुष्य वह है, जिसमें भावना होती है। संगीत और चित्रकला भावना के विषय हैं, इसमें ठंडी बुद्धि वाला व्यापारी-गणित नहीं होता। वे माता-पिताओं को उलाहना देते हुए कहते हैं कि आप अच्छे विषयों को लड़कियों के विषय मानकर अपने लड़कों को घटिया विषयों का शिक्षण देने और उनको पामर बनाने की क्यों सोचते हैं? माता-पिता कहते हैं, 'हमारे लड़के से चरखा चलवाकर आप उसको लड़की क्यों बना रहे हैं? चरखा चलाना तो लड़की का काम है।' कुछ लोग

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 109

2- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 71

3- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 55

यह भी मानते हैं कि बालमंदिर में तो लड़कों को लड़की बनने का शिक्षण दिया जाता है। कुछ माता-पिता शिकायत करते हैं कि लड़कों को पेड़ों पर चढ़ाकर और युद्ध का शिक्षण देकर क्या फायदा होगा? किन्तु चरखा तो कला विषय है। कला-विहीन प्राणी बिना पत्तों वाले पेड़ के समान होते हैं। लड़के खुद ही अपने रूप के कारण भयावने लगेंगे। जो सफाई के या झाड़ने-बुहारने के काम को औरतों का काम मानते हैं तो वे नामर्द हैं। मर्द तो तलवार और झाड़ू को समान मानते हैं। सच्ची स्त्री तो झाड़ू को एक ओर रखकर तलवार बाँधेगी और मैदान में उतरेगी। एक हथियार एक प्रकार का कचरा साफ करने के लिए है, और दूसरा हथियार दूसरे प्रकार के कचरे की सफाई के लिए है। यदि लड़कियाँ युद्ध के मैदान में नहीं उतरेंगी, तो चांदबीबी हमको कैसे मिलेगी? लड़कों को कातने नहीं देंगे, तो उनको घर में भोजन बनाकर देना होगा और लड़कियाँ लड़ाई लड़ने जायेंगी। अगर हम लड़कों और लड़कियों के बीच फर्क करेंगे, तो ऐसे विचित्र और सुन्दर परिणाम हमारे सामने आयेंगे।[1]

शिक्षा की परम्परागत अवधारणा में शिक्षक व छात्र दो ही ध्रुवों की कल्पना की गयी थी। पाठ्यक्रम को अपेक्षित ही कर दिया गया था जो आधुनिक अवधारणा के अनुसार शिक्षा का तीसरा महत्वपूर्ण ध्रुव है। इस सम्बन्ध में गिजू भाई कहते हैं - वर्तमान शिक्षण पद्धति में प्रमुख स्थान शिक्षक को दिया गया है। शिक्षक तथा शिष्य के बीच इतने प्रबल एवं प्रगाढ़ सहयोग की कल्पना की जाती रही है कि शिक्षण-विषय को उनके बीच रहने की जैसे गुंजाइश ही नहीं समझी जाती।[2]

गिजू भाई पाठ्यक्रम में विज्ञान, प्राणिशास्त्र, भूगोल, इतिहास, समाज विज्ञान, कला, संगीत जैसे परंपरागत विषयों के साथ बालक में व्यावसायिक कौशल उत्पन्न करने वाले विषयों को शामिल करना भी जरूरी मानते हैं। वस्तुतः उन्होंने विषय की अपेक्षा उसको पढ़ाने की पद्धति पर विशेष बल दिया है। पाठ्यक्रम बालक के विकास की अवस्थाओं के अनुरूप हो, उसकी रुचियों व अभिवृतियों पर आधारित हो, क्रिया केन्द्रित हो, जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों से जुड़ा हो, श्रम में आस्था उत्पन्न करने वाला, स्वावलम्बन, आत्मनिर्भरता व वैज्ञानिक सोच का विकास करने वाली हो। गिजू भाई इन विषयों व क्रियाओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने पर बल देते हैं।

सिलाई और कढ़ाई-बुनाई:- शरीर का पोषण जितना स्वाभाविक है उतना ही स्वाभाविक है इसका संरक्षण। संरक्षण के लिए अनाज, बर्तन, मकान आदि की मनुष्य ने जिस तरह खोज की, उसी तरह उसने सिलाई की भी खोज की। यह खोज जीवन के समानान्तर आज तक मनुष्य के साथ चली आई है तथा इसने मनुष्य को अपने में हमेशा प्रवृत्तिशील एवं रूचिशील रखा है।[3]

गिजू भाई मानते हैं कि शिक्षण का साधन स्व-साधन के रूप में हो तो बच्चे बिना किसी विक्षेप के तरीका अथवा ज्ञान शीघ्र हासिल कर लेते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार कपड़े का टुकड़ा

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 57
2- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 82
3- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 120

और सुई-धागा बच्चों के शिक्षण का सर्वोत्तम साधन हैं। गुड़िया या गुड्डे का हेतु ध्यान में रखकर उनके वस्त्र घघरी या ओढ़नी बनाने में बालक वांछित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि सीखने के पीछे उनका हेतु प्रबल होता है। लेकिन उनमें सिलाई के पीछे विद्यमान सुई-धागे की उपयोगिता और रीति की भूमिका-स्वरूप कल्पना का विचार नहीं होता। इसीलिए फ्रॉबेल को सुई-धागे के द्वारा कागज के कार्ड पर चित्रित्र छेददार चित्रों को भरने-भरवाने का काम बहुत महत्वपूर्ण नहीं लगा।[1]

वे कहते हैं कि जीवन में प्रयोग करने वाले लोगों ने किस घड़ी यह बात खोज निकाली कि मनुष्य के संरक्षण-मात्र में मनुष्य का आनंद नहीं समा जाता? पर पेट भरकर शरीर की जरूरतें पूरी करने के बाद, वैज्ञानिक खोजें करके बौद्धिक अपेक्षाएँ पूरी कर लेने पर हृदय अथवा भावना अथवा कल्पना अथवा कला की जरूरतें पूरी किए बिना उन्हें शुद्ध सात्विक आनंद नहीं मिलेगा, जब यह बात उन्हें समझ में आई, तब उन्होंने जीवन में उपयोगिता के साथ कला को जोड़ा। कसीदे की कला इस तरह वस्त्र की उपयोगिता के साथ जुड़ गयी है।[2]

गिजू भाई के मतानुसार कसीदाकारी और बुनाई के नमूने भी विदेशी के बजाय देशी होना चाहिए। भरत के जो आलेखन अभी हो रहे हैं, उनमें भी परिवर्तन-परिवर्द्धन होना चाहिए। इस दृष्टि से भरत की कसीदाकारी करने वालों और बुनाई करने वालों को चित्रकला तथा रंगों की अच्छी जानकारी हमेशा रखनी चाहिए। विद्यालयों में भी इन्हें जितना कुछ संभव हो सके उतना शामिल करना चाहिए।[3]

डाक-पेटी:- डाक-पेटी उन बालकों के लिए एक शैक्षिक प्रवृत्ति बन सकती है जिनको अक्षर-ज्ञान हो चुका हो। प्रत्येक विद्यालय और प्रत्येक घर में उसका स्थान तय है। माता-पिता अपने बालकों के नाम और बालक अपने माता-पिता के नाम मनोरंजन के लिए और मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान-चर्चा के लिए पत्र लिख सकते हैं।

डाक-पेटी याने एक सुव्यवस्थित दुनिया की संस्था। इस एक संस्था में आनन्द आने पर इस प्रकार की दूसरी संस्था को घर या शाला में शुरू किया जा सकता है। डाक-कार्यालय भी शिक्षण एवं व्यवहार की एक संस्था है। पत्र के द्वारा घर में या शाला में बैठे-बैठे चतुर माता-पिता और शिक्षक अगर चाहें तो बहुत-सा काम कर सकते हैं।

डाक-पेटी की इस प्रवृत्ति के द्वारा बालकों को पूरी डाक-व्यवस्था का बोध-पाठ सहज ही हाथ लग जाता है। पत्र-व्यवहार का ज्ञान सीखने की भी यह एक नायाब प्रवृत्ति बन जाती है। अध्यापक कक्षा में बालकों को उदाहरण देकर सिखाते हैं कि कैसे पते लिखे जाएं और कैसे छोटे-छोटे पत्र।

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 22

2- वही, पृ0 124-125

3- वही, पृ0 127

सबसे अधिक मनोरंजक और शिक्षाप्रद विभाग टिकटों का है। बाल-मंदिर में तरह-तरह की टिकटें बनाई जाती हैं-40-50 बाल-मंदिर के चित्र की, राष्ट्रध्वज की या बालक को पसंद किसी भी आकृति की। ये टिकटें प्रत्येक पत्र को बंद करके चिपकानी पड़ती हैं। टिकट-रहित कागज वितरित नहीं किया जाता। आर्थिक नियम का पालन करने वाले को ही सामाजिक संस्था का लाभ प्राप्त होता है। टिकटें बनाने में बालक नई-नई योजनाएं सुझाते हैं। इस विचारधारा के पीछे उनका यह ज्ञान विद्यमान रहता है कि दुनियाभर के डाकघरों में किन-किन की टिकटें चलती हैं और किस कारण से चलती हैं। परोक्ष रीति से बालकों को यह समझ में आ जाता है कि बालमंदिर में वे अपनी निजी टिकटें बनाकर चला सकते हैं। नए-नए आकार और प्रकार की टिकटों को चलाने के लिए बच्चे तरह-तरह के पत्र लिखते हैं और इस प्रकार पत्र-लेखन एवं उसके कारणों का अध्ययन सुलभ करते हैं।

रंगोली:- गिजू भाई की दृष्टि में रंगोली स्वत: चित्रकला नहीं, न ही चित्रकला का विशिष्ट स्वरूप है, परन्तु इसमें चित्रकला के ज्ञान का विशेष और नवीन उपयोगी है। इस हद तक रंगोली स्वत: [illegible] नहीं है, पर चित्र की सृजन-वृत्ति की अधिक व भिन्न रीति से अवकाश और गति देने का साधन हैं। मनुष्य ने अपनी एक ही शक्ति को अलग-अलग स्वरूपों में देखना पसंद किया है, और इस तरह मूलभूत अथवा बुनियाद रूपी कलाओं के सायों अथवा प्रतिबिंब स्वरूप अधिक कलाओं का मनुष्य के आनन्द के लिए विकास किया है।

सर्जन पहले से ही पूर्णता नहीं चाहता। दूसरे शब्दों में कहें तो कोई भी सर्जन आंतरिक भावों को पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सकता। अंत:करण में प्रत्यक्ष कोई कला-दर्शन इंद्रियों के द्वारा तथा स्थूल साधनों के द्वारा पूरी तरह प्रकट हो भी नहीं सकता। बालक भद्दे-भौंडे जैसे भी सृजन करें, उनके [illegible] न आएं। भाषण देने के या करके देने से हाथ में कुशलता नहीं आती वरन् जब वे अपने हाथों को बार-बार काम में लायेंगे और स्वेच्छापूर्वक काम करेंगे तो उनमें कुशलता आयेगी। अन्य कार्यों में जैसे पुनरावर्तन की जरूरत पड़ती है, वैसे ही रंगोली में भी पुनरावर्तन चाहिए, लेकिन पुनरावर्तन ऐच्छिक होना चाहिए।

रंगोली बालकों की सृजनशीलता को तथा कुछ हद तक प्रदर्शन वृत्ति को अवकाश देने के लिए होती है। न्यूनाधिक रूप में सर्जन की अभिरूचि सभी में होती है। अत: सभी बालकों को इस विषय में काम करने का अवकाश है। कुशलता सब नहीं प्राप्त कर सकते। फिर भी प्रवेश और [illegible] सभी के लिए संभव है। आज प्रवेश हुआ है, प्रवाश शुरू किया है, जो पाँच जन्मों में पूरा होगा।

सर्जन के आनन्द के साथ ही साथ रंगोली में कौशल-विकास का भी स्थान है। रंगोली के

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 144

बीच में विचूर्ण को छोड़ते हुए चित्र बनाने में स्नायु-संयम और गति दोनों का विकास होता है। रंगोली का आधार चित्र-शिक्षण है, पर चित्र-शिक्षण कराया जा रहा हो या नहीं, ऐसी तमाम शालाओं में रंगोली सिखाने का स्तर एक सरीखा रह सकता है। सृजन के सत्य सिद्धान्तों के आधार पर कहना न होगा कि सृजन स्वतंत्र एवं स्वय-स्फुरित वातावरण की माँग करता है। वह आदर्श को, दिशा-निर्देश को, सहायक और सहचर को तो कबूल करता है पर रटाने-घुटाने वाले को, पढ़ाने और भाषण झाड़ने वाले को स्वीकार नहीं करता। वह परीक्षा और पुरस्कार को स्वीकार नहीं करता। वह दिखावा और वाह-वाही नहीं चाहता। कला-शिक्षण की भांति रंगोली-शिक्षण में भी सर्वत्र इन नियमों को शालाओं को स्वीकार करना चाहिए।

मिट्टी का काम:- गिजू भाई मिट्टी के काम को बहुत महत्व देते हैं। प्राथमिक शालाओं में आजकल मिट्टी के काम को लगभग कतई स्थान नहीं है। गारा चूँथना लोगों के मन में एक हल्के किस्म का काम है।

गिजू भाई कहते हैं कि मिट्टी के काम का मैं अलग उद्देश्य मानता हूँ। हमें बालकों के अंतर्मन में जो व्यक्त करने का है, उसे मार्ग देना है। बालक अनेक तरीकों से अपने अंत:करण को व्यक्त करता है; कोई शब्दों से, कोई तूलिका से कोई छेनी से तो कोई स्वर से। बहिर्जगत की सामग्री और व्यक्त करने के साधन मिल जाएं तो जो व्यक्त होना है वह अपने-आप प्रकट हो जायेगा। बालक के हाथ में पेंसिल और कागज देंगे तो उसके मन में अगर मोर नाच रहा होगा तो वह मोर चित्रित करेगा, और अगर गधा खेल रहा होगा तो वह गधे को चित्रित करेगा। इसी तरह अगर उसे मिट्टी का काम दिया जायेगा तो परिणाम सामने आयेगा।[1]

मिट्टी के काम के लिए उत्तम वातावरण रचने की जरूरत है। जिस तरह चित्रकला में बालक को चित्र देखने देते हैं, वैसे ही उन्हें मिट्टी के खिलौने दिखाने के लिए घर में या स्कूल में रखे जाने चाहिए। खिलौनों से खेलते-खेलते बालक उनके आकारों का अच्छा-खासा परिचय ले लेते हैं। उस परिचय का उपयोग फिर व चित्रकला में और मिट्टी के काम में करते हैं। खिलौनों के ये खेल खिलौने सजाने तथा उनसे श्रृंगार रचने सम्बन्धी होने चाहिएं। उनसे खेले जाने वाले तरंगी खेल नुकसानदायी होते हैं। अलमारी में बंद करके रखे गये खिलौने बालक को कतई फायदा नहीं पहुँचाते। हाथी, घोड़ा, बिल्ली आदि खिलौने मिट्टी के काम वाले वातावरण में बहुत उपयोगी रहते हैं। ऐसे खिलौनों का एक वर्ग है, जबकि चाबी वाली मोटरें, ऐरोप्लेन आदि खिलौनों का दूसरा वर्ग है। ये वैज्ञानिक, यांत्रिक सिद्धान्तों की जानकारी कराते हैं। इस तरह की वृत्ति के विकास के लिए यह अच्छा वातावरण है। मिट्टी के काम के लिए मिट्टी के खिलौने ही उत्तम वातावरण है, रवड़ के या अन्य

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 132

पदार्थों के खिलौने निकृष्ट वातावरण देते हैं। खिलौने हमेशा सम्पूर्ण ही हों, ऐसा आग्रह नहीं रखना चाहिए। खिलौने मुख्य रूप से बालकों के मन में यह कल्पना जगाने के लिए हैं कि माटी के द्वारा तरह-तरह के आकार देकर खिलौने बनाये जा सकते हैं। इसके बावजूद श्रेष्ठ कलाकृतियों वाले खिलौनों का वातावरण कम लाभदायी नहीं होता। कलावृत्ति के संस्कार पैदा करने के लिए ऐसे खिलौने सर्वोत्कृष्ट होते हैं। अतः मिट्टी के काम की प्रेरणा देने के लिए माटी के खिलौनों का अच्छा संग्रहालय, प्रदर्शन अथवा पांच-पच्चीस खिलौने के प्रत्येक विद्यालय में होने जरूरी हैं।

गारे के खिलौने बनाते हुए बालक ज्ञानेन्द्रियों के विकास की परीक्षा देते हैं और साथ ही उनकी उपयोगिता को बढ़ाते हैं। कामेंन्द्रियों को भी काम में लाकर वे बलवान बनाते हैं। मिट्टी के काम से हाथ की उंगलियों में चीजें पकड़ने की ताकत आती हैं, उंगलियों की मदद से मिट्टी का काम करने वाली उंगलियां विचारों एवं भावनाओं को व्यक्त करने वाली औजार बन जाती हैं। जिस तरह वाद्ययंत्र बजाने में उंगलियाँ औजार बनती हैं, उसी तरह मिट्टी के काम में भी औजार बन जाती हैं। तार पर ध्वनि के मार्फत गीत की प्रस्तुति में उंगलियों की नाजुक संस्कारिता अत्यावश्यक है, वैसे ही मिट्टी के पिंड से आकार निर्मित करने में भी उंगलियों की शिक्षा आत्यावश्यक है और यह शिक्षण मिट्टी के खिलौने बनाने से शुरू होता है।[1]

गिजू भाई सचेत करते हैं कि हमें ऐसा आग्रह नहीं रखना चाहिए कि बालक अमुक वस्तु ही बनाए। अपने प्रखर अवलोकन को वह माटी के माध्यम से व्यक्त करेगा ही। ऐसे अवलोकन उसके आसपास की दुनिया के हैं, ऐसा लगेगा; वातावरण की छाप कितनी दृढ़ पड़ती है, यह समझ में आएगी; और बालक के मन का प्रतिबिम्ब भी उसमें पड़ेगा। उनके अनुसार मिट्टी का काम बालक को कोई प्रवृत्ति देने के लिए नहीं है। प्रदर्शन के लिए नमूने तैयार करने हेतु भी यह प्रवृत्ति नहीं है। मिट्टी के काम का उद्देश्य बालक की सर्जनात्मक वृत्ति को मिट्टी के द्वारा व्यक्त होने देना है। इसके लिए बालक को प्रवृत्ति मिलेगी, उसकी एकाग्रता दृढ़ होगी, हाथों के स्नायु पुष्ट होंगे, मिट्टी की मिलावट का उसे थोड़ा-बहुत ज्ञान होगा ये तमाम अवांतर लाभ हैं। मुख्य लाभ तो सर्जक वृत्ति को होने वाला संतोष है। बालकों की रूचि-भेद को ध्यान रखा जाए।

शान्ति का खेलः- शान्ति किसी भी विषय में युक्त होने की अर्थात् योग की प्रथम आवश्यक स्थिति है। शिक्षा का उत्तम कार्य पूर्ण शान्ति चाहता है। यह शान्ति आंतरिक व बाह्य दो प्रकार की है। बाह्य शक्ति अर्थात् हमारे आसपास शान्ति-विक्षेपक तत्त्वों का अभाव, विरोधक प्रवृत्तियों का बहिष्कार। आंतरिक शान्ति अर्थात् शरीर एवं मन की स्वस्थता, शरीर के ऊपर का स्थूल नियंत्रण तथा मन की अचंचलता अर्थात् विराम या स्थिरता।

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 129

गिजू भाई कहते हैं कि आज के विद्यालयों में जाकर देखेंगे तो कान पड़े बोल सुनाई नहीं देंगे। अध्यापकों के कंठ से निकली 'चुप-चप' की ऊँची आवाज विद्यार्थियों के कोलाहल से स्पर्धा करती महसूस होगी। अध्यापक डंडा फटकारेगा और चारों ओर चुप्पी छा जाएगी। लेकिन फिर से मक्खियों वाली भिनभिनाहट शुरू हो जायेगी और थोड़ी ही देर में सब्जी मण्डी वाला शोरगुल शुरू हो जायेगा। समझाने के लिए बैठा अध्यापक ऊँची आवाज में बोलता है; वैसी आवाज में बोलना उसकी अनिवार्यता है। विद्यार्थी उसके बिना दबते और पढ़ते नहीं। अध्यापक पांच-पांच घंटे गला फाड़-फाड़ कर थक जाता है और विद्यार्थियों के कान ऊब जाते हैं। ऊँची कक्षाओं वाले विद्यालयों में कक्षाएं चलते समय सन्नाटे जैसी शान्ति मालूम पड़ेगी; फिर अध्यापक की ही आवाज सुनाई देगी। अगर बाहर थोड़ी सी भी आवाज होगी तो सबके कान खड़े हो जायेंगे और सबका ध्यान उस तरफ चला जाएगा। परन्तु ज्योंही कक्षा छूटेगी, कि जबरदस्त कोहराम मालूम पड़ेगा। अब तक दबाकर रखी गयी शान्ति का बदला लेने के लिए विद्यार्थियों में जबरदस्त अशान्ति-अस्वस्थता मालूम पड़ेगी। प्रथम प्रकार की अशान्ति निर्बल नियंत्रण का परिणाम है, जबकि दूसरे किस्म की शान्ति सख्त नियमन की परिणति है। दोनों एक ही रूप के हैं, दोनों में स्वयं-नियमन की कसर है।[1]

आज की अशान्ति हमें निर्बल बना रही है:- हमारे विद्यालय हमारे घर एवं समाज के प्रतिनिधि मात्र हैं। गिजू भाई प्रश्न करते हैं कि कितना शोर-शराबा होता है हमारे घरों में? हम लोग बिना बात कितना ज्यादा बोलते हैं। वाणी पर नियंत्रण और संयम का विचार ही हमें नया लगता है। एक साथ सबों का बोलना और एक दूसरे की बातें बहुत कम सुनना मानो हमारा स्वभाव हो गया है। एक को सुनाने के लिए हम इतनी ऊँची आवाज में बोलते हैं मानो दस-बीस लोगों को सुनाना हो। हमारी सब्जी मंडी, बाजार, जातीय भवन, देव-मंदिर आदि में जहां भी देखेंगे, वहाँ हमें एक ही बात का आभास होगा कि हम बहुत ज्यादा 'कोलाहलिए' हो गये हैं। सुबह से शाम तक का हमारा व्यवहार जिस तरह गर्म वातावरण में चलता है, उसी तरह अशान्त वातावरण में चलता है। इस तरह एक तरफ यह गर्म आबोहवा हमारे शरीर को शक्तिहीन करने में लगी है तो दूसरी तरफ यह अशान्ति हमारे ज्ञानतंतुओं को निष्क्रिय कर रही है। हमारी थकान का एक ठोस कारण है अशान्ति। हम गाँव में एकान्त में रहते हुए डरते हैं। एकान्त में रहना हमारा सुन्दर काव्य है, परन्तु उससे हम दूर भागते हैं।

बालक में शान्ति विकसित करने के लिए डॉ0 मॉण्टेसरी ने दो साधन प्रयुक्त किये हैं। एक साधन है बालकों के निमित्त प्रबोधक साहित्य और दूसरा साधन है शान्ति का खेल। जब बालक प्रबोधक साहित्य को काम में लेते हैं तो उनका पूरा-का-पूरा कमरा एक उद्योगी व शान्त समाज के जैसा लगता है। पूरा कक्ष चेतना का प्रेरक बन जाता है तथा देखने वालों को विराम देता है।

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 149

प्रबोधक-साहित्य शान्ति-प्रेरक है। नन्हें बच्चों में सीखने की जबरदस्त भूख होती है, इसी से वे अधिक चंचल लगते हैं। जब उन्हें उचित पोषण मिल जाता है तो वे स्वस्थ बन जाते हैं और चंचलता के बजाय शान्ति अनुभव करते हैं।[1]

निःसंदेह बालक या मनुष्य शान्तिप्रिय है। वह अंतर्मुखी होना चाहता है। पर वर्तमान अशान्ति का, बहिर्मुखता का प्रवाह उसे खड़े नहीं रहने देता। उसे शान्ति के पास जाने नहीं देता।[2]

शान्ति के खेल को सचमुच सफल बनाना हो तो गिजू भाई के अनुसार तीन बातें आवश्यक हैं। एक- शिक्षक की योग्यता, दूसरी- वातावरण की जमावट और तीसरी- बालकों की अभिमुखता व तैयारी। शान्ति का वातावरण शान्ति-प्रेरक है। अतः शान्तिमय वातावरण निर्मित किया जाये। खेल का कमरा शान्ति प्रेरक हो, हल्की कलात्मकता युक्त, सुगंधमय हो। शिक्षक को शान्ति के खेल के अंगों को समझते हुए धीमे चलना, धीमे दौड़ना, धीमे बैठना, धीमे बोलना आदि सब काम धीमें और सफाई से करना सिखाना है। लेकिन यह काम उपदेश से नहीं, सामने क्रिया करके, सब बालकों के सामने वह क्रिया करके तथा बालकों को उस क्रिया की सूचना देकर शिक्षक शान्ति-अशान्ति के रूपों की तरफ बालकों का ध्यान खींचेगा और उनका प्रत्यक्ष अनुभव समझाएगा। जिस समय शिक्षक शान्ति की क्रीड़ा के अंगों को सिद्ध कर रहा होगा उस समय वह बालकों के सामने उनकी पूर्णता प्रस्तुत करेगा। नए बालकों के लिए वे तमाम बातें एक ही दिन में सिद्ध करने योग्य नहीं होंगी। शरीर के साथ इंद्रियों की तथा मन की एकाग्रता होगी, शान्ति बढ़ेगी।

उनके अनुसार खेल तभी तक चलेगा, जब तक कि वह बालकों को पसंद आएगा। अभिमुखता और प्रसन्नता हो तभी तक उसका आनन्द रहता है, अन्यथा निरर्थक दबाकर रखने जैसा ही होगा। याद ही रखना चाहिए कि यह खेल अनिवार्य कभी न हो। इसके प्रति प्रेम उत्पन्न किया जायेगा, तभी इसका फायदा मिलेगा। आज का प्रत्येक विद्यालय अगर एकमात्र शान्ति की क्रीड़ा को ही यथार्थ रीति से दाखिल कर सके तो हमें शोर-शराबे के एक रोग से तो वर्षों बाद मुक्ति मिल सकेगी, हम आज की तुलना में और अधिक सचेतन बन सकेंगे। शान्ति की क्रीड़ा का असली हेतु समझकर उसके खरे स्वरूप में आयोजित करना चाहिए।

प्रकृति का परिचयः- प्रकृति और मनुष्य दोनों अलग नहीं है। दोनों उस एक ही सिरजनहार की अलौकिक सृष्टि है। मनुष्य ने आज तक प्रकृति के बीच रहकर, प्रकृति की सेवा करके, प्रकृति से प्राण प्राप्त करके, प्रकृति के साथ मित्रता करके और कभी-कभार प्रकृति पर विजय प्राप्त करके अपनी प्रगति की है। प्रकृति ने मनुष्य को काव्य की कल्पना दी है, शारीरिक बल के पोषक तत्वों की प्रतिपल भेंट दी है तथा सुख के अनेक साधन उदारतापूर्वक उपलब्ध कराये हैं। गिजू भाई कहते

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 152

2- वही, पृ0 153

हैं कि ऐसी उदार प्रकृति से हम निरंतर दूर जाते जा रहे हैं, किताबी पढ़ाई से यह दूरी और अधिक बढ़ती जा रही है। समझदार लोग प्रकृति का ज्ञान देने के लिए किताबों में पाठ रखते हैं और पढ़ने वालों को प्रकृति से विमुख बनाने की गलती कर रहे हैं। वस्तुत: प्रकृति का लाभ लेने के लिए हमें प्रकृति से विमुख बनाने की गलती कर रहे हैं। वस्तुत: प्रकृति का लाभ लेने के लिए हमें प्रकृति के पास जाना चाहिए, प्राणवान प्रकृति के पास बैठना चाहिए, उसकी सेवा करनी चाहिए।[1]

गिजू भाई का मत है कि प्रकृति का परिचय शाला में नहीं, वरन शाला से बाहर दिया जाना चाहिए। जिस प्रकार प्रकृति स्वाभाविक है उसी प्रकार इसका परिचय भी स्वाभाविक होना चाहिए। पिंजड़ों में बन्द पक्षियों या पशुओं का अध्ययन प्रकृति का परिचय नहीं है। किताबों में खिंचे हुए आकाश के नक्शे प्रकृति के परिचायक नहीं हैं। बाड़े में पड़े पत्थरों की ढेरी के पहाड़ बनाकर तथा घर के मटके का पानी गिराकर उसकी बगल में बनाई गई नाली से पर्वत एवं नदी का परिचय नहीं दिया जा सकता। प्रकृति-परिचय के लिए बालक को और विद्यार्थियों को शहर के बन्द कैदखाने से विशाल धरती पर, दो हाथ पहुँचे जितनी दृष्टि मर्यादा में से नजर न पहुंचे जितनी दूर वाले क्षितिज के सामने, मिलों-कारखानों के शोरगुल से मधुर-कंठ वाले पक्षियों के बीच, उकरड़ी पर बैठे गधों और पानी की पखाल खींचते पाडों से छलांग मारकर चौकड़ी भरते हरिणों के पास, नाबदान और गदंगी की ढेरी के पास से खिलखिलाती बहती नदियों और गगन चुम्बी पहाड़ों-पहाड़ियों के पास ले जाना चाहिए। वहाँ उन्हें प्रकृति के सौन्दर्य का पान करने के लिए खुला छोड़ देना चाहिए।[2]

वे कहते हैं कि प्रकृति में उन्मुक्त भाव से विचरण करते, खेलते विद्यार्थियों को ही प्रकृति का सच्चा परिचय हो पाता है। प्रकृति का ज्ञान जिस स्थान पर पड़ा है, वहाँ जाने वालों को वह खुले रूप में बिना मूल्य उपलब्ध होता है, जबकि किताबों में भरा ज्ञान बन्द है, किताब की कीमत देने पर ही उपलब्ध है और वह भी तोता-रटन्त वाला ज्ञान है।[3]

प्रकृति परिचय में निम्न बातों का समावेश किया जा सकता है -

1. पशु-पक्षियों तथा जन्तुओं का परिचय, पक्षियों का अध्ययन।
2. पेड़-पौधों का सामान्य ज्ञान और अध्ययन।
3. नदी, खड्डों, पर्वतों एवं झरनों का सामान्य परिचय तथा अध्ययन।
4. तारों का परिचय व अध्ययन।
5. खेतों, सागर किनारों, मैदानों, जंगलों आदि का परिचय तथा अध्ययन।

परिचय को अध्ययन से अलग रखा जा सकता है। खुली आँखों और खुली इन्द्रियों से घूमने-फिरने वाले विद्यार्थी परिचय प्राप्त कर सकते हैं। परिचय प्रचुर भ्रमण से प्राप्त होता है। गिजू

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 165
2- वही, पृ0 166
3- वही, पृ0 167

भाई कहते हैं कि जिनकी इंद्रियाँ विकसित नहीं हैं, वे घूमने पर भी, कुछ देख नहीं सकते। अनुभव नहीं कर सकते।

घर लौटकर आराम करते समय या खाना खाते समय प्रकृति के सम्बन्ध में जब वे प्रस्तावनापरक बातें करते हैं तो विद्यार्थियों को प्रकृति के अवलोकन की नूतन दृष्टि मिलती है तथा नए-नए क्षेत्र उघड़ते हैं। प्रकृति का अध्ययन करने वाले किसी साथी की जरूरत पड़ती है। प्रकृति का अध्ययन जीवन्त बना देने वाला व्यक्ति प्रवास में हमारे साथ होना चाहिए। ऐसे व्यक्ति के बगैर प्रवास बेकार जाता है। प्रकृति का अध्ययन दृढ़ करने का साधन है प्रकृति का परिचय संगृहीत करना। प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य या प्रकृति का प्रभाव या प्रकृति की महत्ता या प्रकृति का दिव्य दर्शन तो मनुष्य अपने हृदय में भर लेता है, नोट-बुक के पन्नों में या संग्रहस्थल पर उसे लाया नहीं जा सकता। पर कितनी ही स्थूल चीजों को संगृहीत किया जा सकता है और उनका संग्रह करना चाहिए।[1]

गिजू भाई के अनुसार प्रकृति का संग्रहालय प्रत्येक घर में होना चाहिए। प्रत्येक विद्यालय के लिए तो वह अनिवार्य ही है। प्रकृति में घूम आने वाले विद्यार्थी उस संग्रह को देखकर अपनी स्मृति ताजा करेंगे तथा अपनी वैज्ञानिक दृष्टि का अध्ययन व्यापक बनायेंगे। प्रकृति सम्बन्धी अध्ययन को पुष्ट करने के लिए प्रकृति विषयक पुस्तकों एवं चित्रों का अवलोकन एक और साधन है। प्रकृति के अध्ययन के लिए प्रेम प्रकृति परिचय और तदुपरान्त पुस्तक-वाचन महत्त्व रखता है। प्रकृति के अध्ययन का एक पक्ष 'ऐसा किसलिए?' अथवा 'ऐसा क्यों?' अर्थात् बौद्धिक जिज्ञासा के प्रदेश का है। प्रकृति के इस पक्ष का अध्ययन शिक्षक के व्याख्यान द्वारा क्रमिक अभ्यासक्रम या क्रमिक वाचन द्वारा हो सकता है। तर्क-शुद्ध रीति से वस्तु को समझाने वाला शिक्षक प्रकृति के रहस्यों को समझाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ऐसा शिक्षक वैज्ञानिक अभिवृत्ति का होना चाहिए।[2]

प्रकृति परिचय हेतु अध्यापकगण विद्यार्थियों को शाला से बाहर भ्रमण के लिए ले जाते हैं। शाला की कैद से छूट कर नाचते-कूदते विद्यार्थियों को देखने में मजा आता है। उनको जरा-सी मुक्ति मिलते ही, उससे उनका दिल किस कदर खिल उठता है। वे विद्यालय में शिक्षक के प्रति और ज्यादा प्रेमिल एवं अभिमुख बन जाते हैं। भ्रमण द्वारा पशु-पक्षियों की पहचान, आवास, भोजन आदि की जानकारी, पेड़-पौधों के दर्शन व नाम की जानकारी अच्छे ढंग से दी जा सकती है। प्राचीन मंदिर, खण्डहर, बावड़ी, कुएँ आदि स्थल छात्रों को दिखाए जायें।

वे कहते हैं कि प्रकृति के परिचय में आने से विद्यार्थियों को रोकें नहीं। उनको नदियों के जल में नहाने दो, पहाड़ों पर चढ़ने दो, गुफाओं और कंदराओं में जाने दो। उनके भीतर विद्यमान साहसिक वृत्ति को बाहर निकालने के लिए उनके सामने अनेक क्षेत्र खुले छोड़े जाएँ।

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 170
2- वही, पृ0 171

जंगलों में घूमते-घूमते अगर किसी रात वहाँ रहने का कार्यक्रम बनाया जाए तो उससे विद्यार्थियों को और अधिक समृद्ध बनाने का अवसर मिल सकता है। जब-जब भी विद्यार्थियों को समय हो, तो उन्हें पैरों से चलकर प्रवास करना चाहिए, वही सर्वोत्तम होता है। इससे प्रत्येक बातों का जो प्रत्यक्ष अनुभव होता है, वह दूसरी तरह से नहीं होता। पैरों द्वारा यात्रा करने में जब-जहाँ अच्छा लगे तब वहाँ रुककर कम या अधिक समय तक अवलोकन किया जा सकता है। मोटर या रेलगाड़ी से ऐसा संभव नहीं हो पाता है।

सुवाचन दक्षता:- वाचन में छटा, हलक, ध्वनि-बल, स्पष्टता, शुद्धि आदि कौशलों की तथा भाव-प्रवणता, रसिकता आदि कलाओं की पूरी आवश्यकता होती है। जिस बालक को अर्थ समझ में आता है वह सुन्दर वाचन कर सकता है, गिजू भाई की दृष्टि में यह सोच गलत है।

उनके मत से अर्थ की समझ और वस्तु में गहन रस- ये दो भिन्न बातें हैं। भले ही कोई वाचक रसिक क्यों न हो, सुन्दर वाचन में वह निष्फल सिद्ध होता है। दोनों वस्तुओं का योग ही सुवाचन-जनक है। अर्थ-युक्त तथा रस-युक्त वाचन भी तैयारी के बिना बहुधा नीरस हो जाता है। तैयारी तो प्रयत्न से सिद्ध होती है, पर भावार्द्रता तो भीतर से ही आनी चाहिए। तैयारी जितनी अधूरी होगी, उतनी ही भाव के प्रकट होने में कठिनाई आएगी। व्याकरण-सम्मत भाषा बोलने वाला कोई व्यक्ति अगर तुतलाए, तो कर्ण-कटु लगेगा, वैसे ही बिना तैयारी का वाचन शुष्क और कटु लगेगा।

वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि आज की शालाओं में सुवाचन सौभाग्य से ही कहीं देखने को मिलता है, इसका कारण यही है कि हमारे शिक्षक और परीक्षक वाचन को कला की दृष्टि से नहीं लेते। वाचन-कला की दृष्टि से सिखाने के लिए आदर्श वाचन को हमारे शिक्षण-कार्य में प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। अब तक के वाचन की वस्तु; ज्ञान की दृष्टि से अर्थात उससे कितना ज्ञान मिलेगा, इस एक ही दृष्टि से, पसन्द की जाती रही है। संगीत की भाँति सुवाचन का अपना ही एक आनन्द है। जिनके पास कान हैं वे अपने वाचन की मधुरता को समझ सकते हैं।[1]

अत: विद्यालयों के विभिन्न कार्यकलापों में बालक को इस क्षमता के विकास के अधिकाधिक अवसर प्रदान किये जाने चाहिएँ।

भाषा :- भाषा का विकास वातावरण पर निर्भर होता है। अगर बालक अकेला रहता है या ऐसा संयोग हो कि अधिक समय तक उसे अकेला रहना पड़े, तो उसे कानों से भाषा सुनने का मौका नहीं मिलता। भाषा सामाजिक-जीवन की आवश्यकता है। जिस बालक के आसपास सामाजिक-जीवन कम होता है या बिल्कुल नहीं होता, उसकी भाषा का विकास नहीं होता। प्रारम्भिक भाषा शिक्षण के निर्माण में घर की भूमिका ज्यादा होती है। परिश्रमी माता-पिता के बच्चों को घर में कोई बुलाने वाला या

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 9

वार्तालाप करने वाला नहीं मिलता। इससे बालक की कर्णेंद्रिय को सुनने का अवसर नहीं मिलता और भाषा शुरू नहीं होती। कई घरों में जहाँ सब लोग जल्दी-जल्दी बोलते हैं या शोरगुल मचाते हैं, वहाँ के बालकों को भी भाषा बोलना सीखने में समय लग जाता है।[1]

भारत में मातृ-भाषा की अवहेलना व आंग्ल भाषा के प्रति अत्यधिक ललक दिखायी देती है। गिजू भाई कहते हैं कि हमारे देश को छोड़कर इस तरह का मोह दूसरे देशों में शायद ही कहीं पाया जाता है। पहले स्वभाषा का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाने के बाद ही विदेशी भाषा की पढ़ाई शुरू की जा सकती है। जब बालक दो या तीन भाषाओं को एक साथ बोलते हैं, तो हमको वह अच्छा लगता है। किन्तु एक साथ दो-तीन भाषाएँ सिखाने से वे किसी एक भी भाषा को भलीभांति बोल नहीं पाते। असल में जब विचार करने की उनकी अपनी कोई एक निश्चित भाषा नहीं होती, तो वे भाषा की गहराई में नहीं जा पाते। हमारी इस दुनिया में कई लोग इस प्रकार से कई-कई भाषाएँ बोलते हैं, किन्तु वे वास्तव में भाषा के अभ्यासी नहीं बनते और न वे यह सोच ही पाते हैं कि भाषा के क्षेत्र में वे अपना कोई योगदान दें। इसलिए एक बार में विद्यार्थी को एक ही भाषा सिखानी चाहिए और वह उसकी अपनी भाषा ही होनी चाहिए।[2]

उनके अनुसार भाषा की प्रगति को और उसके गठन को समझाने के लिए व्याकरण संयोगीकरण-पद्धति से सिखाया जा सकता है। भाषा-शास्त्र का अध्ययन करने वालों के लिए यही ठीक है। परन्तु विद्यार्थियों को तो पहले भाषा सिखानी चाहिए और बाद में उनको व्याकरण का बोध कराना चाहिए।

संगीतः- संगीत को गिजू भाई एक अत्यावश्यक विषय मानते हैं। वे कहते हैं कि प्राथमिक विद्यालय में संगीत का विषय शुरू करने से पहले पाठशाला के प्रत्येक शिक्षक को यह बात समझ लेनी चाहिए कि वे संगीत के प्रति अत्यधिक सहानुभूति रखें तथा संगीत विषय को गणित की तुलना में अधिक महत्त्व दें। इस विषय की विस्तार से जानकारी दें तथा इसकी विशेषताएँ समझाएँ।

मनुष्य जाति में से मानवता क्षीण होती जा रही है। व्यवहार में ठंडापन और मारकाट बढ़ने लगी है। जीवन में कलह और कटुता बढ़ रही है, आदमी थक गया है। संसार नीरस लगने लगा है। ऐसे समय में प्राचीन इतिहास या ऐसे शिक्षण से ऊब-उकताहट घटने के बजाय बढ़ जाती है। संगीत शिक्षण और इसके अनुशीलन से जीवन में ठहराव लाने में कुछ मदद अवश्य मिले तो मिले। अतः गिजू भाई की दृष्टि में संगीत का अनुशीलन प्रारंभ से ही किया जाना अभीष्ट है।[3]

प्रत्येक मनुष्य की सर्जनात्मक वृत्ति का आविर्भाव एक ही रीति से नहीं होता। मनुष्य के विकास की उच्च्व कक्षा के कारण अथवा रूचि की वजह से सर्जनात्मक वृत्ति अलग-अलग मनुष्यों

1- गिजू भाई बधेका -माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 76
2- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 73
3- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 93

में अलग-अलग रूप से बाहर आती है। एक व्यक्ति रूप-रंग द्वारा प्रधानतः अपने अन्तर स्वरूप को बाहर लाएगा तो समर्थ चित्रकार कहलाएगा, जब दूसरा ध्वनि के मधुर संवाद द्वारा स्वयं को प्रकट करेगा तो उसे संगीत का नाम मिलेगा, तीसरा क्रियाशक्ति का अद्‌भुत आविर्भाव करके कर्मयोगी का नाम कमाएगा, तो चौथा सेवा करके अपना प्रेमस्वरूप प्रकट करेगा।

गिजू भाई संगीत को भी कलात्मक सर्जन तथा प्रकृति का आविर्भाव मानते हुए कहते हैं कि यदि शारीरिक एवं बौद्धिक सर्जनों के उन्नयन के लिए शिक्षा का प्रबन्ध मान्य है तो शिक्षा में हार्दिक सर्जन को भी स्थान मिलना चाहिए-यही नहीं, उसका स्थान श्रेष्ठ होना चाहिए क्योंकि शरीर, मन तथा हृदय में हृदय के विकास का महत्त्व विशेष है। इसीलिए प्राथमिक शाला में हृदय की शिक्षा देने वाले अनेक विषयों में से दो-एक को स्थान दिया जाना चाहिए ओर उनमें संगीत तथा चित्रकला को प्रथम स्थान देना चाहिए।[1]

चित्रकला:- कुछ किंडरगार्टन शालाओं में चित्रकला विषय पढ़ाया जाता है, पर वहाँ भी इस विषय का शिक्षण यंत्रवत् रहता है। बालकों में चित्रकारी करने-सीखने की एक लहर सी आती है और कुछ समय के लिए उन्हें कुछ करने-धरने को मिलता भी है, लेकिन चित्रकारी के प्रति उनमें रुचि नहीं बन पाती। यह संभव है कि किसी बालक का चित्रकार मन इन प्रयासों से शिक्षक की नजर में चढ़ जाए और शिक्षक उसे आगे बढ़ाने के लिए कोई खास योजना बनाये या बनवाये!

किंडरगार्टन शालाओं में प्रारंभिक कक्षाओं में ही चित्रकला चले तो चले, जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं वैसे-वैसे यह काम कम होता जाता है अर्थात् चित्रकला को समुचित स्थान नहीं दिया जाता। जब तक छोटे बालकों को गणित आदि कठिन विषय अधिक समय तक पढ़ाया जाना शुरू नहीं होता, तब तक भले ही बालक चित्रकला विषय में कुछ टेढ़ी-तिरछी रेखाएँ खीचें या रंग बिगाड़ें। ऐसी उदार मान्यता की वजह से जहाँ-तहाँ थोड़ी बहुत चित्रकला की पढ़ाई चलती है या चलाई जाती है।

इसके विपरीत नूतन शिक्षण प्रणाली के अनुसार चलाये जाने वाले बालमंदिरों में चित्रकला विषय को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है, यही नहीं, वहाँ के बालकों के लिए चित्रकला एक अत्यन्त प्रिय विषय बन जाता है। यह बात प्रयोगों के द्वारा सिद्ध हो चुकी है कि बाल-शिक्षण में चित्रकला-विषय बहुत जरूरी और महत्वपूर्ण है। बालमंदिरों ने बालकों में विद्यमान स्वाभाविक आंतरिक शक्ति को विकसित करने के लिए इस विषय को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है और बालकों को इस विषय के द्वारा बड़े अच्छे परिणाम मिले हैं।[2]

चर्खा:- गिजू भाई प्राथमिक विद्यालयों में चर्खे द्वारा कताई को अत्यन्त उपयोगी कार्य मानते हैं। उनके अनुसार – बालक क्रियात्मक वृत्ति से कातते हैं, ज्ञानात्मक वृत्ति से कातते हैं अथवा कलात्मक वृत्ति

1- गिजू भाई बधेका -प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 64

2- वही, पृ0 19

से कातते हैं। निश्चय ही चर्खे में यह गुण है कि यह बालकों में विद्यमान अलग-अलग वृत्तियों को बाहर लाता है-हमारे समक्ष प्रकट कर देता है। डॉ0 मॉण्टेसरी के नियम के अनुसार चर्खा एक ऐसा साधन है जो स्वयमेव सीखने में मदद देता है। चर्खे का ज्ञान न भाषण का विषय है, न नकल का। किसी भी साधन का एक बार उपयोग करना जान लेने के बाद उसके उपयोग को सिद्ध करने के लिए जब-जब बालक प्रयत्न करने लगते हैं तथा प्रयत्न एवं अनुभव से उस साधन के सही एवं सम्पूर्ण उपयोग तक पहुंच जाते हैं तो वह साधन अपने आप बालकों को शिक्षण देने लगता है, चर्खा उक्त प्रकार का साधन है।[1]

गिजू भाई चर्खे के आलोचकों को उत्तर देते हुए कहते हैं कि पूर्व और पश्चिम के कई लेखक बुनाई के समग्र कार्य को कला को कृति कहते हैं, फिर भी आज विद्यालयों में चर्खे की प्रवृत्ति शुरू करने के खिलाफ बोलने वाले कहते हैं कि चर्खे अथवा बुनाई की शैक्षिक मूल्यवत्ता नहीं है। इसी तरह चर्खे में हाथ हिलाना पड़ता है या बल का प्रयोग करना पड़ता है अत: इसकी शारीरिक-शिक्षा सम्बन्धी मूल्यवत्ता है। स्पर्श और आँख की बारीकी की वजह से ही सुन्दर धागा निकल सकता है, अत: चर्खे की इंद्रियों के शिक्षण में मूल्यवत्ता है, अथवा चर्खा चलाने में मनुष्य की यांत्रिक बुद्धि अथवा कल्पना का उपयोग होता है अत: चर्खा बौद्धिक शिक्षण हेतु महत्वपूर्ण है, या फिर चर्खे के परिणामस्वरूप सूत प्राप्त होता है, अत: इसकी आर्थिक शिक्षण हेतु मूल्यवत्ता है, ऐसा मानकर चलना एक भूल है। परिणाम मूल जानने का साधन है सचमुच, पर सही बात परिणाम नहीं अपितु कारण है। अनिच्छा से सूत कातने वाले बालक सूत कातने में परिणाम की दृष्टि से उन लड़कों से अलग नहीं हैं जो इच्छा से कातते हैं लेकिन हेतु-दृष्टि से कारण दृष्टि से तो जरूर अलग पड़ेंगे ही। तब चर्खे की शैक्षिक मूल्यवत्ता जानने के लिए यह सिद्ध करना ही होगा कि स्वेच्छा से कातने वाले बालकों में कौन-कौन सी स्वयंस्फुरित प्रवृत्तियाँ देखने में आती हैं, किन-किन वृत्तियों को तृप्त करने के लिए बालक कातते हैं और क्या-क्या परिणाम दिखाते हैं।[2]

खेल-कूद:- खेल बालकों को स्वाभाविक रूप से प्रिय होते हैं। शैशवावस्था में तो वह हाथ-पैर हिलाकर अपनी जरूरतें पूरी कर लेता है। बचपन में बालक चलने की हलचल करके मन को आनन्द के साथ-साथ अपने शरीर को व्यायाम का लाभ देता है। अपने जिन मजबूत पैरों से बड़े इतने चल-फिर सकते हैं, उन पैरों को बचपन में इसकी खासी तैयारी करनी होती है और यह तैयारी तो चलकर ही की जा सकती है। इसके लिए बालक को चलने की पूरी स्वतंत्रता चाहिए। लम्बी-चौड़ी जगह भी चाहिए। गिजू भाई मानते हैं कि जहाँ-जहाँ माता-पिता बालकों को खुद चलने देने के वदले उनको गोद में लेकर घूमते हैं और इसको बालक के प्रति अपना प्रेम समझते हैं, वहाँ-वहाँ बालक को

1- गिजू भाई बधेका -प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 111

2- वही, पृ0 111-112

इससे नुकसान ही होता है। किसी विशेष निमित्त से, जैसे बीमारी की हालत में या स्टेशन पहुंचने की जल्दी के कारण बालक को गोद में उठा लेने की बात एक अलग बात है।[1]

खेल-कूद विद्यालय-पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग होने चाहिए। इस हेतु वांछित वातावरण, साधन व स्वतंत्रता बालकों को विद्यालय में उपलब्ध हों। गिजू भाई के शब्दों में - "खेल ही तो सच्ची पढ़ाई है। दुनिया की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ खेल के मैदान पर ही पैदा हुई हैं। खेल का मतलब है, चारित्र्य।"[2]

बागवानी:- गिजू भाई का विचार है कि प्रकृति से बालक का ऐसा संसर्ग जोड़ने के लिए उसे कृषि-कर्म, वृक्ष-संवर्धन तथा प्राणी-विकास के काम में लगा देना चाहिए। ऐसा करके हमें उसे प्रकृति से भलीभांति परिचित कराना चाहिए। वे इस विषय में श्रीमती लेटर का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि श्रीमती लेटर नामक एक अंग्रेज महिला बाल-शिक्षण कार्य में बागवानी और होर्टिकल्चर को आधारभूत मानती हैं। उनकी मान्यता है कि वनस्पति एवं प्राणि-संवर्धन के दर्शन से बालक आध्यात्मिक एवं धर्म-परायण बनता है, क्योंकि सृष्टि पदार्थों की महिमा को समझते-समझते वह सृष्टा को भी समझने योग्य हो जाता है। उनकी मान्यता है कि बागवानी एवं होर्टिकल्चर के शिक्षण द्वारा बालकों का बौद्धिक विकास कर पाना भी संभव है। यहीं से वे कला की दिशा में प्रवृत्त होने लगते हैं, कृषि के पौधों, जंतुओं, ऋतुओं के बारे में जानना सीखते हैं, उन्हें कृषि की उपज से गृहजीवन तथा आहारशास्त्र का भी ज्ञान होता तथा परिणामस्वरूप परोसने, व्यवस्था करने तथा बर्तन मांजने-सजाने आदि के काम भी आ जाते हैं।[3]

गिजू भाई सुझाव देते हैं कि बालगृह के साथ ही और विशेष रूप से गरीब बालकों के बालगृहों के साथ शाक-भाजी तथा फलों के लिए छोटा-सा एक बगीचा बनवाया जाना चाहिए। बच्चों को इसका अनेक प्रकार का लाभ मिलेगा। वे अपने-आप साग और फल तोड़ेंगे तथा उन्हें ताजा साग का ताजा सूप बनाने की अनुकूलता रहेगी। गरीबों के लिए तो ताजे साग का सुख ही सर्वोत्तम है। इसके अलावा बालगृहों के साथ प्राणियों के संवर्धन की व्यवस्था भी की जानी चाहिए ताकि, ताजा दूध और ताजे अंडे तो उपलब्ध हों। बड़े लड़के हाथ को स्वच्छ करके बकरियों को दुह सकेंगे। बालगृहों में बालकों को भोजन बनाने, परोसने, स्वच्छता आदि अनेक प्रकार के कौशलों का लाभ मिलेगा। आगे चलकर ये तमाम चीजें प्रबोधक साहित्य के बतौर ही काम करेंगी।[4]

4.4 शिक्षण-पद्धति

शिक्षा-प्रक्रिया में शिक्षा-पद्धति का अपना एक विशिष्ट स्थान होता है। शिक्षा-पद्धति प्रमाण-शास्त्र की अपेक्षा मनोविज्ञान पर विशेष रूप से आधारित होती है। जो शिक्षा-पद्धति प्रमाणशास्त्र

1- गिजू भाई बधेका -माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 53
2- गिजू भाई बधेका - दिवा स्वप्न, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 24
3- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 123
4- वही, पृ0 241

द्वारा मान्य है, यदि वह मनोविज्ञान के अनुकूल नहीं होती तो वह विफल हो जाती है। सामान्यतः शिक्षा-पद्धति के मामले में प्रमाण-शास्त्र और मनोविज्ञान के बीच तालमेल होता है। गिजू भाई की मान्यता है कि शिक्षा-पद्धति की दृष्टि से विचार करते समय मानसशास्त्र का ध्यान अधिक सावधानी के साथ रखना होता है। जिस पद्धति द्वारा बालक स्वाभाविक रूप से सीखता दृष्टिगोचर होता है, वह पद्धति शिक्षा के काम में सफल होती है और वही पद्धति शिक्षा की पद्धति बन सकती है। तर्क की दृष्टि से सोचने पर जो पद्धति सही मालूम होती है, यदि वह बाल-मन के अनुकूल नहीं होती है तो विफल सिद्ध होती है।[1]

पढ़ाया कैसे जाए? इस प्रश्न का उत्तर समष्टि पर अथवा राष्ट्र पर ही निर्भर नहीं करता। इसी तरह इसका निर्णय काल के बल पर आधारित नहीं होता। चूंकि यह विषय शिक्षाशास्त्र से जुड़ा हुआ है, इसलिए यह एक शास्त्रीय विषय है। अतएव इसकी रचना अधिकतर मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित होती है। जैसे-जैसे मानसशास्त्र के सिद्धान्तों में परिवर्तन और परिवर्द्धन होता रहता है, वैसे-वैसे पढ़ाने की पद्धति पर भी नया प्रकाश पड़ता रहता है और उसमें परिवर्तन भी होते रहते हैं।

यद्यपि पढ़ाने की पद्धति का निर्णय अधिकतर मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर निर्भर करता है, फिर भी यह निर्णय केवल मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित नहीं होता। इसमें मनोविज्ञान के साथ ही व्यक्ति का विचार भी बराबर करना होता है। इसलिए व्यक्तिगत विकास और मानसशास्त्र के सिद्धान्त, इन दोनों के समन्वय पर पढ़ाने की पद्धति की नींव रखी जाती है।

प्रत्येक व्यक्ति का विकास, दूसरे किसी व्यक्ति के विकास की तुलना में, किसी-न-किसी विषय में, भिन्न रहेगा ही। उस स्थिति में मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का समान उपयोग होने पर भी, उतनी ही हद तक शिक्षा की पद्धति में फर्क जरूर पड़ेगा। अतः व्यक्तिगत भिन्नताओं के अनुरूप शिक्षण-पद्धति में भिन्नता होना स्वाभाविक है।[2]

गिजू भाई का मत है कि शिक्षक अपने त्रुटिपूर्ण शिक्षण से बालक की आत्मा ही घोंट देते हैं। लेकिन जिस दिन शिक्षक बालक की आत्मा को पहचान कर वास्तविक सत्य को ग्रहण कर लेगा, उस दिन शिक्षण क्षेत्र में कितना सुंदर-सुखद परिवर्तन आ जाएगा। उस दिन उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा में कैसा अद्वितीय परिवर्तन आ जाएगा। ऐसी ऊँचाई व शिष्टता प्राप्त करने से पहले शिक्षक को अपने भीतर वैज्ञानिक के गुण-नम्रता, अवलोकन तथा धैर्य विकसित करने होंगे, अज्ञान और खोखलेपन के कारण पैदा अभिमान को तोड़ना होगा। जब वह इतना करेगा तभी विज्ञान की देवी उसे वह प्रसाद देगी, उसे ऐसी पैगंबरी वाणी प्रदान करेगी कि जिसे सुनते ही लोगों के दिल थम जाएंगे।[3]

गिजू भाई शिक्षक के विषय में कहते हैं कि वह स्वयं को पुरानी पद्धति वाला पोथी-पंडित

1- गिजू भाई बधेका -प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 52
2- वही, पृ0 8
3- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 75

न समझे, अपितु नयी शिक्षण-पद्धति का अभ्यास करना शुरू करे। नया ज्ञान अर्जित करना और उसका उपयोग करना भी एक तरह की कमाई ही है। इसी कमाई से दूसरी कमाई होती है और अगर वह न भी हो तब भी मनुष्य को अपने मन में दु:खी नहीं होना चाहिए। उसका सुख ज्ञान-धन में है, ज्ञान-दान में है।

वे चाहते हैं कि शिक्षक अच्छी शिक्षण-पद्धति अंगीकार करके शिक्षण-पद्धति में परिवर्तन-परिवर्द्धन कर दिखाये; उसकी खोज से शिक्षा-विभाग के अर्थ-विभाग को लाभ हो सकता है। लेकिन अच्छे सुधार करने वाले अध्यापक को भी भूखा-प्यासा मरना पड़े-ऐसी नौबत आ जाए तो उसे शिक्षण में सुधार करना बंद करने की बजाय यह सोचना चाहिए कि पाठशाला को ही कैसे बंद किया जा सकता है?

पाठशालाएँ चलाना और बंद करना दोनों ही गिजू भाई शिक्षक के हाथ में मानते हैं। वे कहते हैं कि गांव को साक्षर बनाना या निरक्षर रखना भी उसके हाथ में है। खराब पाठशाला का संचालक होकर वह सबको बिगाड़ सकता है और वैसी पाठशाला को त्यागकर पाठशाला की दशा को बदनाम भी कर सकता है।[1]

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के विभिन्न प्रकार के विकास से परिचित मानसशास्त्र के अध्ययनकर्ताओं ने और शिक्षा के व्यापक अनुभवों वाले व्यक्तियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा-पद्धतियाँ का संयोजन किया है। किन-किन विभिन्न पद्धतियों से पढ़ाया जा सकता है इसका निर्णय उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर किया है। शिक्षा-पद्धति के बाल्यकाल में, अर्थात् उसके आरम्भिक दिनों में तो इस बात की रीति-नीति निश्चित कर ली गयी थी कि मनुष्यों को क्या पढ़ाना चाहिए और इस बात के नियम भी बना लिये गये थे कि मनुष्य को कैसे पढ़ाया जाय? ये नियम कभी व्यक्ति के विकास और मानसशास्त्र के अनुरूप होते थे, तो कभी प्रतिकूल भी होते थे। शिक्षा का जब जो ध्येय रहा, उसके अनुसार उस जाति या देश ने शिक्षा-सम्बन्धी अपने नियम बना लिये। जिनका शिक्षा-विषयक ध्येय मनुष्य का विकास नहीं बल्कि मनुष्य का सुख और उसकी सुविधा रही, उन्होंने अपनी शिक्षा-पद्धति भी लाभ-हानि को ध्यान में रखकर बना ली। जहाँ ऐसी पद्धति चलती है, यदि वहाँ शिक्षा का पैमाना एक-सा रहे और उसका स्वरूप नीरस बन जाए, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। अलबत्ता, ऐसी स्थिति हमेशा और हर जगह बनी नहीं है। किन्तु यह कहा जा सकता है कि जिन देशों के इतिहास के माध्यम से उनकी शिक्षा-पद्धतियों के विकास को जाना जा सकता है, उन देशों में तो यह सब घटित हुआ ही है।

गिजू भाई द्वारा समर्थित मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति का उद्देश्य बालक के शारीरिक, मानसिक तथा

1- गिजू भाई बधेका -शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 86

आध्यात्मिक स्व-स्फुरित विकास को सहायता देना है, न कि बालक को पढ़ा-लिखाकर शिक्षित बनाना। डॉ0 मॉण्टेसरी व्यक्ति को पोथी-पंडित या किताबी-कीड़ा बनाना नहीं चाहतीं, न ही ज्ञान का भार ढोने वाला बंधुआ मजदूर। शिक्षाशास्त्री की सच्ची कला नन्हें बालक के व्यक्तित्व का विकास करने में किस तरह सहायता दी जाए, यह बताने में है। इस प्रकार की शिक्षा-पद्धति के सम्बन्ध में जिन शिक्षकों का सच्चा-सही दृष्टिकोण होता है, उन्हें बालकों में विद्यमान वैयक्तिक विभिन्नताएं तत्काल ज्ञात हो जाती हैं और वे प्रत्येक विभिन्नता के अनुरूप उन्हें मदद देने में उद्यत हो जाते हैं। वे बालकों के स्वभाव की विचित्रताएँ भली-भाँति जानते हैं। उनकी रुचिगत विभिन्नता की महिमा से वे अवगत होते हैं। वे जानते हैं कि कुछ बालक ऐसे होते हैं जिन्हें शिक्षक की किसी भी प्रकार की मदद की आवश्यकता नहीं होती, जबकि कुछ ऐसे होते हैं जिनका शिक्षक और शिक्षण के बगैर काम तक नहीं चलता। बाल-शिक्षण में जहाँ भी जरूरत आ पड़े, यह सिद्धांत स्वीकार किया ही जाना चाहिए कि शिक्षण-कार्य में शिक्षक कम से कम बीच में आए और अधिक से अधिक अप्रत्यक्ष रहे। शिक्षण देने की आवश्यकता महसूस हो तब भी बालकों की स्व-क्रिया के तमाम प्रयासों को आजमाये बिना शिक्षक को एकदम से सीधे ही शिक्षण करने लग जाना इष्ट नहीं है।[1]

गिजू भाई ने मॉण्टेसरी पद्धति को भारतीय दशाओं के अनुरूप ढालते हुए बाल-शिक्षा के लिए बाल-मंदिर की स्थापना की। उसकी पद्धति के विषय में वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि बालमंदिर की पद्धति नई है, पर जादुई नहीं है। वह बालक के स्वाभाविक विकास की योजना बनाती है, पर बालक को अमुक-अमुक बात सिखा देने की जिम्मेदारी नहीं लेती। प्रचलित पाठशाला और वर्तमान समाज का उद्देश्य यह है कि जैसे-तैसे बालक को फटाफट, अक्षर एवं अंक ज्ञान करा दिया जाये। इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए दंड, पुरस्कार, रटंत आदि अनुचित साधनों का खुलकर प्रयोग किया जाता है। परिणामस्वरूप बालक जो कुछ सीखते हैं, तोते की तरह उसे पढ़ने-बोलने लगते हैं। जबकि बालमंदिर का उद्देश्य बालक का विकास करना है। दंड आदि उत्तेजकों का इसमें बहिष्कार है। अतः प्रत्येक माता-पिता को पता होना चाहिए कि बालमंदिर फटाफट गिनती या वर्णमाला नहीं सिखा सकता। बालमंदिर को अंक ज्ञान या अक्षर ज्ञान का मोह नहीं, फिर भी इनका ज्ञान बहुत अच्छी तरह से बालकों को हो जाता है। बाल-विकास में महत्वपूर्ण तत्व हैं - इन्द्रियों का शिक्षण। सच्चे इन्द्रिय-शिक्षण पर ही बालक की जीवनभर की शिक्षा निर्भर रहती है। बालमंदिर इस बुनियादी तत्त्व पर अधिक बल देता है। जब बालकों का इन्द्रिय-विकास उत्तम तरीके से हो जाता है, तो वे किसी भी विषय में आसानी से प्रवेश कर सकते हैं। आगे चलकर इंद्रिय-विकास के कारण ही उन्हें अक्षर व अंक ज्ञान सहजता से हो जाता है।[2]

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 144

2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 48-49

गिजू भाई का सुझाव है कि बालकों की इंद्रियों को विकसित करना, याने उन्हें अवलोकन करने की शिक्षा देना; उनकी मानसिक शक्तियों, यथा-बुद्धिशक्ति, तुलनाशक्ति, तर्कबुद्धि, निर्णयबुद्धि को विकसित करना; बालक को साहित्य-रसिक बनाना तथा भौगोलिक वस्तु में रुचि विकसित करना, यह सब काम ठेठ शिशु-कक्षा में अथवा पहली कक्षा में हो जाना चाहिए। यह उनका आधारभूत शिक्षण है। इसी पर विषय-ज्ञान का भवन निर्मित होता है। विषयों का ज्ञान महत्व की चीज नहीं है अपितु उसका रसास्वादन या उपयोग, उसके महत्व की समझ या उनसे जीवन का उत्कर्ष आदि अच्छे ढंग से हों - इसके निमित्त अंश:शक्तियों का बुनियादी विकास महत्व की चीज है। इन पर ध्यान न देकर जब शिक्षु-शिक्षण या पहली कक्षा का शिक्षक क, ख, ग में या 1, 2, 3 आदि गिनती में समाहित कर दिया जाता है तो गिजू भाई की दृष्टि में एक पर्वत-सी भूल हो जाती है।[1]

सीखना बालक के लिए एक आनन्ददायक क्रिया होनी चाहिए। अन्यथा उसका परिणाम नकारात्मक ही होगा। मॉण्टेसरी की मान्यता है कि शिक्षण का मार्ग काँटों से घिरा हुआ नहीं होना चाहिए अपितु गुलाबों से घिरा कोमल व सुगंधित होना चाहिए। वे कहती हैं कि असत्य अधिक बड़ा दिखता है, जबकि सत्य बहुत छोटा और क्षुद्र दिखाई देता है। इसके कारण अब तक इस दुनिया की कितनी शक्ति और समय का अपव्यय हुआ है।[2]

शिक्षण भी आनंद से पूर्ण हो। यांत्रिक, उबाऊ व नीरस शिक्षण अधिगम का मार्ग अवरुद्ध करता है। गिजू भाई का मानना है कि जहां कहीं भी शिक्षण की क्रिया आनन्द से विहीन रहेगी, वहां-वहां आज नहीं तो कल, एक वर्ष में नहीं तो वर्षों बाद, इस दौर में नहीं तो अगले दौर में शिक्षण-कार्य निष्फल हो जायेगा। आज तो शिक्षाशास्त्र के अग्रगण्य विद्वान् विचारक बार-बार यही बात कह रहे हैं और प्रमाणित करके बता रहे हैं कि शिक्षण और आनन्द दोनों एक ही चीजें हैं, इसके ठीक विपरीत अशिक्षण और निरानन्द भी एक ही चीजें हैं। आज 'खेल के समय खेल' और 'काम के समय काम' वाला शिक्षण-सूत्र बदल रहा है। कुछेक विद्यालयों में 'खेल को काम तथा काम को खेल' माना जाने लगा है। इनसे भी कुछ थोड़े विद्यालयों ने 'सभी तरह के खेल काम हैं और सभी काम खेल हैं' के जीवन-सूत्र को अंगीकार कर लिया है।[3]

वे आगे कहते हैं कि आनन्द हमारे जीवन का स्वाभाविक लक्षण है। जीवात्मा आनन्दमय वस्तु है। आनन्द की भूख और अभिलाषा जीवन की ही भांति स्वाभाविक है। यह आनन्द जितने निर्दोष एवं पवित्र साधनों द्वारा मनुष्य को उपलब्ध कराया जायेगा, उतना ही मानव-जाति के लिए उपकारक सिद्ध होगा।

सीखना एक स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। गिजू भाई कहते हैं कि बालक सीखता तो

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 100
2- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 157
3- गिजू भाई बधेका - कथा कहानी का शास्त्र, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 10

है ही। कोई बालक धीमी गति से चलता है, तो कोई तेज गति से चल लेता है। कोई बालक किसी एक विषय में आगे बढ़ता है, तो दूसरे किसी विषय में पीछे भी रह जाता है। सब बालक एक ही वातावरण में रहते हैं, फिर भी उनकी अपनी प्राकृतिक शक्ति का भेद उनमें बना रहता है। हमको उनके घर के संस्कार सम्पन्न वातावरण का पता चलता रहता है। उनके घर के रीति-रिवाज बाल मंदिर में छिपे नहीं रहते। बाल मंदिर में हर एक बालक को एक ही डंडे से हांका नहीं जाता। इस बात का कोई आग्रह नहीं रखा जाता कि बगीचे के पेड़ों की तरह चारों तरफ से एक-सी कटाई करके सबको एक ही आकार-प्रकार वाला बना दें। सबको एक ही सांचे में ढाल कर एक-सा बना देने में गिजू भाई का विश्वास नहीं है। वे यह मानते हैं कि जो चीज बीज रूप में उनके अंदर पड़ी हुई है, वह अच्छी तरह फले-फूले, इसकी खबरदारी हमको रखनी है। अपनी ओर से हमको खाद-पानी देना है और दिशा सुझाते रहना है।[1]

गिजू भाई अपने अनुभव से बताते हैं कि बालमंदिर में ऐसे बालक कभी भी देखे जा सकते हैं। कोई बालक बढ़िया चित्रकार बनने की आगाही देता है, तो किसी में अच्छे संगीतज्ञ के गुण प्रकट होते हैं। किसी बालक की गतिविधियों को देखकर बरबस कहना पड़ता है कि यह बालक साहित्य-रसिक बनेगा। दूसरे किसी बालक को देखकर मन में यह आशा प्रकट होती हे कि यह बालक अच्छा गणितज्ञ ही बनेगा। हर एक बालक किसी न किसी विषय में अपनी सुन्दरता और विशेषता का परिचय देता रहता है। कोई आगे है, तो कोई पीछे है। किसी को एक वस्तु अधिक प्रिय है और दूसरी वस्तु कुछ कम प्रिय है। किन्तु सबका शारीरिक और मानसिक विकास अनवरत रूप से हो रहा है।[2]

माता-पिता अपनी रुचियों, इच्छाओं व आकांक्षाओं को बालक पर जबरन थोपते हैं। बालक अपनी अभिरुचि के अनुसार विषय लेना चाहे, या विद्यालय में अन्य कार्यकलापों में भाग ले तो वे व्यग्र हो उठते हैं, ऐसे अभिभावकों को सम्बन्धित करते हुए गिजू भाई कहते हैं - "भाइयों ! अगर ये बच्चे सीखना चाहते हैं तो सीखने दो। मैं तो इन्हें जोर-जबरदस्ती सिखाता-पढ़ाता नहीं, ये स्वेच्छा से खुद ही करते हैं; अपनी रुचि के अनुसार इनको जिस चीज की जरूरत होती है, ये अपने आप ले लेते हैं। ब्राह्मण के बेटे का मन इंजीनियर का है और लुहार के बेटे का मन साहित्यकार का। भले ही वे जन्म से ब्राह्मण या लुहार हों, पर उनके रुझान अलग-अलग हैं। अब ये रुझान कहां से आये, यह ईश्वर जाने, पर ये हैं और दिन-दहाड़े नंगी आँखों से देखे जा सकते हैं। ये जो भी सीखना चाहते हैं, इन्हें सीखने दो न भाइयो!"[3]

गिजू भाई ने पूर्णतया अपनी एक पुस्तक प्रचलित शिक्षण पद्धतियों का वर्णन व विवेचन करने हेतु समर्पित की है। प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षण-पद्धतियों में उन्होंने इन शिक्षण पद्धतियों का

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 51

2- वही, पृ0 53

3- गिजू भाई बधेका -चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 49

उल्लेख करते हुए उनके गुणों-अवगुणों पर प्रकाश डाला है। वे स्वयं इस सम्बन्ध में कहते हैं - "हाल ही में शिक्षा-पद्धतियों की शास्त्रियता की ओर शिक्षा-शास्त्रियों का ध्यान आकर्षित हुआ है। उन्होंने अब तक उत्पन्न हुई और विकसित हुई शिक्षा-पद्धतियों की समालोचना की है। इसी के साथ उन्होंने नई-नई शिक्षा-पद्धतियों की रचना भी की है, उन पद्धतियों पर अमल भी किया है और उनमें सफलता भी प्राप्त की है। आजकल शिक्षा के क्षेत्र में किन-किन शिक्षा-पद्धतियों का उपयोग किया जा रहा है, उनके लाभ क्या हैं और उनकी हानियाँ क्या हैं, इन सब बातों का दिग्दर्शन कराने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गयी है।" उनके द्वारा वर्णित पद्धतियाँ अग्रलिखित हैं -

व्याख्यान-पद्धतिः- गिजू भाई के अनुसार पुरानी और सड़ी-गली पद्धतियों में व्याख्यान-पद्धति अर्थात् उपदेशात्मक पद्धति का अपना अग्र स्थान है। आजकल विद्यालयों में अधिकतर इसी पद्धति से शिक्षा का काम चल रहा है। यह सड़ी-गली पद्धति लगभग अपने मूल रूप में, अपने सारे दोषों के साथ, हमारे देश में टिकी हुई है और हमारे बालक इसके शिकार बने हुए हैं।

व्याख्यान-पद्धति का स्वरूप कुछ इस प्रकार का है - इस पद्धति में शिक्षक शिष्य के भोजन को खुद चबा देता है और फिर शिष्य उसको रूचिपूर्वक खाता है। इसका मतलब यह हुआ कि इस पद्धति में शिक्षक शिष्य के बदले उसके सारे काम करता रहता है और शिष्य स्वयं बिना कुछ किये ही शिक्षा का परिणामभर बटोरता है। इसका नतीजा यह निकलता है कि जहाँ शिष्य को स्वयं ही कुछ करना चाहिए, जहाँ शिष्य को खुद ही सोचना और समझना चाहिए, वहाँ शिष्य के बदले शिक्षक ही सब-कुछ करता रहता है।

पाब्लो फ्रेरे[1] इसे ज्ञान की पाचकवादी अवधारणा कहते हैं। वे कहते हैं कि इस पद्धति द्वारा दी गयी शिक्षा के फलस्वरूप मनुष्य ज्ञान की एक जड़ तिजोरीभर बनकर रह जाता है। इसमें संदेह नहीं कि उसका मष्तिष्क एक ज्ञान-कोश का-सा रूप ले लेता है। किन्तु चूंकि यह ज्ञान निष्क्रिय बना रहता है। इसलिए यह निरुपयोगी होता है। चूंकि ज्ञान प्राप्त करते समय ज्ञान पाने वाला व्यक्ति स्वयं ज्ञान की खोज करके उसको प्राप्त नहीं करता है, इसलिए वह स्वयं उसका उपयोग भी नहीं कर पाता।

गिजू भाई निःसंकोच कहते हैं कि हमारे देश में बिल्कुल नये रास्तों की खोज कर सकने वाले, नये साधनों की खोज करके उनका उपयोग करने वाले; स्वतंत्र विचारों की अपनी नई दुनिया रचने वाले; साहसी व्यक्ति, इतिहासकार, शोधक, आविष्कारक और स्वतंत्र विचारक बहुत कम हुए हैं, इसका एक कारण शिक्षा के क्षेत्र में चली यह व्याख्यान-पद्धति भी है।[2]

उनकी दृष्टि में चूंकि यह पद्धति हर तरह से खराब है, इसलिए यह छोड़ देने लायक है। वे कहते हैं कि विशेष रूप से प्राथमिक और काफी हद तक माध्यमिक विद्यालयों में से तो इसको

1- पाब्लो फ्रेरे - प्रौढ़ साक्षरता, मुक्ति की सांस्कृतिक कार्यवाही, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, पृ0 11
2- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 11

निकाल ही दिया जाना चाहिए। किन्तु चूंकि शिक्षक के धंधे का मुख्य सूत्र विद्यार्थियों का हित रहा है, इसलिए शिक्षकों को इसका त्याग तुरन्त ही करना चाहिए। इसका त्याग ही शिक्षक का सच्चा धर्म है। महाविद्यालयों के सयाने विद्यार्थियों के लिए इस पद्धति को हम हानिकारक न मानें, तो उसमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं। विवेकशील शिक्षक को चाहिए कि उसको जब-जब भी इस पद्धति का उपयोग करना पड़ जाए, तब-तब वह इसका उपयोग बहुत ही विवेकपूर्ण करे।

प्रश्नोत्तर पद्धतिः- प्रश्नोत्तर-पद्धति में विद्यार्थी को हर एक गुत्थी खुद ही सुलझानी होती है। इसके कारण उसकी तुलनात्मक बुद्धि का और तर्क-शक्ति का विकास होता रहता हैं। प्रश्नोत्तर-पद्धति में विद्यार्थी निष्क्रिय रहकर केवल सुनता नहीं है, बल्कि प्रश्न का उत्तर देने के लिए उसको सक्रिय बनना होता है। इसके फलस्वरूप उसमें स्वयं क्रिया करने की शक्ति प्रकट होती हैं।

गिजू भाई प्रश्नोत्तर-पद्धति के ये लाभ बताते हैं - इससे शिक्षक को पता चल सकता है कि विद्यार्थी को कितनी जानकारी है और कितनी नहीं है। शिक्षक यह भी जान सकता है कि विद्यार्थी कितना काम कर सकता है और कितना नहीं कर सकता। प्रश्नोत्तर-पद्धति से शिक्षक अपने विद्यार्थी की स्थिति को समझ सकता है और वह कहाँ तक पहुँचा है इसका पता लगाकर; उसको कहाँ से, किस तरह, आगे बढ़ाना है, इसके बारे में स्वयं निर्णय कर सकता है। इसमें विद्यार्थी को भी इस बात का पता चलता रहता है कि वह स्वयं कितना सीख सका है और कहाँ, क्यों, कितना विफल हुआ है? इसके फलस्वरूप उसमें भविष्य की दृष्टि से अच्छी तैयारी करने की वृत्ति प्रकट होती है।[1]

प्रश्नोत्तर-पद्धति जिस हद तक अधिक स्वाभाविक और शास्त्रीय है, उसी हद तक शिक्षकों के लिए वह कठिन भी है। यह पद्धति नया-नया जानने और समझने की बालक की अपनी वृत्ति पर आधारित है, अतएव इसमें शिक्षक के लिए मनुष्य के स्वभाव का और बचपन का अच्छे से अच्छा ज्ञान अपेक्षित है। गिजू भाई का मानना है कि यह पद्धति बालक के लिए ज्ञान-क्षेत्र के असीम द्वार खोल देती है, इसलिए इसमें शिक्षक का बहुश्रुत होना आवश्यक है। इसके अलावा, चूंकि इसमें बालक से प्रश्न पूछ-पूछ कर उसको ज्ञान के रास्ते पर चढ़ाना होता है और बालक के प्रश्नों के ऐसे उत्तर देने होते हैं, जो बालक के विकास का पोषण करने वाले हों, इसलिए यह आवश्यक है कि शिक्षक को प्रश्न पूछने और प्रश्नों के उत्तर देने की कला का सुन्दर ज्ञान हो। इस पद्धति की सफलता शिक्षक के प्रश्न पूछने और प्रश्नों के उत्तर देने की कुशलता में निहित है। चतुर शिक्षक इस पद्धति का जितना सुन्दर और सफल उपयोग कर सकते हैं, साधारण शिक्षक के हाथों इसको उतनी ही हानि पहुँचती है।

गिजू भाई कहते हैं कि इस पद्धति के लिए प्रश्नमाला की रचना करते समय शिक्षक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विद्यार्थी का 'ज्ञाता' क्या है अर्थात् वह क्या-क्या जानता है? इस

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 25

प्रश्नमाला की रचना की नींव में ज्ञात से अज्ञात में जाने का शिक्षाशास्त्र का प्रसिद्ध सिद्धान्त रहा है। इस प्रकार के प्रश्न तैयार किये जाने चाहिएं कि जिनसे जो विषय सीखना है, उसके अंग क्रमशः प्रश्नों के द्वारा प्रकट होते रहें। सभी मनुष्य अपने स्वभाव से शिक्षित नहीं होते। इसलिए शिक्षकों को स्वयं साधारण प्रश्न ही तैयार कर लेने चाहिएँ। प्रश्न का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि उसके उत्तर में से दूसरा प्रश्न सहज ही प्रकट हो और इस तरह पूरा प्रश्न प्रश्नोत्तर की मदद से सामने आए। सीधे और सूचक प्रश्न कभी न पूछे जायें। सहज भाव से जिज्ञासा उत्पन्न करने वाला एकाध प्रश्न पूछकर उस पर सारा ढाँचा खड़ा किया जाये। जब-जब विद्यार्थी गुत्थी सुलझाने में परेशानी अनुभव करें, तब-तब पूछे हुए प्रश्न के उत्तर का अंदाज दे सकने वाले कुछ साधन, कुछ उपप्रश्न, वस्तुस्थिति आदि उनके सामने रखे जा सकते हैं।

प्रश्न स्पष्ट हो, छोटे वाक्यों वाला हो, समझ में आने लायक हो और सीधा हो। प्रश्न ऐसा होना चाहिए कि उसका एक निश्चित और अपेक्षित उत्तर ही निकल सके। संदिग्ध प्रश्न का उत्तर भी संदिग्ध ही मिलेगा। इसलिए ऐसे संदिग्ध प्रश्न अथवा दो अर्थों वाले प्रश्न पूछने ही नहीं चाहिए। गिजू भाई के अनुसार यह मानना गलत होगा कि प्रश्नोत्तर-पद्धति से काम करने वाला व्यक्ति इसके साथ व्याख्यान-पद्धति का उपयोग कर ही नहीं सकता। इसी तरह यह मानना कि प्रश्नोत्तर-पद्धति में हर छोटी-बड़ी बात को प्रश्न द्वारा निकलवाकर ही आगे बढ़ा जा सकता है, एक भ्रम है और मूर्खता भी है। बालक बिना प्रश्न के ही कितने बातें जान सकते हैं, इसको ध्यान में रखकर और उनके पूर्वज्ञान का विचार करके प्रश्नमाला की योजना बनायी जाये और कक्षा में शिक्षक प्रश्नमाला पर ही निर्भर न रहकर परिस्थिति के अनुसार उसमें परिवर्तन करता रहे, तभी अच्छा काम हो सकता है। विद्यार्थी जिस प्रश्न का उत्तर कभी दे ही नहीं सकता अथवा जिस चीज की प्रत्यक्ष चर्चा किए बिना काम चल ही नहीं सकता, वैसी स्थिति में वस्तु का ज्ञान वस्तु की मदद से अथवा व्याख्यान-पद्धति से देने में ही समझदारी है। गिजू भाई के इन सुझावों पर शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए जहाँ पाठ विकास हेतु प्रश्नोत्तर प्रविधि पर अत्यधिक आग्रह रखा जाता है।

प्रश्नोत्तर-पद्धति विशेष रूप से प्राथमिक विद्यालयों की कक्षाओं में और माध्यमिक विद्यालयों की शुरू की कक्षाओं में सफल हो सकती है। माध्यमिक विद्यालयों की ऊँची कक्षाओं में अथवा महाविद्यालयों में प्रसंगानुसार प्रश्नोत्तर-पद्धति का थोड़ा उपयोग किया जा सकता है। किन्तु वहाँ तो अनुभव, प्रयोग और अवलोकन के सहारे ही ज्ञान का मार्ग खुलना चाहिए।[1]

जोड़ीदार-पद्धतिः- जोड़ीदार-पद्धति का मुख्य उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी अपनी शिक्षा स्वयं करने लगें और वे शिक्षक का सहारा लेना कम कर दें। जब-जब शिक्षक स्वयं विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं,

---

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 15

तब-तब विद्यार्थी स्वयं कुछ पढ़ और समझ नहीं पाते और वे स्वयं ज्ञाता हैं, इस मान्यता के आधार पर उनको पढ़ाया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि विद्यार्थी उतना ही सीखने का प्रयत्न करते हैं जितना शिक्षक उनको सिखाते हैं। दूसरी तरफ, शिक्षक अपने विद्यार्थियों को जितना सिखाते हैं, यदि विद्यार्थी उतना सीख लेते हैं, तो शिक्षक अपनी शिक्षा को सफल मान लेते हैं।

जोड़ीदार-पद्धति का गौण उद्देश्य किन्तु उतना ही महत्वपूर्ण हेतु यह है कि इसमें विद्यार्थी न केवल स्वयं अपना गुरू बन सकता है, बल्कि वह दूसरों का गुरू भी बन सकता है। गिजू भाई के अनुसार जोड़ीदार-पद्धति विद्यार्थियों को आत्म-श्रद्धावान, स्वावलम्बी और उद्योगी बनाती है। यह पद्धति उत्तम से उत्तम विद्यार्थी से लेकर ठोट-से ठोट विद्यार्थी तब सबको अपने अपने सामर्थ्य के अनुसार सीखने का उत्साह और शक्ति देती है। और, यदि समय-समय पर घटती-बढ़ती योग्यता वाले विद्यार्थियों को छाँटकर उनको ऊँची कक्षाओं में चढ़ा दिया जाये, तो बुद्धिमान विद्यार्थियों को विवश भाव से पिछड़े बिना ही अपनी योग्यता के अनुसार थोड़े समय में अपनी पढाई पूरी कर लेने का अवसर देती है और मंदबुद्धि विद्यार्थियों को जबरदस्ती पीछे-पीछे घिसटने से बचाकर अपना समुचित विकास कर लेने का संतोष देती है।

जोड़ीदार-पद्धति का स्वरूप कुछ इस प्रकार का है - कक्षा के विद्यार्थियों की दो-दो की टुकड़ियाँ बनती हैं। टुकड़ियों में बंटे ये विद्यार्थी आपस में एक-दूसरे को सिखाते-पढ़ाते हैं और जरूरत पड़ने पर शिक्षक की सहायता लेकर अपने मनपसंद विषय में मनचाही हद तक शिक्षा लेते-देते हैं। शिक्षक को व्यस्त रहना ही पड़ता है। शिक्षक का काम है कि वह विद्यार्थियों को स्वावलम्बी बनाये। इसलिए उसको, जहाँ तक संभव हो, उनका मार्गदर्शन बराबर करते ही रहना है।[1]

नाट्य-प्रयोग पद्धतिः- मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति में अनुकरण की वृत्ति सहज ही होती है। यह वृत्ति दूसरी प्रेरणाओं के समान ही एक प्रेरणा है। बचपन में इस प्रेरणा का बल अधिक होता है। बालक जो कुछ भी देखते या सुनते हैं, उन सबका अनुभव स्वयं ही करने के लिए वे बहुत उत्सुक रहते हैं। इसलिए अपनी देखी या सुनी चीज को हर तरह से अपने सामने खड़ी करने का प्रयत्न वे करते रहते हैं। ये प्रयत्न उनके अनुकरणशील स्वभाव के प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं और यहीं से उनके नाट्य-प्रयोगों का आरम्भ होता है।

बालकों की इस सहज वृत्ति को यूरोप के कुछ देशों के मनोवैज्ञानिकों ने और शिक्षाशास्त्रियों ने पहचाना और उन्होंने इसका व्यावहारिक उपयोग करना भी शुरू कर दिया। फ्रॉबेल ने अपनी योजना में बालकों की इस वृत्ति को सुन्दर स्थान दिया है और इस वृत्ति को आधार मानकर बाल-कथाएँ करने और बाल-कथाओं के सहारे नाटक खेलने की अपनी भूमिका खड़ी की है।[2]

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 18

2- वही, पृ0 21

फ्रॉबेल के बाद बाल-कक्षाओं में रूचि लेने वाले शिक्षकों में ब्रायंट और केथर के नाम सामने आते हैं। उन्होंने इस विषय पर अधिक प्रकाश डाला है। होरेयट फैनले जानसन तथा एकण्ड होम्स का भी इस पद्धति में गहन विश्वास है। बालकों की रुचि को रास्ता दिखाने के लिए अपने विद्यालयों में नाट्य प्रयोगों को उचित स्थान देना चाहिए। बालकों की रुचि का ही अनुसरण करके हमको उनकी सब शक्तियों का विकास उनके लाभ के लिए करना चाहिए। गिजू भाई कहते हैं कि इसी बात को ध्यान में रखकर हम अलग-अलग विषयों के लिए अलग-अलग शिक्षा-पद्धतियों का और नई-नई शिक्षा-पद्धतियों का आयोजन-संयोजन कर रहे हैं। ऐसी शिक्षा-पद्धति में बाल-स्वभाव और बाल-रुचि को अधिक से अधिक स्थान देना हमारा उद्देश्य है, अतएव बाल-रुचि के लिए अनुकूल नाट्य-प्रयोगों की गतिविधियों द्वारा शिक्षा देने की व्यवस्था व्यावहारिक है। यही नहीं, बल्कि वह उत्तम पद्धतियों में से एक पद्धति है, इसलिए उससे अच्छा लाभ भी उठाया जा सकता है। भाषा, गणित, इतिहास और भूगोल जैसे विषयों को पढ़ाने में नाट्य-प्रयोग द्वारा पढ़ाने की पद्धति का अच्छा उपयोग किया जा सकता है।[1]

गिजू भाई कहते हैं कि नाट्य-प्रयोगों द्वारा पढ़ाने का प्रयोग तभी सफल हो सकता है, जब शिक्षक बालकों की गतिविधियों का उचित सम्मान करने वाले हों और बाल-मन के प्रति सम्पूर्ण सहानुभूति रखने वाले हों। ऐसे अवसरों पर जो शिक्षक विद्यार्थियों के साथ विद्यार्थी बन सकने की क्षमता रखते हों; जिनके मन में अपने बड़प्पन, विद्वता, अधिकार और सत्ता का तनिक भी विचार न रहता हो; जो स्वयं भी नाटकों से लाभ उठाने और आनन्द अनुभव करने की शक्ति रखते हों; उन्हीं शिक्षकों को नाट्य-प्रयोगों द्वारा पढ़ाने का विचार करना चाहिए। यह पद्धति जितनी सुन्दर और लाभप्रद है, उतनी ही कठिन भी है। इसलिए जरूरी है कि इस पद्धति का प्रयोग करने से पहले शिक्षक स्वयं अपनी पूरी तैयारी कर लें और इस पर अपनी आत्मश्रद्धा सुदृढ़ बना लें।

वे कहते हैं कि चूंकि यह पद्धति कठिन है, इसलिए शिक्षकों को इससे सदा दूर ही रहना चाहिए, ऐसा कोई आत्मघाती निर्णय वे न करें। मानव अपने जन्म से ही अनुकरणशील प्राणी है। नाटक खेलना उसका सहज स्वभाव है। इसलिए यदि हम अपने ऊपर चढ़ी हुई कृत्रिमता की तहों को हटा देंगे, तो हम भी बालकों के समान बन सकेंगे और उनके नाटकों में रुचिपूर्वक भाग ले सकेंगे। यदि अपने बालकों के उद्धार के लिए हम स्वयं बालक बन जायेंगे, तो हमारे इस काम को कोई गलत नहीं कहेगा।[2]

नाट्यकला का प्रथम उद्देश्य नाटक के दर्शक को आनन्दित करना है। नाटक में चाहे जितना ज्ञान भरा हो अथवा सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक बातों से वह चाहे जितना लाभप्रद हो, परन्तु

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 22

2- वही, पृ0 27

वह आनन्दप्रद न हो तो बेकार है। उसके अवांतर लाभ अनेक हो सकते हैं। उसमें अनेक उपयोगी बातें गुंथी हुई हो सकती हैं, पर नाटक की सफलता तो उसमें जो आनन्द प्रदान करने की शक्ति है, उसमें निहित रहती है। बहुरंगी, स्वस्थ एवं उपयोगी घटनाओं का यदि उसमें से सुसंयोग प्रकट न हो तो नाटक असफल रहता है।[1]

संयोगीकरण और पृथक्करण पद्धतियाँ:- संयोगीकरण-पद्धति का मतलब यह है कि वस्तु अथवा विषय को पहले उसकी इकाई से अलग करके सिखाने के बाद समूची वस्तु का अथवा विषय का पूरा ज्ञान करा देना। पृथक्करण-पद्धति इससे बिल्कुल उल्टी है। पृथक्करण-पद्धति तरह सिखा देने के बाद पृथक्करण के द्वारा उसके अंगों और उपांगों को अलग-अलग दिखाकर उसके विषय का ज्ञान करा देना है।

बालकों की शिक्षा में इन दोनों पद्धतियों का उपयोग किया जा सकता है। अक्षरों का ज्ञान कराने के लिए दोनों पद्धतियों से प्रयत्न किये गये हैं! क, ख के रूप में अक्षर सिखाकर भाषा सिखाने की पद्धति को संयोगीकरण-पद्धति कहा जाता है, जबकि पहले शब्द सिखा देने के बाद शब्द को अलग करके अक्षर सिखाने की पद्धति को पृथक्करण-पद्धति कहा गया है। आज अंग्रेजी भाषा में भाषा सिखाने का काम संयोगीकरण की अपेक्षा पृथक्करण-पद्धति से शुरू करने की हिमायत बढ़ रही है। कारण यह है कि संयोगीकरण-पद्धति से शब्द सिखाने पर अंग्रेजी भाषा के उच्चारणों की विचित्रता कठिनाई खड़ी कर देती है। चूंकि अंग्रेजी भाषा के उच्चार का अनुसरण नहीं करती, इस कारण उसके शब्दों के हिज्जों में और उच्चारण में अन्तर उत्पन्न हो जाता है। इसलिए उनको पृथक्करण-पद्धति सुलभ मालूम हुई।

किन्तु भारत में अक्षर सिखाने के लिए पृथक्करण-पद्धति को अपनाना गिजू भाई की दृष्टि में अन्धानुकरण करने के समान है। उनका तर्क है कि हमारी भाषा उच्चार का अनुसरण करती है, इसलिए हमको तो मूलाक्षर संयोगीकरण-पद्धति से ही सिखाने चाहिएँ। इसके समर्थन में डॉक्टर मॉण्टेसरी की अक्षर सिखाने की पद्धति हमारे सामने है। इटालियन भाषा उच्चारानुसारी है, वह ध्वनि का अनुसरण करती है, इसलिए इटली में भी भाषा संयोगीकरण-पद्धति से सिखाई जाती है।

साथ ही वे सचेत करते हैं कि इसका यह मतलब नहीं कि सब कहीं संयोगीकरण-पद्धति ही आवश्यक है। संयोगीकरण अथवा एकीकरण-पद्धति का उपयोग विषय के स्वरूप को और बालक के मन को ध्यान में रखकर करना चाहिए। व्यापक रूप से कहा जाए, तो व्याकरण सिखाने में पहले पृथक्करण-पद्धति यानि भाषा का परिचय मुख्य होना चाहिए। भाषा के अच्छे परिचय के बाद, अर्थात् पुस्तक, पैरेग्राफ और वाक्य समझना और लिखना आ जाने के बाद, उनका पृथक्करण करके उन शब्दों

1- गिजू भाई बधेका - कथा कहानी का शास्त्र, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 10

का व्याकरण सिखाया जाना चाहिए।

कविता सीखने में पृथक्करण-पद्धति, संगीत परिचय-पद्धति व पृथक्करण पद्धति से, गणित संयोगीकरण पद्धति से सिखाने का वे समर्थन करते हैं।

सिद्धान्तमूलक और दृष्टान्तमूलक पद्धतियाँ:- शिक्षा के क्षेत्र में प्राचीन समय से इन दोनों पद्धतियों का अच्छा-खासा उपयोग होता रहा है। प्राचीनकाल के शिक्षक अधिकतर सिद्धान्तमूलक-पद्धति का अनुसरण करते रहे हैं। वे पहले सिद्धान्त सामने रखते थे और सच्चे उदाहरणों द्वारा सिद्धान्त को समझाते थे। यानी उदाहरणों को दोहरा दोहरा कर वे सिद्धान्त को सिद्ध किया करते थे।

गणित, भूमिति आदि विषय सिद्धान्त-पद्धति से सिखाए जाते हैं। इस पद्धति में बुद्धि से अथवा दलीलों से सिद्धान्त को समझाकर उसकी सच्चाई अथवा उसके परिणाम दिखाये जाते हैं। जो बात सिद्ध करनी होती है, उसको सिद्धान्त के सहारे दलीलें देकर सिद्ध किया जाता है। दृष्टान्तमूलक पद्धति इससे बिल्कुल उल्टी है। इस पद्धति में पहले अलग-अलग उदाहरण देकर हर उदाहरण के सामान्य सत्य पर से एक सिद्धान्त खड़ा किया जाता है। सब प्रकार के विज्ञानों में और प्रायोगिक शास्त्रों में इस दृष्टान्तमूलक-पद्धति का अनुसरण होता है।[1]

गिजू भाई का सुझाव है कि प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में जहाँ-जहाँ भी संभव हो, वहाँ-वहाँ हमको दृष्टान्तमूलक-पद्धति का उपयोग अधिक करना चाहिए। जहाँ सिद्धान्तमूलक पद्धति में सिद्धान्त की सच्चाई को मानकर चलना होता है, जबकि इसमें तटस्थ बुद्धि से सच्चाई की खोज के लिए निकल कर और सत्यासत्य का अनुभव करके निर्णय करना पड़ता है। इस कारण यह ज्ञान बुद्धि और मन द्वारा अनुभवगम्य होने के कारण अधिक यथार्थ बनता है। इसके विपरीत, सिद्धान्तमूलक-पद्धति द्वारा प्राप्त ज्ञान बुद्धिगम्य और तत्व रूप रहता है। आज का युग विज्ञान का है और विद्यार्थियों की शिक्षा-व्यवस्था में वैज्ञानिक दृष्टि का विकास बहुत महत्व की वस्तु है। इसीलिए बाल-कक्षा से लेकर आगे तक विद्यार्थियों को दृष्टान्तमूलक-पद्धति से पढ़ाना चाहिए।

सिद्धान्तमूलक-पद्धति के प्रचार में वृद्धि का कारण यह मान्यता है कि ज्ञान एक शक्ति है। गिजू भाई कहते हैं कि जब हम समझ सकते हैं कि ज्ञान स्वयं कोई शक्ति नहीं है, बल्कि ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति ही एक शक्ति है, शिक्षा के क्षेत्र में दृष्टान्तमूलक-पद्धति मनुष्यों को ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करने के साथ ही उनको ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग पर खड़ा कर देती है।[2]

त्रिपद पद्धति:- अंग्रेजी में इस पद्धति को सेगुइन की पद्धति के नाम से जाना जाता है। बालक जिस ढंग से खुद ही ज्ञान प्राप्त करते हैं, उस ढंग के अवलोकन और अध्ययन के आधार पर सेगुइन नामक फ्रांस के एक शिक्षाविद् ने इस पद्धति की खोज की है।

1- गिजू भाई बधेका -प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 31

2- वही, पृ0 32

बालक अपनी स्वयं-शिक्षा की क्रिया को इस प्रकार से चलाते हैं- पहले वे वस्तु मात्र को अपनी इंद्रियों द्वारा और मन द्वारा देखते हैं अर्थात् वे उनका इंद्रियगोचर परिचय प्राप्त करते हैं। इसके बाद वे हम से पूछते हैं, 'यह क्या है? यह क्या है?' हम उनके अनुभवों के साथ नाम जोड़ देते हैं। इस प्रकार बालक अनुभवों के साथ नाम संज्ञा को जोड़कर इन्द्रियगम्य अनुभवों को संज्ञा-प्रदेश पर अर्थात् बुद्धि के प्रदेश पर अंकित करते हैं। इसके बाद बालक पूछते हैं, 'ये क्या हैं? ये क्या हैं?' इस तरह पूछकर जिस संज्ञा को वे अपने मन से जानते हैं वह संज्ञा सही या नहीं, इसको हमसे पूछकर वे अपने ज्ञान को दृढ़ करते हैं। इस समय बालक अपनी समझ में भूल करने के बदले अथवा भूल को खोजने के बदले खुद ही अपने अनुभव को संज्ञा की मदद से बार-बार जोड़ता है और इस तरह वह अपने ज्ञान को पक्का करता है। इसके बाद बालक हिम्मत के साथ हमारे पास आता है और हमसे कहता है, 'यह घड़ी है, यह किताब है, यह मेज है।' बालक इस तरह कहता है और हमारी सम्मति मिल जाने पर वह अपने मन में यह निश्चित कर लेता है कि उसका ज्ञान चौकस हो चुका है। बालक की अपनी स्वयं शिक्षा की इस रीति को सेगुइन ने शिक्षा के काम में निम्नानुसार लागू किया है।

पहले सामान्य भूमिका के रूप में वस्तु के साथ बालक का परिचय होने देना। इसके बाद नीचे लिखे क्रम से तीन कदम उठाना -

पहला कदम - वस्तु को संज्ञा के साथ जोड़ना।

दूसरा कदम - संज्ञा का नाम लेकर वस्तु के परिचय को पुष्ट करना।

तीसरा कदम - इस बात का निश्चय करना कि वस्तु संज्ञा का ज्ञान हुआ है या नहीं।

इस सेगुइन-पद्धति से छोटे बालकों को बहुत-सी बातें सिखाई जा सकती हैं। मॉण्टेसरी-पद्धति में अक्षर भी इसी रीति से सिखाने की व्यवस्था है। अक्षरज्ञान-योजना में अक्षर और संयुक्त अक्षर सिखाने की रीति इन तीन कदमों पर आधारित है। स्वयं-शिक्षा में अथवा शिक्षा में किसी भी प्रकार का बौद्धिक ज्ञान होने से पहले मन के अन्दर जो क्रिया चलती है, उस क्रिया का पृथक्करण ही त्रिपद-पद्धति है। गिजू भाई का सुझाव है कि शिक्षक अपनी सहज प्रेरणा से इस त्रिपद-पद्धति का उपयोग जहाँ भी चाहें वहाँ कर सकते हैं।

प्रत्यक्ष पद्धतिः- अंग्रेजी में इस पद्धति को 'डाइरेक्ट मेथड' कहा जाता है। बहुत-से लोग इसको 'डू एंड से मेथड' भी कहते हैं। प्रत्यक्ष-पद्धति का मतलब है-वह पद्धति जिसमें किसी भी क्रिया को करते समय उसके साथ क्रियावाचक शब्द अथवा वाक्य देकर अथवा पदार्थ या गुण दिखाकर या भाव व्यक्त करके उस पदार्थ, गुण अथवा भाव के शब्द-बोध के साथ उसका अर्थबोध भी कराया जाता है। इसमें विद्यार्थी के सामने विदेशी भाषा सीधे-सीधे ही बोली जाती है। स्वभाषा में उसका भाषांतर

नहीं किया जाता। किन्तु, विदेशी भाषा की क्रियाएँ, गुण, अव्यय, नाम आदि को प्रत्यक्ष करके दिखाया जाता है, अथवा प्रत्यक्ष रीति से उसका बोध करवाने की व्यवस्था करके विदेशी भाषा सिखाई जाती है। दूसरे शब्दों में इसे यों कहा जा सकता है कि सीखने वाले को विदेशी भाषा के जीते-जागते वातावरण में रखने के प्रयत्न का नाम है - प्रत्यक्ष-पद्धति। विदेशी भाषा का प्रत्यक्ष अनुभव कराने वाली पद्धति ही प्रत्यक्ष-पद्धति है।

इस पद्धति के बारे में गिजू भाई का मानना है कि प्रत्यक्ष-पद्धति के लिए अत्यन्त कुशल, विदेशी भाषा के प्रेमी और उसके अच्छे जानकार शिक्षक के साथ ही प्रत्यक्ष पाठ सिखाने के लिए अच्छे वातावरण की और विशेष रूप से लिखी गई पुस्तकों की आवश्यकता होती है और तभी प्रत्यक्ष-पद्धति सच्चे ढंग से सफल हो सकती है। ऐसा न होने पर टूटे-फूटे ढंग से विदेशी भाषा बोलना आ जाता है, पर उसके कारण लिखने और बोलने में व्याकरण की बहुत भूलें होती हैं। मतलब यह कि जिसको बटलरों की भाषा कहा जाता है, वैसी भाषा बोलना आ जाता है।[1]

प्रत्यक्ष-पद्धति केवल विदेशी भाषा सिखाने तक ही सीमित नहीं है। प्रत्यक्ष-पद्धति का अर्थ यह कि विद्यार्थी को सीधे-सीधे ही कोई वस्तु दिखाकर उसको उसका ज्ञान करा दिया जाए। पाठशाला में भर्ती होने के समय तक बालक सहज भाव से प्रत्यक्ष-पद्धति द्वारा ही सब कुछ सीखता रहता है। किन्तु पाठशाला में जाने के साथ ही वह अप्रत्यक्ष-पद्धति से, अर्थात् दर्शन-प्रमाण से नहीं, बल्कि शब्द-प्रमाण से सीखना शुरू करता है। सच्चा ज्ञान शब्द-ज्ञान से नहीं होता। पर प्रत्यक्ष अनुभव मे सच्चा ज्ञान होता है। इसलिए पाठशाला में विद्यार्थी को जो कुछ भी सिखाना हो, उसको विद्यार्थी के प्रत्यक्ष अनुभव में लाकर ही सिखाना चाहिए। गिजू भाई सुझाव देते हैं कि इसके लिए शिक्षक अपनी पाठशाला को बहुत विशाल रूप में अपने सामने रखे। पाठशाला को पाठशाला के भवन तक ही सीमित न रखकर आसपास की समूची सृष्टि को पाठशाला मानकर और उसमें मनुष्य के साथ प्रकृति को भी जोड़कर, विद्यार्थी को उसका प्रत्यक्ष ज्ञान कराना चाहिए। पाठशाला में तरह-तरह की चीजें को इकट्ठा करने और उनको दिखाते रहने से अथवा चित्र दिखाने से विद्यार्थी को ज्ञान तो दिया जा सकता है, किन्तु प्रत्यक्ष-पद्धति की दृष्टि से ऐसा ज्ञान हमेशा अपूर्ण ही माना जायेगा। जहाँ-जहाँ भी संभव हो, वहाँ-वहाँ शिक्षक को प्रत्यक्ष-पद्धति का ही उपयोग करना चाहिए।[2]

दर्शन पद्धतिः- अंग्रेजी भाषा में इसको 'बीकन-पद्धति' कहा जाता है। कहीं-कहीं इसका उपयोग भाषा-शिक्षा में किया जाता है। कहीं-कहीं भाषा-शिक्षा का काम वर्णमाला के मूल अक्षरों से शुरू करने के बदले शब्दों से अथवा वाक्यों से शुरू किया जाता है। इस रीति से भाषा सिखाने के लिए पुस्तकों की रचना की गयी है। इस पद्धति में यह माना जाता है कि बालकों को अक्षर की मदद से

1- गिजू भाई बधेका -प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 36

2- वही, पृ0 37

भाषा सीखने में कठिनाई होती है क्योंकि अक्षर केवल नीरस ध्वनि-मात्र होते हैं। उनसे बनने वाले शब्दों में वाक्य का पूरा अर्थ नहीं होता। इसलिए भाषा-शिक्षा का एक अंग अक्षर अथवा शब्द नहीं, बल्कि वाक्य होना चाहिए।

भारत में बोले जाने वाली उच्चारानुसारी भाषा में इसके प्रयोग को सहायक नहीं मानते हैं। गिजू भाई के अनुसार अपने यहाँ जुड़वाँ अक्षरों वाले शब्द सिखाने में इनका उपयोग किया जा सकता है अथवा उन बालकों के लिए जो अक्षरों की मदद से भाषा सीखने में रूचि न लेते हों, उस अवस्था से आगे निकल गए हों, सीखने में उत्साही हों, उनके लिए इसका उपयोग गिजू भाई उचित मानते हैं। जब बालकों पर सीखने की जिम्मेदारी आ पड़ती है, तो वे किसी भी अच्छी या बुरी पद्धति से सीख लेते हैं। इस अनुभव-सिद्ध बात को ध्यान में रखकर हम मानें कि बीकन-पद्धति की सफलता का माप इस बात में नहीं है कि बालक हमेशा उस पद्धति से सीखते हैं, बल्कि इस बात में है कि पाठशाला के और शिक्षक के बंधन से मुक्त विद्यार्थी स्वयं इस पद्धति की ओर आकर्षित होते हैं। तटस्थ शिक्षकों को चाहिए कि वे बीकन-पद्धति के गुण-दोषों पर स्वयं विचार करके जहां उचित हो, वहाँ बालकों के हित में इस पद्धति का उपयोग करें।

गिजू भाई कहते हैं कि आजकल इतिहास कालक्रमानुसारी-पद्धति से पढ़ाया जाता है। इसके कारण बालक को घटनाओं की रूखी और नीरस जानकारी अपने दिमाग में ठूँस-ठूँसकर फिर उसको उगलते रहने की दु:खद क्रिया करनी पड़ती है। कालक्रमानुसारी-पद्धति में बालक को इतिहास की छोटी और बड़ी महत्व की और महत्वहीन, सब प्रकार की घटनाओं को एक सिलसिले से सीखना होता है। पहले उसको बाबर के बारे में जितना भी जानने लायक है, उतना सब जानना ही होता है। बाबर ने बचपन की बातों से लेकर, राजकाज के मामलों में बाबर की नीति और निपुणता आदि की सारी बातें भी बालक को जाननी ही होती हैं। बालक को यह भी जानना चाहिए कि बाबर में कौन-कौनसी बड़ी लड़ाइयां लड़ीं। बालक को अपनी इसी उम्र में औरंगजेब या अकबर के चरित्र के साथ बाबर के चरित्र की तुलना करने का बुद्धि से जुड़ा ऊँचा काम भी करना होता है। पूरे ब्योरे के साथ बाबर की जानकारी हासिल कर लेने के बाद ही उसके बेटे हुमायूँ की बात आयी है; तब तक हुमायूँ का नाम भी नहीं लिया जा सकता।

कालक्रमानुसारी-पद्धति से इतिहास की पढ़ाई को कठिन बनाने में ये बातें भी कारण-रुपी बनती हैं। इसके बदले इतिहास गिजू भाई के अनुसार उन्मेष-पद्धति से पढ़ाना चाहिए। उन्मेष-पद्धति में वस्तु की रचना होती है। उन्मेष-पद्धति द्वारा रचित वस्तुओं में नीचे लिखी बातें तो होनी ही चाहिए। वस्तु चाहे पुस्तक के रूप में हो, पदार्थ के रूप में हो, नक्शे के रूप में हो, अथवा आलेख के रूप

में हो। जैसे -

1. रचना ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें वस्तु का समग्र दर्शन हो सके।
2. दर्शन रेखा के रूप में हो।
3. रेखा के रूप में दिये गये दर्शन की वस्तुएँ ऐसी होनी चाहिए कि उनके आसपास दूसरे दर्शन की बातें स्वाभाविक रूप में गूंथी जा सकें अथवा रची जा सकें।
4. दूसरे दर्शन में पहले दर्शन के ब्योरों के आसपास नए ब्योरों की रचना की जानी चाहिए। ये ब्योरे फिर तीसरे दर्शन के लिए तो पहले दर्शन के रूप में ही हो सकते हैं।

इस प्रकार ज्ञात वस्तुओं के आसपास रोज-रोज अज्ञात वस्तुओं को बढ़ाते हुए आरम्भ में रखी गयी समग्र वस्तु के रेखाचित्र को सम्पूर्ण चित्र का रूप दे देना चाहिए।

योजना पद्धतिः- इस योजना-पद्धति का जन्म स्थान अमेरिका है। व्यवहार-कुशल अमेरिका ने अनुभव किया कि विद्यालयों की किताबी पढ़ाई तो किताबी ही बनी रहती है। उसके साथ बाहर के जीवन-व्यवहार का कोई तालमेल बैठता नहीं है। ऐसी स्थिति में अमेरिका के लिए एक से अधिक शिक्षा-योजनाओं की खोज करना आवश्यक हो गया।

इस योजना को अपने देश में लाने का श्रेय ईसाई शिक्षा-संस्थाओं को है। पंजाब के मोगा नगर में शिक्षा की यह पद्धति सफल सिद्ध हुई है। कुछ ईसाई शिक्षाशास्त्री पहले अमेरिका जाकर वहाँ इस पद्धति को सीख आए। पढ़ाई केवल पुस्तकीय पढ़ाई न रह जाए, इस दृष्टि से यह पद्धति सचमुच ही स्वागत-योग्य प्रतीत हुई है। यह पद्धति बड़े तात्विक सिद्धान्तों के आधार पर अथवा वैज्ञानिक आविष्कारों के आधार पर नहीं रची गयी है। इसकी रचना व्यावहारिक दृष्टि से की गयी है। इस कारण यह सचमुच ही व्यावहारिक मालूम भी हुई है। अपने सच्चे स्वरूप में यह पद्धति पाठ्यक्रम, ज्ञान की जानकारी और परीक्षा की अवगणना स्वयं ही करती है। फिर भी जहाँ-जहाँ पाठ्यक्रमों की सीमा में रहकर काम करना होता है, वहाँ पाठ्यक्रम के साथ इस योजना का समन्वय किया जाता है और यह समन्वय हो भी सकता है।[1]

गिजू भाई मानते हैं कि यह चीज नई भी है और बहुत पुरानी भी है। छोटे बच्चे इकट्ठे होकर नदी-किनारे, समुद्र-किनारे अथवा अपनी गली में घर का खेल खेलते हैं, घरों के बनाने का खेल खेलते हैं और नदी-किनारे अपने खेत तैयार करते हैं। इन सब में तत्त्व रूप में योजना रहती ही है। आज उसका स्वरूप पूरी तरह स्वयं स्फूर्ति न रहकर शिक्षक-प्रेरित, साधन-सम्पन्न और ज्ञान-दान के लक्ष्य वाला बन गया है। जब तक इस पद्धति से विद्यार्थी उत्साह के साथ काम करके सीखता है और काम के साथ ज्ञान को जोड़ता है, तब तक ही यह पद्धति अच्छी है। इसकी सफलता के लिए

1- गिजू भाई बधेका -प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 42

अनेकानेक पद्धतियों को जानने वाला, बालकों की आवश्यकताओं को समझने वाला और इस योजना-पद्धति की अच्छी जानकारी रखने वाला शिक्षक चाहिए। यह पद्धति ऐसी नहीं है कि हर कोई शिक्षक इसको चला सके।[1]

पुस्तकालय पद्धतिः- पुस्तक स्वयं एक शिक्षा-गुरू है और पुस्तकालय विद्यालय है। विद्यालय में लोग ज्ञान पाने के साधनभर पाते हैं, जबकि पुस्तकालय में जाकर तो स्वयं ज्ञान प्राप्त करते हैं। किसी भी स्थान में, चाहे विद्यालय के साथ अथवा विद्यालय के बिना भी, पुस्तकालय शिक्षा की स्वयं पद्धति स्वरूप है। स्वाध्याय-पद्धति में विद्यार्थियों के लिए पुस्तकों के परिचय की अच्छी व्यवस्था रहती है। प्राथमिक पुस्तकालय की कौन-कौन सी पुस्तकें अच्छी हैं, किनको कौनसी पुस्तक दी जाए, किसकी। रुचि किस पुस्तक में जगाई जाए, आदि काम शिक्षक वहाँ करता रहे। गिजू भाई का सुझाव है कि विद्यालयों की तरह ही विद्यालयों के बाहर भी पुस्तकालय रूपी विद्यालय गाँव-गाँव में और मुहल्ले-मुहल्ले में स्थापित होने चाहिए। अगर पुस्तकालयों के दरवाजे चौबीसों घंटे खुले रखेंगे, तो पढ़ाई चौबीसों घंटे चलती रहेगी। व्यवस्था, शान्ति, सभ्यता और विनय की शिक्षा देते रहने का प्रबंध भी पुस्तकालय कर सकेगा। पुस्तकों का उपयोग कैसे करना, उनको किस तरह से पढ़ना, पास में बैठकर पढ़ने वाले के साथ कैसा व्यवहार करना, कैसे आना और कैसे जाना, बातचीत किस तरह से करना आदि बातों को सीखने में अपने-आप ही काफी पढ़ाई हो जाती है। इस तरह पुस्तकालय की भी अपनी एक शिक्षा-पद्धति है।

उन्मेष पद्धतिः- गिजू भाई कहते हैं कि अपने अनुभव से हम यह जानते हैं कि जब हम अचानक ही किसी नई वस्तु के या परिस्थिति के सम्पर्क में आते हैं, तो उसी क्षण हमारी इंद्रियाँ और हमारी बुद्धि उस वस्तु को या परिस्थिति को उसके समग्र में पूरे ब्योरे के साथ, देख नहीं पातीं, समझ नहीं पातीं और उसका आकलन भी नहीं कर पातीं। इसका कारण यह कि स्वभाव से ही हमारी इंद्रियाँ, मन, बुद्धि आदि जब किसी भी वस्तु से पहली बार परिचित होती हैं, तो वे उनके उन्हीं ब्योरों को पहचानती हैं, जो बहुत स्पष्ट, प्रकट, इंद्रियों को सहज ही प्रभावित करने वाले, मन में सरलता से स्थान पाने वाले और बुद्धि में प्रवेश पाने वाले होते हैं। उनको वैसे ही ब्योरों का ज्ञान होता है। हम जैसे-जैसे वस्तु के विशेष परिचय में आते हैं, जैसे हमारी इंद्रियाँ, मन, बुद्धि आदि पहले के परिचय वाली वस्तुओं को सुस्पष्ट रूप से ग्रहण करके उनको अपनाती जाती हैं, वैसे-वैसे उन्हीं वस्तुओं के मोटे व्योरे के आसपास के ब्योरे हमारी आँखों के सामने तैरने लगते हैं और वे हमारे पुराने ज्ञान के साथ जुड़ जाते हैं। इसी तरह जैसे-जैसे समय और परिचय बढ़ता है, तो वैसे-वैसे पुराने ज्ञान में नये ब्योरे जुड़ते जाते हैं और अंत में समूची वस्तु, समूची परिस्थिति, हमारे ज्ञान की मर्यादा में आ जाती है।[2]

1- गिजू भाई बधेका -प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 45

2- वही, पृ0 52

ज्ञात में से अज्ञात में जाना स्वाभाविक है। समग्र वस्तु को बोध होने के बाद भी उसके मुख्य-मुख्य ब्योरों का बोध पहले परिचय में, सूक्ष्म ब्योरों का बोध दूसरे परिचय में और उनसे अधिक सूक्ष्म ब्योरों का बोध आगे तीसरे परिचय में हो पाता है। फिर, पहले परिचय में मोटे तौर पर इंद्रियों की पकड़ में आने वाली वस्तुओं का ही बोध हो पाता है, बाद में दूसरे परिचय में मन की पकड़ में आने वाली वस्तुओं का बोध होता है और फिर अगले परिचय में उससे भी गहरे प्रदेशों वाली वस्तुएं ध्यान में आती हैं। ज्ञान प्राप्त करने के मामले में मनुष्य का स्वभाव स्थूल में से सूक्ष्म में जाने का होता है। बालक पहले स्थूल वस्तुओं को ग्रहण करता है और बाद में वह सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम वस्तुओं को पकड़ पाता है।

बालक के मन के इस स्वभाव के कारण इस स्वभाव के विरुद्ध पड़ने वाली किसी पद्धति से हम उसको सिखाने का या किसी प्रकार का कोई ज्ञान देने का प्रयत्न करेंगे, तो बालक को वह रुचेगा नहीं। उसमें उसको मजा नहीं आयेगा। हो सकता है कि भय, लालच या दूसरे किसी कारण से वह सब याद कर ले, किन्तु इस तरह प्राप्त ज्ञान को वह जल्दी से जल्दी भूलने का प्रयत्न अवश्य ही करेगा।

ज्ञान प्राप्त करने की बालक की अपनी कुछ स्वाभाविक आदतें होती हैं, जैसे- 1. ज्ञात में से अज्ञात में जाना। 2. स्थूल में से सूक्ष्म में जाना। 3. अपनी उम्र के हिसाब से विकसित इन्द्रियों के और मन-बुद्धि को जितने ज्ञान की आवश्यकता है, उनका ही ज्ञान लेना।

गिजू भाई की मान्यता है कि बालक की इन तीन आदतों का अनुसरण करके ही शिक्षा-पद्धति का निर्माण करें। बालक के मन की ऐसी दूसरी कई विशेषताएं हैं, जिनकी अवगणना करके किसी सफल शिक्षा-पद्धति की रचना नहीं की जा सकती। उन्मेष-पद्धति में ऊपर दिये गये तीनों नियमों की रक्षा होती है। पहले स्थूल बातें सिखाई जाती हैं, बाद में उनके आसपास की छोटी-छोटी बातें, और अंत में बिल्कुल सूक्ष्म बातें। जैसे, उन्मेष-पद्धति एक शिक्षा-पद्धति है, वैसे ही उसमें वस्तुओं के निर्माण की एक योजना भी है। वस्तु की रचना एक अमुक ऐसी पद्धति से करना कि जिससे बालक के लिए ज्ञान प्राप्त करने का काम सरल बन जाए। दूसरे शब्दों में इसको यों कहा जा सकता है कि ज्ञान प्राप्त करने की बालक की सहज प्रकृति को ध्यान में रखकर जब वस्तु की रचना की जाती है, तो वह वस्तु-निर्माण की योजना कहलाती है।

कालक्रमानुसारी पद्धतिः- आमतौर पर इतिहास पढ़ाने में इन तीनों पद्धतियों का उपयोग किया जाता है- उन्मेष-पद्धति, कालक्रमानुसारी-पद्धति और व्युत्क्रम-पद्धति। इस पद्धति का अर्थ यह है कि काल के प्रवाह के साथ इतिहास जैसा बना है, उसको कालक्रम के अनुसार वैसे ही पढ़ाना। मतलब यह कि

इतिहास के आरम्भ से उसके अंत तक उसको वर्षवार पढ़ाना। इस पद्धति के अनुसार पढ़ाने के लिए बहुतेरी पाठ्यपुस्तकें लिखी गई हैं। सारी दुनिया के विद्यालयों में आज इतिहास इसी पद्धति से पढ़ाया जाता है।[1]

इसकी आलोचना करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि इसी कारण इतिहास पढ़ाने का काम हमेशा ही कठिन और नीरस रहा है। इसका कारण यह है कि छोटे विद्यार्थियों को भी आरम्भ से ही इतिहास पढ़ाना होता है। इसमें जिस भूतकाल में विद्यार्थियों की अपनी कोई दिलचस्पी नहीं होती और हो भी नहीं सकती, उस भूतकाल की बातें उनको रटनी पड़ती हैं। प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की इतिहास-सम्बन्धी कल्पना इतनी विकसित नहीं होती कि वे इतिहास की परतों की गहराई में जाकर इतिहास के पुराने प्रश्नों को अपने मन में प्रत्यक्ष कर सकें। चूंकि एक विषय के रूप में विद्यार्थियों के लिए इतिहास का ज्ञान आवश्यक होता है, इसलिए परीक्षा में पास होने की दृष्टि से विद्यार्थी इतिहास को रट लेते हैं। इतिहास की वे घटनाएँ उनके दिल को छू तो नहीं पातीं। अलबत्ता, इतिहास की कठिन पढ़ाई को कुछ रुचिकर बनाने के लिए शिक्षक कहानियों की मदद से इतिहास पढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। फिर भी इतिहास की पढ़ाई जानदार नहीं बन पाती, क्योंकि इन बातों को जानने का उद्देश्य विद्यार्थियों की समझ में नहीं आता। इतिहास का पुराना वातावरण उनके आसपास कहीं नहीं होता। हमारे विद्यालयों में इतिहास के वातावरण के बीच विद्यार्थियों को इतिहास पढ़ाने के कोई भी साधन सुलभ नहीं होते हैं। गिजू भाई निःसंकोच कहते हैं कि आज के इतिहास-शिक्षक की दृष्टि भी इतिहास की गहराई तक पहुंच नहीं पाती हैं। शिक्षक को भी इतिहास एक पुस्तक सा लगता है और इतिहास की सारी घटनाएं भी उनके सामने धरती की सतह पर बने पहाड़ों, नदियों अथवा पेड़ों की तरह खड़ी रहती हैं। इतिहास के बड़े-बड़े जानकारों के दिमाग में इतिहास का जो भव्य गौरव और प्राचीन से अर्वाचीन तक की जो कल्पना होती है, आम शिक्षक के मन में वैसी कोई बात होती नहीं है। अतएव कालक्रमानुसारी-पद्धति से इतिहास लिखने का काम तर्कशुद्ध होते हुए भी पढ़ाने की दृष्टि से यह पद्धति अशास्त्रीय है, अर्थात् बालक के मन की रचना से भिन्न है। गिजू भाई का स्पष्ट सुझाव है कि इतिहास पढ़ाने की सफलता को और बालकों के हित को ध्यान में रखकर हमको इस पद्धति से इतिहास पढ़ाना छोड़ देना चाहिए।[2]

व्युत्क्रम पद्धतिः- व्युत्क्रम-पद्धति कालक्रमानुसारी-पद्धति से बिल्कुल उल्टी है। इसमें इतिहास को वर्तमानकाल से शुरू करके पीछे की तरफ जाना होता है और हमको अपना परिचय देने के बाद अपने पूर्वजों का और फिर उनके पूर्वजों का परिचय देना होता है। आज की स्थिति की जानकारी देने के बाद उसके पहले की स्थिति की और फिर उससे भी पहले की स्थिति की जानकारी देनी होती है।

1- गिजू भाई बधेका -प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 58

2- वही, पृ0 59

इस तरह विद्यार्थियों के सामने घटी हुई घटनाओं की जानकारी रखने की पद्धति को व्युत्क्रम-पद्धति कहा जाता है। पहली पद्धति की तुलना में यह पद्धति स्वाभाविक है। आज बालक अपने आसपास की चीजों में, अर्थात् वर्तमान में अपनी रुचि दिखा सकता है, क्योंकि वह प्रत्यक्ष है। और स्थूल में से सूक्ष्म में अथवा ज्ञात में से अज्ञात में जाने के शिक्षा-विषयक सिद्धान्त के अनुसार हम बालक को वर्तमान काल में से भूतकाल में सरलता के साथ ले जा सकते हैं। जबकि कालक्रमानुसारी-पद्धति में अज्ञात में धीरे-धीरे ज्ञात में जाने का उल्टा क्रम चलता है।

व्युत्क्रम-पद्धति से पढ़ाने में इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में परिवर्तन करना अनिवार्य नहीं होता। इसमें केवल काल का क्रम बदलकर इतिहास पढ़ाना होता है। गिजू भाई के अनुसार - इस पद्धति के काम करने में भूगोल की अधिक से अधिक सहायता ली जा सकती है।

इस पद्धति के अनुसार काम करते समय शुरू-शुरू में शिक्षक को यह काम कठिन मालूम होगा। शिक्षक इसमें भी कहानी कहने की रीति का उपयोग कर सकता है। किन्तु इससे भी आगे बढ़कर वह यात्राओं, प्रदर्शनियों, संग्रहालयों और जीती-जागती दुनिया के द्वारा बालक का ज्ञान बढ़ा सकता है। कालक्रमानुसारी-पद्धति की तरह ही इस पद्धति में भी शिक्षक नाट्य-प्रयोग पद्धति का उपयोग अवश्य ही कर सकता है। प्रत्यक्ष वस्तु का नाटक खेलना बालकों के लिए आसान होगा। इसी के साथ भूतकाल में प्रवेश करने की दृष्टि से धीरे-धीरे विद्यार्थियों की अभिनय-वृत्ति का भी विकास होता रहेगा।

गिजू भाई पाठ्यपुस्तकों के सम्बन्ध में कहते हैं कि इतिहास-सम्बन्धी आज की प्रचलित पाठ्यपुस्तकें किसी भी अच्छे शिक्षक को अथवा इतिहास के तत्त्ववेत्ता को अच्छी लगने लायक हैं ही नहीं। आज की पाठ्यपुस्तकें तो परीक्षा की दृष्टि से लिखी गयी होती हैं। पाठ्यपुस्तकों से घिरी होने के कारण कोई भी अच्छी पद्धति अच्छी होते हुए भी पूरी तरह सफल नहीं हो पाती। अतएव गिजू भाई इतिहास के जानकारों से बालकों के हित के लिए अच्छी पाठ्यपुस्तकें लिखने की मांग करते हैं।[1]

चलचित्र पद्धतिः- चित्र-दर्शन से शिक्षा देने अथवा चित्र दिखाकर जानकारी देने की प्रथा को गिजू भाई एक बहुत पुरानी प्रथा मानते हैं। उनके अनुसार विज्ञान की खोज के कारण दुनिया को चलचित्रों की एक बड़ी और अनमोल भेंट मिली है। इस भेंट के लाभ और इसकी हानियाँ आज सारी दुनिया को बराबर मिलती रहती हैं। इनके माध्यम से दुनिया के करोड़ों-करोड़ स्त्री-पुरुष अपने जीवन में शायद ही कभी देख सकें, ऐसे दुनिया के भूगोल और इतिहास की पल-पल में घटने वाली घटनाओं के दर्शन करते हैं। चलचित्र की खोज इतनी आगे बढ़ गई है कि देखने वालों को ऐसा लगता है, मानो दिखाई जाने वाली घटना हूबहू उनकी आँखों के सामने ही घट रही हों।

1- गिजू भाई बधेका -प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 61

नाटकों की तरह इन चलचित्रों ने अधिक प्रभावकारी ढंग से, थोड़े समय में और थोड़े खर्च से लोक-शिक्षा का काम शुरू किया है। लोग उनमें साहसिकता, हिम्मत, प्रेम, न्याय आदि गुणों के दर्शन करते हैं। इसी के साथ वे चोरी, लबाड़ी, हरामखोरी, हिंसा, अश्लीलता आदि के दृश्य भी देखते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि चलचित्रों की शिक्षा ने अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की बातें जोर-शोर के साथ सिखानी शुरू कर दी हैं।

गिजू भाई कहते हैं कि हमारे देश में अभी बालकों के लिए उपयोगी चलचित्र नहीं आए हैं। बड़ी उम्र के लोग जो चलचित्र देखते हैं, उन चलचित्रों में से सब चलचित्र नन्हें बालकों के लिए देखने लायक नहीं होते। ऐसी स्थिति में जब माता-पिता को पता चले कि जो नई फिल्म आई है बालकों के लिए शिक्षाप्रद और निर्दोष है, तो वे बालकों को अपने साथ अवश्य ले जाएँ। बालक प्रहसनों वाली फिल्में देखना पसंद तो करते हैं, किन्तु निरे निरर्थक प्रहसन आज के जमाने के विकृत मानस की एक फैशन है, इसलिए ऐसी प्रहसनों वाली फिल्मों से हमें अपने बालकों को दूर ही रखना चाहिए।

वे कहते हैं कि पुस्तकों में छपी रुखी-सूखी जानकारी अथवा समझ में न आने लायक जानकारियों को हम चलचित्रों द्वारा बहुत अच्छी तरह बालकों के सामने रख सकेंगे और उनको समझा सकेंगे। वे इस पद्धति का समर्थन करते हैं।

श्रवण पद्धतिः- जो-जो भी विषय श्रवणेंद्रिय की, अर्थात् कान की इंद्रिय की मर्यादा में आ सकते हैं, उन विषयों को श्रवण-पद्धति से भी सिखाया जा सकता है। विशेष रूप से जिस विषय की शिक्षा में तर्क की प्रधानता नहीं होती, बल्कि कान की इंद्रियों का अनुभव ही मुख्य होता है, उसको सिखाने में इस पद्धति का उपयोग सरलता के साथ किया जा सकता है।

छोटे बच्चे तीन साल की उम्र तक इस पद्धति से ही अर्थात् सुन-सुनकर ही मातृभाषा सीखते हैं। बालकों को ध्वनिगोचर दुनिया का परिचय भी इसी रीति से होता है। बालकों को श्रवण-पद्धति से संगीत सिखाया जा सकता है। संगीत को प्रचलित-पद्धति सरगम से विषय को आरम्भ करने की है। इसमें सा, रे, गा, म आदि का भेद समझने का काम श्रवणेन्द्रिय और बुद्धि दोनों को मिलकर करना होता है। गिजू भाई कहते हैं कि "अपने बालमंदिर के बालकों को मैं लम्बे समय तक संगीत सुनाता ही रहा। जो बालक ध्वनि-मानस वाले थे, वे रुचिपूर्वक संगीत सुनते रहते थे। उस समय मेरा उद्देश्य उनको संगीत का संस्कार देने का था। मैंने यह माना नहीं था कि संगीत सुनते-सुनते संगीत-रसिक बनने के अलावा वे खुद गाने भी लगेंगे। मैं सोच ही रहा था कि बालक गाना किस तरह शुरू करें, तभी एक दिन मैंने देखा कि बालक अचानक ही गाने लगे हैं। उस दिन से मैंने श्रवण कराकर ज्ञान देने की पद्धति का अधिक अनुभव किया। मैंने देखा कि बालकों को बार-बार कहानियाँ सुनाते रहने

से वे कहानियाँ बिना रटे ही बालकों को जबानी याद हो गयीं।" वे स्वीकार करते हैं कि इस अनुभव के कारण उन्होंने आदर्श वाचन में एक नई दृष्टि प्राप्त की। अब तक आदर्श वाचन की मदद से वे सुवाचन के संस्कार देना चाहते थे। किन्तु अब उनकी समझ में यह बात आ गई कि शिष्ट साहित्य को सुनने-भर से बालक में साहित्य-रसिकता के साथ ही साहित्य-सृजन की शक्ति भी विकसित हो सकती है।[1]

गिजू भाई याद करते हैं कि काका साहब कालेलकर ने उनसे कहा था कि अंग्रेजी पढ़ाने की प्रत्यक्ष पद्धति में अंग्रेजी कहानियाँ बिना अर्थ समझाए ही विद्यार्थियों को हाव-भाव के साथ बराबर सुनाते रहना चाहिए। इसी तरह बिना अर्थ बताए ही उनके साथ बातचीत करते रहना चाहिए। इसके लिए उन्होंने प्रत्यक्ष-पद्धति में मूक-पद्धति का या ऐसा ही कोई नाम उन्हें बताया था। वे कहते हैं कि आज वे इस क्रिया को श्रवण-पद्धति में रख सकते हैं।

गिजू भाई की दृष्टि में श्रवण-पद्धति व्याख्यान की या प्रवचन की पद्धति नहीं है। व्याख्यान की अथवा प्रवचन की पद्धति तो बुद्धिगम्य विषयों के लिए होती है। श्रवण-पद्धति में बार-बार सुनाते रहने की व्यवस्था रहती है। बार-बार सुनाकर जिससे सिखाया जा सकता है, वह पद्धति श्रवण-पद्धति होती है। बार-बार रोकने-टोकने को श्रवण-पद्धति नहीं कहा जा सकता। श्रवण-पद्धति में सुनने लायक किसी भी विषय को बार-बार श्रवण-पट्ट पर डालना होता है।[2]

मुखपाठ पद्धतिः- जिस पद्धति में गुरू विद्यार्थी को मुँह से बोलकर पाठ देते हैं और जिसमें पाठ लेने के बाद विद्यार्थी उसको पोथी अथवा पुस्तक में देख-देखकर जबानी याद कर लेते हैं, वह पद्धति मुखपाठ-पद्धति कही जाती है। रूद्री और महिम्न से लेकर वेद तक की शिक्षा भी प्राचीनकाल से इस पद्धति द्वारा दी जाती रही है। प्राचीनकाल में जब पुस्तकें नहीं थीं, उन दिनों यही एक पद्धति प्रचलित थी। आज इस बात की भव्य चर्चा होती है कि प्राचीनकाल में गुरूओं के आश्रम वेद-शिक्षा की ध्वनि से गूँजा करते थे। मुँह से दिये जाने वाले पाठों के चिन्ह और कंडिकाएँ हाथों के और सिर के हलन-चलन से सूचित होती थीं। इसको स्वर के साथ किया गया अभ्यास कहा जाता था। समय बीतने पर मुख के इन स्वर चिन्हों को ताड़-पत्र पर अंकित किया गया होगा। आज कंठागत ज्ञान पुस्तकगत हो चुका है, फिर भी शास्त्री और पुराण-गुरू अपने विद्यार्थियों को मुखपाठ-पद्धति से पढ़ाते हैं।

वर्तमान समय के विद्यालयों में मुखपाठ-पद्धति प्रचलित नहीं है, क्योंकि आज का ज्ञान पद्य के बदले गद्य में अधिक है। इसके अलावा, अब पद्यगत ज्ञान को भी कंठाग्र ही करना आवश्यक नहीं रहा। चूंकि अब समय-समय पर पढ़कर उसका आनन्द लिया जा सकता है, इसलिए आज की स्थिति

1- गिजू भाई बधेका -प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 68
2- वही, पृ0 69

में मुखपाठ-पद्धति का कोई उपयोग रहा नहीं है, फिर भी कविता, मुखपाठ और पहाड़े इस पद्धति के अवशेष के रूप में आज प्रचलित हैं।[1]

शिक्षा में मुखपाठ को फिर जोड़ना गिजू भाई आवश्यक मानते हैं। वे कहते हैं कि बिना समझे मुखपाठ करने अथवा गुरू के डर से मुखपाठ करने की बात को हम स्वीकार न करें। किन्तु कई वस्तुएँ ऐसी हैं, जो जीवन में कंठाग्र होनी चाहिए, जिनके लिए बार-बार पुस्तक देखना पोसाता नहीं है, जो ज्ञान हाजिर हथियार के समान होता है, वह ज्ञान तो कंठाग्र ही होना चाहिए। आज के समय में मुखपाठ को सरस संगीत के साथ जोड़कर उसकी मदद से अच्छा, उपयोगी और प्रचुर ज्ञान दिया जाना चाहिए। चतुर शिक्षक को चाहिए कि वह शिक्षा के क्षेत्र में मुखपाठ को महत्व का स्थान दे।
बैन पद्धतिः- 'बैन' बोल अर्थात् ले-लेकर सीखना। इस बैन-पद्धति से, जिसको हम वचन-पद्धति या बोल-पद्धति भी कह सकते हैं, हमारी पुरानी से पुरानी और कीमती से कीमती साहित्य-समृद्धि अब तक एक बैन से दूसरे बैन और एक मुँह से दूसरे मुँह तक पहुँचती रही है। गिजू भाई कहते हैं कि हमारा निरक्षर-सा देश आज भी अपनी जीवन की संस्कारिता के बहुतेरे अंशों को अपने बीच सहेजे हुए हैं, साहित्य और कला के क्षेत्र में उसकी दृष्टि आज भी निर्मल है, उसका एक कारण यह बैन-पद्धति है। गलियों और मुहल्लों में काकियाँ और दादियाँ बैन-पद्धति चलाया करती थीं। गुरू अपने विद्यार्थियों को एक-एक श्लोक मुँह से सिखाकर कंठाग्र करवाते थे। आज भी संस्कृत, व्याकरण और साहित्य का, धार्मिक स्रोतों और सुभाषितों का अध्ययन इसी पद्धति से कराया जाता है। इस बैन-पद्धति के क्षेत्र में जिन-जिन बातों का समावेश हो सके, उनको आज भी शिक्षक और विशेषकर गांवों में पढ़ने वाले शिक्षक, इस पद्धति से सिखा सकते हैं, उनको सिखाना भी चाहिए। सरकारी शिक्षा-पद्धति ने पाठ्यपुस्तकों का और पदार्थों का अम्बार लगाकर बिना पैसे के सिखाने वाली इस पुरानी पद्धति को एक गड्ढे में डाल दिया है। जो शिक्षक सरकार की मर्यादा में नहीं आते हैं, वे तो अपने विद्यार्थियों को पाठ्यपुस्तकों से और विद्यालय में इकट्ठा किये गये और शीशियों में बंद करके रखे गये पदार्थों के दर्शन से बचा ही लें। वे अपने विद्यार्थियों को बैन के यानि वचन के द्वारा विद्या दें और विद्यार्थियों को उसका अनुभव वस्तुओं को प्रत्यक्ष दिखा-दिखाकर करवाएँ।[2]

गिजू भाई के अनुसार आज की पाठ्यपुस्तकों वाली पद्धति मनुष्य की स्मृति के विकास को कोई स्थान नहीं देती। वह 'ग्रंथ गाँठ में और विद्या पाठ में' के सिद्धान्त को भंग करती है। स्पष्ट है कि आज का ज्ञान स्थायी नहीं होता। वह परीक्षा तक ही टिकता है। उसका स्वरूप जरूरत के समय काम देने का नहीं होता, बल्कि ऐन मौके पर वह बेकार साबित होता है। गिजू भाई की दृष्टि में गाँवों के गरीब लोगों की शिक्षा में और जेल में रहने वाले कैदियों की शिक्षा में तो बैन-पद्धति ही शिक्षा

1- गिजू भाई बधेका -प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 64

2- वही, पृ0 67

की सर्वोत्तम पद्धति है। वे मानते हैं कि इस पद्धति को अमल में लाने का प्रयत्न सबको करना चाहिए।

उस्ताद पद्धतिः- गिजू भाई के अनुसार इस पद्धति की सही जानकारी तो वे लोग दे सकते हैं, जिन्होंने उस्तादों अथवा गुरूओं के पास वर्षों तक पड़े रहकर, गुरू की अखण्ड सेवा करके, गुरू की प्रसन्नता पाकर, गुरू से कुछ प्राप्त किया है। शिक्षा का एक सिद्धान्त वे यह भी मानते हैं - 'तृषावन्त जो होएगा, पीएगा झख मार।' जिसको प्यास लगी होगी, वह झख मारकर पानी पीएगा। ज्ञान-सम्पन्न गुरू अथवा उस्ताद अपने ज्ञान की मस्ती में ज्ञान की अधिक से अधिक उपासना करते हुए पड़े रहते हैं। कला या ज्ञान के क्षेत्र में सिद्धि पाए हुए ऐसे उपासक को देखकर किसी के मन में प्रेरणा जाग जाती है कि ऐसी शक्ति मैं भी प्राप्त करूँ। गुरू तो अपनी मस्ती में मस्त रहता है। उसने कोई विद्यालय खोला नहीं है। उसके पास कोई पाठ्यक्रम, उपस्कर या पद्धति भी नहीं है। वह विद्यार्थी की खोज भी नहीं करता। जिस पिपासु की चर्चा आरम्भ में की है, वह आकर गुरू से निवेदन करता है। गुरू इतने ज्ञानवान तो हैं ही कि वे शिष्य के मन की बात को समझ लेते हैं। गुरू इस बात की पूरी परीक्षा कर लेते हैं कि शिष्य को ज्ञान की कितनी भूख है। जो शिष्य इस परीक्षा में पास हो जाता है, गुरू उस पर अपने को न्योछावर कर देते हैं और उसको जो भी जानना होता है, सो एक पल में भी सिखा देते हैं।

प्राचीनकाल के गुरू इस प्रकार अपने विद्यार्थियों को सिखाते थे। इस एक ही प्रकार में अनेकानेक पद्धतियों का समावेश हो जाता था। गुरू विद्यार्थी की व्यक्तिगत शक्ति, दृढ़ता आदि का पता लगाकर उसको उसके व्यक्तिगत विकास और उन्नति का मार्ग दिखाते थे। इस कारण किसी को वर्षों तक और किसी को कुछ ही महीनों तक गुरू के आश्रम में रहने पर विद्या प्राप्त होती थी। गुरू विद्यार्थियों के प्रति समान भाव रखते थे और उनको समान भाव से पढ़ाते थे। मूर्ख और बुद्धिमान दोनों प्रकार के विद्यार्थियों में गुरू अपना समान प्रतिबिम्ब डालते थे और विद्यार्थी की मूल शक्ति अथवा वृत्ति के प्रत्याघात को देखकर अपनी शिक्षा की सफलता या विफलता का अनुमान लगाते थे। विद्यार्थी और गुरू के बीच जो सम्बन्ध रहता था, वह प्रेम का होता था। यह प्रेम ही विद्यार्थी के और गुरू के स्थान को बड़े और छोटे के रूप में, अग्रज और अनुज के रूप में और बुजुर्ग, बालक के रूप में अंकित करता था। इस पद्धति की प्रशंसा करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि यह पद्धति तो पद्धतियों की भी पद्धति है। जो इस पद्धति को विकसित करना जानते हैं, वे सद्गुरू हैं तथा जो इसको सहन कर सकते हैं, वे सत् शिष्य हैं। आज भी ऐसे गुरू-शिष्य इस प्रथा के माध्यम से ठेठ आत्मज्ञान तक का ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं।

स्वयं-शिक्षण पद्धतिः- अंग्रेजी में इसे मॉण्टेसरी-पद्धति कहा जाता है, इस पद्धति की स्थापना डॉक्टर

मेरिया मॉण्टेसरी ने की है। अलग-अलग शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा की अच्छी-अच्छी पद्धतियों की खोज की है। इन पद्धतियों में इस बात का प्रतिपादन किया जाता है कि शिक्षक कोई भी विषय विद्यार्थियों को कितनी अच्छी तरह से सिखा सकता है। मतलब यह कि इनमें शिक्षक सिखाने वाला होता है और विद्यार्थी सीखने वाला होता है। स्वयंशिक्षण-पद्धति वह पद्धति है, जिसमें विद्यार्थी स्वयं ही ज्ञान प्राप्त करता रहता है। इस पद्धति में शिक्षक सीधे-सीधे सिखाता नहीं है, किन्तु वह ऐसे प्रबोधक वातावरण की रचना करता है, जिसमें बालक खुद ही अपनी कोशिश और अपनी बुद्धि से अपने लिए वह शिक्षा पाता रहता है, जो उसके लिए जरूरी होती है।

यह पद्धति स्वयंशिक्षण के साथ ही प्रबोधक सामग्री वाली पद्धति भी है। इसकी प्रबोधक सामग्री ज्ञान अथवा शक्ति का प्रबोधन स्वयं करती है। प्रबोधक सामग्री की रचना ऐसी होती है कि प्रबोधन के काम में होने वाली भूलों को बालक खुद ही अपने अनुभव और प्रयोग की मदद से सुधारता रहता है।

इस पद्धति में शिक्षक का काम है कि वह बालक को स्वतंत्रता के मार्ग पर चलता करे। वह ऐसा वातावरण खड़ा करे कि जिसमें बालक अपनी पराधीन स्थिति में से स्वाधीन अथवा स्वावलम्बी स्थिति में पहुँच सके, जिसमें अपने प्रेम रूपी प्रकाश से शिक्षक शिक्षा के सारे वातावरण को ऊष्मा-युक्त और उल्लासपूर्ण बना सके। इसमें शिक्षक तटस्थ रहता है, फिर भी वह प्रवाह के साथ आने वाले कूड़े-कचरे को दूर करता है। इसमें शिक्षक केवल दृष्टा है, फिर भी वह अनुकूल साधन-सामग्री का और वातावरण का सृष्टा है; उसकी भूमिका अवलोकनकर्ता की होती है, फिर भी वह विज्ञान के सिद्धान्तों का स्थापक और उनको कार्यरूप में परिणत करने वाला होता है। इसमें शिक्षक का मुख्य सूत्र मौन रहता है, फिर भी वह जानता है कि उसको अपनी वाणी का उपयोग कब करना है। उसका आनन्द इस बात में है कि बगीचे के फूलों की तरह बालक अपने हो रहे विकास को देखकर हंसता रहे। उसकी कल्पना में न तो सजा है, न इनाम है और न स्पर्धा ही है। उसकी दृष्टि में प्रत्येक बालक एक भिन्न व्यक्ति है और अपनी विभिन्न प्रकार की पूंजी के सहारे अपनी प्रगति करने वाला एक चेतन तत्त्व है। शिक्षक का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक बालक की सहायता उसका मित्र बनकर करता रहे।

इस पद्धति से शिक्षा का आरम्भ इंद्रिय-विकास से होता है। प्रतिष्ठापित मनोविज्ञान के वर्तमान नियमों के अनुसार मन की शक्तियों के विकास में इंद्रियों का विकास बुनियाद के रूप में है। इस पद्धति की विशेषता यह है कि इसमें बालक की मानसिक शक्तियों के अर्थात् बुद्धि-शक्ति, क्रिया-शक्ति और कल्पना-शक्ति के विकास की गुंजाइश है। इस पद्धति को स्वतंत्र विकास-पद्धति

का नाम दिया जा सकता है। इस पद्धति के द्वारा भाषा, गणित, चित्रकला, संगीत आदि कला और ज्ञान के विषय सिखाए जाते हैं, किन्तु इसमें इन विषयों की शिक्षा गौण है, जबकि इनके लिए आवश्यक शक्ति की शिक्षा मुख्य है।

स्वयंशिक्षा की इस पद्धति में कक्षा की व्यवस्था और अनुशासन की मर्यादा भिन्न होती है। जो बालक दूसरे बालकों के लिए बाधक बने बिना अपना विकास करता रहता है, वह बालक व्यवस्थित और अनुशासित बालक माना जाता है। उसके लिए उसका अपना समयचक्र और उसकी अपनी जगह होती है। अपने लिए विषयों का चुनाव भी वह खुद ही कर लेता है। इसके परिणामस्वरूप हर एक बालक अपनी गति से ज्ञान प्राप्त करता है। उसके लिए इनाम और सजा का कोई अर्थ रहता ही नहीं। वह खुद ही अपना परीक्षक होता है। ज्ञान की भूख के कारण वह ज्ञान ग्रहण करता है। अतएव जब तक उसको प्राप्त नहीं होता, तब तक वह बार-बार खुद ही ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहता है। यह पद्धति सार्वभौम सिद्धान्तों पर आधारित दिखती है और इसी कारण यह सर्वव्यापक और सर्वमान्य बनी है। गिजू भाई इस पद्धति से अत्यधिक प्रभावित हैं।

कथा पद्धतिः- कथा-पद्धति के महत्व की चर्चा करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि हम हर एक विषय की कथा से शुरू कर सकते हैं अथवा सिखा सकते हैं, इसलिए कथा-कथन भी पद्धति का एक अंग बन जाता है।

यूरोप में लम्बे समय से कथा-कहानी के द्वारा इतिहास सिखाने का काम शुरू करने की प्रथा चल रही है। कहानी कहने में कुशल शिक्षक बालकों के सामने इतिहास की जानकारी ऐसे प्रभावशाली ढंग से रखते हैं कि बालकों को इतिहास का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। वे इतिहास के पात्रों के पास ही खड़े-खड़े इतिहास के दर्शन करते हैं। कहानी के जरिये मिली इतिहास की जानकारियाँ भुलाए नहीं भूलती। कहानी के जरिए इतिहास पढ़ने या सिखाने का अनुभव हर एक शिक्षक स्वयं ही करे।

आज इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में से कोई बिरली ही पुस्तक कहानी के रूप में लिखी होती है। शिक्षक पहले इतिहास की घटनाओं को पढ़ लें और फिर उनको कहानी के रूप और रंग में सजाकर विद्यार्थियों के सामने पेश करे। कहानी के जरिये भूगोल के समान विषय भी, जो पढ़ाने में बहुत अटपटा माना जाता है, बहुत अच्छी तरह से पढ़ाया जा सकता है।

कहानी के द्वारा साहित्य की शिक्षा तो सरलता से दी जा सकती है। किसी सुन्दर कहानी का कथन साहित्य के सीधे परिचय का और अध्ययन का काम करता है। कथा या कहानी की पद्धति से पढ़ने की रीति को फिर अधिक सजीव बनाने की आवश्यकता है, क्योंकि वह सस्ती और सरल है।

जिस तरह कथा-कहानी के जरिए विषयों की पढ़ाई की जा सकती है, उसी तरह उसके जरिए विषयों के प्रति अच्छी अभिरूचि भी जगाई जा सकती है। बड़े-बड़े संगीतज्ञों, चित्रकारों, शिक्षाविदों और राजनीतिज्ञों की कहानियाँ कह-कहकर हम उन-उन विषयों के प्रति विद्यार्थियों की रुचि को जाग्रत कर सकते हैं।

कथा-पद्धति का भी अपना एक निश्चित स्वरूप होता है। कथा-पद्धति का उपयोग करने वाले को कथा पसंद करते समय कथा की वस्तु, कथा की रचना और कथा के रस आदि को समझ लेना चाहिए।

कथा-पद्धति का एक अति आवश्यक अंग कथा कहने की छटा है। कथन की इस छटा के बिना कथा-पद्धति लगभग निष्फल होती है। कथा-पद्धति का अत्यन्त अनावश्यक ढंग है - कथा को कहलवाना। इस पद्धति से शिक्षा को सफल बनाना हो, तो कथा या कहानी कहने के बाद उसको फिर विद्यार्थियों से कहलवाना नहीं चाहिए। व्यंग्यपूर्ण ढंग से गिजू भाई कहते हैं कि कथा-पद्धति का सच्चा दुरूपयोग किंडरगार्टन पाठशाला में अंक या अक्षर सिखाने के लिए कहानी कहने में है। अथवा बीकन-पद्धति में शब्दों या वाक्यों को सिखाने के लिए कहानी का उपयोग करने में है।[1]

प्रत्यक्ष अवलोकन एवं प्रकृति शिक्षणः- प्रकृति जीवन के संयम तथा परित्याग से सुसंस्कृत सामाजिक जीवन उपजा है, यह एक सच्चाई है। प्रकृति-जीवन का परित्याग करवाने का अर्थ है मनुष्य को धरती माता की गोद से छीनना। हम नवजात शिशु को माता की छाती से खींचते हैं तो उस पर अत्याचार ही करते हैं-ठीक वैसे ही प्राकृतिक मनुष्य को प्रकृति से खींचना भी एक अत्याचार है, लेकिन इसके बावजूद प्रकृति जीवन से सामाजिक जीवन में प्रविष्ट होना भी तो एक नया जीवन है-जीवन का एक नया पृष्ठ और उसमें मानव जीवन का उद्धार समाहित है। अतएव सामाजिक जीवन के लिए शिक्षा का प्रबंध व्यवहार्य है।

प्रकृति बालक को उदारता एवं समभाव का सच्चा पाठ पढ़ाने वाली कुशल शिक्षिका है। बालकों और उनकी संभाल के नीचे पलने वाले प्राणियों के बीच एक तरह का सहवास-जन्य सहभाव होता है। इसके माध्यम से बालकों को प्राणी-जीवन के व्यापारों में बड़ा ही आनन्द प्राप्त होता है। उनको लटों और खाद में पैदा होने वाले नन्हें-नन्हें जीवों तक में इतना मजा आता है कि उन जीवों को देखने से हमें जो ऊब-उकताहट पैदा होती है, वह उन्हें नहीं होती। हम लोग तो प्रकृति-जीवन से इतनी दूर चले आए हैं कि प्रकृति का आनन्द हमें त्रासदायी और पीड़ाजनक प्रतीत होता है। प्राणियों के तथा मानव के बीच परस्पर विश्वास और श्रद्धा का भाव पैदा हो, यही अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसी में विश्वव्यापी प्रेम एवं ऐक्य का मार्ग विद्यमान है। प्रकृति मनुष्य को उदारता का भाव

1- गिजू भाई बधेका -प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 71

अनोखी रीति से पढ़ाती है। उसके पास व्यापारियों वाले खाते-बही नहीं होते कि जितना तुम दोगे उतना ही वापस पाओगे। ऐसी प्राकृत प्रथा प्रकृति के घर में नहीं है। उसकी सेवा के बदले में मिलने वाली उदारता निःसीम है।

गिजू भाई की दृष्टि में प्राणवान प्रकृति जो उपहार प्रदान करती है और निर्जीव यंत्र अथवा व्यापारी जो बदले में हमें प्रदान करते हैं उनके महत्त्व को लेकर दोनों में बहुत-बहुत अन्तर है। प्रकृति की उत्पत्ति तथा मानुषी उत्पत्ति के बीच का गहरा अन्तर बालक प्रकृति के बिना परिश्रम किये एक परम सत्य के बतौर सीखता है। प्रकृति हमें इतना महत्त्वपूर्ण ज्ञान देती है कि उसकी उदारता सबके लिए मुक्त है, बस जरा-से परिश्रम करने की जरूरत है।

मनुष्य जाति के प्राकृतिक विकास-क्रम से गुजरना बालक के लिए स्वाभाविक है। प्रकृति-शिक्षण के द्वारा बालक का वैयक्तिक विकास उसके समष्टि विकास का साथ समरूप होता है। जब बालक का प्राकृतिक-विकास होता है तभी वह समष्टि का सच्चा अंग बन जाता है। गिजू भाई बलपूर्वक कहते हैं कि जिस मार्ग से होकर मानव संस्कृत हुआ है, उसी मार्ग से होकर मनुष्य को संस्कृत होने के लिए चलना होगा। यदि हमें एक बार यह बात समझ में आ जाए कि प्रकृति में शिक्षा देने की अद्‌भुत शक्ति है तो प्रकृति शिक्षण प्राप्त करने का प्रबंध करना कोई कठिन नहीं है। विद्यालय बालकों के शारीरिक विकास के लिए बड़े-बड़े मैदान और अखाड़े भले ही न जुटाएं पर खेती के लिए थोड़ी जमीन और कबूतरों के रहने के लिए थोड़ी जगह तो कठिनाई के बगैर जुटा ही सकते हैं। इतनी व्यवस्था आध्यात्मिक-शिक्षण के लिए पर्याप्त है और कुछ सम्भव न हो तो एकाध खिड़की में एकाध गमला रखना भी कोई कम महत्त्व की बात नहीं है।

गिजू भाई प्रत्यक्ष अवलोकन के महत्व की ओर प्रश्नों के माध्यम से संकेत करते हुए पूछते हैं कि बालक को पक्षियों की सुन्दर बातें कहने के बदले हम उसको सुन्दर-सुन्दर पक्षी क्यों न दिखाएँ? श्यामपट्ट पर बालक को ईंजन की रचना समझाने के बदले हम उसको ईंजन के पास ले जाकर वहाँ ईंजन की सारी रचना क्यों न समझाएं? बालक को धरती के पेट में पड़े अनेकानेक खनिज द्रव्यों की रोचक कथाएँ सुनाने के बदले, हम उसको खनिज द्रव्यों से भरी-पूरी धरती ही खोदकर क्यों न दिखाएँ?

बालक को देश के लाखों-करोड़ों गरीबों की बातें सुनाने के बदले हम उसको गरीबों के झोंपड़े क्यों न दिखाएँ? अपने नौकरों को मारपीट कर उनसे काम करवाने वाले सेठों की और कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की बातें बालक को सुनाने के बदले हम उसको सेठों, मजदूरों और कारखानों के बीच क्यों न ले जाएँ? क्या ऐसा करने पर बालक का अधिक अच्छा विकास नहीं होगा?[1]

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 117

शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थानों में पाठ-योजना द्वारा शिक्षण किए जाने के सम्बन्ध में गिजू भाई कहते हैं कि कई लोगों की ऐसी मान्यता है कि पाठ-योजना की विधि से इन्द्रियों का विकास होता है। इसी योजना से वर्तमान शालाओं में पाठ पढ़ाने के हास्यास्पद प्रयत्न चल रहे हैं। ट्रेनिंग कॉलेजों में तो पाठ-योजना का झमेला खूब ही चल रहा है। पाठ-योजना का प्रयोजन अवलोकन-शक्ति का विकास करना बताया जाता है, लेकिन अवलोकन कराने से अवलोकन करने की शक्ति नहीं बढ़ती। सही इन्द्रिय-शिक्षण किये जाने से ही अवलोकन करने की शक्ति स्वत: विकसित होती है। पाठ-योजना से विशिष्ट पदार्थों का परिचय मिलता है तथा पदार्थों के गुण-धर्मों की जानकारी मिलती है, परन्तु वह इन्द्रिय-विकास नहीं है। वस्तुओं का ज्ञान तथा वस्तुओं का परिचय इन्द्रिय-विकास से भिन्न है। इन्द्रिय-विकास व्यापक अवलोकन शक्ति प्रदान करता है, जबकि पाठ-योजना सिर्फ उन-उन पदार्थों का विशिष्ट ज्ञान प्रदान करती है।[1]

4.5 अनुशासन

गिजू भाई छात्र-अनुशासन के विषय में स्पष्ट अवधारणा रखते थे। उनकी अनुशासन सम्बन्धी अवधारणा उनके अपने बाल्य-जीवन के अनुभवों, आस-पड़ोस के प्रत्यक्ष अनुभवों तथा विद्यालय के स्वानुभवों से विकसित हुई थी। वे भय व दमन पर आधारित अनुशासन के साथ-साथ लालच, प्रशंसा व पुरुस्कार पर आधारित अनुशासन के विरोधी थे। उनका मानना था कि समाज में आज जो जेलखानें हैं, उसके लिए हमारे दोषपूर्ण विद्यालय प्रक्रिया व व्यवस्था जिम्मेवार हैं। वे कहते हैं - जिस तरह से शरीर के रोगों के लिए स्थान-स्थान पर दवाखाने खुल गये हैं, उसी तरह मस्तिष्क व मन रोगों के लिए जगह-जगह जेलखाने खुल गये हैं। अगर मन-मस्तिष्क के रोगों को मिटाने का काम भी पाठशालाएं अपने हाथ में ले लें तो अल्प समय में ही आज की सब जेलें बंद हो जाएँ। आज के शिक्षाविदों को यह चुनौती झेलनी है ताकि तमाम जेलखाने विद्यालय बन जाएँ और कैदियों के बदले वहाँ आने वाले कल के अच्छे-भले उपयोगी नागरिक तैयार होने लगें। हमारी पाठशालाएं किस अंश तक जेलखानों की जिम्मेदार हैं, यह सवाल भी हमारे लिए विचारणीय है। डॉ0 मॉण्टेसरी कहती हैं, 'वस्तुत: हम हमारी मान्यताओं को बालकों पर लादने के लिए इनाम व सजा देने के दमनात्मक साधनों का प्रयोग करते हैं। बालकों के मन में उनके लिए यह स्थिति जेल की प्रथम सजा जैसी है।'[2]

गिजू भाई बालक की पहली जेल पाठशाला को मानते हैं। पाठशाला में उसे पढ़ाई के बहाने कैदी की तरह रखा जाता है। वे कहते हैं कि जब तक पाठशालाओं से सजा को समाप्त नहीं किया जायेगा, जब तक बालकों के मानसिक रोगों को डॉक्टरी दृष्टि से दूर करने के शास्त्रीय प्रयोग नहीं किये जायेंगे, तब तक पाठशालाएँ जेलखाने बनी रहेंगी। सरकारी जेलखानों के लिए वे कैदी ही तैयार

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 98
2- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 79

करेंगी। भले लड़कों के लिए पाठशालाएँ कुछ नहीं करतीं। अच्छे बच्चों के लिए पाठशालाएँ हैं भी नहीं, यह कहा जाए तो गलत न होगा। पाठशाला का प्रयोजन ऐसे निर्बल बालकों के लिए ही है और उन्हें श्रेष्ठ नागरिक बनाने में ही पाठशालाओं की खरी परीक्षा है।[1]

उनके अनुसार अब तक की शिक्षण-पद्धति सजा देने के दौर-दौरे पर ही निर्मित रही है। सजा के दबाव तले बालक की शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, उल्टे अपराध करने की शक्ति उभरने लगती हैं। सजा के भय की वजह से अपराध-वृत्ति प्रच्छन्न बनी रहती है, समूल नष्ट नहीं होती और बालक को पाठशाला से कोई लाभ नहीं मिलता। अनेक बच्चे घर के वातावरण की वजह से या आनुवंशिक संस्कारों की वजह से रास्ते से अलग हटते प्रतीत होते हैं, उनके लिए भी हम सजा रूपी इलाज काम में लाते हैं। ऊधम मचाने वाले बालक तो सजा के लिए ही जन्में हैं, ऐसा मान बैठते हैं हम। पर, जिसे हम बालक का ऊधम मचाना कहते हैं वह अधिकतर तो हमारी शिक्षा-पद्धति के प्रति बालक का व्यक्तिगत विद्रोह होता है। अपराध-वृत्ति को सजा देकर कभी नहीं रोका जा सकता। फौजदारी-कानून की निष्फलता इस बात की गवाही है। मानसिक रोगों का उपचार कभी शारीरिक ताकत आजमाने से नहीं होता, इसका इलाज शिक्षा में समाहित है। यही बात इटली की प्रख्यात शिक्षाविद डॉ0 मॉण्टेसरी कहती हैं। उनका यह कथन बहुत सही है कि ऐसे लोगों का इलाज हर हालत में एकमात्र शिक्षा ही है। सजा देना तो हमें बिल्कुल ही बंद कर देनी चाहिए।[2]

मनोवैज्ञानिक व जनतांत्रिक प्रवृत्तियों के प्रभाव से स्कूलों में भले ही शारीरिक दण्ड या दमनात्मक अनुशासन को गलत ठहराया जाता हो, यह बुराई विद्यालयों में बदस्तूर जारी है। कुछ विद्यालय अपवाद हो सकते हैं। गिजू भाई स्वीकारते हैं - शहरों की कतिपय अच्छी शालाओं के अध्यापकगण आज मारपीट करना नहीं पोसाते, इस कारण से यह बात हमें स्वीकार करनी चाहिए कि उन-उन शालाओं से तो मारपीट का जमाना अब गया। लेकिन गाँवों की सैकड़ों राजकीय शालाओं में अब भी 'सोटा बाजे छमछम, विद्या आवे घमघम' का पाठ पढ़ाया जाता है और वहां के विद्यार्थियों, मास्टरों और ग्रामवासियों को यह सब बहुत स्वाभाविक प्रतीत होता है।[3]

गिजू भाई इस स्थिति में व्याकुलता अनुभव करते हुए शिक्षकों का आह्वान करते हैं कि वे इस दिशा में संघर्ष करें। वे कहते हैं कि हमें उन तमाम बालकों के लिए सोचना है जो शेष रह गये हैं। जिन बालकों के लिए कोई भी संघर्ष नहीं करता, उनके लिए हमें संघर्ष करना है। जो बालक माता-पिताओं की मौजूदगी के बावजूद उनकी प्रेमपूर्ण, मधुर, विकासमान छाया तले नहीं हैं, जो बालक अध्यापकों के होते हुए भी कुशल, सहानुभूतिशील एवं दिव्य-दृष्टा शिक्षकों की अमृतमयी छाया के नीचे नहीं हैं, हमें उन सबों को वहां से बचाना है, उनको संरक्षण देना है। जिस प्रकार

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 25
2- वही, पृ0 25
3- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 91

प्राचीनकाल में गाय और ब्राह्मण की सब रक्षा करते थे। उनके लिए उस युग ने बहुत कष्ट सहे हैं, बहुत तेजस्विता प्रदर्शित की है। उसी प्रकार इस नए युग में अरक्षित, त्रस्त, भयभीत, तिरस्कृत बालकों की रक्षा के लिए हमें अपने भीतर क्षत्रिय भाव को जागृत करना चाहिए। मानव में विद्यमान दया के सागर को प्रबुद्ध करके बालकों को बचाने के लिए बुद्धों के अवतार हेतु सब मानवों को प्रभु से याचना करनी चाहिए।[1]

गिजू भाई प्रश्न करते हैं कि क्या बालक को मार-पीटकर पढ़ाना धर्म है? वे कहते हैं कि इस समय देश में जो शिक्षा-पद्धति चल रही है, उसे देखकर तो सचमुच शर्मिंदगी हो आती है। हम परिणाम लाने के लिए बंधे हुए हैं, पेट के खातिर अपने धर्म से टिके नहीं रह सकते। कइयों की धारणा है कि मारपीट करने से ज्ञान आता है और परिणाम भी अच्छा रहता है, पर यह अत्यन्त भ्रामक धारणा है। इससे कभी कोई लाभ नहीं होने वाला। दंड देने का पापपूर्ण आचरण करने से शिक्षा में जरा-सा भी लाभ नहीं होगा। ऐसा करने से बालकों की बुद्धि नहीं बढ़ती। अगर ऐसा करने से ही बुद्धि बढ़ सकती हो तो किसी भी बेवकूफ को मार-पीटकर बुद्धिमान बना सकते हैं और हमें भी अपने अब तक के बौद्धिक विकास के लिए मार खानी चाहिए। पर वस्तुतः यह सोच ही बिल्कुल गलत है। कोई यह तर्क देता है कि सजा देकर शैतान लड़कों को शांत बनाया जा सकता है, पर यह शांति टिकेगी कब तक? किसी बलवान व्यक्ति के सामने बंदूक ताने रखें तो वह घड़ीभर के लिए ही शांत रह पाएगा। सजा देकर हम बालक को गुलाम बनाना चाहते हैं, यह अच्छी बात नहीं है।

गिजू भाई स्वीकार करते हैं कि इस समय देश अंधेरे के दौर से गुजर रहा है। लेकिन हमें अपने बालकों को आने वाले कल के बालक समझना चाहिए। उन्हें अनंत भविष्य का भविष्य मानकर चलना चाहिए। मार-पीट करने से तो मारपीट करने वाले बालक ही पैदा होंगे। वे हमारे सामने नहीं बोलेंगे, पर औरों की निर्बलता का लाभ उठाकर वे हमारे जैसे ही बनेंगे।

गिजू भाई मानते हैं कि बहुत सारे अध्यापक अब भी मार-पीट करते हैं। इस पर वे कहते हैं कि अगर हममें ताकत है तो अपने से बड़े के सामने लड़ाई में उसे आजमायें या फिर कमजोर की रक्षा में उसका प्रयोग करें, पर नन्हें बालकों को मारने में कभी न करें। इसमें कोई बहादुरी नहीं है। शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से भी इसमें नीति या समझदारी नहीं है, अपितु नुकसान ही है।

शिक्षण की ऐसी बदी अनेक लोग चलाते हैं। अच्छे पढ़े-लिखे गणमान्य शिक्षक भी इसे नहीं भूल पाए। अगर हमें आगे बढ़ना है तो इसे बिल्कुल त्यागना होगा। वे स्वीकारते हैं कि "पहले मैं भी दंड देने में आस्था रखता था, पर अब इस सम्बन्ध में अपने विचार निश्चित कर चुका हूँ और अब मुझे दंड देने वाले व्यक्ति पर तरस आता है। आप में से जो लोग सजा को छोड़ने के विरुद्ध हैं उन्हें

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 92

तो क्रोध ही आएगा, पर जिन्हें इससे होने वाली हानि की बात समझ में आ गई, वे तो इसे छोड़ेंगे ही। हमारी पाठशालाओं में सजा देने की एक बुराई नहीं है अपितु बालकों को रटाना, गलत ढंग से पढ़ाना, इनाम या लालच, ऐसी-वैसी बुराइयों की तो सीमा ही नहीं है। अगर यहीं सब जारी रहा तो शिक्षण सुधरेगा नहीं, न उस पर प्रकाश ही पड़ेगा।"

गिजू भाई कहते हैं कि यह स्पष्ट रूप से दिखायी दे रहा है कि हमारा देश निडरता तथा लालच-रहितता में पिछड़ा हुआ है। भय और लालच हमें अपने वशीभूत कर सकते हैं। भय और लालच पर ही राज्य-सत्ता और मनुष्य-सत्ता टिकी रही है और गुलामी की रस्सी मजबूत रही। हमारी शिक्षा का निर्माण भी भय और लालच याने दंड और पुरस्कार पर हुआ है। भय और लालच के पाठ हमें बचपन से हमारे विद्यालयों से ही पढ़ने को मिलते रहे हैं। भय और लालच के वातावरण वाली पाठशालाएं हमें गुलामी के लिए तैयार करती हैं, जबकि स्वतंत्र होने और बने रहने की आकांक्षा रखने वाला देश अपनी पाठशाला में ऐसी परिस्थिति एक क्षण के लिए भी सहन नहीं कर सकता। हमें इस स्थिति से मुक्त होना चाहिए तथा बालकों को एकदम मुक्त करना चाहिए। दंड या पुरस्कार के बिना बालक अनुशासन में नहीं रहते- इस मान्यता के जैसी भ्रांति एक भी नहीं है। दंड के भय से तभी तक अनुशासन रहता है, जब तक दंड का भय स्थिर रहता है। ज्योंही दंड का भय चला जाता है, त्योंही अनुशासन गायब हो जाता है। दंड का भय स्थिर नहीं रह सकता अत: अनुशासन की गुत्थी का कभी समाधान नहीं किया जा सकता उल्टे, नशेबाज को जिस तरह रोजाना नशे की मात्रा बढ़ाने पर ही नशा चढ़ता है; उसी तरह जैसे-जैसे दंड की मात्रा को बढ़ाया जायेगा वैसे-वैसे ही दंड का प्रभाव बना रह सकेगा। अंतत: दंड का भय बिल्कुल ही चला जाता है और दंड की प्रभावोत्पादकता समाप्त हो जाती है। इसी सिद्धान्त के अनुसार जो व्यक्ति एक बार जेल हो आता है उसके मन में जेल आसान चीज हो जाती है। इसीलिए अब जेलों के बजाय उद्योगशालाएं बनाई गई हैं। अहिंसा का सिद्धान्त स्वीकार करने वाली हमारी पाठशालाओं द्वारा बालकों को सजा नहीं दी जा सकेगी। गिजू भाई की नजर में सजा देना पाप है। यह हमारी दुर्बलता का ही परिणाम है। जिसमें सामना करने की कतई ताकत नहीं, उन पर हाथ उठाने जैसी नामर्दगी भला और क्या होगी। नामर्दगी के कृत्य से कभी लाभ नहीं होने का। मनोवैज्ञानिक या शरीर-वैज्ञानिक दृष्टि से सजा का कोई अर्थ नहीं होने का। सजा से न ध्यान एकाग्र होता है न बुद्धि विकसित होती है - ऐसा मनोविज्ञानवेत्ताओं का कथन है। डॉक्टरों का कथन है कि सजा से न बुद्धि विकसित होती है, न स्मरणशक्ति। न ही शिक्षा से इसका कोई सम्बन्ध है। सजा सर्वथा त्याज्य है, अतएव हमारे विद्यालयों से इसका बहिष्कार होना ही चाहिए। सजा बंद कर देंगे तो बालक अनुशासित कैसे रह पायेंगे, इस चिन्ता में पड़े अध्यापक के सामने और अनेक

रास्ते हैं। अगर हम सजा देने के पाप से बचना चाहते हों और भावी नागरिकों को इस पाप से बचाना चाहते हों तो बालक को सजा कदापि न दें। यहां सजा का अर्थ शारीरिक सजा से ही है। इससे अगर हम उबर जाते हैं तो समझो कि बहुत हुआ।[1]

गिजू भाई स्पष्ट रूप से मानते हैं कि बालक के साथ मारपीट हर्गिज न की जाए। न ही उसे डांटा या धमकाया जाये। "वैसा करेगा तो अमुक चीज नहीं दी जायेगी या यूं हो जाएगा।' ऐसे वचन कहना भी एक तरह से बालक को सजा देना ही है। उसकी इच्छा के विरुद्ध रोकना, उसका हाथ पकड़कर बिठाना, जोर से उसको दबाना, उसे उठाकर गिराना या जबरदस्ती धक्का देना, ये सब सजा देने के तौर-तरीके ही हैं। आँखें दिखाना, भौंहें चढ़ाकर देखना, नाक पर उंगली रखकर चुप कराना, जोर का सीत्कार करना, रोबीली आवाज में गुर्राना आदि भी सजा की ही पद्धतियां हैं। बालमंदिर के बालक ऐसी हर प्रकार की सजाओं से मुक्त रखे जाने चाहिए।

गिजू भाई का तर्क है कि जब दबाकर राज्यों तक को नहीं रखा जा सकता, तो भला बालमंदिर के बालक दबाव में कैसे पढ़ेंगे? हमें बालमंदिर से दंड और सजा को मिटाकर ही संसार से हिंसा, त्रास एवं अत्याचारों को स्थायी रूप से समाप्त करना है। हमें इस बात की चिंता करनी चाहिए कि बालक को किसी तरह की सजा देंगे तो हम उसके प्रेमपात्र हर्गिज नहीं रह सकेंगे। आने वाला युग स्वराज्य का युग होगा। जब हम उसमें हिंसा नहीं चाहते तो पाठशाला में यह क्योंकर रहेगी? क्योंकर रहनी चाहिए? जब भी कभी हमारे मन में बालक पर किसी तरह का दबाव डालने का ख्याल आए तो हमें तत्काल यह बात सोचनी चाहिए कि हम कितने बलवान हैं और बालक कितना निर्बल। निर्बल को दंड देना हिंसा से भी बदतर है। बालक को सजा देकर हम आने वाली पीढ़ी के मूल में हिंसा का जल ही सींचेंगे।

गिजू भाई का कहना है कि बालक को दंड देकर हम अपनी ही असंयमी वृत्ति को प्रदर्शित करते हैं। उनके मत से सोचने की बात है कि हमारा संयम दंड देने में है या दंड न देने की बजाय अपने-आपको संयमित रखने में। संयम अच्छा है या असंयम? संयम रखने में भला है या असंयम में ? बालक को दंड देने में हमारी राक्षसी वृत्ति का अपने-आप प्रदर्शन हो जाता है। यदि हमें तय करना है तो हम बालक को न मारना, न दबाना सीखें। भगवान् के पावन एवं निर्दोष स्वरूप सदृश बालक के परिचय को हम दंड के विचार मात्र से दूषित न करें। भलाई के शिखर पर चढ़ने वाली सीढ़ी के सबसे ऊँचे सोपान पर है बालमंदिर के बालकों का शिक्षण। गुलाब की कली को कुचलने से, उस पर आघात करने से तो गुलाब खिलने का नहीं, न ही हम उसकी सुगंध पा सकेंगे। ऐसे ही बालक के साथ मारपीट करने से हम उसे मनुष्य नहीं बना सकेंगे। ऐसा करने से उसमें से मनुष्यता

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 42-43

की सुगंध नहीं फूट सकेगी।[1]

बालकों को दण्ड नहीं देना है, यह व्रत शिक्षकों को लेना चाहिए। अगर पुरानी आदत की वजह से बालकों पर गुस्सा आ जाए, उन पर हाथ उठ जाए, उनकी भावनाओं को दबा दिया जाये तो निराश होने की जरूरत नहीं है, संयम लाने की बार-बार साधना करो। मुमुक्षु को संयम के विरुद्ध संघर्ष करने में दुगुना जोश चढ़ता है और बहुत मजा आता है। वे कहते हैं कि अपने बचपन के दिनों को अगर याद करेंगे तो हम किसी से भी मारपीट करना नहीं चाहेंगे। बालक अपने पूर्वजन्म के संस्कार लेकर जन्म लेता है। माता-पिता भी उसे उत्तराधिकार में बहुत सारे गुण-दोष प्रदान करते हैं। घर से भी उस पर अच्छे-बुरे अनेक प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। मनोवैज्ञानिकों, शरीरवेत्ताओं और जीवनशास्त्रियों का कहना है कि अपना शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास करने के लिए निरंतर संघर्ष करना है। बालक को सजा देकर भला उसके पूर्वगत संस्कारों, विरासत में मिले गुण-दोषों, परिवार के प्रभावों तथा बालक के स्वयं अपने विकास की स्वाभाविक वृत्ति को हम कैसे रोक सकेंगे?[2]

प्रसिद्ध विचारक व कवि खलील जिब्रान ने भी लिखा है कि तुम उन्हें अपना प्यार दे सकते हों, लेकिन विचार नहीं क्योंकि उनके पास अपने विचार होते हैं। तुम उनका शरीर बंद कर सकते हैं लेकिन आत्मा नहीं क्योंकि उनकी आत्मा आने वाले कल में निवास करती है। उसे तुम नहीं देख सकते हों, अपने सपनों में भी नहीं तुम उनके जैसा बनने का प्रयत्न कर सकते हों, लेकिन उन्हें अपनी तरह बनाने की इच्छा मत रखना क्योंकि जीवन पीछे की ओर नहीं जाता और न बीते हुए कल के साथ ही है।

गिजू भाई कहते हैं कि सजा के कारण बालक के मन में जो डर पैदा होता है, वह भयंकर है, प्राणघातक है और दुष्ट है। इस डर के कारण बालक डरपोक, झूठ बोलने वाला और नामर्द बन जाता है। आगे चलकर डर के कारण ही बालक दुराचारी बनता है। आज हम धर्म से, समाज से, रूढ़ि से, जाति से और सत्ता से जो डरते हैं, इसका कारण क्या है? बचपन से हमारे अंदर जो डर घुस गया है, वही इसका कारण है। दूसरों से डरने के कारण हम झूठ बोलते हैं और नामर्दी दिखाते हैं। आज भय दिखाकर हम अपने बालक को डरा सकते हैं। कल शिक्षक उसे डरा सकेगा और आगे कुछ समय के बाद पुलिस वाला उसे डरा सकेगा। वे अनुरोध करते हैं कि जैसे भी हो, आप अपने बालक को इस डर से जरूर बचा लीजिए।[3]

बहुत से शिक्षक डांट-डपट कर, ऊँचे स्वर में चीख कर बालकों को अनुशासित करने का प्रयास करते हैं। इसमें कुछ समय के लिए बालक चुप्पी साध सकते हैं, परन्तु फिर पूर्व स्थिति में लौट आते हैं। अतः शिक्षक की यह चेष्टा व्यर्थ है। गिजू भाई का कहना है - शिक्षकों को अपनी आवाज

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 55-56

2- वही, पृ0 56

3- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 57

को रोब जताने का माध्यम समझने की भूल नहीं करनी चाहिए उसके पीछे खोखलापन होता है जो थोड़े ही समय में जाहिर हो जाता है। बालक आवाजों पर आवाजें किये जाने पर भी शांत रहते हैं। आवाजें जरा बंद हुई नहीं कि उनकी प्रतिक्रियास्वरूप स्वयं शोर करने लगते हैं। आवाजें शोरगुल अवश्य रोकती हैं, पर वे शान्ति नहीं फैला सकती। मात्र शान्ति ही - शान्ति पैदा करती है।[1]

लालचः- लालच को भी सजा और भय के समान ही गिजू भाई बुरा बताते हैं। उनका कहना है कि मार- पीटकर और आज्ञा देकर आप अपने बालक को डरपोक और झूठ बोलने वाला बना देंगे। लेकिन लालच देकर या फुसलाकर तो आप उसको नालायक ही बना बैठेंगे। जो बालक घर से पैसे लेकर विद्यालय में पढ़ने जाएगा, वह न्यायाधीश को रिश्वत देकर झूठा फैसला लिखवा लेगा, और वही बालक जमीन या सत्ता हासिल करने के लिए खून भी करेगा, या करवाएगा। खाने की चीजें दे-देकर जिस बालक से हम अपने काम करवा सकेंगे, उसी बालक को कपड़े-लत्ते, हीरा-मोती और जवाहरात देकर व्यभिचारी भी बना सकेंगे। निर्भयता को और मोह को जीतने की शिक्षा ही सच्ची शिक्षा है। भय और लालच दोनों गिराने वाली चीजें हैं। भय से नरक मिलता है और लालच से स्वर्ग दरवाजे पर आकर खड़ा हो जाता है। लेकिन आखिर इन दोनों जगहों से मनुष्य को गिरना पड़ता है। भय और लालच से रहित प्रदेश तो अधरवाला प्रदेश है - वह स्वर्ग और नरक से भी परे है।[2]

बालक को सजा देने, आंतकित करने अर्थात डराने-धमकाने के और दुष्प्रभाव उसके मनोमस्तिष्क पर पड़ते हैं। लालच भी सजा के समान ही बुरी चीज है। यह हमें गिराने वाली चीज है। बचपन से ही जब लालच देकर काम करने की बालक की आदत पड़ जाती है तो वह लालच दिये बिना कोई भी काम नहीं करता। याने वह कर्त्तव्यपरायणता को नहीं समझ सकता। कदाचित् समझ भी ले तो अपने भीतर उसे अमल में लाने की शक्ति नहीं ला सकता। मुहावरे के बतौर कहा जाता है कि "पैसे मिलें तो काम पूरा हो" या "जितना गुड़ डालेंगे उतना ही मीठा होगा।" इसका कारण है पाठशालाओं की इनाम पद्धति, अंक देने की पद्धति, परीक्षा की पद्धति। बदले में कुछ हासिल किये बिना हम काम भी नहीं करते, ऐसी जो हमारी मनोवृत्ति बन गयी है। यह लालच पर आधारित हमारी शिक्षा-पद्धति की ही देन है। आजकल दुनिया में वैश्य-वृत्ति है, जीवन अत्यन्त स्पर्धामय हो गया है और जीवन-कलह स्थिर हो गया है - इनका मूल कारण हमारी पाठशालाएँ हैं। उन्हीं ने हमें इस ओर धकेला है। हममें सत्य के लिए सत्य और प्रेम के लिए प्रेम नहीं है। इसका कारण यह है कि अध्ययन के लिए हमने अध्ययन नहीं किया अपितु परीक्षा के लिए, इनाम के लिए, अंक प्राप्ति के लिए, वाहवाही हासिल करने के लिए किया।[3]

गिजू भाई स्वयं भी वाह्य अभिप्रेरणा का प्रयोग बालकों के लिए नहीं करते थे।

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 95

2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 58

3- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 43

स्पर्धा:- तीसरी बात गिजू भाई यह बताते हैं कि बालक को स्पर्धा के विष से जरूर बचा लीजिए। दो बालकों के बीच होड़ या स्पर्धा खड़ी करके उनसे काम करवा लेने का तरीका एक हल्का तरीका है। हम बच्चों से रोज ही कहते हैं, 'आओ, देखें, पहले कौन दौड़ता है? पहले कौन चूमता है? कौन पहले पानी लाता है?' इस तरीके से हमारा काम तो हो जाता है, लेकिन बालक की आदत बिगड़ जाती है। जब-जब उसको होड़ में उतरने का मौका नहीं मिलता, तब-तब वह दूसरों को हराकर, मारकर, दूसरों की कब्र पर चलकर खुद जीत का सुख लूटने की कोशिश करता है। स्पर्धा या होड़ एक तरह का नशा है। जिस तरह नशेबाज आदमी नशे की हालत में अपना जोर दिखाता है, उसी तरह जब तक आदमी पर स्पर्धा का नशा सवार होता है, तभी तक वह काम करता है। उनका मत है कि स्पर्धा में एक व्यक्ति तो पीछे रहता ही है। जो पीछे रह जाता है वह निराश और निरुत्साही बनता है। इसके विपरीत जो जीत जाता है, वह घमंडी और दंभी बनता है। स्पर्धा एक पैबंद है। उसमें से सच्चा प्राण प्रकट होता ही नहीं। उल्टे, स्पर्धा तो सच्ची प्राण-शक्ति को दूर भगा देती है अथवा उसको विकृत बना देती है।[1]

व्यक्ति में अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए आत्म-प्रेरणा का भाव होना चाहिए। कब कार्य को उत्तम ढंग से संपादित करके उपलब्धि का सुख अनुभव करें, यही उसके लिए सबसे सशक्त प्रेरक तत्व होगा। वे कहते हैं कि "स्वार्थपूर्ति के लिए लोगों को खुश करने हेतु, अपने आंतरिक आविर्भाव के लिए नहीं अपितु प्रशंसा प्राप्त करने हेतु, जीवन की प्रबल भूख की तृप्ति के लिए नहीं अपितु वाहवाही हेतु, विकास के लिए नहीं अपितु लोगों के मनोरंजन हेतु अपने व्यक्तित्व का अथवा अपनी क्षमता किसी को दिखाने का नाम है वेश्यावृत्ति! प्रदर्शन के मूल में यही वृत्ति रहती है। जब हम प्रदर्शन का पोषण करते हैं तो जाने-अनजाने इस वृत्ति का पोषण करने लगते हैं।"[2]

कक्षा में बालक के अवांछनीय व्यवहार के मूल कारणों को जानकर उनका समाधान करना ही व्यवहार परिष्करण का सर्वोत्तम तरीका है। बालकों में लड़ाई झगड़ा करने की, कक्षा से भागने की, चोरी की, शैतानियां करने की जो दुष्वृत्तियाँ देखने में आती हैं उसके मूल कारण घर, गली व विद्यालय वातावरण में ढूंढे जा सकते हैं। ऐसे ही कुछ कारणों पर चर्चा करते हुए गिजू भाई कहते हैं - "लड़के कक्षा में इस वजह से शैतानी किया करते हैं कि या तो उनको शिक्षक अच्छा नहीं लगता या फिर शिक्षक का पढ़ाने का तरीका उनको पसंद नहीं आता।"

बालक को सभी विषय क्यों जबरन पढ़ने चाहिए? गिजू भाई कहते हैं कि अगर यही बात कोई हमसे कहे तो? याने अगर कोई हमसे कहे कि हम भी किसी की इच्छा और व्यवस्था के मुताबिक आचरण करें, तो ? भला, बालकों के लिए उनकी पसंद का, उनके शरीर को पौष्टिकता

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 58

2- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 24

प्रदान करने योग्य खाना दिया जाना चाहिए अथवा जो भी बना दिया गया हो, वही परोस दिया जाए? याने हम लोगों ने जो भी पाठ्यक्रम बना डाला है, उसी के अनुसार हमको बालकों को पढ़ाना चाहिए अथवा जो कुछ बालकों की पढ़ने की रुचि हो, वही चीज उनको पढ़ानी चाहिए? याने बालकों की जो आवश्यकता है, वह उन्हें न दी जाए और जिस चीज की उनको आवश्यकता न हो वह उनको दी जाए, तो यह गलत बात ही है ना! अरुचिकर विषय पढ़ाने से बालक का समय बर्बाद होगा, उसके शरीर एवं मन को पीड़ा पहुँचेगी तथा शिक्षण और शिक्षक के प्रति अरुचि पैदा होगी, सो अलग। मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा पर इस तरह से अगर आक्रमण किया जाता है तो वह अपंग बन जाता है। पंगुता की वजह से आगे चलकर वह दु:खी एवं दुष्प्रवृत्ति वाला लगभग एक भयंकर आदमी बन जाता है। किसी विषय को कुछ कम पढ़कर होने वाली क्षति से यह क्षति कई गुना ज्यादा है। विषय की कमी को तो बालक आगे चलकर अन्य साक्ष्यों से पूरा कर सकता है, परन्तु स्वभाव में हुई क्षति अपूरणीय है।[1]

अत्यंत निकटता व गहनता से निरीक्षण करने के उपरान्त गिजू भाई बाल-व्यवहार का विश्लेषण करते हैं। अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर ही वे बताते हैं कि स्वस्थ और तंदुरूस्त बालक कभी ऊधम नहीं मचाता। बालक के वे सारे कार्य, जो नीति-सम्मत हों और सामाजिक-व्यवस्था के विपरीत न हों, उसके हित के कार्य हैं, भले ही वे हमें शैतानी प्रतीत हों। शैतान बालक को डॉक्टर के पास ले जाएँ, उसे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें, आध्यात्मिक दृष्टि से उसके दोषों का निवारण करें। बालक हमारे सोचे अनुसार काम करें ही, ऐसे आत्यंतिक विचार को हमें छोड़ देना चाहिए। नीति एवं समाज-व्यवस्था की मर्यादा में रहते हुए भले ही बालक अपनी मर्जी का काम करें। अगर काम करने की बजाय बालक भटकने लग जाए तो हमें सोचना होगा कि उसे कैसा काम दिया जाये, जो वह करना चाहता है। अन्यथा हमें यही मान लेना चाहिए कि भटकने का काम ही उसके विकास में अत्युपयोगी है।[2]

माता-पिता व शिक्षकों के लिए बाल-मनोविज्ञान की गहन समझ होना जरुरी है। बालकों को पूरी तरह समझना व उन्हें पूरा-पूरा सम्मान देना भी आवश्यक है। बड़ों को चाहिए कि वे बालकों पर स्वयं को थोपे नहीं। गिजू भाई का मत है कि चूंकि हम अपने बालकों को समझते नहीं है, इसलिए हम उनसे परेशान हो उठते हैं और वे हमसे परेशान बने रहते हैं। बालकों के बारे में अपनी उथली-छिछ्ली समझ के कारण हम बार-बार उनका अपमान करते हैं और बार-बार उनको बहुत दु:खी भी बनाते रहते हैं। बालक एक संपूर्ण मनुष्य है। उसमें बुद्धि है, भावना है, भाव है, अभाव है। उसका अपना एक जीवन है। अपने ऐसे बालक रूपी मनुष्य को अपनी तरफ से हम पूरा-पूरा सम्मान दें।

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 70

2- वही, पृ0 55

हम उठते-बैठते बालक को दुत्कारते-फटकारते रहते हैं, डांटते-डपटते रहते हैं, छोटी-छोटी बातों को लेकर उसका मन दुखाते हैं, उसका पानी उतारते हैं, उसकी थोड़ी-सी कमजोरियों के लिए उसको शर्मिंदा बनाते हैं, यह सब उसके लिए तो बहुत ही दु:खदायक और अपमानजनक होता है। हम बालक की दुनिया को जानते-समझते नहीं है, इसलिए अपनी ही जिद चलाते हैं, अपना ही चाहा जोर देकर करवाते रहते हैं। हम यह मान लेते हैं कि हमारे विचार ही बालक के भी विचार हैं, हमारी इच्छाएं ही बालक की भी इच्छाएँ हैं और जो हमको पसंद है, वही बालकों को भी पसंद हैं। हमारी रुचि-अरुचि ही बालक की भी रुचि-अरुचि है। हमारा धर्म ही बालक का भी धर्म है। गिजू भाई का मानना है कि इस तरह बालकों पर अपने विचार लादकर हम बहुत ही गंभीर भूल करते हैं।[1]

बालक अपना सोचा काम खुद करें और वे वह काम हमसे करवाएं, इन दोनों बातों में फर्क है। हमको इस बात का विचार अवश्य करते रहना चाहिए कि हम बालक का चाहा काम कब करें और कब न करें? हमको न तो बालक का गुलाम बनना है और न उसके विकास में अपनी तरफ से कोई बाधी ही खड़ी करनी है। यह प्रश्न विवेक का प्रश्न है। इसको हमें प्रत्येक माता-पिता की विवेक-बुद्धि पर छोड़ देना चाहिए। गिजू भाई का कहना है कि आप अपने बालक को स्वतंत्र अवश्य बनाइए। आप बीच में पड़कर उसके बदले खुद कोई काम मत कीजिए। बालक के प्रति आपका जो प्रेम है, प्यार और दुलार है, वह उसको अपंग बनाने के लिए नहीं है। वह अपनी मर्जी से जो भी कुछ करना चाहे, आप उसे करने ही दीजिए। यही नहीं, बल्कि बालक जो काम खुद कर सकता है, उसको वह स्वयं ही करने लगे, और आपसे करवाना छोड़ दे, इसकी व्यवस्था आप पूरी तरह तत्परता से कर दीजिए। अपने जीवन के बारे में बालक हम पर तनिक भी निर्भर न रहे, इसकी चिंता हमको रखनी चाहिए। हम बालक की आया बनकर उससे उसकी स्वाधीनता न छीनें। यह बहुत जरूरी है कि हम स्वतंत्रता के अर्थ को अच्छी तरह समझ लें। हम यह समझें कि स्वतंत्रता का अर्थ निरंकुशता नहीं है। आप कभी भूले-चूके भी यह मत मानिए कि अगर आपका बालक आपको मारता-पीटता है, तो उसको मारने पीटने देकर आप उसको मॉण्टेसरी-पद्धति की स्वतंत्रता दे रहे हैं। गारे-मिट्टी से सने जूते पहनकर कालीन पर चलने की स्वतंत्रता का उपयोग बालक कभी कर ही नहीं सकता। मॉण्टेसरी-पद्धति में किसी बालक को यह आजादी मिलते ही नहीं कि वह किसी को काटे। इसी तरह इस पद्धति में बालक न तो चोरी करने के लिए स्वतंत्र है और न गाली बकने के लिए ही स्वतंत्र है। ऐसे काम वह कर ही नहीं सकता। इस पद्धति में ऐसे बालक नीच-वृत्ति के माने जाते हैं। ऐसी वृत्ति को और उसके मूल में रही शक्ति को हम उन्नत अवश्य बनाएं, पर उसका अभिनंदन तो कभी करें ही नहीं।[2]

गिजू भाई मानते हैं कि बालक गलती करने के पश्चात् हमसे सजा की, डांट-फटकार की

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 60

2- वही, पृ0 61-62

उम्मीद करता है, चूंकि उसने यही सीखा है, देखा है। परन्तु गलती करने पर यदि उसे प्रताड़ना या दण्ड न देकर प्रेम से ही समझाया जाये तो इसका अद्‌भुत प्रभाव होता है।

एक विद्यालय की एक घटना की चर्चा में वे कहते हैं कि देव जी मास्टर द्वारा चमन को तमाचा लगाने के बाद अपनी गलती का अहसास होता है तथा वे अपनी त्रुटि का अहसास करते हुए इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि सजा देने के बाद बालक के प्रति अप्रीति की भावना रखी जाए, इसके बजाय तो पहले ही प्रेमपूर्वक बालक से त्रुटि को सुधरवा लेना चाहिए, याने प्रेम शब्द से ही सजा देना सर्वोत्तम उपाय है।[1]

गिजू भाई इंगित करते हैं कि गृहकार्य न करने पर नियमानुसार व शास्त्रानुसार बालक को विद्यालय में छुट्‌टी के बाद रोका जाना भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गलत है। इसका नकारात्मक प्रभाव होता है।[2]

बालक व्यवस्था प्रिय होते हैं:- गिजू भाई कहते हैं कि आमतौर पर लोग यह मानते हैं कि बालकों को अव्यवस्था अच्छी लगती है, क्योंकि बालक अव्यवस्थित रहते हैं, और वे अव्यवस्था उत्पन्न भी करते हैं। लेकिन उनकी दृष्टि में यह ख्याल गलत है। बालकों को तो व्यवस्था ही पसंद होती है, क्योंकि मनुष्य का मन व्यवस्था प्रिय होता है। अव्यवस्था में वह घुटन का अनुभव करता है। उससे उसको परेशानी होती है। अव्यवस्था के चलते उसको कुछ सूझता ही नहीं। बालक की अव्यवस्था तो उस बेचारे को परेशान किये रहती है, और वह तो हमारे अव्यवस्थित वातावरण में से ही उत्पन्न होती है।

अकसर लोग यह मानते हैं कि बालकों को तो हल्ला-गुल्ला और गड़बड़-घोटाला ही अच्छा लगता है। उनको शांति अच्छी लगती ही नहीं। वे कहीं गुपचुप बैठना जानते ही नहीं, क्योंकि वे स्वभाव से ही चंचल होते हैं। लेकिन गिजू भाई के अनुसार यह धारणा गलत है। बालक तो हल्ले-गुल्ले से और गड़बड़-घोटाले से बहुत परेशान रहता है। उसके नन्हें-नन्हें ज्ञान-तन्तु जोर-शोर वाली आवाज से बड़ी बेचैनी अनुभव करते हैं। उन पर उसका बहुत जोर पड़ता है।

अकसर लोग यह मानकर चलते हैं कि बालकों को काम करना अच्छा लगता ही नहीं है। इसलिए उनसे जबरदस्ती काम करवाते रहना चाहिए। लेकिन लोगों की इस धारणा को भी वे विल्कुल गलत मानते हैं। उनके अनुसार बालक तो स्वभाव से ही कर्म-प्रिय होते हैं। किन्तु अपने वड़ों और बूढ़ों की इस दुनिया में उनको उनकी अपनी रूचि का काम करने की कोई सुविधा मिलती नहीं। काम के लिए जरूरी साधन भी सुलभ होते नहीं। काम करने के लिए कोई स्वतंत्र जगह भी उनको नसीव होती नहीं।[3]

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 93-94

2- वही, पृ0 52

3- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 96-97

अनुशासन के मर्म को समझने वाले एक शिक्षक के मुख से गिजू भाई कहलवाते हैं - "आँखें दिखाने, मार-पीट करने या फुसलाने में मेरी आस्था ही नहीं है। सच मानें तो लड़के ऊधमी हैं ही नहीं। जब इन्हें पानी का रेला ही कह दिया, तो सचमुच इनमें पानी की धारा जैसा ही बल है और इसीलिए इन्हें स्वयं व्यवस्थित किया जा सकता है। यहां हमने बालकों के लिए अनुकूल व रूचिकर प्रवृत्तियों की व्यवस्था की है। जिसको जो पसंद ही करता है, और जब इच्छा हो तभी करता है। प्रत्येक बालक अपने मनपसंद के काम में लगा रहता है, फिर वह भटकने, झगड़ने या मस्ती करने को खाली नहीं रहता। जब वह अपना काम करके मुक्त होता है तब वह उल्टा आनंदपूर्वक दूसरे बालकों के साथ मिलता-जुलता, मौज उड़ाता है। बच्चे एक पंक्ति में बैठे रहें, घूमें नहीं, चुपचाप पढ़ते रहे, इसे मैं अनुशासन नहीं मानता।"[1]

गिजू भाई का यह भी मानना है कि शिक्षकों व माता-पिता को बालकों में चुगलखोरी की आदत को बढ़ावा नहीं देना चाहिए। बच्चों के मार्फत किसी भी तरह की कोई भी खबर-दोह प्राप्त न करें।

दो बालकों में तुलना न करें:- प्रत्येक बालक दूसरे से भिन्न होता है। हर बालक स्वयं में विशिष्ट व अद्वितीय है। इसलिए बालकों की परस्पर तुलना करना पूर्णतः अनुचित है। गिजू भाई कहते हैं - दो बालकों में से एक की तारीफ करके और दूसरे की निंदा करके हम एक के मन में अति-श्रद्धा का ओर दूसरे के मन में अश्रद्धा का भाव उत्पन्न कर देते हैं। निन्दा से बालक की आत्मा सिकुड़ जाती है और स्तुति से बालक उद्धत बन जाता है। हमको इन दोनों बातों को छोड़ना ही चाहिए।

कहने से क्या होता है?:- घर पर माता-पिता व स्कूल में शिक्षक निरंतर तुमसे कितनी बार कहा कि उकडूँ मत बैठा कर। तुमसे कितनी बार कहा कि तू इधर-उधर हाथ मत लगाया कर। तुमने कितनी बार कहा कि तू बीच-बीच में मत बोला कर।

गिजू भाई के अनुसार हमारे भीतर कोई ऐसी मान्यता घर किये हुए है कि कहेंगे तो हो जायेगा। पहली बार जब हम 'ऐ ! उकडूं मत बैठ।', 'ऐ ! ठीक से बैठ!', 'ऐ गड़बड़ मत कर।' आदि हुक्म देते हैं तो हमारे मन में यह भाव होता है कि कहेंगे, तो वह जरूर करेगा। कहें, लेकिन तुरन्त ही हमें एक भिन्न अनुभव होने लगता है। बालक वैसा नहीं करता-कर भी नहीं सकता। तब हम यह मानने लगते हैं कि वह जानबूझकर ही वैसा नहीं करना चाहता, उसका करने का मन नहीं है, आज्ञा मानना उसे पसंद नहीं है। तब हम उसे दूसरी बार कहते हैं कि 'ठीक से बैठ', 'गड़बड़ मत कर।' 'किसी के घर जाए तो सीधा रहना, हरेक चीज मांगने मत लग जाना।' लेकिन हमारा कहा बेकार जाता है। तब हम उसे तीसरी बार कहते हैं, चौथी बार कहते हैं, पांचवीं बार, पचासवीं बार सौवीं वार और

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 49

हजारवीं बार कहते हैं, फिर तो कितनी ही बार हो जाता है। जब हम यह कहते हैं कि 'कितनी बार तुमसे कहा' तो सचमुच हमें कहते-कहते कितनी ही बार हो जाती है।

गिजू भाई कहते हैं कि अब जरा हम सोचें तो सही। बार-बार कहने से होने वाली ऊब उक्त वाक्य में स्पष्ट है, पर उतनी ही हमारी असफलता भी जाहिर है। हमें यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि लाख बार तो क्या, अनंत बार कहेंगे तब भी कुछ होना-जाना नहीं। ऐसे कहने से क्या हो जायेगा? जीभ कह तो देती है, पर वह सब करने वाले से हो, तब ना? नहीं होता तो उसका क्या?

आदेश देने से पूर्व विचार करें:- शिक्षक व माता-पिता हुक्म देते ही उसके अनुपालन की उम्मीद करते हैं। इस बारे में गिजू भाई कहते हैं - "अगर हुक्म को हम कामधेनु बना सकें या जादुई छड़ी बना सकें, तभी तो हुक्म से शक्ति आ सकेगी। अगर यह न हो सके तो हमें हुक्म देना पहली ही बार में बंद कर देना चाहिए। बालक में हम जो गुण चाहते हैं, उनके अभाव के कारणों को हम ढूंढें और उन्हें दूर करें। साथ ही बालक में जिन-जिन वस्तुओं के अस्तित्व से हमारी वांछित अच्छाइयां आ सकती हैं, उनका उनमें विकास किया जाना चाहिए।"

उनके अनुसार इजाजत के बिना न छूने के शिष्टाचार की संस्कारिता, सभ्यतापूर्वक बैठने के लिए अंगों पर नियंत्रण, बीच में न बोलकर धीरज रखने का निग्रह, उंगलियाँ मुँह में न डालने की अच्छी आदत : ये सब तभी तो आ सकती है कि जब बालक की इंद्रियों का समुचित विकास किया जाये, उसकी सद्-असद् विवेक-बुद्धि को विकसित किया जाये, उसकी क्रियाशक्ति को ताकतवर बनाया जाए और उसमें हुक्म उठाने की समझ व शक्ति दोनों प्रदान की जाये।

गिजू भाई पूछते हैं कि जब पेड़ ऊपर से सूखने लगता है तो जड़ों में पानी दिया जाता है या इस बात का पता लगाया जाता है कि सड़न कहाँ है। बालक को इस तरह से सुनाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता कि 'तुमसे कितनी बार कहा है।' यही बात बालक के लिए न्यूनता, त्रुटियाँ, रोग और शैतानी आदि के मूल बालक के अविकास, अशक्ति, अल्पशक्ति या विकृति में समाये हुए हैं। अगर इन्हें हटाना चाहते हैं तो इनका पता लगाना होगा और प्रत्येक नयी कठिनाई के प्रसंग में नया विचार, नया शोध, नया उपाय करना होगा। एक जनरल प्रेस्क्रिप्शन से जिस प्रकार कोई भी रोग मिटना नहीं, उसी प्रकार एक जनरल हुक्म से या उपाय से भी कुछ होना जाना नहीं।

गिजू भाई कहते हैं कि हमने बालक को हुक्म देकर उसके विकास के प्रश्न का समाधान करने की बहुत कोशिश करके देख लिया, लेकिन बाल-विकास का कार्य अत्यन्त कठिन है अतः इसके लिए हमारी कोशिश भी अथाह होनी चाहिए। अब हम 'कितनी बार कहा' के बजाय कितनी ही बार नए-नए उपचार करें और ऐसा रास्ता तलाश करें कि जिसमें हमें एक भी बार कहने की जरूरत न पड़ें।[1]

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 38

सच्ची स्वतंत्रता - सच्चा अनुशासन:- बालक अंतत: श्रेष्ठ व्यक्ति बनाना चाहता है। गिजू भाई का सुझाव है कि हमारा प्रयत्न भी उसे उसी दिशा में बढ़ने देना है। गलत रास्ते पर जाने वाले बालक को वहां से रोकने और लौटाने में हमें भूल नहीं करनी चाहिए। उसकी स्वतंत्रता सत्य एवं सुख की तलाश के निमित्त है, सत्य एवं सुख के अनुभव के लिए है। लेकिन जिस तलाश से दु:ख प्राप्त होता हो, तो वह शोध का मार्ग गलत मार्ग है। उस मार्ग की तरफ जाने की छूट देना स्वतंत्रता नहीं है अपितु स्वच्छंदता है। बालक अपनी मर्जी के अनुसार इसीलिए चलता है कि वह हमारी इच्छा का दास न रहे, अपितु अपनी मर्जी का मालिक बने। जब वह अपनी अधोगामी इच्छा का गुलाम बनकर उसके अधीनस्थ आचरण करता है, तब वह स्वयंस्फूर्ति अथवा स्वतंत्रता के प्रदेश से बाहर चला जाता है और विनाश के मार्ग पर चल देता है। ऐसे समय में हमें उसको सहानुभूति तथा प्रेम के साधनों से स्वाधीनता के मार्ग में लाने का प्रयत्न करना चाहिए, यही हमारा धर्म है।

शिक्षकों, माता-पिताओं, समाजसेवकों, राजनीतिज्ञों के लिए यही एक आज्ञा है, संसार के मंगल एवं कल्याण के लिए यही एक आदेश है। यह आदेश किसी सत्ता से नहीं है अपितु विश्वकल्याण की भावना से है, समष्टि के प्रेम से है। गिजू भाई चाहते हैं कि हम में से हरेक इस आज्ञा को बालकों के हित की दृष्टि से वहन करे। प्रेम कभी जबरन उत्पन्न नहीं हो सकता। वह तो दिल की गहराई से ही निकलकर बाहर आना चाहिए। यही बात काम के प्रति रूचि प्रकट होने पर लागू होनी चाहिए।[1]

गिजू भाई कही-सुनी बातों पर या दूसरे शब्दों में कहा जाये तो मान्य प्रचलित तौर-तरीकों और मान्यताओं को स्वयं व्यवहार की कसौटी पर कस कर देखते थे। ऐसे ही एक परम्परा के विषय में वे कहते हैं कि स्वयं को आदर दिलाने के लिए दूसरों को आदर देने की बात बहुत लोग समझते हैं। एक छात्रालय के गृहपति विद्यार्थियों को इसलिए पहले नमस्कार करते थे ताकि विद्यार्थी उन्हें पहले नमस्कार करने लग जाएँ। मैंने भी इस विधि को आजमा कर देखा था। पर हुआ यह कि जब मैं नमस्कार नहीं करता तो विद्यार्थी भी नमस्कार नहीं करते इसलिए मैंने आदर देने की विधि को त्याग दिया।[2]

एक बार 'ना' से सौ बार 'हाँ' अच्छी:- एक ही बार में बालक को 'हाँ' कह देने में मानो हम अपनी हेठी समझते हैं। अपना सत्ता का प्रदर्शन करने के लिए पहली बार में हर चीज को 'ना' कहना हमारी आदत सी बन गयी है। इस पर गिजू भाई का कहना है - बालक के साथ व्यवहार करने में आप एक बात का पूरा ध्यान रखिए। बात यह है कि बालक को सौ बार 'हाँ' कहना अच्छा, लेकिन एक बार की भी 'ना' अच्छी नहीं। आज तो हम इस कहावत को मानकर अपना सारा व्यवहार चलाते हैं कि

1- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 12

2- वही, पृ0 14

एक 'ना' सौ बुराइयों को दूर करती है। बालक जब-जब भी खुद ही कुछ करना चाहे, तब-तब आप उसको 'हाँ' ही कहिए। हम बिना किसी कारण के कुछ निर्दोष कामों के बारे में भी बालकों को 'ना' कहकर उसको बहुत दु:खी बना देते हैं। अपने मन में हम यह भय न रखें कि 'हाँ' कहने पर बालक वह काम भी कर बैठेगा, जिसको करने की स्वीकृति हमने उसको दी नहीं है। आप 'हाँ' कहिए और एक बार बालक को समझा दीजिए कि उसको काम किस तरह करना है। फिर तो बालक बड़े आदमियों की तरह ही अपना सब काम पूरी जिम्मेदारी के साथ करेगा। इंकार करना हो, तो गहरे सोच-विचार के बाद ही इंकार कीजिए।[1]

'हाँ' तो 'हाँ' 'ना' तो 'ना' :- सामान्यत: देखा जाता है कि बालक द्वारा कोई चीज मांगे जाने या खेलने को जाने की कहे जाने पर पहले 'ना' कहा जाता है फिर बच्चे द्वारा जिद किये जाने पर या हाथ पैर पटकने पर 'हाँ' कहा जाता है। इस प्रकार वे अनजाने ही उसकी 'अवांछित अनुक्रिया' को पुनर्बलित कर देते हैं। गिजू भाई इस विषय में कहते हैं कि यह 'अच्छी बात' वाला मामला हमारे अविचार की और हमारी कमजोरी की निशानी है। ऐसे माँ-बापों से बालक अपनी मनचाही चीज पा लेता है और हमारी इस कमजोरी को जान लेने के बाद वह उससे लाभ उठाने लगता है। इसलिए हमको शुरू से ही सोच- समझकर 'नहीं' अथवा 'हाँ' कहना चाहिए और अपनी बात पर मजबूती से डटे रहना चाहिए। फिर भले ही बालक रोता रहे या फर्श पर लोटता रहे। यह सब तो एक बार हाकर रह जाएगा।[2]

माता-पिता बालक को या तो 'हाँ' कहें या 'ना' यह शत प्रतिशत होना चाहिए, उनकी 'फिफ्टी-फिफ्टी' वाली मन:स्थिति का बालक लाभ उठाना सीख जाता है। गिजू भाई का कहना है कि जिस काम के लिए बाद में अनुमति देनी पड़े, उसके लिए पहले इंकार करके बाद में स्वीकार मत कीजिए। एक बार स्वीकार करके इंकार करने में जो नुकसान है, उससे अधिक नुकसान इंकार करके फिर स्वीकार करने में होता है। ऐसी स्थिति में बालक सीख जाता है कि इंकार को स्वीकार में कैसे बदला जा सकता है। वह समझ जाता है कि रोने, रूठने और हाथ-पैर पटकने से उसका काम बन सकता है। हम बालक को इंकार तभी करें, जब उससे खुद बालक की, समाज की और नीति की कोई हानि होने का भय रहे या संभावना रहे।

'ना' कहने की बुरी आदत छुड़ायें:- कुछ बालक इतने निडर होते हैं कि अगर हम उनसे पूछें : 'संगीत में आओगे?' तो जवाब देंगे : 'नहीं।' अगर पूछें : 'चित्र बनाओगे?' तो कहेंगे, 'नहीं।' 'अक्षर लिखोगे?' 'नहीं।' 'बंगले?', 'कहानी?' 'नहीं।' गिजू भाई कहते हैं कि ऐसे बालक 'ना' क्यों कहते हैं, क्योंकि इसका कारण उनके पास होता नहीं। 'ना' के सिवा कोई अन्य कारण उनके पास होता

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 62

2- गिजू भाई बधेका -माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 14

तक नहीं। 'ना' कहने की उनमें बुरी आदत पड़ जाती है। संगीत पसंद न हो और 'ना' कहें तो ठीक, चित्र बनाना पसंद न हो और 'ना' कहें तो चलेगा। लेकिन क्या पसंद है और क्या पसंद नहीं, इसका पता ही न चले और मना करते जाएं, तो उसका क्या करें? गिजू भाई प्रश्न करते हैं कि अगर हम उनकी 'ना' को चलने दें और वे जो न करने को कहें, वह उनसे न करायें तो क्या इसे उचित कहा जायेगा? ऐसा करने देने में क्या उन्हें स्वतंत्रता दी गयी, ऐसा दिखेगा? अथवा उनकी 'ना' को अनसुना करके जिस काम के लिए वे 'ना' कहें, वह काम उनसे जबरन कराएं तो क्या यह समझा जाएगा कि उनकी स्वतंत्रता छीनी गई? अकारण 'ना' कहना वस्तुत गलत है, इसे रोका जाना चाहिए।[1]

गिजू भाई का मानना है कि बालकों का 'ना' कहना उनके आत्मविश्वास की कमी के कारण भी हो सकता है। कई बालकों की ऐसी धारणा ही बन जाती है कि उनसे कुछ नहीं हो सकता। किसी बात के लिए 'हाँ' बोलना, याने बहुत बड़ी जानकारी और ज्ञान की जरूरत। अपने प्रति उनमें इतना अधिक अविश्वास होता है कि 'ना' बोलकर छूट जाते हैं। 'ना' बोलने के पीछे उनका यह आशय नहीं होता कि आज्ञा नहीं मानी जाए, बल्कि वे अपनी असमर्थता को बताना नहीं चाहते। इसलिए इंकार करके खड़े रह जाते हैं। कइयों को 'ना' और 'हाँ' के परिणाम का पता नहीं होता। 'हाँ' कहने से क्या होगा, इसका निश्चित पता न होने के कारण उन्हें 'ना' की शरण लेना ठीक लगता है। कइयों को 'हाँ' या 'ना' के अर्थ का भी पता नहीं होता। पर ऐसे बच्चे सबसे छोटी कक्षा के होते हैं, नन्हें।

गिजू भाई का विश्वास है कि इस तरह से मना करने वालों को सही रास्ते पर लाया जा सकता है। मना करने के पीछे खासतौर से जो कारण हो, उसे ढूंढ निकालना है। जो देखा-देखी इंकार करते हैं उन्हें 'हाँ' के वातावरण में रखना होगा। अशक्ति के कारण जो मना करें उन्हें ऐसे काम सौंपे जाएं, जो उनसे हो सकें। ऐसा निर्णय करके ही काम सौंपने की 'हाँ' लेनी चाहिए। जिनका आत्मविश्वास समाप्त हो गया हो, उनको ऐसे काम सौंपे जाएं कि जिससे उन्हें लगे कि वस्तुत: मना करने का तो कोई कारण ही नहीं था।

गिजू भाई के अनुसार कितने ही बालकों में क्रियाशक्ति संस्कारित ही नहीं होती। उन्हें कुछ करना या न करना दोनों कठिन लगते हैं। इस कारण वे प्रत्येक काम करने से इंकार कर देते हैं। ऐसे बालकों से ऐसा आग्रह नहीं रखना चाहिए कि अमुक काम ही कराना है, परन्तु उनकी क्रियाशक्ति का बल बढ़े, इसके लिए जिससे मुख्यत: क्रियाशक्ति का प्रयोग होने लगे, ऐसी कोई मनपसंद क्रिया करने का प्रबंध किया जाना चाहिए। जब उनमें क्रियाशक्ति आ जाएगी तो वे प्रत्येक काम करने लग जायेंगे।

अनेक बालक ऐसे होते हैं कि जो 'हाँ' या 'ना' बोलने में तुलनात्मक निर्णय ही नहीं कर

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 20

सकते। उनसे 'हाँ' कहलवाने की जरूरत नहीं। उन्हें ऐसे कार्यों की ओर ले जाना चाहिए कि जिससे उनकी बौद्धिक-शक्ति का विकास हो।

इस सम्बन्ध में गिजू भाई का कथन विचारणीय है। वे कहते हैं कि "हमारा काम बालक से 'हाँ' कहलवाना नहीं है। बालक 'हाँ' भी कह सकता है और 'ना' भी। आज्ञा मान भी ले और न भी माने। लेकिन वह सब सकारण हो तभी चले। अगर बालक जबरन आज्ञा मानता है तो उसका कोई नैतिक मूल्य नहीं, यही नहीं, अपितु ऐसा करने से नैतिक अध:पतन होता है। फिर जबरन 'हाँ' कहलवाने से हम बालक को स्वमताग्रही बनने के मार्ग पर ले जाते हैं।"[1]

बालक हठी या उपद्रवी नहीं होते:- गिजू भाई का सुझाव है कि अपने बालक को कभी ऊधमी या हठी मत मानिए। आप तो यही मानकर चलिए कि बालक कभी ऊधमी होता ही नहीं है। बालक को हठीला तो हम ही बनाते हैं। यदि हम अपने अनुभवों पर दृष्टि डालेंगे, तो हमको पता चलेगा कि बालकों को ऊधमी और हठीला बनाने का ज्यादा काम तो हम ही करते हैं। सत्ता की सख्ती बालक को अच्छी नहीं लगती। बालक तुरन्त ही समझ जाता है कि उसको किसका सम्मान करना है और किसका नहीं करना है। यही कारण है कि वह हमारी अनुचित सत्ता का विरोध करता है अथवा मेहमान की परवाह न करके हमारी बात पर ध्यान नहीं देता। जब बालक तोड़-फोड़ करता है, उस समय वह कोई ऊधम नहीं करता, बल्कि वह अपनी क्रिया प्रधान वृत्ति को संतुष्ट करना चाहता है। वह अपनी इस वृत्ति के विकास की खोज में रहता है। इधर-उधर भटकने की इच्छा रखने वाला बालक या तो हमारे घर को पसंद नहीं करता है, या अपनी शारीरिक कसरत की जरूरतों को पूरा करने के लिए इधर-उधर दौड़ता भटकता है। जो बालक बिगड़ा नहीं है, उसके बारे में हम यही सोच सकते हैं कि अपनी पसंद का काम करने वाला बालक कोई गलत काम नहीं करता। अगर वह किसी को नुकसान नहीं पहुंचाता है, कोई पापपूर्ण काम नहीं करता है, अपने-आपको किसी असाधारण संकट में नहीं डालता है, तो वह अपनी पसंद का काम भले ही करता रहे, हम उसमें बाधक क्यों बनें? यह उचित नहीं कि हम बालक को उसकी पसंद का काम न करने दें और उससे अपनी पसंद का ही काम करवायें।[2]

गलती न निकालकर काम सुन्दर ढंग से करने का तरीका बतायें:- गलती होने का अर्थ यह है कि बालक अभी पूर्णता के मार्ग पर है, संतुलन लाने की कोशिश में है। गिजू भाई मानते हैं कि भूल को सुधारने से संतुलन नहीं आएगा। इसके लिए बालक को अपने-आप प्रयत्न करके अपनी अपूर्णता को पूर्ण कर लेने दो। अगर बालक को ऐसा करने की छूट होगी, टोका-टोकी नहीं की जायेगी, उसमें अविश्वास न होगा, तो भले ही उसे हजार बार दोहराना पड़े, पर वह पूर्णता प्राप्त करेगा ही करेगा

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 21
2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 60-61

पूर्णता प्राप्त करना व्यक्ति का स्वभाव है। अगर इस तथ्य में हमारा विश्वास है तो बालक को भूल करने को मुक्त छोड़ा जा सकता है।' गिजू भाई के इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि पूर्ण क्या है, अपूर्ण क्या है, भूल-रहित क्या होता है- ये बातें बालक को बताई ही न जाएं। हम उसके सामने अच्छा आदर्श रखें, पर गलती न निकालें। आँखों के समक्ष सुन्दर आदर्श रहता है तो काम के प्रति बालक सहज रहता है और उसको प्रयत्नपूर्वक करते-करते वह उस पर सिद्धि हासिल कर लेता है। उसे अपने-अपने काम करने में आनंद आता है और उसके भीतर यह विश्वास पैदा होता है कि किसी ने उसे सिखाया भी नहीं था।

'अतएव बालक की गलती बताने की बजाय उसे कोई अलग प्रसंग लेकर बताना चाहिए कि किसी काम को बहुत अच्छी तरह से कैसे किया जा सकता है। इससे बालक अपने-आप शक्ति प्राप्त करेगा और अपनी अपूर्णता को दूर हटा देगा।"[1]

4.6 बालक

गिजू भाई बालक के गुण, स्थान व महत्व के बारे में विस्तार से चर्चा करते हैं; मानो बालक के लिए अपने हृदय के उद्‌गारों को शब्दों में समेट पाना उनके लिए अत्यन्त दुरुह कार्य है। बालक के लिए उनका प्रेम अजस्र स्त्रोत की भाँति अविरल रूप से काव्यभेदी शब्द धारा में प्रवाहित होता है। जिस तरह बीज में वृक्ष है, उसके फूल हैं और फल हैं, उसी तरह बालक में सम्पूर्ण मनुष्य है। युवावस्था बाल्यावस्था का विकास-मात्र है। बालक अवस्था का मध्याहन युवावस्था है। काल-भेद से मनुष्य की सब अवस्थाएँ बालक की ही भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हैं। बालक मनुष्य-जाति का मूल है, और इस मूल से ही इसकी प्रगति का प्रवाह जीवन-लक्ष्य की दिशा में बहता रहता है। बाल्यावस्था में यह प्रवाह बलवान होते हुए भी छोटा रहता है। अलग-अलग प्रवाह-पट और अलग-अलग गति धारण करता हुआ प्रगति का यह प्रवाह अंततः तो सागर में ही जाकर मिलता है। बालक कितना महत्वपूर्ण है, उपर्युक्त शब्दों से एक झलक मिलती है। पर क्या उसके महत्व को बड़ों द्वारा पहचाना गया है? गिजू भाई का उत्तर है - "फिर भी बालक अब तक उपेक्षित रहा है, दुत्कारा गया है, अपमानित हुआ है, भटकता रहा है। आज का युवक, असंतुष्ट युवक, अव्यवस्थित युवक, हाथ-पैर पीटता हुआ युवक, कल का दुत्कारा हुआ, जहाँ-जहाँ फेंका गया और जैसे-जैसे गढ़ा गया बालक है। युवक आज जैसा है, कल वह वैसा बालक था।"[2]

गिजू भाई की दृष्टि जिसे मिले, वह देख पायेगा कि - बालक माता-पिता की आत्मा है। बालक घर का आभूषण है। बालक आंगन की शोभा है। बालक कुल का दीपक है। बालक तो हमारे जीवन-सुख की प्रफुल्ल और प्रसन्न खिलती हुई कली है। बालक भावी पीढ़ी का प्रकाश है।

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 44-45
2- वही, पृ0 8

बालक भावी जनता का पैगंबर है। बालक प्रभु की अनमोल देन है। बालक प्रकृति की सुन्दर से सुन्दर कृति है। बालक समष्टि की प्रगति का एक अगला कदम है। बालक मानव-कुल का विश्राम है। बालक प्रेम का पैगम्बर व मानस-शास्त्र का मूल है। बालक की पूजा तो प्रभु की पूजा है। बालक को प्यार देकर आप दुनिया को प्यार दे सकेंगे। गिजू भाई कहते हैं कि बालक को प्रेम देकर आप प्रेम का रहस्य समझ सकेंगे। प्रभु को पाना हो, तो बालक की पूजा कीजिए। यदि परमात्मा ने कोई अति निर्दोष वस्तु उत्पन्न की है, तो वह बालक ही है। बालक के पास रहने का मतलब होता है, निर्दोषता के साथ रहना।[1]

गिजू भाई कहते हैं कि बालक से प्रेम ही नहीं उसकी पूजा करें। वे कहते हैं कि नागों की पूजा का युग बीत चुका है। प्रेतों की पूजा का युग बीत चुका है। पत्थरों की पूजा का युग बीत चुका है। मानवों की पूजा का युग बीत चुका है। अब तो - बालकों की पूजा का युग आ गया है। बालकों की सेवा ही उनकी पूजा है।[2]

गिजू भाई का मानना है कि स्वर्ग धरती पर ही हमारे घरों में उतर सकता है बशर्ते हम बालक को देवताओं जैसा सम्मान दे। वे कहते हैं - यदि बालक को हम अपने घरों में उचित स्थान दें तो हमारी इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग के राज्य की स्थापना हो जाए। हमारे घरों में देव खेलने के लिए आने लगें। देवों को मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ जाए। स्वर्ग बालक के सुख में है। स्वर्ग बालक के स्वास्थ्य में है। स्वर्ग बालक की प्रसन्नता में है। स्वर्ग बालक की निर्दोष मस्ती में है। स्वर्ग बालक के गाने में और गुनगुनाने में है।[3]

गिजू भाई कहते हैं कि बालक से व्यक्ति क्या कुछ नहीं सीख सकता। बालक मानव जीवन में आशा का संचार करता है, मानव को उद्यम व प्रयास के लिए प्रेरित करता है। वे कहते हैं - बालक के कोश में 'निराशा' शब्द है ही नहीं। चलना सीखने की कोशिश में लगे बालक को देखिए। क्या यह कभी थकता है? उसका उद्योग और उसकी लगन किसको अनुकरणीय नहीं लगेगी? जब बालक चलने की कोशिश करते हुए गिरता है, तो कोई उसे मारता क्यों नहीं है?

उसे हारते देखकर भी हमें हँसी क्यों आती है?

गिजू भाई की दृष्टि में बालक के सम्मुख सब हेय हैं, छोटे हैं। सभी बालकों के सामने नतमस्तक होते हैं। बालक से भला कोई जीत सकता है। उसका दैवी-प्रेम पाने को सभी आतुर रहते हैं। गिजू भाई कहते हैं कि जब बालक अपने नन्हें-नन्हें पाँव हिलाता है, क्या उस समय हम यह सोचते हैं कि इस तरह वह कितनी कसरत कर लेता है और हवा में कुल कितना चल लेता है? या हम उसकी इस क्रिया को देखने में ही तल्लीन हो जाते हैं? घुटनों के बल चलने के लिए बालक

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 14

2- वही, पृ0 16

3- वही, पृ0 20

जो प्रयत्न करता है, और दुनिया की बादशाहत पाने के लिए सुल्तान जो कोशिश करता है, क्या इन दोनों में हमको कोई फर्क मालूम होता है। बालक का प्रयत्न कितना सहज और निर्दोष होता है और सुल्तान के प्रयत्न कितने दोषी और भयंकर होते हैं? राजा हो या रंक, मूर्ख हो या विद्वान, गरीब हो या अमीर, बालक के सामने कौन नहीं झुका है? कौन है कि जो बालक का प्रेम पाने के लिए उसके सामने अपना सिर झुकाता न हो? जिनको बालक प्यारा न लगता हो, वो तो गिजू भाई की दृष्टि में ईश्वर के निरे शत्रु ही हैं। वे पूछते हैं कि बालकों को 'गंदा' कहकर उसकी ओर न देखने वाले लोग अभागे नहीं हैं, तो और क्या हैं? वे कहते हैं कि बालक तो इन अभागों की तरफ भी अपने हाथ फैलाता ही है। हब्शी को तो अपने बच्चे प्यारे लगते ही हैं, किन्तु जो प्रभु-प्रेमी होते हैं, वे हब्शी के बच्चों से भी प्यार करते हैं। कई लोग बच्चों से दूर ही रहना चाहते हैं। गिजू भाई प्रश्न करते हैं कि भला, हम उनको पामर न कहें, तो और क्या कहें?

नि:संदेह, माता-पिताओं के लिए भी जीवन है, सुन्दर और प्रेममय जीवन है। होना भी चाहिए। किन्तु इस जीवन का केन्द्र बालक हैं, इस जीवन का काव्य बालक हैं, इस जीवन की सुगंध और सौंदर्य बालक हैं और इस जीवन का सुख भी बालक ही हैं। अपने जीवन के सारे अरमान उनको अपने बालक के आसपास खड़े करने हैं। बालक के साथ जुड़ा हुआ प्रेम-जीवन प्रेम का धन स्वरूप है, शुद्ध और सात्विक स्वरूप है। क्योंकि उसमें त्याग का सुख समाया हुआ है। गिजू भाई मानते हैं कि बालक तो हमारे जीवन-सुख की एक प्रफुल्ल और प्रसन्न खिलती हुई कली के समान हैं। वे माता-पिता के हृदय के पवित्र और निर्मल प्रतिबिम्ब हैं। बालक माता-पिता को ऐसा अलौकिक आनन्द प्रदान करता है, जो उन्हें अन्यत्र दुर्लभ है।

बालक में 'सत्य-ज्ञान' समाहित है। उससे क्या कुछ नहीं सीखा जा सकता है। गिजू भाई के शब्दों में "यदि आप शिक्षक बनना चाहते हैं, तो आप बालकों का ही अनुसरण कीजिए। यदि आप मानस-शास्त्री बनना चाहते हैं, तो आप बालकों का ही अवलोकन कीजिए। बालक तो पल-पल में जीवन-शास्त्र और मानस-शास्त्र के सिद्धान्तों को व्यक्त करता रहता है। तत्वज्ञानी लोग भी बालक में ब्रह्माण्ड के दर्शन कर सकते हैं। जब बालक अपनी नन्हीं आंखों से हमारी तरफ देखता है, तो आखिर वह क्या देखता होगा? क्या उसकी आँखों का प्रकाश हमारे अन्दर कोई प्रकाश नहीं फैलाता होगा? आप बालक के पास आधा घंटा ही रह लीजिए और बिल्कुल ताजे-तगड़े बना जाइए। ऐसा लगता है, मानो बालक आराम और विश्राम का कोई उपवन हो।"[1]

बालक की इस महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि बालक हमारा भावी नागरिक है। भावी नागरिक का बीज बालक में मौजूद है। जैसा हमारा बालक होगा, वैसा

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 19

हमारा भावी नागरिक बनेगा। गिजू भाई प्रश्न करते हैं कि नए युग का निर्माण कौन करेगा? जन जीवन के प्रवाह को कौन अस्खलित बनाए रखेगा? आने वाले युग का स्वामी कौन बनेगा? भूतकाल की समृद्धि को और वर्तमान की विभूति को भविष्य की गोद में कौन रखेगा? नि:संदेह बालक।

गिजू भाई की दृष्टि में बालक देवलोक के भूले-भटके यात्री हैं। बालक तो गृहस्थों का अनमोल मेहमान हैं। जब इन मेहमानों की सही सेवा-सुश्रूषा नहीं हो पाती, तो सारा गृहस्थाश्रम ही चौपट हो जाता है। लक्ष्मी बालक के कुंकुम-से लाल-लाल पैरों से ही चिपकी रहती है। बालक के प्रफुल्ल मुख में प्रेम सतत समाया रहता है। बालक की मीठी हँसी वाली मधुर नींद में शान्ति और गम्भीरता छिटकी रहती है। बालक की तोतली बोली में कविता बहती रहती है। परन्तु गिजू भाई इस बात पर खेद प्रकट करते हैं कि वह दिव्य कविता मनुष्यों की इस दुनिया में लम्बे समय तक टिक नहीं पाती है। मानव को यह बोध अवश्य होना चाहिए कि ईश्वर ने हमें बालक क्यों दिए हैं। गिजू भाई समझाते हैं कि भगवान् ने हमको बालक इसलिए दिया है कि उसको पाकर हम अपने जीवन को प्रकाशित कर लें। नया जीवन जीने के लिए भगवान् ने हमको बालक दिये हैं। हमारे अन्दर नई चेतना जगाने के लिए भगवान् ने हमको बालक दिये हैं। कल्याण के पथ पर आगे बढ़ने के लिए भगवान् ने हमको बालक दिये हैं। बालक माँ पर निर्भर है, या माँ बालक पर। कौन किसके जीने का आधार है। गिजू भाई पूछते है - बालक माँ के प्रेम के कारण जिंदा रहता है या माँ बालक की मिठास के कारण जिंदा रहती है।[1]

बालक को सम्मान व स्वतंत्रता दें:- गिजू भाई का मत है कि बालक की आत्मा स्वतंत्र है और वह अपने निश्चित ध्येय की दिशा में आगे बढ़ना चाहती है। वह हमसे यह आशा रखती है कि हम उसको उसके इष्ट कार्य के लिए अनुकूल परिस्थिति दें और निर्विघ्नता दें। वे सचेत करते हैं कि नए माता-पिता समझ लें कि बालक न तो मिट्टी का पिंड है, ओर न मोम का ऐसा लौंदा है कि हम उसको जैसी भी शक्ल देना चाहें, वैसी शक्ल उसकी बन जाए। बालक का अपना एक चेतन-युक्त व्यक्तित्व होता है। वह स्वयं ही अपने रूप को गढ़ने वाला है। अपनी प्रकृति के गुण धर्म के अनुसार वह अपने को गढ़ सकता है। माता-पिताओं को चाहिए कि वे उसके इस कार्य में बाधक न बनें। बल्कि बालक की सारी गतिविधियों का सूक्ष्म अवलोकन करके जहां भी उसे जरूरत हो, वहां उसकी मदद के लिए उसके आसपास बने रहें।

गिजू भाई युवक माता-पिता को सावधान करते हैं कि मारने-पीटने से या इनाम देने से बालक सुधर नहीं सकते, उलटे वे बिगड़ते हैं। मारपीट से बालक में गुंडापन आ जाता है। इनाम के कारण उसकी बुद्धि व्यभिचारी बन जाती है। इन दोनों के कारण बालक गुलाम बन जाता है। उनका कहना

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 17

है कि जिस तरह नए माता-पिता अपने लिए सच्ची स्वतंत्रता चाहते हैं, उसी तरह बालक भी अपने लिए स्वतंत्रता चाहता और माँगता है। बालक भी माता-पिता की, उनके आचार-विचार की और उनकी कुल-परम्परा की बेड़ियों से छूट जाना चाहता।[1]

बालकों के पालन-पोषण और शिक्षण के विषय में भी अनेक गलत धारणाओं की ओर गिजू भाई ध्यानाकर्षित कराते हुए कहते हैं कि "आज के हमारे युवक-युवती देवी-देवताओं की मनौतियों से चाहे बचे हों, लेकिन बच्चों के पालन-पोषण की जंगली रीतियों और रुढ़ियों से बचना बहुत मुश्किल है। नए माता-पिता भी अपने बालकों का पालन-पोषण उन्हीं गलत रूढ़ियों और रीतियों से करना चाहेंगे। अतएव ऐसा समय आने से पहले वे ज्ञानपूर्वक यह समझ लें कि बालक स्वयं अपना विकास करते रहने की अद्‌भुत चेतना-शक्ति के स्वामी होते हैं।"

बालक की हँसी में स्वर्गिक आनन्द है:- गिजू भाई बालक की हंसी को विश्व की सबसे अनमोल चीज मानते हैं। वे पूछते हैं कि क्या किसी तरह का कोई इनाम या लालच देकर हम बालक को हँसा सकते हैं? हँसी बालक की बड़ी से बड़ी मौज है। वह घर और दिल दोनों को उजाले में भरती रहती है। सोये हुए बालक की हँसी परियों के पँखों के प्रकाश की चमक जैसी होती है। दो होठों के खुलते ही बालक की मीठी हँसी पूरे विश्व में छा जाती है। काली अंधेरा रात में भी बालक की हँसी से माँ का सारा भय भाग खड़ा होता है। बालक की हँसी में अमृत भरा है। गिजू भाई माता-पिताओं से प्रश्न करते हैं - क्या कभी आपने बालक की सुन्दर और सलौनी हँसी देखी है? क्या कभी आपने-अपने सारे दु:खों को उन हँसी में विलीन होते देखा है? क्या आप जानते हैं कि जब बालक खिलखिलाकर हँसता है, तो उसके मुँह से नन्हें-नन्हें फूल झड़ते रहते हैं? क्या आप समझते हैं कि बालक को भोजन कराते समय आप स्वयं कैसी-कैसी बाल-लीलाएँ करते हैं? क्या बड़ी-से-बड़ी कीमत मिलने पर भी आप कभी ऐसी बाल-लीलाएँ करना पसंद करेंगे? यदि कभी आप अपने इस स्वर्गीय पागलपन का विचार करने बैठेंगे, तो तनिक सोचिए कि अपने बारे में आप स्वयं क्या सोचेंगे? बाल के साथ व्यक्ति स्वयं बालक बन जाता है। इस कृत्रिमतापूर्ण जीवन में जहाँ व्यक्ति को नाना प्रकार के मुखौटे लगाये घूमता पड़ता है, वह बालक ही है जिसके सामने वह उसी की भाँति सरल, सहज व स्वाभाविक को पुन: प्राप्त कर पाता है। ऐसा स्वर्णिम क्षण जीवन में कब-कब आता है।[2]

बालक हमें पुनर्जीवन देता है:- बालक माता-पिता के सुख व आनंद का स्त्रोत तो है, उनके जीवन का लक्ष्य तथा जीवन-शक्ति प्रदाता भी है। वस्तुत: यह माता-पिता का पुनर्जन्म है, उनके अस्तित्व की निरंतरता है। गिजू भाई पूछते हैं कि आपके शोक को कौन भुलाता है? आपकी थकान को कौन मिटाता है? आपको बांझपन के कलंक से कौन बचाता है? आपके घर को किलकारियों से कौन भर

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 13

2- वही, पृ0 17

देता है? माँ को ग्रहिणी कौन बनाता है? जीवन के संग्राम में पिता को जंगबहादुर कौन बनाता है? निःसंदेह एक ही उत्तर होगा – बालक।

बालक तो प्रेम का दर्पण है:- गिजू भाई की जिज्ञासा है कि "क्या आप जानते हैं कि कभी किसी माता या पिता ने अपने बालक को बदसूरत कहा है?" बालक बदसूरत होता ही नहीं है। गिजू भाई कहते हैं – "जब बालक बालक न रहकर आदमी बनता है, तभी वह बदसूरत बन जाता है। बदसूरत आदमी या बदसूरत औरत का मतलब है – विकृत बालक। जो व्यक्ति बालक के साथ खेल नहीं पाता, क्या वह कभी सहृदयता का दावा कर सकता है? बालक को देखते ही आप उसको गोद में न उठा लें, तो आपका यह दंभ, कि आप बाल-प्रेमी हैं, एक क्षण के लिए भी ठिठक नहीं सकेगा। प्रेम के मामले में कहीं और दंभ चल सकता है, पर बालक के पास कभी नहीं चल सकता।"[1]

बालक को शरीर से नहीं, आत्मा से पहचानें:- गिजू भाई कहते हैं कि ईश्वर संतों के शब्दों माध्यम से स्वयं को प्रकट करता हुआ कुछ आज्ञाएं हम तक पहुंचाता है। हर युग में आज्ञा उतरती है और युग-प्रवर्तक उसे ग्रहण करते हैं। नास्तिक अथवा आस्तिक युग में भी ऐसी आज्ञा शिरोधार्य की गयी थी और आज भी शिरोधार्य की जाती है। जिन लोगों ने ऐसी आज्ञा को सुना है तथा उसे जीवन में उतारा है वे लोग इस पृथ्वी पर समर्थ जनों का यश स्थापित कर गये हैं, और जो लोग इसे जीवन में उतार रहे हैं वे संसार के उद्धार की प्रवृत्ति में अमूल्य योगदान दे रह हैं। यह आज्ञा बहुत साधारण है, पर अभ्यास के बगैर इसे जीवन में उतारा नहीं जा सकता। अभ्यास की नींव है आग्रह, उसका बल है सतत उद्योग, और उसकी शुद्धि विश्वास है। ऐसा अभ्यास हम अध्यापकों को अपनी आज्ञाओं को लेकर करना है, पर एक साधक की तरह।

वे कहते हैं कि यह आज्ञा किसी अन्य लोक से नहीं आई, पुस्तकों से प्रकट नहीं हुई, पर्वत से नहीं उतरी, अपितु शिक्षण से सम्बद्ध संतों के हृदय से उपजी है। वह आज्ञा यह है : बालक को सिर्फ देह से मत पहचानो अपितु आत्मा से पहचानो, उसकी आत्मा युगों पुरानी है, अनादि है, सर्वज्ञ है। शरीर से ही उसका आरम्भ नहीं हुआ है और न शरीर के साथ उसका अंत होने वाला। यह आत्मा अपने विकास के निमित्त अग्रिम प्रवास के लिए नया शरीर धारण करके आई है। इसका उद्देश्य इसी के पास है, इसका फल इसी के भीतर है – जिस तरह से बीज में वृक्ष और फल विद्यमान रहते हैं। अपना मार्ग और लक्ष्य यह जानती है। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, क्रियाशक्ति, कल्पना आदि साधनों के द्वारा यह अपना दर्शन करने के लिए सन्नद्ध है। इस प्रवासी के मार्ग में तुम मत आना। न तुम इसे अपने मार्ग का अनुसरण करने की प्रेरणा देना। इसे प्रलोभन देकर अपनी तरफ मत खींचना, न कोई जोर-जबरदस्ती करना। तुम्हारा मार्ग तुम्हें मुबारक।

1- गिजू भाई बधेका – माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 15

सहज दृष्टव्य है कि माता-पिता व शिक्षक बालक के 'भले' के लिए, उसका भविष्य सुधारने के नाम पर स्वयं को बालक पर थोप देते हैं। इतना ही नहीं बालक की भलाई के नाम पर वे उसके साथ मारपीट करते हैं। गिजू भाई कहते हैं कि जहाँ शिक्षक अपनी आँखें तरेरकर विद्यार्थी को सही रास्ते पर लाएँ और जहाँ मेरे इन पड़ोसी के समान पिता अपने लड़के को तमाचे मार-मारकर उसका भविष्य सुधारना चाहें, वहाँ किसी और का क्या जोर चले? बेशक, बच्चे का भला तो सब ही चाहते हैं।[1]

बालक का भला किसमें हैं, यह विश्लेषण करने की आवश्यकता है। गिजू भाई के मतानुसार बालक का सुख उसको अपने ही हाथों खाने देने में है। कोई उसको खिला दिया करे इसमें बिल्कुल नहीं। बालक का सुख उसको खुद ही चलने देने में है। उसको गोद में उठा लेने में हर्गिज नहीं। बालक का सुख उसको खुद ही खेलने देने में है। उसको खेलाने में हर्गिज नहीं। बालक का सुख उसको खुद ही गाने में है। इसमें नहीं कि कोई उसके सामने गाए या उसको गाने के लिए कहे। बालक का सच्चा सुख सब कुछ स्वयं बालक को ही करने देने में है। इसमें नहीं कि कोई उसके सहज अधिकारों को उससे छीन ले।[2]

बालक के विकास में मदद करो:- संतों के मुख से अवतरित ईश्वरीय आज्ञा कहती है : तुम उनके रास्ते में मत आओ। उनको अपनी गति और शक्ति से आगे बढ़ने दो। तुम्हारा पैमाना बहुत छोटा और ओछा है। इससे इनको मापने की भूल मत कर बैठना। न तुम इन्हें अपनी मर्यादा में बाँधने की कोशिश करना। तुम अपने ममत्व में कहीं इनके पतन का कारण मत बन जाना। अगर तुमसे हो सके तो इनके विकास-मार्ग में मदद करो। बुद्धि के मार्ग को जिस प्रकार बोधिसत्व प्रशस्त करते हैं, निष्कंटक करते हैं, निर्भय बनाते हैं, उसी प्रकार तुम भी बालकों के मार्ग को स्वच्छ, निर्भय, निष्कंटक एवं निर्मल करो। जिस प्रकार किसान या माली अपने पौधों की पशुओं द्वारा विनाश से रक्षा करता है, उसी प्रकार तुम भी असत्य एवं हीनताओं से अपने बालकों की रक्षा करो, उनके विकास के निमित्त तुम्हारे पास जो समृद्धि है वह उन्हें प्रदान करो और अगर न हो तो उनके लिए उपलब्ध करो। इतनी सुविधा देने के पश्चात् बालक स्वयं अपना विकास कर लेंगे।

जिस प्रकार से खगोल-वैज्ञानिक अपनी दूरबीन से आकाश के तारों की गति का अवलोकन करते हैं उसी प्रकार तुम भी विकास के नियमों के शोध के लिए तटस्थतापूर्वक बालकों का अवलोकन करो और कोई राहु उन्हें ग्रसे उससे पहले बालकों को आसन्न भय एवं क्षति से बचा लो। संसार की गति जहाँ से आगे विकास करती है, वहीं से बालक आगे बढ़ना चाहता है, यही बात हमें समझनी है। जितनी गम्भीर हमारी यह समझ होगी, उतना ही अधिक हममें यह विवेक जागेगा कि बालकों के प्रति

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 14
2- वही, पृ0 22

किन विधि-निषेधों का प्रयोग किया जाना चाहिए। अगर हम बालकों के प्रति ऐसा दृष्टिकोण अपनायेंगे तो हम उनके प्रति मताग्रहों से, संकीर्ण मान्यताओं से, उनके विकास सम्बन्धी नए-पुराने विचारों से मुक्त हो सकेंगे।[1]

शिक्षाशास्त्रियों का विचार है कि खेल-कूद के जरिए बालक अपने असल स्वरूप को प्रकट करते रहते हैं, बीज में मनुष्य बैठा है। यदि बीज को उसके बचपन से ही पहचान लेने की समझ हममें आ जाए, तो हम उसके उगने में उसकी उचित सहायता कर सकते हैं। हम बालकों के खेल देखते रहें और वहीं से यह समझने का प्रयत्न करें कि असल में वे कौन हैं। उनके मूल स्वरूप को पहचान कर हम उनके लिए ऐसी अनुकूलता कर दें कि जिससे वे उत्तम मनुष्य बन सकें।[2]

गिजू भाई कहते हैं कि हम बालक को जो कुछ बताते या समझाते हैं, वह सब तत्काल उग नहीं जाता। जिस प्रकार वृक्ष के बीजों को उगने में समय लगता है, उसी प्रकार बालक में बोये गये बीजों को भी अंकुरित होने, फूलने-फलने में समय लगता है, अतः शिक्षक को जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए, न उसे विश्वास खोना चाहिए, अपितु निष्ठापूर्वक इस बात की प्रतीक्षा करनी चाहिए कि उसकी तैयार की हुई फसल कब उगती है।[3]

बाल्यावस्था जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्थाः- टालस्तय एक महान तत्व चिंतक ही नहीं, एक श्रेष्ठ शिक्षक भी थे। उनके छात्र-बालक उनसे अत्यन्त प्रेम करते थे। कारण था टालस्टाय का बालकों से अगाध स्नेह। वे बाल, मनोभावों की गहरी पैठ रखते थे। बालकों के बारे में उनके दृष्टिकोणों की आधार-भूमि उनके अपने बाल्य जीवन की स्मृतियों को प्रत्यास्मरण कर पाने की क्षमता के कारण गिजू भाई उनके प्रशंसक थे। वे शिक्षकों से अपेक्षा रखते हैं कि बालकों को समझने के लिए उन्हें अपनी बाल्यावस्था की स्मृतियों को पुनर्जीवित करना होगा। वे कहते हैं कि सच पूछें तो व्यक्ति के जीवन में बाल्यावस्था का एक महत्वपूर्ण काल ही व्यतीत हो जाता है। इसी अवस्था की बुनियाद पर आज का वर्तमान निर्मित हुआ है, यह अर्धसत्य है। सच्चा और सम्पूर्ण सत्य तो यह है कि बाल्यावस्था को ही व्यापक परिमाण में आज हम अपनी आज की अवस्था कहते हैं। बाल्यावस्था आई और चली नहीं गई, वह आई और हमेशा के लिए हमारे साथ रही है। इसका यह अर्थ हुआ कि बाल्यावस्था के वर्षों में हमारा जो निर्माण हुआ, मानसिक शक्तियों का जो विकास हुआ, इन्द्रियों ने जो विकास साधा ओर सबसे बढ़कर तो हमारी जैसी नैतिक, भावनात्मक, धार्मिक वृत्तियाँ निर्मित हो पाईं-वे सब आज के क्षण तक विद्यमान हैं। बाल्यावस्था में ही हमें जो मिला था, हमने ग्रहण किया। आज हम उसी को बढ़ा या घटा रहे हैं, दृढ़ या निर्बल कर रहे हैं, उसी को चमका रहे हैं या धूमिल कर रहे हैं। बाल्यावस्था में बीज उगा, जड़ें फूटी, तना-डाली-पत्ते आए और कैसे फल-फूल

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 105-106
2-गिजू भाई बधेका - माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 58
3- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 39

आएंगे - इस बात की नींव लगाई गई, बाद की अवस्था में तो तना ऊँचा बढ़ता है, डालियाँ लंबी होती जाती हैं, और साथ ही साथ पत्ते फैलते जाते हैं यही बात व्यक्ति पर लागू होती है। संक्षेप में, सौ वर्ष तक जीवित रहने वाला जिस तरह से नौ माह तक गर्भ में रहकर निर्मित होता है, उसी तरह से वह बाल्यावस्था में विकसित होता है। अतएव आज के क्षण स्वयं को समझने के लिए, अपनी शक्ति-अशक्ति के कारणों को जानने के लिए, अपनी भावनाओं-रुचियों-रुझानों के परिबलों को तलाशने के लिए व्यक्ति को बाल्यावस्था के पास जाना चाहिए। आज के मन: चिकित्सक हर प्रकार के मानसिक रोगों का मूल बाल्यावस्था की अवधि में तलाशने जाते हैं और वहां उन्हें वे कारण उपलब्ध हो जाते हैं। व्यक्ति की अद्‌भुत शक्ति एवं विचित्र निर्बलताओं की शुरूआत किस तरह बाल्यावस्था में हुई, इसका अध्ययन आज के अनेक शिक्षाशास्त्रियों के लिए रुचिकर विषय बन गया है। आगे की अवस्था में ज्ञान बढ़ता है, शक्ति बढ़ती है, व्यवहार-क्षमता बढ़ती है; पर इन सबकी पटरियाँ, इनके बीज तो कभी के पड़ चुकते हैं।

गिजू भाई का मत है कि इतनी महत्वपूर्ण बाल्यावस्था की उपेक्षा नहीं की जा सकती। बल्कि इसे याद करके अपनी वर्तमान अवस्था की गलतियाँ ढूँढनी चाहिए। दूसरे, अपनी बाल्यावस्था को याद करके हम आज के बालकों की बाल्यावस्था के प्रति आदर रखना सीखेंगे। जो बाल्यावस्था हमें अत्यन्त प्रिय थी, उसी बाल्यावस्था से गुजरने वाले सब बालकों का हमें सम्मान करना है। जिस बाल्यावस्था के प्रति हम माता-पिता और अध्यापकों की सहानुभूति, उदारता एवं विवेक की आकांक्षा रखते थे, और वह सब न मिलने पर हम हर तरह से दु:खी होते थे, उसके प्रति तो हम योग्य व्यवहार रखना सीखें। जब टॉल्सटॉय बड़े होकर बालकों के प्रति व्यवहार करने बैठते होंगे तो उन्हें अपनी बाल्यावस्था की बातें याद आने लगती होंगी और वे तत्काल कुछ और बन जाते होंगे। गिजू भाई कहते हैं कि हम अध्यापकगण भी अपनी बाल्यावस्था याद करें, उसके भीतर अपने विकास-अविकास के कारण ढूँढ़ें, जीवन-चरित्र के निर्माण में व्यक्ति की बाल्यावस्था को याद करना कितना जरूरी है यह तथ्य हृदयंगम करें, और अपनी तकलीफों को याद कर-करके दूसरों की बाल्यावस्था के प्रति उदारमना बनें।

4.7 शिक्षक

शिक्षा की त्रिध्रुवीय प्रक्रिया में शिक्षक का सदैव ही से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यद्यपि विभिन्न शिक्षा दार्शनिकों के दार्शनिक चिंतन के अनुरूप शिक्षक की भूमिका व कार्य-पद्धति में कुछ अन्तर अवश्य परिलक्षित होते हैं तथापि किसी भी शिक्षाविद् द्वारा विद्यालय की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में शिक्षक की महत्ता से इंकार नहीं किया गया है, उसकी भूमिका भले ही प्रत्यक्ष हो अथवा

परोक्ष।

शिक्षक का पद भारतीय परम्परागत चिंतन में अत्यन्त सम्मानजनक व प्रतिष्ठापूर्ण माना गया था। समय के साथ उसकी स्थिति में परिवर्तन आया। गिजू भाई की शिक्षक एवं उसकी भूमिका की अवधारणा पर प्राचीन भारतीय आदर्शवादी दर्शन सहित प्रकृतिवादी व प्रयोजनवादी दर्शन का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मांटेसरी के शिक्षा-दर्शन से तो उन्होंने गहन प्रेरणा प्राप्त की है अत: उनके विचारों का सर्वाधिक प्रभाव इनके चिंतन पर पड़ना स्वाभाविक ही है। शिक्षक के सम्बन्ध में गिजू भाई ने अपने साहित्य में स्थान-स्थान पर विस्तार से चर्चा की है। इतनी गहनता व विस्तार से की गयी चर्चा इस तथ्य का द्योतक है कि गिजू भाई शिक्षा-प्रक्रिया में शिक्षक को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते थे।

शिक्षक किसे बनना चाहिए? :-

शिक्षण व्यवसाय करने वाला मनुष्य शिक्षक कहा जाता है। इस व्यवसाय में लगने वाला व्यक्ति शिक्षक कैसा होना चाहिए, इस बात के ज्ञान पर ही व्यक्ति को यह निर्णय लेना चाहिए कि वह शिक्षक के इस व्यवसाय में उतरे या न उतरे। कहा जाता है कि शिक्षक जन्मजात होते हैं, बनते नहीं। गिजू भाई की यह बात सही है। लेकिन उनका यह भी मानना है कि यदि शिक्षण-व्यवसाय जन्मजात शिक्षकों पर ही अवलंबित रह जाए तो कुछ समय में ही वैसे व्यक्तियों की कमी पड़ जाएगी। फलत: शिक्षण-कार्य बन्द हो जायेगा। यही कारण है कि शिक्षक होने की या बनने की जरूरत है। कई बार ऐसा होता है कि जन्म से ही अलग-अलग मनुष्यों में शिक्षक के गुण भले ही थोड़े-थोड़े आए हों, पर उन लोगों का समूह बन जाता है और वे अच्छा काम कर दिखाते हैं।

गिजू भाई के मत से यदि व्यक्ति में अगर निम्नलिखित कतिपय गुण हों तो उसे शिक्षक बनने का इरादा करना चाहिए। फिर कुछ बातें तो मनुष्य अनुभव से या अध्ययन से बाद में भी सीख सकता है।

शिक्षण कार्य आत्मोन्नति की साधना है। शिक्षण-कार्य अति पवित्र है, इस कार्य से और सब कामों की बजाय आत्मोन्नति का लाभ साधा जा सकता है, यह कार्य धर्म-विहित है और कल्याण की इच्छा रखने वालों को इसे अवश्य करना चाहिए या फिर जो लोग मानते हैं वे ही सबसे पहले शिक्षक बनने के योग्य है। शिक्षण-कार्य विद्यार्थियों को अमुक प्रकार का ज्ञान प्रदान करने के लिए ही नहीं है। यह कार्य भले ही निष्पाप हो, पर केवल आजीविका कमाने के लिए नहीं। यह कार्य तो सर्वसाधारण को ऐहिक एवं परमार्थिक यथार्थ लाभ कमाने और बलवान बनाने के लिए है। जो शिक्षक इस व्यवसाय के इस रहस्य को नहीं समझता, जो शिक्षक इस धर्म-कर्त्तव्य को जान नहीं

सकता, वह चाहे कितना ही ज्ञानवान हो, चाहे कितना ही बड़ा शिक्षाशास्त्री हो या शिक्षक-पद्धति का ज्ञाता हो, गिजू भाई की दृष्टि में फिर भी वह शिक्षक बनने में सर्वथा अयोग्य है।

गिजू भाई का मानना है कि - मैं जो कुछ कर रहा हूँ, सिर्फ अपना पेट भरने के लिए नहीं कर रहा हूँ। छात्रों को सिर्फ निर्धारित अभ्यास-क्रम के अनुसार परीक्षा के लिए तैयार करने हेतु नहीं अपितु मैं कल्याण की भावना रखने वाला शिक्षक हूँ। अतएव जिस परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए मैं संघर्ष कर रहा हूँ उस परम तत्त्व की दीक्षा की तरफ मेरा शिक्षण मुझे ले जाएगा, ऐसी भावना से मैंने यह कार्य स्वीकार किया है। जिसका ऐसा दृढ़ मंतव्य है वही शिक्षक बनने के योग्य है। जिसका धार्मिक-जीवन शिक्षण-जीवन के साथ एकरूप हो जाता है, जिसकी सब धार्मिक क्रियाएं शिक्षण-क्रिया में ओत-प्रोत हो जाती हैं, जो अपना आध्यात्मिक ध्येय पवित्र शिक्षण-कार्य की सफलता में देखता है वही मनुष्य शिक्षक बनने के योग्य है।

उपासना का बलः- दूसरी आवश्यकता उस कार्य की उपासना है। किसी भी कार्य की सिद्धि उसकी उपासना के बिना नहीं हो सकती। जब तक मनुष्य उस काम के पीछे पागल नहीं हो जाता तब तक वह किसी भी काम को सिद्ध नहीं कर सकता। अगर मनुष्य में किसी भी काम के पीछे संलग्न रहने की आदत नहीं है तो वह किसी भी व्यवसाय में सही रीति से योग्य नहीं है। इस हिसाब से शिक्षक में उपासना करने का बल होना चाहिए, शिक्षण के पीछे पागल हो जाने की शक्ति चाहिए तथा शिक्षण के पीछे अविश्रांत परिश्रम करने का वीर्य होना चाहिए। शिक्षण के पीछे जो पागल नहीं है, गिजू भाई उसे शिक्षक नहीं मानते हैं। जिसे रात-दिन शिक्षण, शिक्षण और शिक्षण का ही विचार आता रहता है, उसके स्वप्न भी शिक्षण से परिपूर्ण हैं, जिसकी नजरों के सामने नहाते, खाते-पीते, हर काम करते शिक्षण के ही विचार हैं वही सच्चा शिक्षक है, वही खरा पागल है। शिक्षक का व्यवसाय लेना और अशिक्षकपने का व्यवहार करना-यह कभी नहीं चलने का। हजारों लोगों ने शिक्षक या पोथी पंडित के रूप में काम किया है। पर जो लोग इस धंधे में पागल बन गए, जिन्होंने इसके पीछे अपने सभी सुखों की तिलांजलि दे दी और इस पागलपन के पीछे अपनी सारी शक्ति खर्च कर दी, बल्कि जिन्होंने इस पागलपन में ही समझदारी, सुख या आनंद माना, उन्हीं के नाम आज शिक्षाशास्त्र में अमर हैं।[1]

यह पागलपन ही शिक्षक की सच्ची निशानी है। जो अपने काम में इतना रच-बस गया है कि उसे निंदा या स्तुति की परवाह तक नहीं, अपने विद्यार्थियों के साथ हिल-मिल जाने और उनके साथ नाचने-कूदने में छोटापन महसूस नहीं करता, जो अपने प्रत्येक विद्यार्थी में स्वयं का अवलोकन करके उससे मिलता है, जिसकी अपनी देह-चेतना या ज्ञान-चेतना विद्यार्थियों के पास जाते ही

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 21-22

अपने-आप छूट जाती है, जिसका हृदय प्रत्येक विद्यार्थी के हृदय में धड़कता है, ऐसा पागल शिक्षक ही गिजू भाई की दृष्टि में सच्चा शिक्षक है। जिसका दिल विद्यार्थियों के रोने के साथ रो पड़ता है, विद्यार्थियों की हँसी में जो अपने जीवन का आनंद अनुभव करता है, जिसके लिए छोटी या बड़ी दुनिया विद्यार्थी-जगत् है, जिसके सुख-दु:ख का आधार विद्यार्थी के सुख-दुख पर है, जिसके लिए अपने हाथ से जाने-अनजाने में विद्यार्थी के साथ हुआ अन्याय अत्यधिक प्रायश्चित का कारण बन जाता है, वह व्यक्ति वह पागल व्यक्ति ही उनके मत से शिक्षक-व्यवसाय के योग्य है।

सच्ची सेवा भावना:-शिक्षक व्यवसाय में संलग्न व्यक्ति को दूसरों का अन्धानुकरण कर भौतिक लालसाओं व सुखों की प्राप्ति के लिए पागल नहीं हो जाना चाहिए।

संतोष-भावना उसमें परमावश्यक है। गिजू भाई कहते हैं कि कोई गरीब अपनी रोटी में से आधा हिस्सा दान में दे दे तो उसका मूल्य किसी राजा के आधे राज्य के समकक्ष आँका जाता है। हमारी साधारण-सी स्थिति में ही अगर हम सच्ची भावना से सेवा करेंगे तो यह आधी रोटी वाला पुण्य एक महायज्ञ जितना फलदायी बन जाएगा। ऐसा करने पर हमारे व्यवसाय की उन्नति होगी और मरने के बाद भी हमारा कल्याण ही होगा।

वे कहते हैं कि ऐसा करने पर ही हमें शिक्षा-मन्दिर निर्मित करने तथा समग्र जीवन को उज्जवल बनाने का पुण्य मिल पाएगा। अपनी गरीबी को देखते हुए भले ही आप टयूशन करें या पाठशाला के अन्य काम करें, पर वे सब आपके व्यवसाय की महत्ता में वृद्धि करने वाले सिद्ध हों। उनको लेकर परेशान होने की जरूरत नहीं है कि इस पचड़े में क्यों फंसे? ऐसा मानकर न किया जाए। अपने व्यवसाय पर आल्हादित और गर्वान्वित रहेंगे तो स्वत: मान जाएंगे कि इसे क्यों-कर सुधारा जाए। फिर तो निबंध, व्याकरण और सारी ही बातें समझ में आ जाएंगी। भाषा सम्बन्धी परेशानी फिर नहीं रहेगी।[1]

व्यवसाय के प्रति आस्था व निष्ठा:- गिजू भाई शिक्षकों से कहते हैं कि मैं आपसे जो मांगना चाहता हूँ वह है - श्रद्धा, श्रम, एकनिष्ठता। उपासना में रहस्य के गहन अर्थ का ज्ञान, क्रियात्मक सूक्ष्मता, उद्दाम कल्पना और विश्वास की जरूरत पड़ती है। अगर ये सब बातें आप में होंगी तो पत्थर में से भी देवता प्रकट हो जाएंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। शिक्षण की यह उपासना आपसे वफादारी की मांग करेगी, ऐहिक सुख-भोगों को भूल जाने का आग्रह करेगी, शरीर व मन की परीक्षा ले लेगी। लेकिन अगर आप लोग स्थिरचित्त रहेंगे, विचारशील होंगे, तो आप विजय प्राप्त करेंगे। संसार में कोई वस्तु स्वयं महान् है या निम्न है, ऐसा नहीं। उपासना से प्रत्येक वस्तु महत्ता अर्जित करती है। उपासना की निष्फलता से महान् वस्तु की भी पराजय हुई है, महान् वस्तु भी

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 36

अल्प-प्राण बन जाती है।[1]

सृष्टि मात्र से प्रेम :- गिजू भाई प्रेम की महानता का गुणगान करते हुए कहते हैं कि दुश्मन तक को जीत लेने वाला महान् गुण है - प्रेम। प्रेम से व्यक्ति भगवान् को पा सकता है। प्रेम इस संसार में स्वर्ग को उतारकर ला सकता है। प्रेम एक अजब मोहनी है। प्रेम के वशीभूत मनुष्य-प्राणी व्यवहार करते हैं। सचराचर विश्व प्रेम की जंजीर से जकड़ा हुआ है। प्रेम स्वर्ग की सीढ़ी है। प्रेम जीवन का आराम है। धर्म की नींव में भी प्रेम ही है। व्यवहार की उलझन को सुलझाने वाला प्रेम है। ईशू का उपदेश भी प्रेम का है। बुद्ध का उपदेश भी प्रेम से ही (न कि तिरस्कार से) सामने वाले को जीतना है, कृष्णजी ने भी जीवन में प्रेम का गान किया है। भक्तों की भक्ति तो प्रेम स्वरूप है। प्रेम से उत्पत्ति होती है। प्रेम से ही दुनिया को पोषण मिलता है। प्रेम-सर्वव्यापी है, प्रेम सहनशील है, प्रेम शुभचिंतक है, प्रेम एकता का साधक है। बल्कि, प्रेम एक जादू ही है। अगर संसार में प्रेम जैसी चीज नहीं होती तो संसार की स्थिति आज कैसी हुई होती, उसकी भयंकर कल्पना से ही कंपकंपी आ जाती है। अगर शिक्षक में ऐसा प्रेम नहीं है तो वह शिक्षक बन ही नहीं सकता। आने वाले कल की दुनिया का भविष्य शिक्षक के हाथ में है। आज पाठशालाओं के माध्यम से पूरे विश्व के मातृ-स्थान पर बैठकर पाठशाला तथा समाज का उद्धार करने का धार्मिक काम शिक्षक के माथे पर आ पड़ा है। इस धर्म के काम में मानव-जाति की रक्षा और उद्धार निहित है। प्रेम से चेतना का जन्म होता है। शिक्षक को प्रेम के द्वारा-सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति अपना महान् धर्म, अपना महान् कर्त्तव्य व्यक्त करना है तथा सिद्ध करना है। मॉण्टेसरी के निम्न कथन को इस विषय पर अत्यन्त उत्साहजनक व प्रेरणा प्रदान करने वाला स्वीकार करते हुए गिजू भाई उसे उद्धृत करते हैं - "प्रेम फलोत्पत्ति के भीतर विद्यमान रहने वाला मुख्य गुण है और फलोत्पत्ति का उद्देश्य है- नए जीव का निर्माण। प्रेम का उद्देश्य भी ऐसा ही कुछ नव-निर्माण करना है। शिक्षक को भी नए फल निर्मित करने होते हैं अतः उसके कार्य में भी मानव-प्रेम होना चाहिए। इस तरह नए फल उत्पन्न करने की वृत्ति से शिक्षक को प्रेरित होना चाहिए तथा प्रेरित होकर उसे अपना कर्त्तव्य-क्षेत्र खोज लेना चाहिए। ऐसा क्षेत्र है पाठशाला को सुधारना और संसारभर की माता बनने का गौरवपूर्ण पद प्राप्त करना। इस मातृ-पद पर चढ़कर शिक्षक को सम्पूर्ण मानव-जाति की, साधारण और असाधारण सबकी रक्षा करनी है। सुधार सिर्फ पाठशालाओं का ही नहीं करना है अपितु पूरे समाज का करना है, क्योंकि शिक्षण-विद्या का प्रयोग इतना पावन और परिणामदायी है कि मानव-जाति की अत्यन्त नीच वृत्तियों का, मानव-जाति के रोगों का वह अपहरण करती है, उसे अद्यः पतन से भी बचाती है। जिन्सेप्पी सर्गी नामक लेखक ने कहा है कि आज का समाज-जीवन ऐसा वन गया है कि हमारी शिक्षा-पद्धति

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 30

में नितान्त नये प्राण संचरित करने की आवश्यकता आ खड़ी हुई है। इस अभियान में जो भर्ती होने के लिए निकल आएगा वह मानव-जाति को पुनजीर्वित करने वाली सेना का सैनिक समझा जायेगा।"[1]

इसी संदर्भ में सर्गी महोदय का यह कथन भी दृष्टव्य है - "आज के समाज की अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है शिक्षा पद्धति का पुनर्गठन। जो भी व्यक्ति इस कार्य के लिए मैदान में उतरता है, समझ लो कि वही मनुष्य के उद्धार के लिए एक युद्ध लड़ रहा है।"

गिजू भाई कहते हैं कि जिस किसी भी अध्यापक के हृदय में डॉ. मॉण्टेसरी के गुरू सर्गी के उक्त शब्द अंकित हैं, उसे ही यह अधिकार है कि इस तरह की पाठशालाओं में कदम रखे।[2]

शिक्षक सच्चे मार्गदर्शक नेता के रूप में:-

भारतीय समाज में शिक्षक के पद की गौरव, गरिमा व प्रतिष्ठा अर्वाचीन काल से ही रही है। उसका कार्य सभी अन्य कार्यों से श्रेष्ठतम है, अतः उसके मन में किसी भी दशा में हीनता बोध नहीं पनपना चाहिए। इस सम्बन्ध में गिजू भाई के निम्न शब्द दृष्टव्य हैं -

"ऐसी धारणा कभी मत रखो कि हमारी कहीं कोई हस्ती नहीं है। जरा ठहरो और गम्भीरता से सोचो। हम पूरे गाँव के, प्रान्त और देश के बालकों को पढ़ाते हैं। हम उनके मन और शक्ति का विकास करते हैं, उनकी आंतरिक शक्ति को बाहर लाने का काम करते हैं। हम ही उनकी नीतिमत्ता और धर्म की जड़ों को सींचने वाले हैं। संक्षेप में, हम उनके दृष्टा, मार्गदर्शक और उनके नेता हैं।"[3]

शिक्षक दृष्टा व प्रेरक के रूप में:-

शिक्षक व्यक्ति के विकास के साथ-साथ समाज के हितों को भी ध्यान रखने वाला हो। वह बालक के व्यक्तित्व में निहित सम्भावनाओं को पूर्णता तक ले जाने के लिए वांछित वातावरण सृजित करने में योगदान दे। गिजू भाई कहते हैं कि हमारा काम माली जैसा है, लेकिन महज माली जैसा ही नहीं। हमें पता है कि बीज के अनुरूप ही वृक्ष तैयार होगा, पर बीज के दोषों को दूर करना हमारा ही काम है। हमें बीज को सिर्फ अनुकूलता ही प्रदान नहीं करनी, अपितु सामाजिक और नैतिक वातावरण में उसे जीने योग्य भी बनाना है। इसीलिए हम दृष्टा और प्रेरक हैं।[4]

शिक्षण व्यवसाय की सर्वोत्कृष्टता:-

गिजू भाई शिक्षकों को उनके व्यवसाय की श्रेष्ठता का अहसास कराते हुए कहते हैं कि बालक मनुष्य जाति का मूल है। उसे शिक्षित करने का काम हमारे हाथ है। उसका भविष्य हमारे हवाले है। उनमें हम जो कुछ बोयेंगे वही उगेगा, जो कुछ सींचेंगे वही फलेगा। इसीलिए हमारी खेती बीजों की है, और इसलिए हमारा व्यवसाय सर्वोत्कृष्ट है।

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 23-24
2- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 66
3- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 59
4- वही, पृ0 55-56

पर हम यह मानकर चलते हैं कि हम पोंगा पंडित हैं, बेचार मास्टर हैं, हम किसी गिनती में नहीं हैं। इतनी दीनता से हम बोलते हैं और रहते हैं कि पुलिस का एक साधारण सिपाही भी हमें धक्का मार सकता है। एक कारबारी कारिंदे की प्रतिष्ठा हम से बढ़कर है। सरकार के कागज-पत्रों की व्यवस्था करने वाले एक डाकपाल का दर्जा हमसे बढ़कर गिना जाता है।

वे प्रश्न करते हैं कि - ऐसी दीन-हीनता हम क्यों रखें? चाहे हमें कम वेतन मिले या अधिक, पर हम सिर ऊँचा करके क्यों न चलें? हम अपनी छाप क्यों न अंकित करें कि जिससे हमारा दर्जा एक डॉक्टर, वकील या किसी व्यवसायी के समकक्ष सम्मानित न समझा जाए?

वे शिक्षक को उसके आत्मबल का अहसास व कार्य की महत्ता समझाते हुए कहते हैं कि अभी तक हमने अपने व्यवसाय की ताकत और इसका मोल नहीं समझा। हमारा व्यवसाय शारीरिक रोगों का इलाज करना नहीं है, झगड़ाखोर लोगों के झगड़े निपटाना नहीं है, बदमाशों को सजा देकर जेल में डालना नहीं है, अनुशासनहीन नागरिकों को नियंत्रित करके राज्य-तंत्र चलाना नहीं है; पर हमारा व्यवसाय रोग न हो, द्वेष-बैर-झगड़े न हों, बदमाशी की वृत्ति का विनाश हो और व्यवस्था एवं शान्ति फैले इसका इलाज करने का इसका समूल उपाय तलाशने का है।[1]

शिक्षक भावी पीढ़ी का निर्माता है। समाज के सभी अंग व क्षेत्र उस पर अवलम्बित है। यदि वह उत्तम नागरिकों का निर्माण नहीं करेगा तो राष्ट्र विकास ठहर जायेगा। गिजू भाई कहते हैं कि संसार में अनेक व्यवसाय हैं, पर एक भी व्यवसाय ऐसा नहीं है कि जो शिक्षक-व्यवसाय की तुलना में टिक सके। शिक्षक का व्यवसाय अतीत और वर्तमान को जोड़ता है तथा वर्तमान में जीवंत रहकर भविष्य का गठन करता है। शिक्षक का व्यवसाय याने सामाजिक जीवन, समाजशास्त्र और समाज के भविष्य को निर्मित करने वाला व्यवसाय। जैसी व्यवसाय की महत्ता, वैसी ही उसकी जिम्मेदारी। अगर आज शिक्षण देने का काम बंद कर दिया जाएगा, तो कल मनुष्य का जीवन अंधकारमय बन जाएगा। धार्मिक, राजकीय व सामाजिक गतिविधियों के पाँव टूट जायेंगे और मनुष्य-जीवन थोड़े समय में पशु जीवन के साथ उसी आकार का हो जाएगा।[2]

शिक्षा के प्रति, उसके विकास के प्रति समाज की उदासीनता से गिजू भाई स्वयं को आहत अनुभव करते हैं, परन्तु उनकी आशावादिता उन्हें निराश नहीं होने देती है। शिक्षकों की उपेक्षा के प्रति समाज तो दोषी है ही शिक्षक-वर्ग में व्याप्त अकर्मण्यता, कर्त्तव्यहीनता, उत्साह व मनोबल की क्षीणता भी महत्वपूर्ण कारक हैं। स्थिति यह है कि आज का युवा अन्य तथाकथित श्रेष्ठ समझे जाने वाले व्यवसायों के द्वार अपने लिए बंद पाने के बाद अंतिम शरण-स्थली के रूप में शिक्षक की नौकरी ढूँढता है। इस संदर्भ में गिजू भाई का कथन अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होता है - व्यापार में

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 59

2- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 21

या राजनीति में बहुत सारे लोग संलग्न हैं। नाटक तमाशे में तो और भी अधिक लोग इकट्ठे हो जाते हैं। परन्तु हमारे प्रति सबकी अनभिरूचि और अनादर होने के कारण हमारी सभा में बहुत कम लोग इकट्ठे होते हैं।

हम लोग जैसे किसी भी काम के न हों, इस तरह का समाज में हमारा स्थान है। बेचारे मास्टर के रूप में हमें देखा जाता है। हमारी सभाओं के समय मोटरें, गाड़ियाँ, कुर्सियाँ या रोब-रूतबेदार लोग नहीं होते, पर साधारण अध्यापकगण ही होते हैं। इसका यही कारण है कि आज लोगों की शिक्षा में रूचि नहीं है, जीवन में रूचि नहीं है। जीवन से दूर होने के कारण जन-समाज को हमारी जरूरत नहीं है।

वे कहते हैं कि हालांकि मेरे कुछेक स्वप्न आपको पागलपन-से प्रतीत होंगे, परन्तु मुझे विश्वास है कि भले ही हजार वर्षों के बाद, लेकिन एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा कि जब शिक्षाविद् बाजार से गुजरेंगे तो लोग उन्हें सम्मान से देखेंगे, उनकी सभाओं में उपस्थित होंगे और उन्हें समुचित सम्मान देंगे। लेकिन ऐसा होगा कब? जब लोगों में जीवन जागेगा। जब हम स्वयं उस जीवन से प्रज्वलित हो उठेंगे। अभी तो हमें अपनी स्थिति बहुत ही साधारण दिखाई देती है। थानेदार का, नगर पालिका का या डाकघर का चपरासी भी बड़ा दिखाई देता है और हम तो बेचारे अध्यापक हैं, ऐसा लगता है। बहुत कम वेतन मिलता है, वह भी खुशामद और कागजी कार्रवाई की माथापच्ची के बाद। सचमुच हमारी ऐसी दशा दया के काबिल और शर्म पैदा करने वाली है। इसमें हमारा भी दोष होगा ही। मंत्री और राजा बनाने वाले व्यक्ति की ऐसी दशा नहीं होनी चाहिए। लेकिन हमें हिम्मत हारने की बात नहीं है, न हम किसी अन्य व्यवसाय में जाने की बात सोचें।

गिजू भाई को लगता है कि देशभर को श्रेष्ठ, प्रतिभासम्पन्न, बुद्धिशाली, कमाई करने वाले और बड़े काम करने वाले लोग जब तक इस व्यवसाय में नहीं आयेंगे तब तक देश में पाठशालाओं की उन्नति नहीं होगी।[1]

संकल्पशीलता व निराभिमानिता:- समाज में अन्य व्यवसायों का एक नकारात्मक पहलू है - दूसरों की कमियों से लाभ उठाना। डॉक्टरों की जीविका मनुष्य-जीवन की निष्फलता पर निर्भर है, वकील भी समाज-जीवन की निष्फलता पर जीविका चलाते हैं। लोग आरोग्य के नियमों को भंग करते हैं और बीमार पड़ते हैं, या आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, मामले-मुकदमे करते हैं, गलत दस्तावेज बनाते हैं - इस प्रकार की जीवनगत निष्फलता पर इन लोगों का व्यवसाय चलता है। पर शिक्षण व्यवसाय सर्वश्रेष्ठ है। इतने सर्वोत्तम व्यवसाय में निष्फल रहने का गिजू भाई की दृष्टि में एक ही कारण है कि शिक्षक अपने शिक्षण-धर्म की उपेक्षा करते हैं। जन समाज के दोष तलाशने

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 34

से काम नहीं चलेगा। शिक्षकों को तो अपने व्यवसाय के गौरव को समझते हुए उन्नति के लिए अपना योगदान देना है। शिक्षकों को गिजू भाई के ये शब्द स्मरण रखने योग्य हैं- "मैं सबसे पहले तो यह बात दिमाग में बिठाना चाहता हूँ कि भले ही हम गरीब हों, सामान्य बुद्धि के या झुककर चलने वाले हों, हमारा स्थान चाहे जहाँ भी हो, लेकिन हमें मिथ्याभिमान से नहीं अपितु निरभिमान बनकर समझना होगा कि अगर हम संकल्प कर लें तो संसार को उन्नति के शिखर तक पहुंचा सकते हैं।"

गौरवानुभूतिः- गिजू भाई का मानना है कि अच्छा क्या है, यह बात सब जानते हैं, पर इस पर बहुत कम परिणाम में आचरण किया जाता है। हमें विभाग का मिथ्या भय नहीं रखना चाहिए। जब हम कोई अभिनव काम कर बतायेंगे तभी विभाग की आँखें खुलेंगी। सामाजिक दु:खों की तरह हमें विभाग की परीक्षा से गुजरना है। कई लोग सोचते हैं कि अब क्या है? थोड़ी रही, बहुत गई। जैसा चलता है चलने दें; लेकिन यह धारणा अत्यन्त भ्रामक है। जहां से समझ में आए, अच्छे काम की शुरूआत वहीं से कर देनी चाहिए। शेष वर्षों को अच्छी तरह से बिताकर जीवन को स्वीकार करें, इसका लेखा पुनर्जन्म में हमें अवश्य मिलेगा।

वे कहते हैं कि अगर हम अपना वास्तविक धर्म समझेंगे तो राजा के और बड़े लोगों के पुत्रों को विद्यालय आने की जरूरत पड़ेगी। इसी तरह तमाम किलों पर विजय पाई जा सकेगी, तब भला दुनिया कहाँ बचेगी? मनुष्यता आएगी तो सभी कुछ आएगा। मुख्य बात है उत्साह, उद्योग, त्याग-भावना और अपने व्यवसाय का गौरव। कुम्हार को भी अपने व्यवसाय पर गहरा गर्व होता है, यह देखकर जब मैं कहीं व्यवसाय की गौरव-गरिमा से रहित किसी शिक्षक को देखता हूँ तो मुझे बड़ी कुढ़न पैदा होती है। वांछित अभिमान से स्वयं को पहचानकर ही हम अपने व्यवसाय को उन्नत कर सकते हैं।

शिक्षकों को प्रेरित करते हुए वे कहते हैं कि यदि हम भी अपने व्यावसायिक मान को रखते हुए स्वयं को पहचान सकें तो हमारा व्यवसाय अवश्य सुन्दर बन सकेगा।[1]

आत्मिक बलः- नम्रता सद्गुण है परन्तु दीनता या दयनीयता व्यक्ति के दुर्बल आत्मबल का सूचक हैं। इसी भाँति अहंकार व मिथ्याभिमान दुर्गुण है परन्तु आत्म-प्रतिष्ठा व सात्विक अभिमान उत्तम गुण हैं। शिक्षकों से गिजू भाई प्रश्न करते हैं-

"किसलिए हमें नम्रता से चलना चाहिए? प्राणिमात्र को अधिकार है कि सच्चा स्वाभिमान रखे। तब भला पुलिस के सिपाही से क्यों डरें? ऊपर वाले अधिकारी की खुशामद क्यों करें? ऐसा सात्विक अभिमान तो हममें होना ही चाहिए। अपनी योग्य प्रतिष्ठा को हम बनाये रखें और दासता

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 38

को दूर करें, इसी में दुनिया की समृद्धि निहित है। आत्मिक बल के समक्ष दुनिया की कोई ताकत नहीं है। महात्माजी त्याग और आत्मबल के सहारे ही महापुरुष बने हैं।" गिजू भाई के ये शब्द शिक्षक की अपनी गरिमा में वृद्धि करने हेतु प्रेरित करते हैं।

"भले ही हमारे पैरों में जूते न हों, सिर पर साफा न हो, और भले ही खाने को न मिलता हो, इसके बावजूद भी अगर हम अपने आत्मिक बल पर व्यवसाय प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते हैं तो कोई भी हमसे बढ़कर नहीं है। हम किसी को कोहनी न मारें, या कोई असभ्यतापूर्ण व्यवहार न करें, बस अपने तेज को और ज्ञान को दूसरों में भर दें तो हम योग्य शिक्षक कहलाने लगेंगे।"[1]

व्यवसाय नहीं उपासना:- भौतिक सम्पन्नता की प्राप्ति तथा टीम-टाम व बाह्याडबरों के प्रति आकर्षण रखने वाले शिक्षकों की मानसिकता में परिवर्तन लाने के लिए गिजू भाई के निम्न शब्द पर्याप्त हैं। वे कहते हैं- कंधे पर शानदार दुपट्टा डालकर किसी शोभा यात्रा में हम न जा सकें, इसकी कोई परवाह नहीं। ऐसे मिथ्या मोह में न पड़ते हुए अगर हम अपने मन को स्वस्थ रखकर व्यवसाय को अंगीकार करें, उसके पीछे पागल होकर पड़ जाएँ तो पैसे हमारे पैरों तले कुचले जायेंगे, रिद्धि-सिद्धि हमारे यहां पानी भरेगी और जो भी चाहेंगे, वही मिलेगा-ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

वे कहते हैं कि हम स्वयं को हल्का न मानें और अपने व्यवसाय को उपासना के स्तर पर लें। शरीर तथा मन की तमाम ताकतों को रोककर हमें यही विचार करना है कि अपने काम को अच्छे से अच्छा कैसे करें?

कर्तव्य पालन:- आत्म नियंत्रित व आत्म-प्रेरित व्यक्ति को किसी भी प्रकार के बाहरी निर्देशन, नियंत्रण व प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होती है। सराहना व प्रशंसा के दो शब्द सुनने के लिए, पुरुस्कार प्राप्त करने के लिए वह दूसरों का मुख नहीं ताकता। अपने कर्तव्य व कर्म के प्रति सतत् सजग व समर्पित शिक्षक ही वास्तविक शिक्षक है। गिजू कहते हैं कि भले ही कोई देखे या न देखे तब भी हम अपने धर्म का पालन करते हैं। सूर्य और चन्द्र सामने साक्षी न हों तब भी पापकर्म नहीं करते, वैसे ही हमें अपने शिक्षक-धर्म को लेना है। भले ही हमारे पास पैसे हों या न हों, हमारा मान हो या न हो, अनुकूलता हो या न हो, तब भी हमें इस धर्म का पालन करना है। जिस तरह से सच्चे नेमधारी ब्राह्मण को कोई देखता हो या न देखता हो लेकिन वह जूते पहनकर या स्नान किये बिना खाना नहीं खाता, इसी तरह हमें भी अपना परम धर्म निभाना चाहिए। दुनिया देखे या न देखे, लाभ हो या न हो, पर सच्चे ब्राह्मण की तरह हम अपने धर्म का पालन करें।[2]

ऐसी दीक्षा वाला शिक्षक गिजू भाई की संकल्पना का एक नया इंसान है। उसकी एक ही जाति है - शिक्षक जाति। उसका एक ही देश है और वह है सम्पूर्ण विश्व। उसका एक ही लक्ष्य

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 38

2- वही, पृ0 36-37

है और वह है लोगों का उद्धार करना। डॉ0 मॉण्टेसरी कहती हैं कि ऐसे लोगों और संस्कृति के उद्धार के महान् कार्य हेतु जिन लोगों ने यथामति, यथाशक्ति, यत्किंचित काम किया है और कर रहे हैं वे ही सम्पूर्ण शिक्षित जाति के और समस्त जनता के सम्मान-पात्र हैं। प्रत्येक महान् कार्य की सफलता बार-बार की असफलता से उद्भूत होती है। भले ही वे निष्फल हुए हों, पर यह सूत्र शिक्षक कभी विस्तृत नहीं कर सकता। शिक्षक का सच्चा शिक्षकत्व उसकी प्रखर आशावादिता में समाया रहता है।[1]

सतत् विकासोन्मुखता:- शिक्षक को अपने कार्य-क्षेत्र की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। निरन्तर अभ्यास व सतत् प्रयास से वह अपने ज्ञान व कौशलों को उच्चतम स्तर तक ले जा सकता है। अभाव व्यक्ति को संघर्ष व श्रम के लिए प्रेरित करता है। बाईबिल में कहा गया है कि जो सबसे पीछे है वही अर्थात् निर्धन ही परमात्मा के राज्य का उत्तराधिकारी है। गिजू भाई की कड़वी प्रतीत होने वाली बातों में उनके हृदय की व्यथा की झलक है- "कई बार हम कोई दिशा निर्धारित किये बिना भटकने लगते हैं, अंधेरे में पड़े-पड़े अनेक भूलें करते हैं और अपने व्यवसाय से सम्बन्धित पर्याप्त जानकारी के अभाव में घोटाले करते हैं। मैं आप सबसे सिफारिश करता हूँ कि शिक्षण का सतत् अभ्यास करें। कम वेतन, बच्चों का भरण पोषण और परम्परागत गरीबी तो हमारे भाग्य से चिपकी हुई ही है, परन्तु दु:ख के पीछे ही सच्चा सुख छुपा हुआ है। ऐसी स्थिति का लाभ लेना ही चाहिए। गरीबी से कतई न डरें। मैं तो कहता हूँ कि ईश्वर की कृपा है कि हम सामान्य स्थिति में हैं। साधारण लोग ही उच्च स्थान पर जा सकते हैं। हल्का वर्ग ईश्वर के पास जाने में पहले तैयार होगा। अंत्यज सुधर जाएं तो ब्राह्मण कौड़ी के बराबर हो जाए। हम तो आचार, विचार, मन, वाणी तथा कर्म से अंत्यज बनते जा रहे हैं।"[2]

शिक्षक : एक नूतन जाति:-

परम्परागत जाति व्यवस्था से हटकर गिजू भाई शिक्षकों की एक नवीन व विशिष्ट जाति के रूप में पहचान करते हैं। वे कहते हैं कि इस युग में हम शिक्षकों की एक नयी जाति बन रही है। यह जाति भावी युग की है पर इसका बीजांकुरण हो चुका है। शिक्षक चाहे ब्राहमण हों, क्षत्रिय हों, वैश्य हों या शूद्र हों, या अस्पृश्य जाति के हों, फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वे शिक्षक जाति के हैं। हमारा भोजन-व्यवहार भले ही संकुचित या मर्यादित जन-समुदाय से चलता रहा हो, फिर भी हमें यह बात अवश्य याद रखनी चाहिए कि एकमात्र शिक्षक जाति ही हमें संगठित रखने वाली जाति है। भले ही हमारे पुत्र-पुत्रियों की शादी-विवाह का काम किसी खास जन-समुदाय में ही होता आ रहा हो, पर हमें यह बात अपने ध्यान से कभी वंचित नहीं करनी चाहिए कि हमारा

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 80
2- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 37

यह आचार-व्यवहार हमारी शिक्षक जाति के लिए अवरोधक नहीं होना चाहिए। हमारी जाति सब जातियों से अलग है और स्वतंत्र है। इतनी सारी जातियों के होते हुए भी हमारी इस नयी जाति की अभिवृद्धि समाज के लिए अधिक भयानक नहीं होनी चाहिए। हमारा अस्तित्व ही समाज के कल्याण के लिए है।

वे कहते हैं कि हर जाति का अपना जाति-धर्म होता है, वैसे ही हमारी जाति का भी जाति-धर्म होना चाहिए। ब्राह्मण आदि सभी जातियों के भिन्न-भिन्न आचार सुविदित हैं, वैसे ही हमारे भी हैं। हमारी जाति की आज धुंधली-सी शुरूआत हुई है। आज यह बाल्यावस्था में है। इसका बीजांकुरण मात्र हुआ है, पर अल्पकाल ही में यह इतनी विशाल बन जायेगी कि जिसकी आज कोई कल्पना तक नहीं कर सकेगा। अन्य जातियों के बंधनों को हमारी यह नयी जाति तोड़ेगी नहीं, पर अपने वर्तुल को यह इतना व्यापक बनाएगी कि जिसमें अन्य जातियाँ भी सहजतया समा जाएंगी। यह हमारी जाति की और इसके आने वाले कल की कल्पना है।

सेवा-वृत्तिः-गिजू भाई शिक्षक जाति के सदस्यों का पहला कर्त्तव्य सेवा-भावना मानते हैं। सेवा-भाव वाला शिक्षक प्रत्यक्ष रूप से आज उन लोगों की सेवा करे, जिनका अद्य:पतन हो चुका हो। फिर शिक्षा-क्षेत्र में जिन बालकों की सेवा भावना उत्कट हो, उनमें सेवा-वृत्ति का पोषण करें, अभिवृद्धि करें। उनके लिए वर्तमान शिक्षण को अल्प उपयोगी मानें। आज के अध्यापकों में इस वृत्ति का अभाव है, इसीलिए तो समाज में सच्चे सेवकों की संख्या बहुत कम हो गई है। पाठशालाओं में भी आज के शिक्षकों के द्वारा सेवा-भावना का पोषण नहीं हो रहा है। वे शिक्षा देने के बहाने सेवा-वृत्ति को जागृत-स्फुरित होने से रोकते हैं, उलझाते हैं और दवा देते हैं। वे सेवा-वृत्ति को गति नहीं दे सकते। शिक्षकों की ऐसी वृत्ति उनके शिक्षण-कर्म में बाधा रूपी है। चलती हुई कक्षा में अगर कोई बालक गिर पड़े और दूसरा बालक उसे प्रेम से उठाने दौड़े तो कक्षा का अनुशासन भंग होने की आशंका से शिक्षक उसको रोक देता है। बस, वहीं बालक की सेवाभावी वृत्ति का निर्झर रूक जाता है, बल्कि कहना चाहिए कि सूख जाता है। हमारी सेवाभावी वृत्ति से जब बालक सेवाभावी बनें, तभी उसे सच्ची सेवाभावी वृत्ति कहा जा सकता है और यह तभी सम्भव है, जब हम स्वयं सेवाभावी बनें। हमें हमारे जीवन की, हमारी पाठशाला की, हमारे अध्ययन की ऐसी प्रणाली बनानी चाहिए ताकि उससे सेवा की भावना रात-दिन विकसित हो। इसके परिणामस्वरूप हमारे लिए गरीब और धनवान, निर्बल और सबल, मूर्ख और बुद्धिमान, स्पृश्य और अस्पृश्य-सभी तरह के बालक एक समान रहेंगे। ऐसी वृत्ति पैदा होते ही निजी ट्यूशनें खत्म हो जायेंगी। पैसे वालों की निजी पाठशालाओं के बजाय अंधे, लूले, लंगड़े, मंद-बुद्धि बालकों की पाठशालाएँ खुल जाएंगी। फिर

पाठशाला में ऊँच-नीच, अस्पृश्य जैसा अंतर नहीं रहेगा। गिजू भाई सचेत करते है कि शिक्षण में सेवावृत्ति का अर्थ खुशामद करना नहीं है। बालकों को समझाकर, फुसला-बहलाकर पढ़ाने की योजना सेवा-वृत्ति का परिणाम नहीं है बल्कि, इसे तो गुलाम-वृत्ति का नतीजा कहना चाहिए। शिक्षक को तो सेवक बनना है, गुलाम नहीं। पहले का शिक्षक गुलामों के सरदार जैसा था। विद्यार्थियों के साथ उसका सम्बन्ध सेठ और नौकर जैसा रहता था। इसके बजाय शिक्षक को एकाएक गुलाम बनकर विद्यार्थियों को सेठ नहीं बना देना है, अपितु उसे विद्यार्थी के साथ मित्र-भाव से दृष्टा बनकर रहना है। इस तरह शिष्य को गति देने में ही उसकी वास्तविक सेवा विद्यमान है।

क्षात्र-धर्मः- गिजू भाई के मतानुसार शिक्षा का दूसरा महत्त्वपूर्ण धर्म क्षात्र-धर्म है। क्षत्रियों का कर्त्तव्य है- स्वयं निडर रहकर निडरता का साम्राज्य स्थापित करना। शिक्षा का कार्य सदैव समाज की रक्षा करना रहा है। इस धर्म के पालन में वही आगे आए, जो साहसी हो। दूसरे सब इसे प्रसन्नता से छोड़ दें। कायरों को इसमें रहने की जरूरत नहीं है। यह जाति चारों जातियों की सिरमौर है। अध्ययन-अध्यापन के काम में ही इस जाति के धर्म की परिसमाप्ति नहीं हो जाती। शिक्षण की महान् संस्थाएं बनाना और उनका प्रबंध करना इसका वैश्य-धर्म है। समाज और राज के आक्रमण से मुक्त रहकर शिक्षण का कार्य स्वतंत्रतापूर्वक चलाने में इस जाति की क्षात्र-वृत्ति समाई हुई है। कोढ़ियों, अंधों और लूले-लंगड़ों से लेकर ठेठ उच्च कोटि के बालकों की उन्नति के लिए ही अपना जीवन व्यतीत करने में ही इस जाति वालों की सेवा-बुद्धि निहित है तथा अध्ययन और अध्यापन कार्य करने में ही इसकी ब्राह्मण-वृत्ति है।

शिक्षक लोग एक ही साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं और इसलिए इन चारों वर्णों के परम धर्म हमारे अपने भी धर्म हैं। ब्राह्मणों का पढ़ने-पढ़ाने का धर्म, वैश्य का रिद्धि-सिद्धि बढ़ाने का धर्म क्षत्रिय का संरक्षण धर्म और शूद्र का सेवा धर्म; ये हमारे धर्म हैं।

इन धर्मों में से दो धर्मों को प्रमुख धर्म कहा जा सकता है। वे सेवा-बुद्धि को और क्षात्र-वृत्ति को शिक्षक के परम-धर्म मानते हैं। उसे ब्राह्मण से लेकर अस्पृश्य तक सभी जातियों के बालकों की सेवा के लिए जीना है, यही शिक्षक का परम एवं महान् धर्म है।

स्वयं सामाजिक और राजकीय गुलामी से मुक्त रहकर दूसरों को मुक्ति दिलाना, शिक्षक का दूसरा, पर उतना ही महान् धर्म है। अध्ययन-अध्यापन को वे तीसरा स्थान देते हैं और चौथा स्थान रिद्धि-सिद्धि बढ़ाने को देते हैं - यानी संस्थाएँ स्थापित करना और साधन-सुविधाएं जुटाना।

गिजू भाई शिक्षकों से कहते हैं कि हम साधन-सुविधा के बिना पढ़ा सकते हैं, विशाल भवनों

के बजाय झोंपड़ियों में और खुले मैदानों में बैठ सकते हैं। यही नहीं हम भ्रमण करते हुए पढ़ाने का काम कर सकते हैं। अब तक जिस तरह का ज्ञान दिया गया है, उस ज्ञान का परिणाम हम देख चुके हैं। अगर वैसा ज्ञान हम न भी दें, या अल्पमात्रा में दें, तो चलेगा। लेकिन साधन-सम्पन्न बनने के लिए अथवा ज्ञान-प्रदान करने की अनुकूलता के लिए गुलामी नहीं स्वीकारेंगे। न ही सेवा-वृत्ति से विलग होकर हम अध्ययन-अध्यापन में अपनी सफलता मानेंगे। इसी कारण सेवा-वृत्ति और क्षात्र-वृत्ति को शिक्षक के कर्त्तव्य में प्रथम स्थान पर रखा गया है। आज तो जो मनुष्य समाज की सेवा कर सकता है और समाज या राज के अत्याचार से स्वयं आजाद रहकर दूसरों को आजाद रहने के लिए प्रवृत्त कर सकता है वही शिक्षक कहा जा सकेगा।

गिजू भाई कहते हैं कि शिक्षकों को राज के दबाव से मुक्त रहना चाहिए। शिक्षाकर्मी और शिक्षण संस्थाएँ निरंतर स्वतंत्र होनी चाहिएं। ऐसी स्वतंत्रता स्थापित करने का काम क्षत्रिय-शिक्षकों का है। शिक्षक प्रत्यक्ष रूप से समाज-सुधार में या राजकीय गतिविधियों में न पड़े, अपितु वह सामाजिक तथा राजकीय अनिष्टकारी आदर्शों से दूर रहे और ऐसा करने में अगर उसे समाज के या राज के विरुद्ध भी खड़ा होना पड़े तो वह वैसा करे भी।

जो शिक्षक यह मानता हो कि समाज के या राज के अनुकूल रहकर ही शिक्षण कार्य किया जाना चाहिए। गिजू भाई के अनुसार वह सच्चा शिक्षक नहीं है। वे कहते हैं कि कई बार तो उसे शिक्षण-कार्य में बाधक बनने वाले समाज या राज के सामने अगर लड़ना पड़े और उसे उलट डालना पड़े, तब भी शिक्षण-कार्य से अलग हटकर उसे ऐसा करना चाहिए। शिक्षण का आधार समाज या राज पर टिका हुआ नहीं है, अपितु पूरा समाज और पूरी राज-व्यवस्था ही अच्छे शिक्षण के कारण टिकी रह सकी है। अत: जब-जब भी समाज अथवा राज टेढ़े या गलत मार्ग पर जाए, उसकी प्रवृत्ति शिक्षण के मार्ग में बाधक बन जाए, तब-तब समाज और राज दोनों को बदल डालने के लिए ही निकलने में शिक्षक का क्षात्र-धर्म समाहित है।

शिक्षा व राज्य के सम्बन्धों पर गिजू भाई का उक्त कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्षत्रिय-शिक्षक निर्बल का संरक्षण देने के लिए है। बालक शरीर से बहुत निर्बल प्राणी है, उनके अधिकारों का संरक्षण करना ही शिक्षक का धर्म है। बालक को सम्मान देने में उसके क्षात्र-धर्म की परीक्षा है। क्षत्रिय-शिक्षक न तो बालकों का दास या गुलाम बन जाता, न ही वह उन पर जुल्म ढाने वाला अत्याचारी बन जाता, वह तो बालकों के व्यक्तित्व को सम्मान देते हुए उनके विकास को गति देता है। जिस तरह से एक क्षत्रिय योद्धा अपने बलवान शत्रु की भी प्रशंसा करता है उसी प्रकार एक क्षत्रिय-शिक्षक तेजस्वी बालक से भी यदि कुछ सीखने जैसा होता हो तो प्रेमपूर्वक सीख लेता है।

वह तेज का, वीर्य का, चेतन का सदैव अभिनंदन करता है, उनकी मित्रता की तलाश में रहता है और उससे बलवान बनता है। आने वाले युग के शिक्षक अपने वीर्यवान शिष्य को अपने समान ही मानेंगे। समाज के या राज के चाहे जितने भय अथवा दबाव हम पर क्यों न आ पड़ें, हम पूरी तरह से कर्त्तव्यपरायण रहें। तत्कालीन परिस्थितियों पर टिप्पणी करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि आज अंत्यजों को पाठशाला में दाखिल करने से समाज चिढ़ता है और शुद्ध राष्ट्रीय शिक्षा की हिमायत करने पर सरकार चिढ़ती है और कल ऐसा करना समाज और सरकार दोनों को पसंद न हो तो दोनों चिढ़ सकते हैं। लेकिन इससे हम निडर रहें और अपने आदर्शों से ही जुड़े रहें। इसी में हमारी परीक्षा है।

ब्राह्मण धर्म :- शिक्षक का तीसरा धर्म गिजू भाई की दृष्टि में ब्राह्मण धर्म है। अकेली ज्ञान-सम्पन्नता तथा शिक्षण-कला से ही कोई सम्पूर्ण शिक्षक नहीं बन सकता। ज्ञान-समृद्धि तथा कला सचमुच ही शिक्षक की सफलता के अमूल्य साधन हैं, पर शिक्षण को सार्थक बनाने के लिए तो इसके पीछे विद्यमान क्षात्र-वृत्ति और सेवावृत्ति ही है। अन्य वृत्तियों की तरह यह वृत्ति प्रत्यनपूर्वक अधिक परिणाम में विकसित की जा सकती है। ज्ञान अध्यापक का परम धन है। इस धन के बिना शिक्षक विद्यार्थी को निराश ही करेगा। इस धन से रहित शिक्षक, शिक्षक नहीं अपितु भिक्षुक है। यह एक ऐसी स्थिति है कि जैसे धनहीन व्यक्ति दाता बन बैठे।

रात-दिन जो ज्ञानधन प्राप्त करने के उद्योग में ही लगा है यही शिक्षक की सच्ची कर्त्तव्यपरायणता है। जिसे निष्ठा और श्रद्धा कहा जाता है, वह श्रद्धा शिक्षक में है या नहीं इसका प्रमाण शिक्षक की ज्ञान पिपासावृद्धि से और इसके निमित्त किये गये श्रम से मिल सकता है। अगर बात को एक ही वाक्य में समेटा जाए तो ब्राह्मण-शिक्षक होने का अर्थ है ज्ञान का भंडार।

गिजू भाई व्यंगपूर्ण भाषा में कहते हैं कि आज हम लोग हल्दी की गांठ लेकर बैठे हैं और इसी के बल पर पंसारी बने हुए हैं। पीसते हैं और रोटी पकाते हैं, सवेरे हम पाठयपुस्तक का नाम सुनते हैं, दोपहर को उसे पढ़ते हैं और शाम को उसे पढ़ाने निकल पड़ते हैं। अगर इस तरह की परिस्थिति पैदा करने से हम स्वयं को बचायेंगे नहीं तो हम भावी विद्यार्थियों पर बहुत बड़ा अत्याचार कर बैठेंगे। धर्म हमें याद दिलाता है कि हमें ज्ञान-सम्पन्न बनना है। समाज यह समझकर हमें अपने बच्चे सौंपता होगा कि हम योग्य हैं, पर हम क्या हैं, यह हम स्वयं जानते हैं और कुछ नहीं तो हम केवल ज्ञान-प्राप्ति के लिए सतत् प्रयास ही करें। अनावश्यक व्यवहार में, किसी गैर जरूरी काम में हम अपना समय बर्बाद न करें। हम तो अपने मन में सिर्फ ज्ञान, ज्ञान और ज्ञान का ही चिंतन करते रहें। जब हमारे पास वास्तविक ज्ञान होगा तभी यानी जब हमारा अध्ययन पूरा हो जाएगा तभी

हम दूसरों को अध्ययन करा सकेंगे और तभी हम सच्चे ब्राह्मण शिक्षक बन सकेंगे।

वैश्य-वृत्ति:- गिजू भाई वैश्य वृत्ति की शिक्षक के संदर्भ में बड़ी सटीक पहचान बताते हुए कहते हैं कि- इस युग में अन्य वृत्तियों के साथ-साथ अगर शिक्षक में वैश्य-वृत्ति नहीं है तो उसके शिक्षण-कार्य को धक्का लगेगा। यह वैश्य-वृत्ति शिक्षक को अपने स्वार्थ के लिए विकसित नहीं करनी है अपितु अपने शिक्षण-कार्य के फायदे के लिए विकसित करनी है। इसका अर्थ यह है कि इस युग में पाठशाला की रिद्धि-सिद्धि के लिए शिक्षकों को ही प्रयत्न करना है। पहले के जमाने में शिक्षक के माथे पर उसकी आजीविका या शिक्षण-साहित्य के व्यय की चिंता न थी, राज्य ही शिक्षक का पोषण करता था और शिक्षक को शिक्षण-कार्य के खर्च की चिंता नहीं करनी पड़ती थी। वह सुंदर प्रणाली आज समाप्त हो चुकी है और इसीलिए आज शिक्षक के माथे दोहरा काम आ पड़ा है। शिक्षक स्वतंत्र रहेगा, निश्चिंत रहेगा तो शिक्षण-कार्य वास्तविकता के साथ चलेगा और इसी में समाज का कल्याण निहित है। वर्तमान समाज को यह बात अपने ध्यान में रखनी पड़ेगी। समाज को यह बात भी समझनी होगी कि शिक्षक को तथा शिक्षण संस्थाओं को स्वतंत्र तथा आर्थिक दृष्टि से निश्चिंत रखने में ही उसका श्रेय है। लेकिन जब तक ऐसी सामाजिक व्यवस्था नहीं बन पाती, तब तक तो शिक्षक को विद्यार्थियों के लिए साधन-सम्पत्ति प्राप्त करने हेतु वैश्य-वृत्ति धारण करनी ही पड़ेगी। शिक्षक का यह कर्त्तव्य अल्पकाल के लिए ही है, पर वह अभी की हालत में बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसी कारण से तो शिक्षण-कार्य को गति प्रदान करने के लिए द्रव्य प्राप्त करने की नीति-युक्त प्रवृत्ति निंद्य नहीं है और इसके लिए शिक्षक को लज्जित होने की कोई बात ही नहीं है। भले ही यह काम शिक्षक के स्वाभाविक सम्मान के अनुकूल न हो तथापि उसे एक सामाजिक धर्म समझकर सम्पादित करना होगा। शिक्षण-कार्य में शिक्षक की सच्ची प्रीति और उसके कारण से शिक्षक की उक्त प्रकार की वैश्य-वृत्ति शिक्षक की खरी तपश्चर्या है। इस तपश्चर्या से ही शिक्षा की संस्थाएं सुदृढ़ होंगी, इन्हीं से समाज का कल्याण सिद्ध होगा।

गिजू भाई द्वारा शिक्षकों के समक्ष उपर्युक्त चार प्रकार के कर्त्तव्य प्रस्तुत किये हैं। उनका विश्वास था कि शिक्षक इन्हें समझकर यदि इनका उपयोग करेंगे तो सभी का कल्याण होगा।[1]

शिक्षक का स्वास्थ्य:-

शिक्षक का मानसिक व शारीरिक रूप से पूर्ण स्वस्थ होना परमावश्यक है। शिक्षक पाठशाला का आधार-स्तम्भ है। उसी पर पाठशाला की सुदृढ़ता व स्थिरता निर्भर करती है। आधार-स्तम्भ जितना सुदृढ़ व स्वस्थ होगा, उतनी ही पाठशाला की दशा स्वस्थ होगी। एक स्वस्थ, सुदृढ़ मन:स्थिति वाला शिक्षक अपने-आप में चेतना-युक्त बातावरण होता है। वृद्ध और बीमार

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 15-20

मानसिकता वाला शिक्षक निरुत्साह, थकान और बीमारी का वातावरण सृजित करता है।

गिजू भाई कहते है कि शरीर तथा मन की स्वस्थता एक तरह की साधना मांगती है। यह सच है कि हमारे प्राण अन्नमय हैं, अत: जिस अध्यापक को भरपेट अन्न नहीं मिलेगा वह अपने शरीर एवं मन के स्वास्थ्य को कैसे संभाल सकेगा? यह उसका दोष नहीं है। लेकिन दो वक्त की भरपेट रोटी खाकर अगर कोई शिक्षक अपने शरीर एवं मन को स्वस्थ नहीं रख सकता, उसकी सुदृढ़ता को नहीं सहेज सकता तो इसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है।[1]

वे सुझाव देते हैं कि शिक्षकों को तम्बाकू खाना, बीड़ियाँ पीना, बार-बार चाय पीना आदि बुरे व्यसन छोड़कर शरीर एवं धन दोनों को बचाना चाहिए। शारीरिक स्वच्छता का अर्थ है - बालों, त्वचा, नाखून आदि को धोकर साफ रखना कपड़े भी धोकर साफ रखना, उज्जवल रखना। इनमें पैसों की बजाय परिश्रम की ज्यादा जरूरत रहती है। आलसी रहने वाला अध्यापक, चौपाल या मंडली में समय बिताने वाला अध्यापक, बेकार के अखबार या पत्रिकाएँ बांचने वाला अध्यापक, साथियों के साथ बैठकर अध्यापकों की और विभाग की निन्दा करने वाला अध्यापक अपना वक्त गँवा कर गंदी और अस्वस्थ आदतें निर्मित करता है और ऐसा करके वह गिजू भाई की दृष्टि में महा पाप करता है।

वे कहते हैं कि शिक्षक, और विशेष रूप से गांवों का शिक्षक स्वच्छ हवा के लिए बाहर जा सकता है। पाठशाला में या घर के पास किसी बाग में व्यायाम कर सकता है। शहर का शिक्षक प्रात:काल उठकर पाँच दसेक दंड बैठक लगा सकता है या सूर्य नमस्कार कर सकता है। अपने शारीरिक स्वास्थ्य की जिसे चिन्ता है, वह इतना अवश्य करता है। लेकिन जिसे जान-बूझकर बीमार रहना है, परिवार को पीड़ित करना है और विद्यार्थियों का अहित करना है उसकी गति भिन्न है।

संतोष परम सुखम्:-

शिक्षकों को यह सूत्र याद रखना चाहिए। गिजू भाई का मानना है कि दु:खद गरीबी मनुष्य का या शिक्षक का आदर्श न हो, परन्तु संतोषी वृत्ति सुखी जीवन का परम रहस्य होना चाहिए। वे कहते हैं कि हम दु:खी होंगे, इसके बजाय हम दुखी हैं, ऐसी कल्पना हमारे लिए अधिक पीड़ादायक है। अत: परिश्रम के साथ जो रोटी मिल रही है, उसे खाकर शिक्षक को सदैव तंदुरुस्त रहने का आग्रह रखना चाहिए। शिक्षकों को सचेत करते हुए वे कहते हैं कि विभाग के बड़े लोग निम्न श्रेणी के अध्यापकों में तथा शहरी शिक्षक ग्रामीण अध्यापकों में गैर-जरूरी व्यय करने का तथा शौकीनी का मोह जगाते हैं और इस तरह उन्हें अस्वस्थता के विघातक मार्ग की ओर धकेलते हैं। वस्तुत: विवेक सम्पन्न अध्यापक को अपनी तंदुरुस्ती खोने का एक भी मोह या शौक नहीं करना चाहिए।

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 89

शौक करके बिल्कुल पहले ही पूरा होने वाला अध्यापक आत्मद्रोही है, विश्वद्रोही है। जबकि संयमित जीवन बिताकर लम्बी उम्र जीने और शिक्षण-कर्म करने वाला शिक्षक दुनिया का सच्चा सेवक है।

शिक्षक के सम्बन्ध में समाज को उसके कर्तव्य का बोध कराते हुए गिजू भाई कहते हैं कि शिक्षक को शारीरिक स्वास्थ्य के उपकरण तथा शरीर के अनुकूल आराम के उपकरण दुनिया को प्रदान करने ही होंगे। दुनिया की सम्पूर्ण सम्पत्ति का भोक्ता शिक्षक होगा ही। इसके लिए अगर शिक्षक नहीं लड़ेगा तो दूसरे लड़ेंगे ही। इतना भरोसा रखकर अभी तो शिक्षक को अपनी तंदुरुस्ती का ध्यान रखते हुए पाठशाला में काम करना चाहिए।[1]

शिक्षक ही नहीं प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि उसके ज्ञान-तंतु प्रबल हों, स्वस्थ हों। आज के संसार में ज्ञान-तंतुओं की निर्बलता प्रत्येक मनुष्य को निर्बल बना रही है, निरुत्साह एवं निराश बना रही है। ज्ञान-तंतुओं की इस कमजोरी को दूर करने के लिए जिन वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए, गिजू भाई की दृष्टि में वे ये हैं - उनके अनुसार सबसे पहले तो शिक्षक को निन्दा रूपी रोग से मुक्त हो जाना चाहिए। दूसरों की ईर्ष्या और निन्दा आज मनुष्य जाति का भक्षण कर रही है। शिक्षक अपनी योग्यता को निन्दा द्वारा नहीं अपितु काम करके प्रमाणित करे, दूसरों की स्पर्धा से नहीं अपितु अपनी योग्यता में वृद्धि करके वह आगे बढ़े। निन्दा एक लत है और उसमें आनंद आता है, लेकिन वह विनाशक है।

निन्दा से व्यक्ति के ज्ञान-तंतु उत्तेजित होते हैं, साथ ही वे क्षीण और शोकग्रस्त बनते हैं और उनकी प्रतिध्वनि मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ती है।

ज्ञान-तंतुओं को कमजोर बनाने में क्रोध एक भयंकर ताकत है। अपनी कक्षा में बार-बार क्रोध करने वाला शिक्षक अपने ज्ञान-तन्तुओं को लगभग नष्ट कर डालता है। उसका पूरा शरीर गर्म हो जाता है और जब गुस्सा कम होता है तो शरीर शिथिल और कमजोर पड़ जाता है। शराब से भी क्रोध का प्रभाव अधिक भयंकर है। विद्यार्थी को कोई बात क्यों समझ में नहीं आई, इसका कारण जानने वाला अध्यापक और अपराध करने वाला विद्यार्थी दया और शिक्षण के योग्य हैं, क्रोध और सजा के पात्र नहीं - इस प्रकार विवेकपूर्वक विचार करने वाला अध्यापक मानसिक स्वास्थ्य संजोता है और अपने आयुष्य को दीर्घजीवी बनाता है। क्रोध के वशीभूत होने वाला शिक्षक अपने नियंत्रण में नहीं रहता, उसकी स्थिति बिना लगाम वाले घोड़े जैसी हो जाती है। बिना लगाम का घोड़ा जिस तरह से गाड़ी को चकनाचूर कर देता है, उसी तरह वह स्वयं अपनी शक्ति को चकनाचूर कर देता है।[2]

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 89

2- वही, पृ0 90

गिजू भाई शिक्षकों से अनुरोध करते हैं कि वे चेहरे पर हमेशा प्रसन्नता रखें। यह प्रसन्नता आंतरिक प्रसन्नता की प्रतिच्छाया स्वरूप होनी चाहिए, बनावटी हर्गिज नहीं। शान्ति और गम्भीरता के भाव प्रसन्नता के विरोधी नहीं होते। ये दोनों भाव शिक्षक के चेहरे पर स्पष्ट रूप से दिखने चाहिएं।[1]

समाज की दोषपूर्ण मानसिकता के कारण ही शिक्षक के स्वास्थ्य को लेकर किसी भी स्तर पर चिन्ता व्यक्त होती नहीं दिखायी देती है। लगता है समाज या राज्य के लिए यह कोई विचारणीय विषय है ही नहीं। परन्तु शिक्षक को स्वयं तो इस विषय में जागरूक होना ही चाहिए। समाज उसका सच्चा मूल्य समझे न समझे, उसे तो अपनी कीमत आंकनी ही चाहिए। गिजू भाई कहते हैं कि अध्यापन का काम शिक्षक की व्यवस्था-विहीन पद्धति से बिगड़ता है और शिक्षक के मर जाने पर नुकसान होता है, क्या यह सोच आज के अर्थशास्त्र में है? अगर काम बिगड़ता है तो दिवाला किसे निकालना है? और अगर काम सुधारने के लिए शिक्षक मरता है तो किसे रोना है?

वे कहते हैं कि अगर अपने जीवन और अपने वांछित योगदान के अर्थशास्त्र पर विचार करने के लिए शिक्षक फुर्सत नहीं निकालेंगे या ना समझी बरतेंगे तो और कौन सोचेगा? अगर हम यह मानते हैं कि बालक हमारी भावी पीढ़ी है और शिक्षा उसकी खरी सम्पत्ति है तो शिक्षकों की महत्ता सोचनी पड़ेगी और शिक्षक भी कितने सस्ते हैं। अफ्रीका में खेतों की बाड़ बनाने के लिए लकड़ी के डंडों की जगह हाथी दाँत को काम में लाया जाता था। कारण यह था कि जंगल में रहने वाले आदिवासियों को हाथी दाँत की कीमत ही पता नहीं थी।[2]

गिजू भाई ज्ञान तंतुओं में कमजोरी लाने वाली दूसरी वस्तु दुश्चिंता और भय को बताते हैं। काम की झूठी चिन्ता करने वाला, विभाग के सामने अच्छा दिखने की झूठी चिन्ता करने वाला, उच्च अधिकारियों से अकारण भय खाने वाला, परीक्षाओं की चिन्ता करने वाला, दस वर्ष के लड़के-लड़की की शादी करने के बारे में सोचने वाला, आगामी मानसून में वर्षा होगी तो मकान के गिरने की चिन्ता करने वाला शिक्षक चिन्ता के मारे व्यर्थ ही दुबला होता है। सतत् काम करने के बाद जो परिणाम आए उसके लिए ईश्वर-परायण होना और ईश्वर से शक्ति प्राप्त करके आगे बढ़ना चाहिए। जो अपनी तमाम चिन्ताएं भगवान पर छोड़कर अपना कर्त्तव्य करता है वही सच्चा शिक्षक है। पुराने जमाने के लोग उसे ऋषि कहते थे।

वे कहते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य के लिए शिक्षक को निर्भयता की उपासना करनी चाहिए। उच्च अधिकारी की खुशामद करना, उसके समक्ष थर-थर कांपना, ग्राम के अधिकारियों से डरना-यह सब भयभीत मन:स्थिति का सूचक है। यह स्थिति मन की शक्ति का नाश करने वाली है।

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 54
2- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 35

इसमें आत्मघात है। अतः शिक्षक को निर्भय रहना चाहिए। निर्भयता की कुंजी ईमानदारी के साथ कर्त्तव्य पूरा करने में निहित है।

उनका मानना है कि मन को भीतर से स्वच्छ रखना चाहिए। कई बार दूसरों के प्रति राग-द्वेष पैदा हो जाता है, उसे पहचान कर उसका त्याग कर देना चाहिए। विद्यार्थियों पर दबाव नहीं रखना चाहिए, किसी का पक्ष नहीं लेना चाहिए, न ही किसी का बुरा करने की बात सोचनी चाहिए। किसी का बुरा न कर सकें तब भी किसी का बुरा करने का स्वप्न नहीं लेना। ऐसा करने से मन निरोगी रहेगा।

गिजू भाई जिस प्रकार से कई निषेध बताते हैं उसी प्रकार से कई विधियाँ भी बताते हैं। उनके अनुसार तंदुरुस्ती की पहली विधि है लोगों के प्रति तथा विद्यार्थियों के प्रति प्रेम, दया एवं सहानुभूति। विद्यार्थियों के प्रति समान प्रेमभाव रखकर तथा उनकी कमियों के प्रति मन में दयाभाव रखकर शिक्षक को उन्हें समभाव से पढ़ाना चाहिए। उनकी अपूर्णताओं से दु:खी होने की जरूरत नहीं है। शिक्षकों के लिए अपूर्ण विद्यार्थी करुणा एवं प्रेम अर्जित करने की उपासना-भूमि है। जो शिक्षक प्रेम से पढ़ाता है वह सर्वोत्तम मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करता है और स्वयं अर्जित करता है। वे कहते हैं कि शिक्षाशास्त्र के अध्ययन के अलावा सद्‌गुण-प्रेरक वाचन हमारे मन के लिए आवश्यक हैं। शिक्षक को हमेशा सत्संग और सद्‌वाचन में लगे ही रहना चाहिए।

गिजू भाई के मतानुसार शिक्षक को प्रकृति-प्रेमी भी होना चाहिए। समभाव से निरंतर प्रेमपूर्वक हँसती रहने वाली प्रकृति के प्रांगण में विचरण करने में शरीर और मन की थकान उतरेगी, यही नहीं, अपितु इससे उसे नए प्राण मिलेंगे। बाग के और वन के पुष्प, रंग-बिरंगे पक्षी, सुबह-शाम के भव्य और रमणीय दृश्य और रात को तारों की शोभा हमारे तन-मन को अत्यन्त प्रीतिमय विश्राम और ताजगी प्रदान करते हैं।

गिजू भाई स्वास्थ्य को सम्पूर्ण विश्व का और मानव जीवन का आधार-स्तंभ मानते हैं। शिक्षक को यज्ञ की भाँति इसकी उासना करनी चाहिए - सिर्फ लोक-कल्याण के लिए। जो अध्यापक लोक-कल्याण के लिए अपने स्वास्थ्य की देखभाल करता है वही अपने स्वास्थ्य को सुरक्षित रखता है।

गिजू भाई कहते हैं कि अपने स्वास्थ्य की चिन्ता रखने वाले शिक्षक को संगीत-प्रेमी होना चाहिए तथा उसे कला-दर्शन की वांछा रखनी चाहिए। विश्व के फलक पर प्रतिपल बनते-बिगड़ते स्वाभाविक एवं कृत्रिम चित्रों को देखकर उसे कला का आनंद लेना चाहिए। इसके साथ ही जहाँ से भी उसे प्राकृतिक एवं मानवीय संगीत सुलभ हो सके, उसे प्राप्त करने में नहीं चूकना चाहिए।

निरन्तर प्रतिघोषित होने वाली यह प्रकृति दिन-रात संगीत सुना रही है। उसे सुनने के लिए शिक्षक अपने कान खुले रखे, साथ ही लोक-जीवन से प्रस्फुटित होने वाले लोक-संगीत को सुनने से न चूके।

वे सचेत करते हैं - "याद रखिए आप देश की मिल्कियत हैं। देश को आप लोगों के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की जितनी रक्षा करनी चाहिए उतनी ही आपको स्वयं अपनी भी करनी चाहिए। यह आपका आत्म-धर्म है। आर्थिक दशा चाहे अच्छी हो या न हो, परन्तु शरीर को निरोग रखने तथा मन को स्वच्छ रखने के अपने कर्त्तव्य से आप कभी न चूकें। अगर शरीर व्यसनों से मुक्त है तो वह सर्वप्रथम निरोग है। ओछी वृत्ति तथा गंदे विचारों से अगर मन मुक्त है तो वह स्वस्थ है। भूखा मरना पड़े तब भी आप अपने शरीर की यह वृत्ति, चाहे कैसी ही मानसिक आपत्ति क्यों न आ जाए तब भी अपने मन की यह स्थिति अवश्य बनाये रखें।"[1]

समाज में अध्यापकों की घटती प्रतिष्ठा के कुछ कारण बहुत सामान्य हैं। एक साधारण परन्तु महत्वपूर्ण कारक है; शिक्षकों की अपने वेशभूषा के प्रति लापरवाही व उदासीनता। अत: उनके व्यक्तित्व का प्रथम प्रभाव ही दूसरों पर गलत पड़ता है। गिजू भाई इस सम्बन्ध में कहते हैं कि शिक्षक को इस विषय में सचेत रहना चाहिए।

वेशभूषा के अतिरिक्त भी अध्यापकगण अलग-अलग ढंग से अपनी प्रतिष्ठा खोते हैं। गिजू भाई इंगित करते हैं कि लोभी अध्यापक ऐसा किफायदतदार जीवन जीते हैं कि वे गाँव के गरीब से गरीब लोगों तक के उपहास-पात्र बन जाते हैं। कई बार हमारी युक्ति ऐसी होती है कि वैसा करके मुफ्त काम करा लिया जाए - यह है हमारी आदत। इसी से आज हमारी प्रतिष्ठा नहीं है। हमारा बड़प्पन नहीं है। भला फिर हमें कौन इज्जत दे?[2]

शिक्षक अन्तर्मुखी हों:- गिजू भाई की मान्यता है कि एक तरह से शिक्षक अन्तर्मुखी वृत्ति के होते हैं और वकील, व्यापारी, राज कर्मचारी सब बहिर्मुखी वृत्ति वाले होते हैं। मुश्किल तब आती है जब अंतर्मुखी वकील बन जाते हैं और बहिर्मुखी शिक्षक। अन्तर्मुखी वकील मुवक्किल को छुड़ाने की बजाय अथवा अन्तर्मुखी राज्य कर्मचारी राज्य को उबारने की बजाय केस में या प्रश्न के न्याय-अन्याय के गहन विचार में उतर जाता है परिणामत: केस भी हाथ से जाता है और राज्य भी। इसी तरह बहिर्मुखी शिक्षक पढ़ाने की बजाय शिक्षण से सम्बन्धित बातें अधिक करता है और सिद्धान्तों को अमल में लाया हुआ देखकर आत्मसंतोष प्राप्त करने के बजाय उसका प्रचार ज्यादा करता है।

राज्य कर्मचारी अन्तर्मुखी वृत्ति वाला होने से जो नुकसान होता है, उसकी तुलना में अगर शिक्षक बहिर्मुखी वृत्ति वाला होगा तो उसका नुकसान कहीं अधिक होगा। हर समय संस्था या

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 87

2- वही, पृ0 65

पाठशाला की व्यवस्था पर ही विचार करने वाले तथा प्रचार मात्र करने वाले संस्थापक या शिक्षक अगर बहिर्मुखी होंगे तो वे संस्था या पाठशाला के लिए नुकसानदायी ही होंगे। अगर वे शिक्षण संस्था को एक राज बना देंगे तो वहां से सरस्वती विदा हो जाएगी।[1]

मिथ्याभिमानिता, मताग्रहता व रुढ़िवादिता को त्याग कर व्यापक मानसिक दृष्टिकोण, निराभिमानिता, सत्य-निष्ठा व नवाचारों के प्रति ग्रहणशीलता का भाव उत्तम शिक्षक बनने के लिए आवश्यक है।

गिजू भाई यह भी अनुचित मानते हैं कि कई अध्यापक नई बातें और विषयों में इसलिए त्रुटि निकालने लगते हैं क्योंकि उन्हें उनका ज्ञान नहीं होता। यह काम वे जान-बूझकर करते हैं और नए विचारों के आगमन को रोकते हैं। वे ऐसे शिक्षक को शिक्षक नहीं मानते तथा कहते हैं कि ऐसे शिक्षकों को पहचानकर उनके बजाय सही काम करने वाले सही शिक्षकों को लगाया जाना चाहिए, चूंकि ऐसे मताग्रही शिक्षकों ने ही शिक्षा की प्रगति की रोका है। शिक्षकों को नए शैक्षिक प्रवाहों में अपना योगदान देना चाहिए।[2]

खुशामदी न बनें:- खुशामद करने की प्रवृत्ति व चाटुकारिता व्यक्ति का एक बड़ा दुर्गुण है। ऐसा वह अपने अन्य दुर्गुणों, दोषों व अभावों को छिपाने के लिए तथा स्वार्थपरता की दृष्टि से करता है। सभी की हाँ; में हाँ मिलाते हुए उन्हें खुश करने के फेर में शिक्षक अपना कीमती समय व ऊर्जा खोते हैं इसी पर गिजू भाई कहते हैं - हम तो जैसे किसी को नाराज ही नहीं कर सकते। हमें तो जैसे जी हाँ, जी हाँ ही पढ़ना है। हमें तो जैसे इसको भी खुश रखना है और उसको भी। पर क्यों? किसलिए? किसलिए हमें पूरे गांव को खुश रखना है? हमें तो सिर उठाकर चलना चाहिए और जो सच्ची बात है उसे अवश्य व्यक्त करना चाहिए। हम लोगों की सेवा करें, विभाग की सेवा करें, अधिकारी की वांछित सेवा करें पर खुशामद क्यों करें?[3]

अनावश्यक वार्तालाप से बचें:- गिजू भाई के अनुसार शिक्षकों में एक अन्य बुरी आदत है और वह है - बेकार की डफली बजाना, निन्दा करना, झमेला खड़ा करना। उनके अनुसार यह रोग पूरे देश का है और शिक्षक भी इससे मुक्त नहीं हैं, बल्कि उसके अधिक शिकार हुए हैं। वे वल देकर कहते हैं कि ये तमाम आदतें शिक्षकों को छोड़ देनी चाहिए।

अक्षरज्ञान का मोह त्यागो:- गिजू भाई शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि माता-पिता चाहे जिस कारणवश अपने बालकों को विद्यालय भेजें, हमें उस पर ध्यान नहीं देना। भले ही वे बालकों को घर में शैतानी या गड़बड़ करने की वजह से भेजें, हमें तो बस अपना कर्त्तव्य तय करना है। हमें उनकी भूल को सुधारना है। इधर बालकों को जल्दी से जल्दी अक्षरज्ञान और अंकज्ञान

1- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 79

2- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 32

3- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 65

दिलाने का मोह बढ़ता जा रहा है, हमें उस मोह को तोड़ना है। हर कोई पाठशाला में और बाहर एक ही प्रश्न पूछता है, इस पाठशाला का अभ्यास-क्रम क्या है? इस पाठशाला में बालक क्या पढ़ते हैं? कितना सीखे हैं?; लेकिन कहीं भी इस बात को लेकर पूछताछ नहीं की जाती कि बालकों का विकास कितना हुआ है? हमें इस बात पर ध्यान देना है कि बालकों का सम्मान कैसा है, किस उम्र में वे अक्षरज्ञान और अंकज्ञान ले सकते हैं? बालक की स्वाभाविक वृत्ति और शक्ति को जानकर ही इसके अनुकूल रहकर ही हम उसे ज्ञान प्रदान कर सकते हैं।[1]

दण्ड व लालच का प्रयोग नहीं:- गिजू भाई शिक्षकों को सचेत करते हुए कहते हैं कि शिक्षकों को बाल-व्यवहार में सुधार लाने हेतु दण्ड व लालच की विधियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

बालकों के प्रति प्रेम रखो:- गिजू भाई की दृष्टि में शिक्षक के अन्य गुणों में बालकों के प्रति प्रेम, उनके प्रति सहानुभूति, बालकों के माता-पिता के साथ सम्बन्ध, बालकों की भलाई के लिए सहयोग देने की जानकारी व इच्छा, कर्त्तव्य का पूरा ख्याल आदि है। जिस शिक्षक में बालकों के प्रति प्रेम नहीं, सहानुभूति नहीं, वह शिक्षक ही नहीं है। ऐसा व्यक्ति अपने काम में कभी सफल नहीं हो सकता। बालकों के प्रति प्रेम और सहानुभूति को गिजू भाई एक ऐसी अद्‌भुत कुंजी मानते हैं कि जिससे बाल-हृदय के कपाट खोले जा सकते हैं और उनमें शिक्षक अपना स्थायी आवास बना सकता है। प्रेम के वशीभूत तो सारा संसार ही है और बालक तो विशेष रूप से प्रेम के वशीभूत होता ही है, लेकिन उनकी दृष्टि में प्रेम का अर्थ अभद्रता नहीं, प्रेम करना बालक की खुशामद नहीं। प्रेम याने बाल-जीवन में आनन्द, बाल-विकास की चिन्ता, बाल-जीवन के विकास में श्रद्धा और विश्वास। प्रेम याने बाल विकास में आनंद और कृतकृत्यता।[2]

बालकों में आत्मविश्वास जागृत करें:- गिजू भाई की शिक्षा पद्धति बालक को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है। वह अधिगम का कर्ता स्वयं है अत: उसमें स्वयं के प्रति, अपनी क्षमताओं के प्रति पूर्ण आत्मविश्वास अवश्य होना चाहिए। गिजू भाई के अनुसार मूल बात है कि बालकों में आत्मविश्वास जगाने की। प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षण-पद्धति उनके आत्मविश्वास को कुचल देती है और इसके बजाय उनमें अविश्वास, अनास्था अर्थात् नास्तिकता के भाव पैदा कर देती है। तुम नहीं बना सकोगे-ऐसा कहने वाले दूसरों की आत्मा का हनन ही करते हैं। इसके बजाय तुम जानते हो, तुम्हें करना आता हैहु- ऐसा कहने वाले अपनी व दूसरों की आत्मा के तारक हैं, प्रकाशक हैं। वे कहते हैं कि प्राथमिक शाला का जो शिक्षक अथवा कोई अन्य शिक्षक जो बालकों में आत्मविश्वास पैदा करेगा, वही उनका सही मायने में भला करेगा। वही उनको विषयों का सच्चा शिक्षण करा सकेगा। अत: शिक्षक को पूरी कक्षा का वातावरण बदलना होगा, तभी उस वातावरण

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 45

2- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 46

का लाभ छात्र को स्वयमेव प्राप्त हो सकेगा। छात्रों में सर्जनात्मकता व आत्मनिर्भरता के गुणों के विवाद के लिए शिक्षक को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।

स्वच्छता रखें:- गिजू भाई कहते हैं कि शिक्षकों का कर्तव्य है कि पाठशालाओं में स्वच्छता का ऊँचा आदर्श स्थापित करें और उसे क्रियान्वित करें-करायें। स्वयं साफ-सुथरे रहें और बालकों को स्वच्छ रखने का प्रयत्न करें। विद्यालय में जब तक कचरा बिखरा हुआ है टेबिल, बेंच, श्यामपट्ट आदि पर धूल छाई हुई है चारों ओर मकड़ी के जाले लगे हैं तब तक शिक्षक बालकों को अंकज्ञान, अक्षरज्ञान आदि का शिक्षण नहीं दे सकते। वे कहते हैं कि विद्यालय में स्वच्छता का वातावरण निर्मित करने के लिए हमको और बालकों को मिलकर इस अनिवार्यता को स्वीकार करना होगा।[1]

ट्यूशन की कुप्रथा बन्द हो:- ट्यूशन की बुरी प्रथा धनवानों द्वारा अपने बालकों के लिए विशेष सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से प्रारम्भ की गयी थी, जो दिन प्रतिदिन महामारी की तरह समाज में फैल गयी। गिजू भाई इस सम्बन्ध में कहते हैं - "धनवानों के लड़कों का ट्यूशन करके अध्यापकों ने धनिक वर्ग की दासता स्वीकार की है तथा पेट व पैसों की खातिर लक्ष्मी के घर सरस्वती का विक्रय किया है। अपने स्वभाव के अनुसार धनवान लोग ट्यूशन करने वाले अध्यापकों को अपनी दुकान के गुमाश्ते से अधिक महत्त्व नहीं देते।"[2]

धनवानों का शुरू किया हुआ यह धंधा आज सामान्य वर्ग के माता-पिता के लिए एक त्रास बन गया है। टयूशन करने वाले अध्यापकों ने टयूशन की जरूरत को दिनों-दिन अधिक बढ़ाया है। धनवानों वाली टयूशन की यह फैशन मध्यम वर्ग में आ पहुंची है। इस तरह जितने शिक्षक हैं उनसे अधिक टयूशनें होने लगी हैं।

गिजू भाई की दृष्टि में वस्तुत: हम अध्यापकगण टयूशनें करके नीति का दोहरा उल्लंघन करते हैं। एक तो हम विद्यालय में सभी को समान भावना से पढ़ाते नहीं, और ऐसा करके टयूशन करने की बाध्यता पैदा करते हैं। दूसरी तरफ गरीब लोगों के बच्चों की पढ़ाई से आँख मींच लेते हैं।

वे आह्वान करते हैं कि शिक्षकों को टयूशन की इस बुराई से स्वयं को, छात्रों और उनके माता-पिता को मुक्त करना है। अपनी आर्थिक दशा को सुधारने के लिए उन्हें अन्य उपाय करने हैं।[3]

शिक्षक न भिखारी है न ही व्यापारी:- गाँव के शिक्षकों में आज भी बालकों से मठ्ठा, चाय, दूध, कंडे मंगवाना देखा जाता है। आटा मंगवाने की परम्परा तो अब नहीं रही है। गिजू भाई कहते हैं कि ऐसे अध्यापक से विद्यालय की प्रतिष्ठा कैसे बढ़ सकती है? भगवान् की कृपा से अगर वह सम्पन्न

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 40-41

2- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 101

3- वही, पृ0 103

हो जाए, उसकी गाँठ में पांच पैसे हो जाएं तो उसे वह पैसा लेकर व्यापार में संलग्न नहीं होना चाहिए। अध्यापक का काम तो पढ़ाना है। व्यापार में लग जाएगा तो वह वणिक् बन जाएगा। विद्या ब्राह्मण की और व्यापार बनिये का। अध्यापक चाहे जिस जाति का हो, पर वह ब्राह्मण है। उसे सिर्फ इसी काम में लगकर अपनी प्रतिष्ठा रखनी है। व्यापार-श्रेष्ठ व्यापार लक्ष्मी एकत्रित करने में है, जबकि शिक्षण का काम दान देने का काम है। शिक्षक जब शिक्षक न रहकर व्यापारी बन जाता है तो वह भ्रष्ट हो जाता है। उसकी प्रतिष्ठा गिर जाती है। अतएव शिक्षक को अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सभी बातों से दूर रहना चाहिए।[1]

अतिरिक्त आय सम्मानजनक हो:- गाँव के अध्यापकों को जाहिरा तौर पर फुर्सत रहती है। अगर शहर के अध्यापक मिथ्या दौड़-भाग और झंझटों से स्वयं को बचा सकें तो वे भी फुर्सत प्राप्त कर सकते हैं। अवकाश या फुर्सत के इस समय को उन्हें अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने में लगाना चाहिए। गिजू भाई मानते हैं कि सपने पालने से आर्थिक हालत सुधरने वाली नहीं। इसका तो एक ही उपाय है और वह है - कोई न कोई उद्योग करना। शहर का अध्यापक शिक्षाशास्त्र में अपने अध्ययन को बढ़ाकर शिक्षण विषय में पारंगत होने का उद्यम करे तो एक लेखक या व्याख्याता के रूप में वह भविष्य में अपनी प्रतिष्ठा अर्जित कर सकता है। शहर का अध्यापक अपने अवकाश के समय में व्यापारी का हिसाब-किताब लिखने का काम सम्भालता है तो वह उसे शोभा नहीं देगा। हाँ, शहर के अलग-अलग पुस्तकालयों में वह ग्रंथपाल का काम संभाले और वहां से अतिरिक्त आमदनी करे तो ठीक है। श्रेष्ठ अध्यापक अगर चाहें तो सर्व-साधारण के लिए सुसंस्कार की, सुशिक्षण और सुवाचन की कक्षाएं लगा सकते हैं। कोई अध्यापक लोकगीत गाने की अपनी कला बढ़ाकर निजी या सार्वजनिक रूप से उनका प्रदर्शन करके दो पैसे कमा सकता है, तो कोई समाज के छोटे-बड़े सभी लोगों को कहानियाँ सुनाकर कुछ पैसे कमा सकता है। अध्यापक की मर्यादा में आने वाले किसी भी विषय में अध्यापक को निष्णात होना चाहिए। लोग अपने-आप उसकी उपयोगिता को स्वीकार करेंगे और उसका पारिश्रमिक देंगे।

गाँव में शहर वाले काम-धंधे हो नहीं सकते। फिर भी गाँव का अध्यापक अपना दिमाग लगा सकता है। अगर वह गाँव की तथा आसपास की परिस्थिति का अच्छा अध्ययन करके लोगों को सच्ची सलाह देने लगे तो लोग उसे इसके बदले में पारिश्रमिक दिये बिना नहीं रहेंगे। अध्यापक स्वयं भी फुर्सत के समय में ग्रामीण उद्योग शुरू कर सकता है। अगर वह मेहनत करे और खेत जोते तो दो एक मन अनाज उगा सकता है, छोटी-सी बाड़ी में साग-सब्जी लगाकर अपना खर्चा निकाल सकता है, या पूरे वर्ष थोड़ी-थोड़ी कताई भी करना शुरू करे तो अपने परिवार को बिना पैसे

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 64-65

पहना-ओढ़ा सकता है।

गिजू भाई की मान्यता है कि मनुष्य में एकमात्र बुद्धि एवं हृदय की शुद्धि होनी चाहिए - इसी की आज जरूरत है। यह भावना शिक्षक में अवतरित हो, वे ऐसी कामना करते हैं।[1]

शिक्षक आत्म-मूल्यांकन करें:- गिजू भाई कहते हैं कि शिक्षक रोज अपने-आपसे यह पूछे कि क्या मुझको पढ़ाना आता है? क्या मुझको पाठयवस्तु का ज्ञान है? क्या मेरा शिक्षण रोचक एवं सफल है? क्या मुझको भय अथवा मिथ्या लालच देकर लड़कों को वश में रखना पड़ता है? क्या मुझको एक ओर माता-पिताओं की तथा दूसरी ओर अधिकारी वर्ग की खुशामद करनी पड़ती है? क्या मैं अपने उदार से उदार विचारों के अनुसार शिक्षण देने में समर्थ हूँ? क्या मेरा विभाग मुझको अच्छी तरह से शिक्षण देने की स्वतंत्रता और अनुकूलता प्रदान करता है? मैं अपने विद्यार्थियों को सच्चा मनुष्य बनाने की शिक्षा देता हूँ या अशक्त एवं नामर्द बनने की शिक्षा देता हूँ? कहीं ऐसा तो नहीं कि इस व्यवसाय द्वारा मेरा अच्छी तरह से गुजारा नहीं चलता और आलसी होने के कारण मैं दूसरे व्यवसाय की तलाश नहीं करता? मैं अध्यापक का जीवन यापन करता हूँ अथवा उसके विपरीत? मैं कामचलाऊ रास्ते पर चलने वाला शिक्षक हूँ अथवा सचमुच खरा शिक्षक बनने की मेरी आकांक्षा है?

इन प्रश्नों के उत्तर हमें स्वयं तलाश करने चाहिए और अगर यह उत्तर सामने आए कि हम इस व्यवसाय में रहने के योग्य नहीं हैं तो हमें इस व्यवसाय को छोड़ देना चाहिए। अगर हम स्वयं ऐसा नहीं करेंगे तो हमें नौकरी छोड़ देने का आदेश देने वाले मिल जायेंगे।[2]

वाचन में मितव्ययता तथा शांति में आस्था:- मैडम माण्टेसरी का कहना है कि शिक्षक की मुखरता की बजाय उसका मौन अधिक उपयोगी है। अगर आप किसी विद्यालय में जाकर देखें तो आपको अध्यापक लोग जोर-जोर से ऊँची आवाज में पढ़ाते नजर आएँगे। इसके कारणों में एक बड़ा कारण है अध्यापक की गला फाड़कर बोलने की आदत। हम लोगों में यह एक इतनी रूढ़ आदत है कि हमें पता भी नहीं चलता कि यह हमारी आदत है भी या नहीं। हमारा पूरा समाज इस बुरी आदत से इतना ग्रसित है कि हमें सभी-कुछ सहज प्रतीत होता है।

अध्यापक की तेज आवाज रोब की नहीं, निर्बलता की सूचक है। अंत:प्राण वाला व्यक्ति शान्ति के शस्त्र को सर्वाधिक शक्तिशाली मानता है। सच्चे ताकतवरों की ताकत शान्ति है। सच्चे ज्ञाताओं की वाणी मौन है। हमारे श्रेष्ठ सद्गुरू हमेशा मौन व्याख्यान देकर गए हैं लेकिन जब शक्ति में अविश्वास पैदा होता है और अपने-आप पर नियंत्रण नहीं रहता, तब बाहर का शस्त्र उठाना पड़ता है, आवाज एक ऐसा ही शस्त्र है।[3]

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 71-72

2- वही, पृ0 49

3- वही, पृ0 95

वर्तमान शिक्षण-प्रणाली भाषण-प्रधान है। भारी-भरकम, समन्वय रहित, अर्थहीन एवं अस्पष्ट शब्दों का प्रयोग करने वाले अध्यापक विद्यालय में सम्मान पाते हैं। जबकि मॉण्टेसरी पद्धति शिक्षक को मौन का पाठ पढ़ाती है तथा जहाँ वह मौन व्रत का उल्लंघन करता है वहाँ उसका विवेक उसे ऐसा न करने की समझ देता है : सत्य पूर्ण और दो टूक संक्षिप्त वाणी ही मॉण्टेसरी शिक्षण का आभूषण है। बोलने की बजाये चुप रहना मुश्किल बात है। मॉण्टेसरी पद्धति के शिक्षण का संयमित मौन भाषण देने की शक्ति को विकसित करने की सबलता की बजाय कुछ अधिक बल की अपेक्षा रखता है।

गिजू भाई कहते हैं कि शिक्षक को अपने शिक्षण को सरस बनाने की कोशिश करनी चाहिए। रोचक शिक्षण याने विद्यार्थियों का मनपसंद शिक्षण। रोचक शिक्षण याने समझाने की रीति से किया गया सुन्दर शिक्षण। रोचक शिक्षण याने वांछित एवं योग्य उपकरणों की मदद से किया जाने वाला शिक्षण। रोचक शिक्षण याने वांछित अभिनय के साथ किया जाने वाला शिक्षण। रोचक शिक्षण याने अध्यापक की प्रसन्नता, एकाग्रता एवं शान्ति-युक्त शिक्षण। अगर अध्यापक इस तरह का रोचक शिक्षण करना चाहेंगे तो विद्यार्थी उसे मंत्रमुग्ध होकर सुनेंगे। अगर शिक्षण-कार्य उपदेश, प्रवचन या भाषण जैसा होगा तो चाहे वह कितना ही सुन्दर क्यों न हो, सभी को उसमें आनंद नहीं आ सकेगा, तो जाहिर है ऐसे विद्यार्थियों का गड़बड़ करने को मन होगा।[1]

छोटी कक्षा का अध्यापक

परम्परागत रूप से यह धारणा रही है कि ज्यों-ज्यों कक्षा ऊँची हो, त्यों-त्यों उसे पढ़ाने वाला अध्यापक भी ऊँचे दर्जे का हो। उसका ज्ञान ऊँचा हो, वेतन ऊँचा हो, रुतबा ऊँचा हो। इसके ठीक विपरीत निचले दर्जे का अध्यापक, याने हर दृष्टि से नीचा-ज्ञान में, वेतन में, रुतबे में। निचली कक्षा में अनट्रेंड दसवीं-बारहवीं अध्यापक होगा तो चलेगा, पर कॉलेज में प्रोफेसर, याने बी.ए. अथवा एम.ए. पास होना चाहिए।

गिजू भाई इस व्यवस्था की तुलना एक ऐसी इमारत से करते हैं जिसकी नींव में तो गारा या गारे की ईंटें या भुरने-बिखरने वाला पत्थर भरा है और उसके ऊपर संगमरमर का पत्थर जड़ा है। उनके अनुसार ऐसा भवन कोई निर्मित करेगा तो उसे बेवकूफ ही कहा जाएगा। क्योंकि वह तो कभी भी गिर पड़ेगा- यही बात शिक्षा रूपी भवन के साथ लागू होती है।

उनके अनुसार बालक को बाल्यावस्था में जितनी उच्च शिक्षा दी जाए, उतना ही कम है। बाल्यावस्था बीजारोपण की अवस्था है। इस अवस्था में एक बार अच्छे शिक्षक का परिचय हो जाने का मतलब है बालक जैसे-जैसे बड़ा होता जाएगा, वैसे-वैसे उसका सम्पूर्ण विकास होता जाएगा,

---

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 96

वह बढ़ेगा और बड़ा होगा। पर बाल्यावस्था में तो इसकी कोई जरूरत न समझें, बाल्यावस्था का निर्माण तो साधारण मास्टरों के हाथों करें और फिर उन अनपढ़ पत्थरों को गढ़ने के लिए आगामी वर्षों में ऊँचे कारीगर रखें तो यह काम पैरों से चलने के बजाय सिर के बल चलने के बराबर होगा।[1]

मॉण्टेसरी अध्यापक

मॉण्टेसरी अध्यापक की भूमिका अवलोकनकर्ता की है वह बालकों को पढ़ाता नहीं, विकसित होते देखता है। वह पोथी-पंडित नहीं अपितु शिक्षा-गुरू है। ऐसी पाठशाला का अध्यापक हो तो उनका पुनर्जन्म हुआ होना चाहिए याने उसका नया अवतार हो जाना चाहिए। गिजू भाई के मतानुसार नये अध्यापक के लिए भिन्न-भिन्न विज्ञानों को जानना जरूरी नहीं है। पर उसे अपने भीतर वैज्ञानिकों की शास्त्रीय दृष्टि तथा प्रयोग में लाने योग्य आवश्यक साधनों को काम में लाने की जानकारी जरूरी है। मॉण्टेसरी शिक्षक में प्रकृति के अवलोकन के प्रति अद्‌भुत रूचि होनी चाहिए। जिस तरह रसायन का या अन्य प्रयोग करने वाला व्यक्ति शुरू करके आतुरता और अद्‌भुत चमत्कार के दर्शन की दृढ़ आशा से यह जानने को बैठता है कि उसका क्या परिणाम आता है, ठीक वैसी आतुरता और वैसी ही आशा की वृत्ति मॉण्टेसरी शिक्षक को अपने में विकसित करनी जरूरी है।[2]

गिजू भाई का मॉण्टेसरी शिक्षक एक वैज्ञानिक शिक्षक है, एक वैज्ञानिक के गुणों से सज्जित शिक्षक। वे कहते हैं कि अगर हमें शिक्षण के काम में अन्य विज्ञानों की पंक्ति में लाने की क्षमता पैदा करनी है तो इसके उपासकों को वैज्ञानिकों की उपासना-पद्धति स्वीकार करनी पड़ेगी। इसीलिए इस वैज्ञानिक शिक्षक को अपने भीतर वैज्ञानिक वाले गुणों का विकास करना चाहिए। वैज्ञानिक शिक्षक का प्रमुख एवं अत्यावश्यक गुण-धर्म है अवलोकन करना। अवलोकन करने की शक्ति में कतिपय और साक्षियों का समावेश होता है। इसमें से एक महत्वपूर्ण शक्ति है धीरज। शिक्षक के लिए यह अत्यन्त महत्व का गुण है।[3]

निर्मल-मन, नम्रता, मत-मतान्तरों से मुक्त होना, निष्पक्षता, पूर्वग्रहरहितता, मिथ्या, अभिमान न होना, सत्य निष्ठा होना एक वैज्ञानिक-शिक्षक के गुण हैं। वैज्ञानिक दृष्टि प्राप्त करने के लिए प्रकृति की पूजा करना शिक्षक की एक तैयारी है, तो मानव-प्रेम उसकी दूसरी व अत्यन्त महत्व की तैयारी है।

शिक्षक की दृष्टि कैसी हो? गिजू भाई का उत्तर है - "शिक्षक की दृष्टि वैज्ञानिक जैसी सजग और निर्मल होनी चाहिए तथा संत पुरुषों जैसी प्रेम पूर्ण व आध्यात्मिक होनी चाहिए। विज्ञान जैसी प्रामाणिकता तथा संतों वाली पावनता शिक्षक की तैयारी के दो आधारभूत स्तम्भ हैं। शिक्षक

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 100

2- वही, पृ0 68

3- वही, पृ0 73

की वृत्ति शास्त्रीय और दैवी दोनों प्रकार की होनी चाहिए।" उनके अनुसार शिक्षक में शास्त्रीय दृष्टि का होना जरूरी है। क्योंकि जो काम उसे करना है वह अत्यन्त सावधानी एवं जागरूकता का है। गहन व सूक्ष्म अवलोकन के द्वारा शिक्षक को सत्य के बहुत समीप पहुंचना है। उसे अपनी तमाम भ्रान्तियों को तिलांजलि देनी है। अपनी तमाम कल्पना-जन्य मान्यताओं से दूर हटना है तथा सत्य-असत्य का अन्तर बहुत सूक्ष्मता से जानना है।[1]

शिक्षक में दैवी दृष्टि की आवश्यकता इसलिए है कि मनुष्य स्वयं अपने अवलोकन का विधेय है, उसे अपने अवलोकन का लाभ प्रदान करना है। यही नहीं, अपितु अपने अवलोकन का विषय स्वयं है, दैवी है, आध्यात्मिक है। गिजू भाई की दृष्टि में शिक्षक का क्षेत्र वैज्ञानिक की तुलना में अधिक व्यापक एवं भव्य है। वे कहते हैं कि शिक्षक को तो मनुष्य के आन्तरिक जीवन का अवलोकन करना है। जिस मानव-जीवन का उसे अवलोकन करना है, जिस जीवन की सेवार्थ उसे अपना ज़ीवन समर्पित करना है, उस जीवन के लाक्षणिक चिन्ह हैं-भव्य कला, उदात्त प्रेम और पवित्रता। ये चिन्ह शिक्षक के अपने ही जीवन के अंश हैं। इसी से शिक्षक को मनुष्य का अवलोकन, जिस तरह वैज्ञानिक को अपना अवलोकन रूखा लगता है, वैसा रूखा नहीं लगता, क्योंकि यहां तो मनुष्यों के माध्यम से शिक्षक स्वयं को देखता है, स्वयं का ही अध्ययन करता है, अपनी ही आत्मा की पहचान कर सकता है। एक मनुष्य शिक्षक बनने की योग्यता कब हासिल करेगा? गिजू भाई कहते हैं कि "जब बालक के आत्म-विकास के दर्शन से शिक्षक की आत्मा जगमगा उठेगी और जब उसके भीतर अवलोकन-कार्य में गंभीर सात्विक आनन्द एवं आर्त्तता प्रकट हो उठेगी, तभी उसे शिक्षण रूपी देवी अपनी दीक्षा प्रदान करेगी। तभी वह मनुष्य 'शिक्षक' बनने के योग्य होगा।"[2]

बाल गृह का शिक्षक

मॉण्टेसरी पद्धति के अनुसार रचे गए स्वतंत्र वातावरण में तथा प्रबोधक साहित्य (डाइडेक्टिक एपरेटस) के सहवास-संसर्ग में बालक अपना व्यक्तित्व प्रकट करता है। इस व्यक्तित्व के प्रदर्शन को देखना शिक्षक का काम है, पर यह काम पहला और अंतिम नहीं है। शिक्षक को अपना कार्य-क्षेत्र धीमे व्यापक बनाना है। अवलोकन से अगला काम है प्रयोग का। प्रयोग करने का ही दूसरा नाम है पाठ पढ़ाना। प्रयोग उद्देश्य साक्षात् पढ़ाना होने की बजाय शिक्षण-पद्धति की खोज करना है।

गिजू भाई का मत है कि प्रत्येक शिक्षक अवलोकन करने का अधिकारी नहीं होता, वैसे ही प्रत्येक विषय प्रयोग का अधिकारी नहीं होता। जो शिक्षक किसी मनोवैज्ञानिक द्वारा किये जाने वाले

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 78

2- वही, पृ0 79

प्रयोग की पद्धति से वाकिफ है, वही शिक्षक बालकों को पढ़ाने का काम अच्छी तरह से कर सकता है। उसके साथ ही शिक्षक में मोंटेसरी पद्धति के सिद्धांतों और उन्हें क्रियान्वित करने का ज्ञान होना चाहिए। इसके लिए उसे बालगृहों में रहते हुए इस पद्धति का यथार्थ अध्ययन किया हुआ होना चाहिए। पूरी मोंटेसरी पद्धति में संयमन सिखाने की रीति का तात्त्विक एवं गहन अध्ययन सर्वाधिक मुश्किल चीज है। इसके सफल अध्ययन पर ही शिक्षक की सफलता का वास्तविक आधार है।

इस पथ में समूहगत शिक्षण न कर बालक के वैयक्तिक विकास पर बल दिया जाता है। गिजू भाई व्यक्तिगत शिक्षण के कतिपय नियमों का उल्लेख करते हैं। पहला लक्षण है- मितव्ययता के साथ शब्दों का प्रयोग तथा अनावश्यक शब्दों का त्याग। वे कहते हैं कि शिक्षक को शब्द विलास की नहीं शब्द सामर्थ्य की आवश्यकता है शब्द-विलास नितांत आडंबर और निरंकुशता है। दूसरा लक्षण सादगी है। शब्द सत्य, स्वाभाविक एवं सहज हों। वाणी निर्मल, शंका व छल रहित हो। तीसरे, शिक्षक शिष्य से परोक्ष अर्थात पर्दे के पीछे रहे, पाठ्य-पुस्तक या वह पदार्थ जिसकी ओर बालक का ध्यान खींचा जाना है, स्वयं बालक के समीप हो। शिक्षक अवलोकनकर्ता हो तथा बालक की स्वतंत्रता को बाधित न करे, उसकी स्वयं-स्फूर्ति को न रोके।

गिजू भाई कहते हैं कि अक्षर ज्ञान का मोह शिक्षकों को त्याग देना चाहिए। आवश्यकता बालक की वृत्ति के विकास हेतु उसे स्वतंत्र वातावरण प्रदान करने की है। गाँधी जी के इन विचारों से वे पूर्ण सहमति रखते प्रतीत होते हैं - "जहाँ स्वतंत्रता तथा अक्षर ज्ञान के बीच चुनाव करना हो, वहां कौन कहेगा कि स्वतंत्रता अक्षर-ज्ञान से हजार गुनी अच्छी नहीं है?"[1]

ग्रामीण विद्यालय का शिक्षक

ग्रामीण शिक्षक को महत्व देते हुए गिजू भाई कहते हैं कि आज का भारत गाँवों में बसा है अत: भारत का सच्चा शिक्षक भी गाँवों में हैं। गाँवों का शिक्षक जितना अधिक सक्षम बनेगा, भारत उतना ही समर्थ बनेगा। शहर के शिक्षक की तुलना में गाँव के शिक्षक की जिम्मेदारी अधिक है-इतनी सी बात अगर वे समझ लें तो समझो बहुत हुआ।[2]

अगर शहर का शिक्षक गाँव में जाकर शहरी जीवन बिताएगा; शहरी ढंग से रहेगा; शहर को गाँव में लाने की कोशिश करेगा; शहरी बड़प्पन से ग्रामवासियों के बीच रहेगा; शहर की स्वच्छता, शहर का दबदबा, शहर की एकलखोरी रखेगा; ग्रामवासियों के प्रति शहरी लोगों का अनादर भाव दिखाएगा; शहरी जिन्दगी के गुणगान करेगा और अपने घर में शहरी जीवन व्यतीत करेगा तो वह गाँव के शिक्षक के रूप में असफल रहेगा।[3]

गिजू भाई कहते हैं कि जिस शिक्षक का ध्येय गाँव में जाकर काम करने का हो वह मन

1- गाँधी, एम.के., बच्चों की शिक्षा, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 2006, पृ० 181
2- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 69
3- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 68

से, नीति से व आचार से ग्रामवासियों से स्पष्टतया ऊँचा रहे, पर उन्हें ऐसा न लगने दे कि वे लोग बहुत नीच हैं या शिक्षक की दृष्टि में धिक्कारने योग्य हैं या उनकी दृष्टि में गाँव का शिक्षक अधिकारी है या कोई बड़ा आदमी है।

गाँव में रहने वाले शिक्षक को अज्ञान और स्वार्थ दोनों से संघर्ष करना है। शिक्षण का प्रकाश फैलने के साथ ही स्वार्थी व्यापारी, झाड़ा-फूंकी करने वाले ओझा, जोगी-जती आदि दुःखी होंगे और वे शिक्षक के विरुद्ध तरह-तरह के प्रपंच रचेंगे। इन सबके बावजूद शिक्षक को दृढ़ रहना है, उन सबकी उपेक्षा करनी है और अपना काम करते रहना है। उसे विरोधियों के विरुद्ध कोई विरोध जताये बिना संघर्ष की स्थिति पैदा न होने देकर सर्वसामान्य सज्जनता एवं रचनात्मक काम द्वारा आगे बढ़ना है। स्वार्थी लोग शिक्षक को मूर्ख बनाने की, उसे नीचा दिखाने और शर्मिंदा करने की तलाश में रहते हैं। बेशक शिक्षक सहृदय रहे, पर साथ ही साथ चौकन्ना भी रहे।[1]

गिजू भाई कहते हैं कि गाँव में रहने वाले अध्यापक को पढ़ाने का काम अनथक भाव से करते जाना है। मानव-समाज में अनेक दुःख हैं। उन तमाम दुःखों का समाधान करना अकेले अध्यापक का काम नहीं है। उसे तो मनुष्य में ज्ञान का प्रकाश भरना है। उस प्रकाश से अंधेरा अपने-आप नष्ट हो जाएगा, ऐसा विश्वास बनाये रखना है। इसीलिए उसे ग्रामवासियों को वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करनी है, न कि ओझाजी से लड़ना है। उसे गाँवों को आर्थिक उन्नति का मार्ग बताना है, साथ ही यह समझना है कि उनकी अवनति के क्या कारण हैं - यह नहीं कि वह प्रबंधकर्ता अधि
ाकारियों से उलझ जाए। गाँवों के अध्यापक का काम यह है कि अपने विद्यार्थियों और लोगों को यह बताये कि जीवन में दुःख कैसे पैदा होते हैं और कैसे आचार-व्यवहार से वे शांत होते हैं; यह नहीं कि वह लोगों में विभाजन, विद्वेष पैदा करे या उनके घर तुड़ाये। उसे तो प्रकाश का दीप जलाकर चारों ओर रोशनी फैलानी है, जहाँ-तहाँ आग नहीं लगानी।

गाँव छोटी जगह होता है। वहाँ के सभी निवासियों का जीवन पास-पास, छोटे घरों में, एक छोटे से वर्तुल में घटित होता है अतः परस्पर पारदर्शी होता है। इस कारण से कई बार शिक्षक को जब गाँव के दुर्व्यवहार पर परेशानी होने लगे तो उसे धैर्य के साथ सोचने की आवश्यकता है। कटु वचनों से अथवा बड़े वहिष्कार से कोई हल नहीं निकलने का। गिजू भाई की दृष्टि में गाँव का अध्यापक गाँव के मन्दिर जैसा होता है। लोग-वाग उससे जीवन की उच्चता, सांसारिक शान्ति तथा चारित्र्य की आकांक्षा रखते हैं। अतः गाँव के अध्यापक का घर, उसका व्यवहार सही व पवित्र हो, उसमें पारिवारिक कलहयुक्त प्राकृत जीवन न हो।[2]

वे कहते हैं कि गाँव के विद्यार्थी अभी तक पढ़ाई की चक्की में पीसे नहीं गए हैं अतः वे

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 67
2- वही, पृ0 68

कल्पना, क्रियाशक्ति, बुद्धिशक्ति-सबों में तीव्र हैं। उनकी बौद्धिक समझ अनुभव के कारण अधिक है। शिक्षक को ये बातें ध्यान में रखते हुए उनकी पढ़ाई की योजना बनानी है।

अच्छा अध्यापक गाँव में आकर शुरु-शुरु में जीने के लिए संघर्ष करता है, लेकिन धीरे-धीरे वह अपने जीवन को हाथ से घुमाने लगता है और अंत में वह भी उन्हीं पुरानी कब्रगाहों का निवासी बन जाता है।

गिजू भाई कहते हैं कि अध्यापक को शहरी जीवन की मिथ्या समृद्धि का मोह नहीं रखना चाहिए। उसे जीना चाहिए, स्वस्थ जीवन व्यतीत करना चाहिए, विकास करते-करते जीना चाहिए। उसकी वास्तविक शर्त सादगी होनी चाहिए। सादगी याने बोझ रूपी क्षणिक देखा-देखी वाले, मात्र उत्तेजन स्वरूप सुखों का त्याग तथा मन एवं शरीर को स्वस्थ व शान्त रखने के विचारों की स्वीकृति।

शिक्षक के लिए दूसरी बात है कि अपने विद्यालय को यथाशक्य सुन्दर बनाना। शरीर हमारा अपना है उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। विद्यालय हमारे मानसिक जीवन का शरीर है। विद्यालय गरीब हो अथवा सम्पन्न, छोटा हो या बड़ा; पर वह हमारा है। यह ममता हम में होनी ही चाहिए। यह होगी तो हम विद्यालय में रचे-बसे रहेंगे। किसी चीज में हमारा मन रमेगा तो वह पत्थर के बजाय भगवान् हो जाएगी। ऐसा विद्यालय श्रम-स्थल न रहकर तपोवन बन जाएगा, वह मात्र पाठशाला न रहकर शिक्षण की प्रयोगभूमि बन जाएगा। वहाँ शिक्षण-साहित्य के लिए चिंतातुर होकर बैठना नहीं पड़ेगा अपितु वहीं से शिक्षण-साहित्य सृजित होंगे।

आज तो गाँव के अध्यापक के सामने बहुत-सी कठिनाइयाँ हैं, पर जिसने स्वयं अपने बारे में नहीं सोचा, जिसने अपनी शक्ति का प्रकाश चारों ओर नहीं फेंका, उसे कोई भी किसी भी भाव नहीं पूछेगा। अगर गाँव का अध्यापक सोच ले तो काफी काम कर सकता है।[1]

गिजू भाई का मानना है कि गाँव का अध्यापक वहाँ के छात्रों को शहरी बालकों का या धनवानों के बालकों का वातावरण या शिक्षण देने वहाँ नहीं गया है, उन लोगों को अपने जैसा साहित्यकार, चित्रकार या संगीतकार बनाने नहीं गया; वहाँ के उद्योगों की चौपट करके बालकों को लिपिक से लेकर प्रोफेसर तक की योग्यता अर्जित करने की शक्ति प्रदान करने वहाँ नहीं गया है। वह तो वहाँ ग्राम्य जीवन में जो कुछ नैसर्गिक संपदा विद्यमान है, उसे गढ़कर, संस्कारित करके, अपने काम लायक उन्नत एवं अनुकूल बनाने की दिशा देने वहाँ गया है। जिस अध्यापक की कल्पना में गाँवों का व्यक्ति एक सुन्दर कृषक के रूप में या वहाँ की कारीगरी के लिए एक दक्ष कारीगर के रूप में नहीं आता अपितु जिसकी कल्पना में वह वकील, डॉक्टर, चित्रकार, दार्शनिक,

---

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 86

साहित्यकार जैसा आता है, उसे गाँव से निकलकर शहर में पढ़ाने का काम करना चाहिए, क्योंकि वह गाँव का अध्यापक है ही नहीं।[1]

शिक्षक संघ की भूमिका

गिजू भाई संघ-शक्ति में विश्वास रखते थे। उनका मत था कि हमारा शिक्षण-कर्म और विचार-बल संघ-बल पर ही टिका रह सकता है और इसी से इसमें वृद्धि हो सकती है, अतः व्यावसायिक उन्नति के लिए सभी कार्यकर्ता शिक्षकों को एक शिक्षक-संघ बनाना चाहिए और उसमें राजनीति करने के बजाय चर्चा-परिचर्चाएँ आयोजित करके शैक्षिक विचारों का संवर्द्धन करना चाहिए। वहाँ रोजाना जाने की प्रतिज्ञा की जाए, शिक्षण सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ी जाएं और सर्वोत्तम विचारों का विनिमय किया जाए। ऐसा करने पर परिणाम अच्छा ही आयेगा।[2]

वे संघ के अन्य कर्तव्यों को इस प्रकार इंगित करते हैं -

उत्तम पारिवारिक अनुशासन हेतु माता-पिता को समझाना:- माता-पिता बालकों को मारते हैं और लालच देकर उन्हें नियंत्रित करते हैं। हमें उनके पास खुद चलकर जाना है और अनुनय विनय करनी है कि वे ऐसा न करें। फिर भी यदि वे न माने तो हमें उनका सामाजिक बहिष्कार करने के लिए कमर कस लेनी चाहिए। याद रखें, इसमें हमारा कोई स्वार्थ नहीं है। इसलिए इस संघर्ष में हमारी विजय होगी। हम अपनी तरक्की चाहते हैं तो और कुछ नहीं तो सिर्फ इतने से काम के लिए तो हम तैयार हों और बालकों को हर तरह के संकट से उबारने का महान् प्रयत्न करें। यह हमारी प्रतिज्ञा होनी चाहिए कि गाँव में कोई भी बालक को मारे नहीं, डांटे नहीं, फुसलाये नहीं, डराये नहीं। स्वतंत्रतापूर्वक बालक स्वयं को संभाले और अपना विकास करे, ऐसी स्थिति लाने के लिए हमें दिन-रात मेहनत करनी है।[3]

सुधार हेतु आत्मावलोकन करें:- शिक्षक की स्वीकारोक्ति; शीर्षक के माध्यम से गिजू भाई एक शिक्षक की आत्म-स्वीकृति के रूप में शिक्षकों में व्याप्त कमियों की चर्चा करते हैं। सेवा-पूर्व प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् सेवा में आने पर अपने व्यावसायिक विराम के प्रति उदासीनता, शैक्षिक परिचर्चा में रूचि न ले अन्य व्यर्थ विषयों की चर्चा, उत्साहहीनता के साथ यांत्रिक ढंग से दायित्व निर्वाह, गहन अध्ययनशीलता का अभाव, विद्यालय-परिवार सम्बन्धों के विकास के प्रति उदासीनता, छात्रों से आत्मीय सम्बन्धों का अभाव, परीक्षा-केन्द्रित पाठ्य-व्यवस्था में आस्था, भौतिकतावादी मनोवृत्ति, टयूशन करना आदि कुछ ऐसी अनुचित प्रवृत्तियाँ हैं जो सहज ही शिक्षक वर्ग में परिलक्षित हो रही हैं। वे शिक्षक के मुख से कहलवाते हैं - "आज शिक्षण का व्यवसाय भी मेरे लिए एक प्रवृत्ति है, एक काम है। ऐसे में शिक्षण का आदर्श, शिक्षण की परिवर्द्धित पद्धति

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 69

2- वही, पृ0 38

3- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 51

से पढ़ाने का आग्रह, शिक्षा में नवाचार करने की उत्कंठा- ये सब मुझमें हैं भी नहीं, तो आएँगे कहाँ से? आज मेरी जो स्थिति है, वह मुझे अच्छी तरह समझा देनी चाहिए। मेरी अपनी हालत तो यह है, दूसरे शिक्षक बन्धुओं की भी ऐसी ही होगी।"[1]

बालकों की स्वच्छता हेतु माँ-बाप से बातचीत:- गिजू भाई शिक्षकों से कहते हैं कि जिस तरह से हमें बालकों के लिए विभाग के विरुद्ध लड़ना है उसी तरह बालकों के माता-पिता से भी लड़ना है। लड़ने का अर्थ मारपीट करना नहीं है, अपितु पहले हमें दूसरों को समझाना है और उसके बाद उनका सहयोग छोड़ देना है। माता-पिता अपने बालकों को बाल्यावस्था में तुच्छ मान कर गंदे, अस्वच्छ, बिखरे बाल, सड़ी टोपी और बढ़े नाखून, बहती नाक और मैले-कुचैले ही विद्यालय में भेज देते हैं। हम इसे हर्गिज बर्दाश्त न करें। इससे माता-पिता को समझना ही पड़ेगा और उनकी लापरवाही में कमी आयेगी। हमीं को इस ओर माता-पिता का ध्यान आकृष्ट करना है और बालकों के संरक्षक के रूप में माता-पिता के विरुद्ध संघर्ष करना है। बालकों को हम तभी पढ़ायें, जब वे स्वच्छ हों, जब माता-पिता उनकी स्वच्छता के लिए पूरा जिम्मा उठायें।[2]

माता-पिता की सहायता प्राप्त करें:- गिजू भाई कहते हैं कि जब तक बालकों के माता-पिता हमें शिक्षा के काम में सहयोग नहीं देंगे तब तक हमें अपनी मेहनत का अधूरा फल ही मिल पाएगा। हमें बालकों के माता-पिता से मिलते रहना चाहिए, उनसे बालकों के बारे में विचार विनिमय करना चाहिए, उन्हें बालक की भलाई के लिए अच्छी बातें बतानी चाहिएँ, भाषण देने चाहिए और पत्रिकाएँ आदि प्रकाशित करनी चाहिएँ।[3]

बालक के विषय में अधिकारिक जानकारी प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि विद्यालय-परिवार सम्बन्ध उत्तम हों। इस दिशा में पहलकदमी शिक्षक के द्वारा की जानी चाहिए। वर्तमान समय में शिक्षक अभिभावक संघ की भूमिका भी उपर्युक्त संदर्भ में कम महत्वपूर्ण नहीं है।

स्वावलम्बी बनें:- गिजू भाई एक नीति वाक्य दोहराते हैं कि "सोये हुए सिंह के मुँह में अपने-आप शिकार नहीं आ जाता।" इस कथन में बहुत बड़ा सत्य निहित है। ईश्वर उसी की सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता करता है। एक लम्बे अर्से से शिक्षकों में पराधीनता की प्रवृत्ति घर कर चुकी है। अपने पैरों पर खड़े होना वे भूल ही चुके हैं।

पर खड़े कैसे रहें? वे उपाय बताते हैं - पहली बात पर दूसरे ढंग से गौर करना सीखें। बात यह है कि हम स्वाधीन हैं और हमें स्वाधीन बने रहना है। हमें स्वयं अपना विकास करना है, विकास करेंगे तो अपने-आप ऊँचे पद पर पहुंचेंगे। इस तरह से हमें अपने सोच को संवारने, अमल में लाने की जरूरत है। इससे हममें आत्मविश्वास जागेगा।

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 53

2- वही, पृ0 52

3- वही, पृ0 46

वे कहते हैं कि इसके बाद हम विभाग में सुधार लाने पर विचार करें। विभाग प्रतिभा-सम्पन्न शिक्षकों के लिए है। विभाग की शिकायत है कि उसके पास प्रतिभासम्पन्न शिक्षक नहीं हैं। हमें प्रतिभाशाली शिक्षक बनकर विभाग के दु:ख को मिटाना है और उसे वर्तमान मृत स्थिति से उबारना है। प्रतिभा को बाहर से भला कौन लाकर हमें देगा? ये बातें हमारे अपने हाथ में हैं। हम सब मिलकर प्रतिभाशाली व्यक्तियों का समूह बन सकें तो बेशक विभाग में सुधार ला सकेंगे। विद्यालय में अच्छी पढ़ाई का वातावरण बनाना है - यह काम हम करेंगे। परीक्षा के दोष विद्यार्थियों को प्रभावित न करें- यह काम हम ही करेंगे। विद्यालय की गंदगी दूर करने के बारे में कार्यनीति हम ही बनायेंगे और हम ही लागू करेंगे। जब शिक्षकों का एक विशाल समुदाय नये विचारों को आत्मसात् करके उसे विद्यालय में क्रियान्वित करने पर उतारू होगा तो भला ऐसा मतिमंद विभाग कौन-सा होगा, जो उनके प्रयासों का समर्थन नहीं करेगा? विभाग तो शिक्षकों का ही है, तभी तो वह उनका है। अगर कोई यह कहे कि विभाग अच्छा नहीं है, तो इसका सीधा-सा अर्थ यही है कि शिक्षक अच्छे नहीं हैं, एकजुट नहीं हैं, शक्तिवान नहीं हैं, प्रतिभासम्पन्न नहीं हैं।

अपनी शक्ति पहचानें :- गिजू भाई शिक्षकों को आत्म-बल में वृद्धि करने हेतु प्रेरित करते हुए कहते हैं कि अपनी गरीबी को हम मिटा सकते हैं, पर हमें अपनी शक्ति पर भरोसा तक नहीं है। क्योंकि मूलत: हम में शक्ति है भी नहीं, शक्ति की ऊष्मा तक नहीं। क्या कोई यह बात मानेगा कि शक्तिसम्पन्न व्यक्ति बैठा रह सकेगा? यह सोच ही गलत है। राज्य के सर्वोच्च अधिकारी को किसलिए अधिक वेतन मिलता है? कारण स्पष्ट है कि उसमें राज्य-तंत्र को संचालित करने की ताकत है। शिक्षाधिकारी को किसलिए ऊँची पगार मिलती है? इसलिए कि उसने शिक्षकों से अधिक शक्ति सृजित की है। अगर कोई अधिकारी शक्तिवान सिद्ध नहीं होता तो उसे अपना पद छोड़ना पड़ता है, उसका वेतन बंद हो जाता है।[1]

हम शक्ति का संचय करें, फिर हमें वेतन की मांग करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। जब तक राज्य को यह लगता है कि अमुक विभाग पिंजरापोल जैसा है, तब तक वह उसमें धन खर्च नहीं करता, न उसे ऐसा करना चाहिए, लेकिन अगर हम अपनी शक्ति से यह प्रमाणित कर दें कि एकमात्र हमारे विभाग के सुधार से ही दूसरे विभागों में अपव्यय बंद हो जाएगा, तब तो सबको अपनी-अपनी शक्ति के अनुरूप सहयोग देना ही चाहिए।

अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन: अर्जित करने के लिए शिक्षकों द्वारा गहन प्रयास किये जाने जरूरी हैं। शिक्षकों को अपने महत्व का अहसास समाज को, राज्य को कराना होगा। गिजू भाई प्रश्न करते हैं कि अभी तक अपने बुद्धि-बल से हमने लोगों में यह बात कहाँ बिठाई है कि शिक्षण का

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 97

काम कठिन है, पर महत्त्वपूर्ण है। अभी तक हमने यह कहाँ सिद्ध किया है कि सच्ची शिक्षा दूषित राज्य व्यवस्था और मिथ्या उपाधि का अंत करती है? हमने शिक्षा देकर अच्छे नागरिक कहाँ तैयार किये हैं कि उसके परिणामस्वरूप चोरी, हत्या, अपराध आदि का प्रतिशत घटा हो या व्यापारियों की बुद्धि विकसित हुई हो, कलाकार व कारीगर बढ़े हों और इसके परिणामस्वरूप राज्य की सम्पत्ति में अभिवृद्धि हुई हो? वे कहते हैं कि एक बार हमें ऐसा करके दिखाना है, तब हम देखेंगे कि हम भीख माँगने योग्य रहते हैं या नहीं। हमें एक बार तो यह दिखा ही देना है कि शिक्षकों का ही सबसे अधिक वेतन हो सकता है, कि उन्हीं का दर्जा सबसे ऊँचा हो सकता है, कि एक बार राजा लोग भी शिक्षकों के आगे सिर झुकाते थे।[1]

शिक्षक को बाल विकास के मनोविज्ञान की गहन जानकारी होनी चाहिए। वे पूछते हैं - क्या हम मनोविज्ञान का क ख ग भी जानते हैं? मनोविज्ञान के ज्ञान बिना बालकों को पढ़ाने बैठ जाना ठीक वैसे ही है जैसे शरीर-विज्ञान का ज्ञान हासिल किये बिना दवा देने लग जाना। आज की दुनिया का नया अध्यापक-डॉक्टर और नए वैज्ञानिक जैसा ही है। वह अपने काम में अद्यतन है।

हमें भी हर बात में 'अपटुडेट' रहना चाहिए। हमारे आसपास जो सड़ा हुआ, बोदा-पुराना ज्ञान है उसे फेंक दें और नए प्रकाश को उत्साहपूर्वक ग्रहण करके अपने व्यवसाय की उन्नति करें। फिर किसकी मजाल, जो हमें पौंगा पंडित कहे। अगर एक बार हम अपनी ताकत को पहचान लें तो सब हमें श्रद्धा की दृष्टि से दखने लग जाएं। अपने व्यवसाय को विकसित करें?

कोई व्यक्ति पूर्ण नहीं होता है। शिक्षक भी सर्वगुण सम्पन्न हो उसमें कोई कमी न हो ऐसा सदैव सम्भव नहीं है। माण्टेंसरी के इस कथन से गिजू भाई पूर्णतया सहमत है कि शिक्षक को यह अभिमान नहीं पालना चाहिए कि वह कभी भूल नहीं करता, अपितु नम्रतापूर्वक अपनी त्रुटियों का पता लगाना और उन्हें स्वीकार करना उसका कर्तव्य है।[2]

शिक्षक का व्यावसायिक विकास

गिजू भाई इसे एक महत्त्वपूर्ण विषय मानते हैं। उनका कहना है कि हमारे देश में सामान्य रूप से इधर ऐसा समझा जा रहा है कि अंग्रेजी पढ़ा-लिखा हर कोई व्यक्ति, विशेष रूप से हर कोई ग्रेजुएट अध्यापक बन सकता है। इस मान्यता के परिणामस्वरूप शिक्षण-संस्थाएँ ग्रेजुएट व्यक्तियों को अध्यापक के रूप में नियुक्त करके संतोष का अनुभव करती हैं कि उन्होंने योग्य व्यक्तियों को नियोजित किया है और स्वयं चयनित ग्रेजुएट भी यह मानकर चलते हैं कि वे शिक्षण-कार्य को साहस के साथ संपादित कर सकते हैं, पर वस्तुतः यह उनकी भ्रांत धारणा ही है। जिस प्रकार वकील, डॉक्टर या कारीगर अपने व्यवसाय का ज्ञान अर्जित किये बिना वकालत,

---

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 98

2- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 80

डॉक्टरी या कारीगरी के काम नहीं कर सकते; उसी प्रकार अध्यापक के धंधे को जाने बिना कोई व्यक्ति यह व्यवसाय नहीं कर सकता। व्यवसाय विशेष में ज्ञान अर्जित किये बिना उसे अंगीकार करने वाला व्यक्ति जिस प्रकार उसमें असफल सिद्ध होता है, उसी प्रकार शिक्षण व्यवसाय का ज्ञान प्राप्त न करने वाला व्यक्ति भी उसमें असफल सिद्ध होता है।

गिजू भाई कहते हैं कि हमारे यहाँ तो अभी तक अध्यापन व्यवसाय के ज्ञान से रहित शिक्षकों ने ही शिक्षण-कार्य किया है, इसीलिए हमारे देश की शिक्षा में सुधार नहीं हो पाए हैं। जिन-जिन विषयों को उन्होंने पढ़ा है, उनमें शिक्षण-कार्य करना सबने सरल माना। यही कारण है कि उन विषयों में न वस्तु के स्तर पर परिवर्द्धन हुआ, न शिक्षण-पद्धति के स्तर पर। अब समय बदल गया है। राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से कौन-कौन से विषय सिखाए जाने चाहिए तथा कैसी शिक्षण-पद्धति अपनानी चाहिए, ये प्रश्न हमारे सामने खड़े हुए हैं।[1]

देश में उस समय प्रशिक्षित अध्यापकों की बड़ी कमी थी। अतः गिजू भाई ने इस बात पर बल दिया था कि प्रशिक्षण संस्थायें खोलकर इस कमी को पूरा किया जाये।[2]

शिक्षण व्यवसाय का महत्त्व:-किसी भी व्यवसाय से जुड़ने वाले व्यक्ति में उससे सम्बन्धित योग्यता होनी चाहिए। योग्यताविहीन व्यक्ति व्यवसाय में टिक ही नहीं सकता। गिजू भाई प्रश्न करते हैं कि इन सबके बावजूद ऐसी हालत क्यों है हमारी? कारण स्पष्ट है कि हम अपने व्यवसाय को विकसित नहीं करते। हम अपनी अस्मिता का पोषण नहीं करते। हम सच्चे शिक्षक बनना नहीं चाहते। सच्ची चीज की हर किसी को जरूरत है। जिसे डॉक्टर और वकील की जरूरत है उसे हजार गुणा बढ़कर सच्चे शिक्षक की जरूरत है। हम सच्चे शिक्षक बनेंगे, इसका अर्थ यह है कि लोग हमें घर पूछने आएँगे, हमारे पैर धोयेंगे। हमें घर-घर भटकना नहीं पड़ेगा। प्राचीनकाल के ऋषि-मुनियों के यहाँ राजकुमारों को भी पढ़ने के लिए जाना पड़ता था, यही नहीं उनको वहां गुरूजनों की सेवा करनी पड़ती थी। वह स्थिति आज वापस आ सकती है, पर इसके लिए हमें अपने व्यवसाय को विकसित करना चाहिए।

शिक्षकों से वे पूछते हैं कि क्या हम अपने व्यवसाय के विकास पर आज ध्यान दे रहे हैं? वे स्वीकार करते हैं कि नहीं। हमारे पास ज्ञान की पूंजी कुछ भी नहीं है। श्रेष्ठ विद्वान् की बात तो छोड़िये हम साधारण विद्वान् भी नहीं। साहित्यकार तो क्या, पर शुद्ध भाषा लिखने वाले भी हम में अधिक नहीं है। ज्ञान का खजाना तो क्या, हम तो लगभग अति अल्प ज्ञानवान हैं। भला ऐसे ज्ञानहीन को कोई शिक्षक के नाम से पुकारेगा? डॉक्टर को अगर डॉक्टरी का ज्ञान नहीं होगा तो उसे डॉक्टर कहेगा भी कौन? वस्तुस्थिति से गिजू भाई मुँह नहीं चुराते। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि सामान्य

1- गिजू भाई बधेका – ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 25

2- वही, पृ0 26

ज्ञान में हम लगभग शून्य-प्राय हैं। यही नहीं, पर हमें जो विषय पढ़ाने हैं उनमें भी पाठ्य पुस्तकों जितना भी हम शायद ही जानते हों। हम इतिहास, भूगोल आदि विषयों को जितना कुछ जानते हैं, उनसे अधिक क्या हमें नहीं जानना चाहिए? पढ़ाने की पद्धति को लेकर भी हमने कितना चिंतन किया है? आज जो नयी-नयी शिक्षण पद्धतियाँ दुनियाभर में प्रचलित हैं और जिनकी वजह से शिक्षण का काम सरल हो गया, क्या हम उन्हें सचमुच जानते हैं? वे पूछते हैं कि हमारा बोदा-पुराना ज्ञान अब कहाँ तक चल पाएगा? जब तक हम इस बोदी-पुरानी पगड़ी, पुरानी धोती, पुराने ढंग की हजामत और पढ़ाने की पुरानी पद्धति को नहीं छोड़ेंगे और नयी पद्धति को ग्रहण नहीं करेंगे, तब तक कोई भी हमारी कद्र नहीं करेगा और यह बात वाजिब भी है।[1]

वस्तुस्थिति को उजागर करते हुए गिजू भाई उसमें परिवर्तन लाने के लिए शिक्षकों को प्रेरित करते हुए कहते हैं कि चाहे हमको पूरा वेतन मिले या न मिले, चाहे लोकमत हमारे पक्ष में हो या विरुद्ध, चाहे हमारा सम्मान होता हो या नहीं, परन्तु हमें तो अपने व्यवसाय में कुशल होना ही चाहिए।

हमारा भी एक व्यवसाय है। हमारे आलस्य और नासमझी के कारण आजकल लोगों में इसे वांछित स्थान नहीं मिल पा रहा है। पर हमारे इस व्यवसाय को अन्य तमाम व्यवसायों की तुलना में ऊँचा स्थान प्राप्त है और यह ऊँचा स्थान लेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। अतः हमें भी इसके अनुरूप योग्य बनना है। हमें अपने मन से यह भावना निकाल देनी चाहिए कि बाल-वर्ग याने नगण्य-प्रायः वर्ग। शिक्षक समुदाय में अधिक से अधिक जिम्मेदारी बाल-वर्ग को संभालने वाले शिक्षकों की है। अधिक से अधिक मुश्किल काम नन्हें बालकों को शिक्षित करने का है। लेकिन जिन बालकों को जो बातें पढ़ानी हैं उन विषयों का हमें अच्छा ज्ञान हो और उन्हें पढ़ाने की पद्धति से हम वाकिफ हों तो यह काम अत्यन्त आसान हो जाता है। अपने काम के लिए अधिक से अधिक तैयारी बाल-शिक्षक को करनी है।

शिक्षक सतत् अध्येता है। उसमें निरन्तर सीख की ललक हो। गिजू भाई का मानना है कि अध्यापक हमेशा स्वयं को विद्यार्थी मानकर चलेगा तो वह अच्छा अध्यापक बन सकेगा। विषय का ज्ञान होने के साथ-साथ उसे शिक्षण-पद्धति का भी ज्ञान होना चाहिए।[2]

मुख्य कठिनाइयाँ:-

गिजू भाई का कहना था कि राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए ऐसे प्रयत्न तत्काल चारों ओर किये जाने चाहिए और सामने की तमाम कठिनाइयों का मुकाबला किया जाना चाहिए। आने वाली कठिनाइयों में वे दो कठिनाइयां मुख्य मानते थे - एक तो यह मान्यता कि शिक्षाशास्त्र का

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 60

2- वही, पृ0 44-45

ज्ञान प्राप्त किये बिना अनुभव से शिक्षक बना जा सकता है, और दूसरी, श्रम के प्रति देशवासियों में अनादर की भावना।

गिजू भाई की दृढ़ मान्यता थी कि मात्र अनुभव के आधार पर कोई शिक्षक बन सकता है, यह एक भ्रान्ति है। भ्रान्ति ही नहीं, एक विषैला विचार है। उनके अनुसार जन्मजात शिक्षक तो इस संसार में बहुत कम होते हैं, बल्कि कहें कि सौभाग्य से ही होते हैं। वस्तुत: ऐसे शिक्षकों का अनुभव ही प्रामाणिक अनुभव कहा जा सकता है। दूसरे अध्यापक तो साधारण मनुष्य हैं। वे तो प्रयास द्वारा ही शिक्षक बन सकते हैं। वे कहते हैं कि आजन्म शिक्षकों के लिए भी शास्त्र का ज्ञान जब उपयोगी और आवश्यक है तो सामान्य शिक्षकों की तो बात ही क्या? अनुभव से शिक्षक नहीं, अशिक्षक बनना सम्भव है। वे उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं कि - "मुझको अमुक विषय का अनुभव है, इसका यही अर्थ है कि यह काम मैं बहुत समय से करता आया हूं। अनुभव के इस अर्थ में मेरा काम सही है अथवा गलत, यह जानने का कोई प्रयास नहीं है। अगर वह सही काम हुआ और बहुत समय से करने की वजह से मुझको सही काम करने का अनुभव प्राप्त है, पर अगर वह काम गलत है तो बहुत समय से मेरे द्वारा गलत काम किये जाने की वजह से मुझको गलत काम करने का अनुभव प्राप्त है, यही कहा जाएगा।" शिक्षण-कार्य करने वाला व्यक्ति सामान्य रीति से प्रकृति-सिद्ध शिक्षक नहीं होता। अपने ढंग से काम करने के कारण वह अधिकांशत: अपनी ही गलतियों को बार-बार दोहराता जाएगा, यही सम्भव है। अतएव उसके अनुभव का अर्थ है गलतियों की दृढ़ परम्परा। अगर कोई व्यक्ति यह समझना है कि अनुभव के कारण उसको शिक्षाशास्त्र के ज्ञान की आवश्यकता नहीं है, तो यह उसकी बड़ी भूल है। गिजू भाई के अनुसार अगर इसी धारणा की बदौलत कोई शिक्षक शिक्षाशास्त्र का ज्ञान अर्जित करने के विरुद्ध हो तो वह शिक्षक बनने लायक है अथवा नहीं, यह विचारणीय प्रश्न है।[1]

एक मात्र शिक्षा शास्त्र का ज्ञान ही अच्छा शिक्षक बनने हेतु पर्याप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त भी एक शिक्षक में क्या होना चाहिए। गिजू भाई के शब्दों में "मेरे कहने का यह आशय नहीं है कि एकमात्र शिक्षाशास्त्र के ज्ञान से ही कोई व्यक्ति अध्यापक बन सकता है। जिस तरह से विधिशास्त्र के ज्ञान द्वारा कोई व्यक्ति विधिवेत्ता नहीं बन सकता; तो यही बात शिक्षक के साथ है। उसमें और भी अनेक गुण होने चाहिएँ। इन गुणों के अभाव में सामान्यजनों को इस व्यवसाय पर कब्जा करके अथवा शिक्षण संस्थाओं द्वारा ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करके देश को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिए।"[2]

गिजू भाई की दृष्टि में एक अन्य कठिनाई है शिक्षक बंधुओं में परिश्रम का अनादर करने

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 26-27

2- वही, पृ0 28

की भावना। वे इसे कोई कठिनाई नहीं अपितु एक दुर्गुण मानते हैं। इसको दूर हटाना ही जाना चाहिए। वे कहते हैं कि अगर देश की भलाई के लिए समझदार व्यक्तियों में परिश्रम करने की वृत्ति न हो अथवा यह काम उनके शरीर के प्रतिकूल हो, तो ऐसे व्यक्तियों को जाने-अनजाने शिक्षक-व्यवसाय में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। इतना विवेक होगा तभी देश के कल्याण स्वरूप इस व्यवसाय में तेजस्विता आ सकेगी। सरकार ने शिक्षक तैयार करने के निमित्त संस्था (प्रशिक्षण संस्था) स्थापित की है, पर उससे देश को जिस तरह के शिक्षकों की जरूरत है, वैसे कभी नहीं मिल सकेंगे।[1]

गिजू भाई की यह पूर्व घोषणा सत्य सिद्ध होती दृष्टिगोचर हो रही है। एक आदर्श शिक्षक का निर्माण करने में वर्तमान शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान अक्षम सिद्ध हुए हैं।

शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में राज्य का कर्तव्यः-

शिक्षण अथवा हर तरह के व्यवसाय में संलग्न व्यक्ति को अपने धंधे को उन्नत बनाने में और उसमें सफलता प्राप्त करने के लिए हमेशा अद्यतन रहना पड़ता है। व्यवसाय में आने वाले नित नए अनुसंधानों की जानकारी न रखने वाला व्यक्ति पीछे रह जाता है और उसकी हिम्मत घटती चली जाती है। गिजू भाई सावधान करते हैं कि विशाल शिक्षक वर्ग वाला शिक्षा विभाग भी अगर अपने अध्यापकों को आगे बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करता तो विभाग अपने-आप पिछड़ता चला जाएगा और अन्य विभागों की तुलना में वह तुच्छ समझा जाएगा। इस नाते अध्यापकों को अध्ययन और उनका ज्ञान अद्यतन होना आवश्यक है।

गिजू भाई उम्मीद करते हैं कि अध्ययन की ऐसी व्यवस्था फिलहाल तो विभाग को ही पूरी करनी है। गरीब अध्यापकों की शैक्षिक समुन्नति की उत्कंठा विभाग को ही होनी चाहिए। शिक्षा के सदाशयी अधिकारी शिक्षकों के निमित्त श्रेष्ठ अध्ययन का स्थायी प्रबंध करके उनकी क्षमता को विकसित कर सकेंगे, गिजू भाई यह आशा करते हुए इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव देते हैं-

(1) अंग्रेजी एवं अन्य भारतीय भाषा में प्रकाशित शिक्षा सम्बन्धी अच्छे उपयोगी लेखों का चयन करके उन पर वांछित टिप्पणी लगाकर प्रति माह विभाग की ओर से शिक्षकों के पास भेजे जाएं। प्रत्येक अध्यापक उन्हें पढ़े और अपनी फाइल सुरक्षित रखें।

(2) शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारियों को, यदि आर्थिक व्यवस्था सम्भव हो सके तो विभाग की तरफ से एक पत्र प्रकाशित करना चाहिए। पत्र में शिक्षा सम्बन्धी चर्चा-परिचर्चा हो, लघु लेख हों और शिक्षाधिकारी भी शिक्षा सम्बन्धी अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकते हैं। अच्छे लेखकों से उनके दृष्टिकोण का समर्थन-विवेचन करने योग्य पुस्तकें लिखवाकर पुस्तकालय में हे

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 27

तो शिक्षकों के उपयोगी अध्ययन-वाचन की कमी को पूरी हो सकेगी।

(3) अगर शिक्षा का विभाग प्रत्यक्ष रूप से कुछ न कर सके तो शिक्षकों के लिए शैक्षिक पत्रिकाएं और पुस्तकें तो अवश्य उपलब्ध कराये। प्रत्येक विद्यालय के लिए एक पुस्तकालय और वाचनालय की आवश्यकता है। लेकिन अगर कहीं यह व्यवस्था सम्भव न हो सके तो वहां पांच विद्यालयों के बीच एक केन्द्रीय पाठशाला तय करके पुस्तकालय-वाचनालय स्थापित किया जाये। आसपास के गांवों के पांच अध्यापक बारी-बारी से उससे लाभान्वित हो सकते हैं।

इस सम्बन्ध में विभागीय दायित्व की महत्ता को गिजू भाई अत्यन्त सुन्दर शब्दों अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि जिस तरह से पानी और खाद के अभाव में पेड़-पौधे सूख जाते हैं, फल नहीं देते या प्रतिकूल फल देते हैं, वैसे ही अगर शिक्षा विभाग अपने गाँवों में दूर-दूर तक काम करने वाले शिक्षकों को अध्ययन-वाचन की उत्तम सामग्री नहीं भेजेगा तो यही हालत होगी और अगर वह ऐसी सुव्यवस्था कर देगा तो गाँव के अध्यापक ज्ञानगत शुष्कता से बच सकेंगे और धीमे-धीमे नये सिरे से नव-पल्लवित होने लगेंगे।

4.8 शिक्षक-छात्र सम्बन्ध

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का स्वरूप शिक्षक-छात्र सम्बन्धों की प्रकृति पर निर्भर होता है। एकतांत्रिक, जनतांत्रिक एवं हस्तक्षेपरहित शिक्षण-व्यवस्था में शिक्षक-छात्र सम्बन्धों का यह स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है।

एकतांत्रिक शिक्षण में शिक्षक की भूमिका प्रमुख होती है, छात्र की नगण्य। कक्षा की बागडोर पूरी तरह शिक्षक के हाथ में होती है। छात्र-शिक्षक अन्तःक्रिया लगभग शून्य होती है। उदाहरणार्थ, व्याख्यान विधि में शिक्षक ही विषय वस्तु का चयन करता है, उसे व्यवस्थित करता है तथा कक्षा में छात्रों के सम्मुख भाषण के रूप में प्रस्तुत कर देता है। छात्रों को मूक श्रोता बन कर बैठे रहने के अतिरिक्त कुछ नहीं करना होता। गिजू भाई कहते हैं कि यदि हम इस स्थिति पर विचार करते हैं तो हमारे ध्यान में यह बात आती है कि इसमें शिक्षक की भूमिका नौकर की और शिष्य की भूमिका सेठ की बन जाती है, क्योंकि इसमें शिक्षक शिष्य के लिए सब-कुछ करता है और शिष्य तो आराम के साथ बैठा-बैठा सुनता भर है। जिस तरह कोई पिता अपने बालक के बदले उसका भोजन खुद ही चबाकर उसके पेट में डालता है और उसकी पोषण देने का हास्यापद और व्यर्थ प्रयत्न करता है, उसी तरह इस पद्धति में शिक्षक शिष्य के बदले सब कुछ उसके दिमाग-रूपी पेट में ज्ञान-रूपी खुराक पहुंचाने का व्यर्थ प्रयत्न करता है। इस पद्धति में शिक्षक शिष्य को सिखाता ही रहता है, किन्तु शिष्य शिक्षक से कुछ सीखता नहीं है। शिक्षक हमेशा अपने काम का हिसाब भी इसी तरह लगाता है कि

उसने अपने शिष्य को क्या सिखाया।

गिजू भाई के अनुसार हम किसी घड़ी के पैंडुलम को रोक लें और अपनी उंगली से उसके कांटे डायल पर घुमाएँ तो इससे घड़ी तो नहीं चल पाएगी, हम ही काँटों को चलायेंगे। बस, वह चलती हुई दिखाई अवश्य देगी। कई अध्यापक इसी तरह विद्यार्थियों की अपनी चेतना की गतिमयता को पकड़कर रोक देते हैं और स्वयं विद्यार्थियों की सुइयों को चलाते हैं। वे अपनी मनचाही बातें उनके मस्तिष्क में ठूंसते हैं। इससे विद्यार्थियों को कुछ भी नहीं मिल पाता। शिक्षण की प्राचीन पद्धति की तुलना उपर्युक्त घड़ी से की जा सकती है जबकि नई शिक्षण पद्धति की तुलना एक ऐसी घड़ी से की जा सकती है, जिसे मात्र चाबी दी जाती है और उसका सारा काम अपने-आप चलने लग जाता है। हमें उसे छूने तक की जरूरत नहीं पड़ती। एक बार चावी भरते ही घड़ी के पुर्जों में एक सम्बन्ध गतिमान हो जाता है और घड़ी चलने लगती है। फिर चलने और चाबी देने वाले के बीच कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। इसी तरह नई शिक्षण विधि में शिक्षक एक बार दिशा बता देता है, फिर तो स्वयं शिक्षण का काम स्वत: चलने लगता है। तब शिक्षक और शिक्षार्थी के मध्य परस्पर अवलम्बन का सवाल ही शेष नहीं रह जाता।[1]

शिक्षक द्वारा बालकों के मस्तिष्क को सूचनाओं से भर दिया जाता है। सूचनाओं के प्रत्यास्मरण कराने मात्र को ही पर्याप्त मान लिया जाता है। इस प्रकार छात्र में उच्चतर मानसिक क्षमताओं का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। गिजू भाई कहते हैं कि हम लोग शायद ही कभी बालकों को अपने आप सोचने देते हैं। हर समय हम ही उन्हें बताते रहते हैं, उन्हें सूचनाएं व निर्देश देते रहते हैं, तब भला वे स्व-प्रेरणा को कैसे पहचानें? उनमें विद्यमान स्वाभाविक प्रेरणा समाप्त हो जाती है और वे पर-प्रेरणा के अधीन होने के कारण स्वयं को प्रकाशित करने के बजाय दूसरों को प्रकाशित करते हैं। हमारे बालकों में स्वयं की प्रतिभा न होने का एक बड़ा कारण यही है। शिक्षण के प्रत्येक विषय में बड़ी उम्र के व्यक्ति ने छोटी उम्र के बालक या व्यक्ति पर हमला किया है, यही कारण है कि आज हमारी मानवीय सृष्टि में इतना बौनापन नजर आ रहा है।[2]

शिक्षक को छात्र के व्यक्तित्व में आस्था रखनी चाहिए। वह उसके गुणों को पहचाने, क्षमताओं को सम्मान दें, उनके विकास के अवसर उपलब्ध कराये। गिजू भाई का कथन है कि मनुष्य का सृजन एक बुद्धिजीवी के रूप में हुआ है, अत: जैसे-जैसे वह बुद्धि सम्बन्धी कार्य करता जाता है, वैसे-वैसे उसे उनसे शांति मिलती जाती है। जब बालक अव्यवस्थित और असंबद्ध कार्य करता है तब उसके स्नायु-बल पर बहुत मेहनत पड़ती है, उल्टे, बुद्धि-युक्त कार्यों से उसकी शक्ति पर्याप्त बढ़ती है, कई गुणा अधिक हो जाती है, उसे आत्म-विजय का सात्विक अभिमान आ जाता है, पहले जो क्षेत्र लांघ

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 142

2- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 28

पाना असंभव-सा लगता था, अब वह उसकी मर्यादा से बाहर जा सकता है। इस बात का जैसे ही उसे भान होता है वैसे ही अपने शिक्षक के प्रति, जिसने उस पर अपने व्यक्तित्व का बोझ डाले बिना उसे शिक्षित किया था, सम्मान का भाव पैदा हो जाता है।[1]

गिजू भाई मॉण्टेसरी के इस कथन को उद्धृत करते हैं - 'जीवन को विकसित करने के लिए खिलने की स्वतंत्रता देकर उसे मात्र प्रेरणा देने का कर्तव्य शिक्षाविदों का है। यह नाजुक काम अत्यन्त कौशलपूर्वक होना चाहिए। शिक्षक की सहायता मर्यादित ही रहनी चाहिए ताकि जो आत्मा जीवन की सम्पूर्णता की ओर बढ़ रही है उसे वांछित गति मिल सके। ऐसी सहायता न तो विकास को अव्यवस्थित करती है, न उसे मार्ग-भ्रष्ट करती है। यह कौशल वैज्ञानिक कार्य-पद्धति से रहित नहीं होना चाहिए'। वे कहते हैं कि जब इस तरह शिक्षक प्रत्येक बालक की आत्मा को अपनी आत्मा से छुएगा तथा स्वयं एक अदृश्य ताकत बनकर बालक में चेतना तथा जागृति पैदा करेगा, तभी शिक्षक प्रत्येक बाल-आत्मा का गुरू बनेगा और फिर उसकी आज्ञा, उसका शब्द या मात्र संकेत ही बालक को चाहे जैने नचाने लगेगा। ऐसा शिक्षक प्रत्येक बालक को अपने प्राणों जैसा ही प्राणवान लगेगा जिस तरह बालक अपने प्राणों को पहचानता है और उनकी आज्ञा सुनता है वैसे ही वह गुरू के प्राणों को पहचानेगा और उनके आदेशों का पालन करेगा। संकेत मात्र में प्रेम व नम्रतापूर्वक बालक को आदेश पालन में तत्पर व आग्रही देखकर शिक्षक को भी आश्चर्य होगा। उधर बालक यह मानेंगे कि यही हमारा जीवनदाता है अतः नया जीवन प्राप्त करने के लिए इसी के पास जाना चाहिए। नये प्राण देने वाला यही है।[2]

गिजू भाई चाहते हैं कि शिक्षक यह समझे कि वह बालकों की स्व-स्फुरित गतिविधियों को न रोके, न ही अपनी मर्जी के काम उन पर लादे। अलबत्ता, बालकों के निरर्थक और जोखिमपूर्ण कार्यों को शिक्षक हर्गिज न पोषे। वह इन्हें दबा दे या समाप्त कर दे। परन्तु इस सम्बन्ध में शिक्षक को तालीम लेनी चाहिए, योग्य एवं अयोग्य निर्णय का सूक्ष्म विवेक उसे अपने भीतर विकसित करना चाहिए।[3]

वे कहते हैं कि सच पूछें तो हमें बाल-मन का अता-पता ही नहीं है। इस विषय में ज्ञान की बजाय हमें अज्ञान अधिक है। इस सम्बन्ध में हमारे वहम, शंकाएँ और आशंकाएँ बहुत अधिक हैं। बालक में भी हमारे जैसी ही मानवीय आत्मा है, इस भावना से हमने कभी उसके साथ व्यवहार नहीं किया। उसके आभ्यंतरिक विकास का स्पर्श करने तथा उसकी सहायता करने की बजाय अब तक हमने बालक को बल से या बाहरी अनुशासन लाद कर ही नियंत्रित रखने की इच्छा की है। इसी का नतीजा हम भोग रहे हैं। बच्चे हमारे साथ हमारे बीच ही रहते हैं, फिर भी हम उन्हें पहचान नहीं पाते

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 38
2- वही, पृ0 89
3- वही, पृ0 46

और वे हमारे सामने आत्मा को प्रकट करने में असमर्थ हो गये हैं। लेकिन जिस कृत्रिमता से हमने उनको घेर लिया है, जिस जुल्म और सख्ती के माध्यम से हम उनमें अनुशासन लाने की कोशिश कर रहे हैं, उस कृत्रिमता और सख्ती को हम दूर हटा देंगे-समाप्त कर देंगे, तभी हमारे बच्चे अपना वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए हमारे सामने आ सकेंगे, तभी हम उनकी भलाई का युक्तिसंगत मार्ग तलाश कर सकेंगे। हम और बालक एक-दूसरे के बहुत समीप आएं, इसी में हमारा, बालकों का तथा पूरे विश्व का कल्याण समाहित है। इस बात को शिक्षक जल्दी समझ सकें, यही कामना है।[1]

गिजू भाई दो अध्यापकों के वार्तालाप के माध्यम से छात्र-शिक्षक सम्बन्धों को स्पष्ट करते हैं। एक अध्यापक कहता है कि मैं कक्षा में प्रसन्नचित्त होकर जाऊँगा। विद्यार्थियों के नमस्कार को प्रेमपूर्वक स्वीकार करूँगा। मैं उनके बीच बैठूँगा और उनकी खैर-खबर पूछूँगा। मैं विद्यार्थियों के कपड़ों, उनकी आँखों और नाखूनों को देखूँगा और उन्हें साफ कराऊँगा। इसके बाद मैं सबसे कहूँगा कि 'अब आओ, हम आँखें बन्द करके शान्तिपूर्वक बैठें।' उस समय मैं एकाध भजन गाऊँगा या फिर एकाध कहानी कहूँगा। हँसते-मुस्कराते हुए मैं विद्यार्थियों से कहूँगा कि 'अगर तुम लोगों ने अपने पाठ तैयार न किये हों तो अब कर लो।' जो विद्यार्थी काम करके ले आएँगे, मैं उनका काम देखने के लिए उनसे ले लूँगा। काम करके लाने वाले बालकों को मैं दूसरे बालकों को समझाने के लिए भेज दूँगा। जब सबों का काम पूरा हो जाएगा तो हम साथ-साथ खेलेंगे और फिर सब मिल-बैठकर प्रार्थना करेंगे और घर जाएंगे।[2]

इसके विपरीत दूसरा अध्यापक स्वीकार करता है - विद्यार्थियों को मैं मात्र नाम से जानता हूँ या इस तरह से कि अमुक-अमुक को पाठ याद है, अमुक-अमुक को नहीं। उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि कैसी है, मैत्री कैसी है, मनोवृत्ति कैसी है आदि को लेकर मैं कुछ भी नहीं जानता। उनके और मेरे बीच नजदीकी सम्बन्ध हैं भी नहीं। उनकी बुद्धि की तो कुछ जानकारी है मुझे, पर उनके हृदय के सम्बन्ध में मैं अज्ञात हूँ। प्रथम कौन है और अन्तिम कौन है, यह मैं देखता हूँ पर उनकी शारीरिक शक्ति एवं अशक्ति का मुझे अता-पता नहीं। जो विद्यार्थी काम करके ले आते हैं वे होशियार हैं और वे मुझे अच्छे लगते हैं, बाकी के ठोट मुझे बिल्कुल पसंद नहीं आते। उनका मेरे प्रति या मेरा उनके प्रति कोई विशेष प्रेम या अनुराग नहीं। ऐसे में हम परस्पर विश्वास तो पाएंगे ही कैसे? वे मुझसे डरते हैं, तो मैं उन पर अधिकार जताता हूँ। विद्यालय छोड़ने के बाद किसी अपमान करने वाले विद्यार्थी को तो छोड़ दें, और शायद ही कोई याद आता होगा। वे अपने घर भले, मैं अपने घर। लेटे-लेटे उनके बारे में यह विचार जरूर आता है कि अब परीक्षा आने वाली है, फटाफट दोहराने का

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 89

2- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 107

काम करा दूं, इसलिए रिसेस में भी काम कराना है। बालकों के घर मैंने नहीं देखें, पर अपना घर भी उन्हें नहीं दिखाया। ऐसा कोई सम्बन्ध मैंने रखा तक नहीं।[1]

दोनों शिक्षकों के कथनों से उनके हृदय में छात्र-शिक्षक सम्बन्धों की धारणा कैसी होगी, सहज अनुमान लगाया जा सकता है। जिस प्रकार से बालकों को अपने विकास के निमित्त बातचीत करने की जरूरत पड़ती है, उसी प्रकार शिक्षकों को भी शैक्षिक दृष्टि से उनका अध्ययन करने के लिए उनसे बातचीत करने की जरूरत पड़ती है। जरूरत भिन्न-भिन्न दृष्टि से है, फिर भी दोनों के लिए ही व्यापार स्वीकारने की आवश्यकता है। विद्यालय एक प्रयोगशाला है। बालक का अवलोकन करना इसका प्रमुख व्यवसाय है। संगीत, खेल आदि प्रवृत्तियों के द्वारा एक तरह का अवलोकन होता है, बातचीत अवलोकन का एक विशेष साधन है। इसका बहुत मूल्य है। बातचीत के द्वारा बालक की पसंद-नापसंद का पता लगता है, उनकी भाँति-भाँति की प्रवृत्तियों के हेतुओं को जान सकते हैं, बालक के मित्र-अमित्र कौन हैं और किन कारणों से हैं, किनके बिना उनका काम चलता नहीं, कौन उनका सच्चा मार्गदर्शक है, और कौन किसके कितना अधीन है तथा अपने अधीन है, ये सारी बातें बातचीत के द्वारा ही जानी जा सकती है। आज़ वह घर के कैसे वातावरण से आया है, भीतर से प्रसन्न है या अप्रसन्न, आदि बातें भी जानी जा सकती हैं। अलग- अलग लोगों के प्रति उसकी भावना, वस्तु के प्रति चाह व समझ, अलग-अलग घटनाओं का उसके मन में कैसा अर्थ है, अलग-अलग प्रसंगों की उसके मन पर कैसी छाप पड़ी हुई है, उसकी सत्य- असत्य की, पाप-पुण्य की कल्पना कैसी है, ये सब बातें बातचीत के द्वारा ही शिक्षकों के हाथ लगती हैं।

सामान्यतया बालक बड़ों से डरते हैं, इसी से स्वतंत्र वातावरण में भी बालक शिक्षक से डरता हुआ देखने में आता है। वह उसमें विश्वास नहीं करता, उससे दूर भागता है, उससे अपनी जरूरत की चीज मांगने में संकोच करता है। बातचीत का प्रसंग ऐसा है कि बालक धीरे-धीरे ये सब बातें छोड़ता जाता है।

कई बालक मूलतः शर्मीले होते हैं। दूसरों से कम बोलना या न बोलना ये उनकी विशेषताएँ होती हैं। जहाँ सब बालक शिक्षकों के साथ बातचीत करते देखने में आते हैं वहाँ ऐसे बालक व्याकुल-से एक कोने में जा बैठते हैं। जब शिक्षक बालकों की भोली-भाली बातों को 'हाँ' 'हूँ' करके प्रेमपूर्वक, मधुर-स्वाभाविक हास्य के साथ सुनता है, तो बाल-हृदय के कपाट खुल जाते हैं, उसका अंतःप्रवाह शिक्षक पर ढुलकने लगता है और शिक्षक के कानों व हृदय को भरकर उसे खुश कर देता है। फिर बातचीत का सामूहिक प्रसंग एकाकी बालकों को सामूहिक जीवन सुलभ कराता है। बातचीत के द्वारा शिक्षक बालक के दिल की गहराई में जा सकता है, साथ ही साथ बालक की भाषायी कमियों

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 53-54

तथा उसकी असंस्कारिता आदि को भी जान सकता है। बातचीत के विषयों का उसका क्षेत्र विस्तृत होता जाता है, साथ ही बातचीत के द्वारा अवलोकन तथा अनुभव के क्षेत्र भी उघड़ते जाते हैं।

इस तरह बातचीत से गिजू भाई की दृष्टि में अनेक लाभ होते हैं। सुव्यवस्थित बातचीत के परिणामस्वरूप अभिमुखता और अनुशासन-व्यवस्था के अनेक प्रश्नों का समाधान होता जाता है। दिनभर में ऐसा एकाध मौका आना ही चाहिए। किंडरगार्टन में इसे 'वार्तालाप मण्डल' कहा जाता है। डॉ0 मॉण्टेसरी ने भी इसका समर्थन किया है। इस बात का खास ध्यान रखा जाए कि बातचीत का प्रसंग कहीं घर की शिकवे-शिकायतें न बन जाए और न्यायालय भी न बने। बातचीत में शिक्षक बनावटी न बने। बातचीत के बनावटी अवसर न शोधे। सहज ही जो प्रसंग आ जाए उसका लाभ उठा ले। बातचीत में बालकों की थोड़ी सी भी निंदा या प्रशंसा न की जाए।[1]

जब कोई काम स्वेच्छा से किया जाता है तो शरीर की तमाम शक्तियाँ जागृत रहती हैं, सारा काम उत्साहपूर्वक होता है, और उसके साथ ही साथ सहयोग, शान्ति तथा प्रेम बढ़ता जाता है। सच बात तो यह है कि काम के सामने बालकों को अथवा किसी को आपत्ति नहीं होती। लेकिन जब कोई काम जबरदस्ती सौंपा जाता है तो उस काम का माधुर्य समाप्त हो जाता है और काम करने वाले ठंडे पड़ जाते हैं। उनका विश्वास खो जाता है और अन्त में वे प्राण तक खो बैठते हैं। अत: गिजू भाई कहते हैं कि पारस्परिक सम्बन्धों का माधुर्य बनाये रखने के लिए यह जरूरी है कि बालकों से जबरन काम न लिया जाये।[2]

उनका मानना है कि आज के अध्यापक की मान्यता इस कदर बद्धमूल हो गई है कि विद्यालय में जैसे मात्र वही कुछ क्रिया करने को स्वतंत्र है। अपने विद्यार्थियों की प्रवृत्तियों का गला घोट देने की मानो उसे आदत पड़ गई है।[3]

गिजू भाई शिक्षकों की एक अन्य बड़ी कमी की ओर ध्यानाकर्षित कराते हुए कहते हैं कि जब बालकों से कोई गलती हो जाती है, तो हम बार-बार उनका ध्यान उसकी तरफ इस तरह खींचते रहते हैं कि वे मानने लगते हैं कि गलतियाँ तो उनसे होती ही रहेंगी, और कोई सही-सच्चा काम उनके किए हो ही नहीं पाएगा। जब बालक की मानसिक स्थिति ऐसी बन जाती है, तो वह ज्यादा से ज्यादा गलतियां करता रहता है और ज्यादा उलाहने भी सुना करता है। सच तो यह है कि जिस तरह बालक गलतियाँ करते हैं, उसी तरह कई बार वे गलती नहीं भी करते हैं। अकसर वे कई अच्छे काम भी करते रहते हैं, पर उनके ऐसे अच्छे कामों का कोई हिसाब हम रखते नहीं, और न उन कामों की तरफ कोई ध्यान ही देते हैं। उनको उनके दोष दिखाते रहने को तो हम बराबर तैयार रहते हैं, पर उनके गुण देखकर हम खुश नहीं होते और उन गुणों की ओर उनका ध्यान खींचकर हम उनको गुणों के प्रेमी भी

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 24-25
2- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 103-104
3- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 70

नहीं बनाते। बालकों की अपनी जो अच्छाइयां हैं, यदि हम उनकी कद्र और तारीफ करते रहेंगे, तो उनकी अच्छाइयाँ बराबर बढ़ती रहेंगी। इसके विपरीत यदि हम उनकी कमजोरियों पर ही जोर देते रहेंगे, उन कमजोरियों के लिए उनको उलाहने भी दिया करेंगे, और उनकी इन कमजोरियों को दूर करने की सीधी कोशिश करेंगे, तो उनमें ये कमजोरियाँ मजबूत होती चलेंगी, समझिए कि जड़ जमाकर बैठ जाएंगी।[1]

शिक्षक-छात्र सम्बन्धों पर ही शिक्षण-अधिगम व्यवस्था टिकी होती है। अतः गिजू भाई का मानना है कि हमारे विद्यालय के बालक हमारे गले में आकर न झूमते हों और मित्र बनकर आगे न चलते हों, तो चलेगा, परन्तु अगर वे हमें देखकर दूर-दूर भागते हों, हमसे डरते हों, तो यह नहीं चलेगा।[2]

छात्र-शिक्षक सम्बन्धों का आधार उनका परस्पर प्रेम व आत्मीयता हो, डर या भय नहीं। गिजू भाई कहते हैं कि अच्छे अध्यापक को बालक चाहते हैं और बुरे से बहुत चिढ़ते हैं। उन्होंने एक बार एक बालक से कहा, 'अगर तुमको गुरूजी पीटते हैं तो बड़े होकर तुम उन्हें मत पीटना। ऐसा काम हमें नहीं करना चाहिए।' बालक जोर से बोला, 'मारूँगा, मारूँगा; सौ डंडे मारूँगा।' उनका मत है कि जिस अध्यापक के लिए बालक सौ डंडे की तजवीज सुनाता है उस अध्यापक को तो जिन्दा ही नहीं रहना चाहिए। बालक अब लम्बे समय तक अध्यापकों के साम्राज्य को टिकने नहीं देंगे। या तो वे शिक्षक को सम्पूर्ण प्रेमभाव से स्वीकार करेंगे या फिर पद-भ्रष्ट कर देंगे। उनको शिक्षक तो चाहिए पर खराब शिक्षक नहीं चाहिए। पुराने जमाने से ऐसा ही कुछ चला आ रहा है। उस जमाने के बालक गुरूजी को पसंद नहीं करते, तो तख्ती का जोर से वार करके भाग जाते थे। बाद वाले बालकों ने भाग जाना पसंद नहीं किया क्योंकि उनको लगा कि पाठशाला उनकी भी है। इसलिए वे लोग शिक्षकों को पाठशाला में ही सताने लगे। उनकी कुर्सियों में आलपिनें चुभो देते। लगता है अब ऐसा समय आ गया है कि सारे मिलकर कहीं अध्यापक को कमरे में बंद न कर दें, उनका अन्न-जल बन्द न कर दें। अगर बालक यह मान लें कि पाठशाला हमारी है, हमारे विद्यालय में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है तो निश्चय ही वे शिक्षक के लिए बहुत कुछ करने को तैयार रहेंगे। अध्यापकों को अब दुनिया के राजाओं के सामने अपना ताज उतार देना चाहिए और बालकों की स्वतंत्र सभा का एक सभासद होकर पेश आना चाहिए।[3]

गिजू भाई कहते हैं कि छात्रों के मन में शिक्षक के प्रति पूर्ण निर्भयता होनी चाहिए। अगर बच्चे निर्भय न हों, स्वतंत्र और सुखी न हों तो वे अपना काम सच्चे दिल से दूसरों को नहीं बताते। अगर वे प्रेमपूर्वक मिलने वालों को सारी बातें न समझायें तो देखने वाले को यही लगेगा कि यह ऊपर से

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 28-29
2- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 29
3- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 48

दिखाई देने वाला नियमन सिर्फ दबाव का ही परिणाम है। बाल-मंदिर का उदाहरण देते हुए वे बताते हैं कि यहाँ तो यह देखने में आता है कि छोटे-छोटे बच्चे स्वयं अपने मालिक हैं। वे प्रेमोत्साह में अपने हाथों से शिक्षक के पैरों में लिपट जाते हैं और शिक्षक को नीचे झुकने के लिए विवश करते हैं। शिक्षक लाड़-दुलार से भरकर उनको चूमते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि ये नन्हें-हृदय विकास के लिए कितने स्वतंत्र हैं।[1]

शिक्षक द्वारा टोका-टोकी, डपटना, त्रुटि निकालना छात्रों में उसके प्रति अवज्ञा व अनादर उत्पन्न करने वाला होता है। गिजू भाई कहते हैं कि 'हमें काम करते हुए बालक का सिर्फ अवलोकन करना चाहिए। अगर हमें लगे कि उसके काम की रीति में या साधन में कोई दोष है या त्रुटि है तो हमें पता लगाना चाहिए कि वह किस कारण से है और उस कारण को हमें दूर करना चाहिए। कमी निकालने से काम करना भी बालक रोक देते हैं साथ ही शिक्षक के प्रति अनादर रखने लगते हैं।'[2]

4.9 मूल्यांकन एवं गृहकार्य

शिक्षा-व्यवस्था में मूल्यांकन का सदैव से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वस्तुत: शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई है, इसे जानने का साधन ही मूल्यांकन है। मूल्यांकन एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है तथा यह व्यक्तित्व के सभी पक्षों को आच्छादित करती है। परन्तु विद्यालय में इसे मात्र विभिन्न विषयों में छात्र की अधिगम उपलब्धियों को मापने तक सीमित कर दिया जाता है। जिसके कारण इसकी व्यापकता नष्ट हो जाती है तथा यह गुणात्मक न रहकर मात्रात्मक हो जाता है। वर्तमान समय में छोटे बालकों पर तो परीक्षा के नाम पर बड़ा अत्याचार होता है। प्रति माह प्रत्येक विषय में होने वाले टेस्ट, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक तथा वार्षिक परीक्षाओं के दबाव में उसके जीवन का सुख-चैन छिन जाता है, केवल उसका नहीं, उसके माता-पिता का भी।

गिजू भाई विद्यालयों में परीक्षा के प्रचलित तौर-तरीकों से लेशमात्र भी सहमत नहीं है। वस्तुत: वे परीक्षा जैसी किसी भी चीज का औचित्य ही स्वीकार नहीं करते हैं। मूल्यांकन का अर्थ उनकी दृष्टि में बालक के विकास का तथा शिक्षक का इस विकास में सहयोग देने की शक्ति का मूल्यांकन है।

गिजू भाई का मत है कि परीक्षा केवल बाहरी वस्तु है। इसके द्वारा सिर्फ यही ज्ञात किया जाता है कि विद्यार्थियों ने रट-रटाकर या बहुत हुआ तो समझ-समझ कर कितना कुछ अपने दिमाग में भरा है। परीक्षा के द्वारा विद्यार्थियों की ग्रहण-धारण करने की तथा शिक्षकों की ग्रहण-धारण कराने की शक्ति का तो मूल्यांकन किया जा सकता है, परन्तु वह विद्यार्थियों के विकास को तथा शिक्षक की ऐसी विकास-क्रिया को सहयोग देने की शक्ति का मूल्यांकन नहीं करती। परीक्षा के परिणाम भी

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 135

2- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 43

लाभकारी नहीं होते हैं। गिजू भाई का मानना है कि परीक्षा से अभिमान आता है और निराशा भी। दूसरों की तुलना में बालक आगे आता है उसमें मिथ्याभिमान पैदा होता है और परीक्षा जिसको पीछे रख देती है वह निरुत्साही बन जाता है। कालान्तर में मिथ्याभिमानी और निरुत्साही दोनों की प्रगति को परीक्षा अवरुद्ध कर डालती है; अभिमान जगाकर एक ओर बालकों के लिए ज्ञान के सही मार्ग में अंधकार भरती है, तो दूसरी ओर निरुत्साह पैदा करके विघ्न उत्पन्न करती है।

गिजू भाई की दृष्टि में परीक्षा से विद्यार्थी बहिर्मुखी बनते हैं। वह उन्हें भीतर की तरफ ले जाने की बजाय बाहर की ओर निकालती है। वह उन्हें बाह्य दृष्टि से दूसरों की तुलना में वे कैसे हैं, यह बताती है और बाह्य पैमाने पर उन्हें अपना मूल्यांकन करना सिखाती है। यहीं उनमें स्पर्धा का अथवा ईर्ष्या का मूल विद्यमान रहता है। उनमें दूसरों की हार में अपनी जीत और दूसरों की न्यूनता में अपनी पूर्णता समझ में आती है तथा दूसरों की त्रुटियों की तुलना में अपनी त्रुटियों को ढकने का भाव जगाया जाता है। परीक्षा किसी भी स्थान पर हो, गिजू भाई के अनुसार अवांछनीय फल देने वाली होती है। वे कहते हैं कि परीक्षा शाला में ही नहीं चलती, हमारे घरों में भी तरह-तरह की स्पष्ट-अस्पष्ट परीक्षाएं चलती हैं। यही कारण है कि आज का मनुष्य अपने भीतर का नहीं रहा, बाहर का बन गया। स्वयं अपने लिए जीने की बजाय बाहर के लिए जीता है। आंतर नीति, आंतर धर्म और आंतर शक्ति के बजाय वह बाह्य नीति, बाह्य धर्म और बाह्य शक्ति से विमोहित होता है। बाह्य पैमाने पर स्वयं को मापता है और इसी में संतोष एवं सार्थकता अनुभव करता है। संक्षेप में, वह अपने भीतर से मरकर याने अपनी आत्मा से मरकर, बाहर से याने शरीर से जीता है।

गिजू भाई का मानना है कि जिस व्यक्ति की बाहरी परीक्षा की ही आदत पड़ जाती है, वह दिन-प्रतिदिन दंभी बनता जाता है। उसके मन में हर समय यही ख्याल बना रहता है कि लोग उसके बारे में क्या सोचेंगे, कैसा महसूस करेंगे, कैसा मूल्यांकन करेंगे आदि-आदि। परिणाम यह होता है कि उसे अपनी अंतरात्मा के कथन को रोकना पड़ता है, आंतरिक वेगों को दबाना पड़ता है और अंत में भीतर से शून्य होकर बाहर अकेला पड़े रहना पड़ता है। जिसको बाहरी परीक्षा का विष चढ़ जाता है वह हमेशा भयभीत रहता है, 'हाय राम, अब परीक्षा होगी ! क्या पता पास होऊँगा या फेल? परीक्षा में ऊपर चढूंगा या नीचे गिरूँगा?' इन भूतों से वह बेचारा भ्रमित रहता है। स्कूली परीक्षा का भय जिस क्षण पूरे जीवन में फैलता है तब तो जीवन बिल्कुल कडुआ लगने लगता है। अगर व्यक्ति इस भय से मुक्त नहीं होता तो वह पागल हो जाता है।

दूसरों के द्वारा किये जाने वाले मूल्यांकन के कारण व्यक्ति बाह्य प्रेरणा प्राप्त करता है। अंततः उसका 'नियंत्रण का केन्द्र बिन्दु' भी बाह्य हो जाता है। उसकी समस्त गतिविधियों पर दूसरों का

नियंत्रण हो जाता है। अंत:प्रेरणा समाप्त हो जाती है। गिजू भाई के निम्न शब्दों में यह बात अत्युत्तम ढंग से कही गयी है कि परीक्षा की प्रथा में तैयार होने वाला मनुष्य 'शर्त' के घोड़े जैसा होता है। जब 'शर्त' की जाती है तभी उसमें बल आता है। जिन्दगी के जुए का एक भी प्रसंग उसे आनंद दिये बिना नहीं जाता। जीवन को वह जुए की तरह खेलता है, देखता है, या तो हारेगा या जीतेगा। परीक्षा के दौर से गुजरने वाला व्यक्ति व्यसनी के जैसा होता है। बाहरी दुनिया के सामने खड़े होते समय, या संसार के अपवाद को समझते समय, न जाने कहां से उसके अन्दर नशेबाजों वाला क्षणिक जोश आ जाता है, पर नशा उतर जाने के बाद जिस तरह नशेबाज को टके सेर कोई नहीं पूछता वैसे ही बाहरी उत्तेजना समाप्त होने के बाद वह आदमी भी अशक्त होकर गिर जाता है।

गिजू भाई अपना एक अनुभव बताते हैं कि एक बार उनका एक मित्र उनसे परामर्श लेने आया कि उसका भाई परीक्षा के भय से विद्यालय छोड़ रहा है। मिल में काम करने की जिद कर रहा है। गिजू भाई ने मित्र से कहा : 'अब उसको विद्यालय में मत भेजो। अगर भेजना ही चाहो तो ऐसे विद्यालय में भेजो, जहां परीक्षा न ली जाए।' मित्र कहने लगा : 'ऐसी शाला तो कहीं भी नहीं है। परीक्षा तो सभी विद्यालयों में ली जाती है। ऐसे में क्या करें?' 'तो उसको विद्यालय से उठा लो। परीक्षा के भयंकर डर से वह बचेगा तो उसका भला ही होगा। मिल में अथवा जहां-कहीं भी वह जाना चाहे, उसे जाने दो। अगर विद्यालय में तुम्हारा भाई नहीं पढ़ेगा तो यह बात सही समझो कि वह भूखा तो हर्गिज नहीं मरेगा। यह पूरी दुनिया ही एक शाला है।' मित्र के जाने के बाद गिजू भाई को अपने विद्यार्थी जीवन में परीक्षा के दिनों का स्मरण हो आया। इसे याद करते हुए वे बताते हैं - बाल्यावस्था से परीक्षा का जो 'हाऊ' जीवन के साथ खड़ा हुआ था वह अब तक पीछे लगा है। आज कितनी ही परीक्षाओं को लांघ-लांघकर परीक्षा से तो मैं मुक्त हो गया, पर उसके भय से हर्गिज मुक्त नहीं हो सका। परीक्षा का शब्द सुनते ही शरीर में कंपकंपी छूटने लगती है; शरीर भीगता तो नहीं लेकिन पसीना आ जाता है, दिमाग में खलबली जरूर मच जाती है। यकायक परीक्षा के सपने आने लगते हैं, मानों मैं स्वयं परीक्षा दे रहा हूं। आँखें फाड़े कुर्सी पर बैठे परीक्षक को देखकर मैं घबराने लगता हूं। छाती में घबराहट छा जाती है - हाय, हाय, अब क्या होगा - ऐसा लगने लगता है और मैं चीखता हुआ जैसे हक्का-बक्का होकर नींद से जाग उठता हूँ। इतनी बड़ी उम्र का हो जाने पर भी मेरा डर अभी नहीं मिटा।

वे आगे कहते हैं कि मैं जागकर सोचने लगता हूँ : 'सचमुच, परीक्षा बड़ी भयंकर चीज है। इतने सारे वर्ष बीत जाने पर भी मुझ पर उसका प्रभाव है।' मुझको याद आता है कि हम परीक्षा देने जाते थे तब मार्ग के देव-मन्दिरों में जाकर गिड़गिड़ाते थे : 'हे सरस्वती मैया! परीक्षा में पास कर

दोगी तो आपकी सेवा में पांच दीपक जलाऊँगा।' परीक्षा किस कदर हम लोगों से देवताओं की खुशामद कराती थी? देवताओं तक को लालच देने जाते थे!

अपने एक मित्र के विषय में गिजू भाई लिखते हैं कि मेरे एक साथी कहा करते हैं : 'परीक्षा का नाम ही मत लो। अब भी नींद में मुझको परीक्षा के सपने आते हैं। मानो प्रश्नपत्र मेरे सामने रख दिया गया हो और मैं जल्दी-जल्दी उसको पढ़ रहा हूँ। समझ में कुछ नहीं आ रहा है। क्या होगा अब? फेल हो जाऊँगा तो?' और मेरा शरीर पसीने-पसीने हो जाता है। 'अरे रे, मेरा एक साल बर्बाद हो जायेगा।' ऐसा ख्याल आते ही मैं चीख उठता हूं। मानो मैं जाग उठता हूँ और मुझको ख्याल आता है कि अब तो डरने का कोई कारण भी नहीं है।' मेरे ये मित्र वकील हैं। कचहरी में गवाहों को कंपकंपा देते हैं, पुलिस अधिकारी के सामने जिरह करते हैं और न्यायाधीश के समक्ष सीधे तने रहते हैं, लेकिन बेचारे इस परीक्षा के भूत से घबराने लग जाते हैं। मैंने सोचा था कि विद्यालयों से परीक्षा का भय और उकताहट कम हुई होगी, लड़कों को उसके मारे होने वाला दु:ख अब कदाचित् मिट गया होगा, पर अब भी उसकी पीड़ा वैसी की वैसी विद्यमान लग रही है।

गिजू भाई कहते हैं कि आजकल परीक्षा और परीक्षकों का जोर चलता है। जब तक इनका जोर है तब तक ये निर्भय हैं। लेकिन कल परीक्षा से त्रस्त लोगों का जोर बढ़ेगा, वे इकट्ठे होंगे और परीक्षा से अपने बालकों और भविष्य की पीढ़ी को उबारने के लिए आगे आयेंगे, उस समय शालाएँ तो रहेंगी, लेकिन परीक्षक और उनके साथ परीक्षा का नाश हो जायेगा। आज लड़कों को शाला छोड़कर मिल में जाना पड़ रहा है, कल परीक्षा की इस प्रथा को शाला छोड़कर किसी मिल में जाना पड़ेगा।[1]

गिजू भाई भविष्य में परीक्षा पद्धति को लेकर होने वाले सुधारों को लेकर आशावादी थे तथा मानते थे कि बालकों पर परीक्षा के नाम पर जो अत्याचार होता है, उसके विरोध में स्वर उठेंगे, स्थिति में परिवर्तन होगा। खेदजनक है कि यह दुखद स्थिति यथावत् है अथवा स्पष्ट कहा जाये तो पूर्वापेक्ष अधिक यंत्रणाकारी हो गयी है।

पाठशाला में मिले किताबी ज्ञान की परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए पुस्तकों में उलझा छात्र प्रकृति-प्रदत्त उस स्वाभाविक शिक्षण से वंचित हो जाता है जो उसे जीवन से जोड़ता है, अनुपम नैसर्गिक अनुभवों को प्रदान करता है तथा दिव्यता की अनुभूति तक ले जाता है। गिजू भाई परीक्षा पीड़ित एक बालक के मुख से कहलवाते हैं - "बाहर मजेदार वर्षा बरस रही है। छत से पानी की अजस्र धारा नीचे बह रही है। भैंसे वर्षा में नहा रही है। सड़क पर जहां-तहां पानी ही पानी पड़ा है। इधर-उधर जैसे नदी बह रही है। आकाश में बादल उमड़े हैं। बड़ा ही सुन्दर दृश्य है। मैंने सोचा :

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 89-90

'कितना सुन्दर दृश्य है ! कैसे सुन्दर शिक्षण है यह ! और कहां तो यह पौंड, शिलिंग, पेंस और कहां वह निसर्ग की भव्यता ? कहाँ तो यह कलमुंही परीक्षा और कहां वह विराट् का दर्शन ?[1]

परीक्षा की इस भंवर से छात्र की मुक्ति का कोई उपाय शिक्षा विशारदों व नीति-निर्धारिकों को नजर नहीं आता है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के अपरिहार्य अंग के रूप में परीक्षा को मान लिया गया है। इस सम्बन्ध में एक अवसर पर गिजू भाई अपने डायरेक्टर महोदय से वार्तालाप में कहते हैं- मैंने कहा -'जी, आपकी समस्या वास्तविक है। जब तक चाहे जो विद्यार्थी पढ़ता है और चाहे जो शिक्षक पढ़ाता है, तब तक परीक्षा की आवश्यकता भी रहेगी। परीक्षा हटाई तो तभी जा सकती है, जब विद्यार्थी दिल की उमंग के वश होकर पढ़ने आए और सामने से पढ़ाने में कुशल, कलाकार शिक्षक पढ़ाने की उमंग से पढ़ाने बैठे। लेकिन आजकल की इस 'भड़ैती' स्थिति में तो परीक्षा के प्रवेश की पूरी गुंजाइश है।'

परीक्षा व्यवस्था में कुछ सुधार करने सुझाव देते हुए गिजू भाई कहते हैं कि आज आप केवल छमाही और सालाना परीक्षा लेते हैं, इसके बादले मासिक परीक्षा लेना शुरू कीजिए। यदि विद्यार्थी के लिए परीक्षा की कसौटी पर कसा जाना आवश्यक ही है, तो परीक्षा का जितना विशेष परिचय उसको होगा, उसका त्रास उतना ही घटेगा। अति परिचय से त्रास भी सह्य बन जाता है। दूसरे, परीक्षा होशियार विद्यार्थियों की प्रगति को मापने के लिए नहीं, बल्कि कच्चे और कमजोर विद्यार्थियों को जगाने के लिए उनकी कमजोरी का ठीक पता लगाने के लिए ली जाए। दृष्टि-बिन्दु का यह महत्वपूर्ण परिवर्तन है। तीसरे, जिन विद्यार्थियों को विश्वास हो कि वे अपने विषय को जानते हैं, उन्हें परीक्षा से मुक्त रखा जाए। विद्यार्थी स्वेच्छा से अपनी कमजोरी जंचवाने के लिए परीक्षा दें और हम उनको यह समझा दें कि जो अपनी कमजोरी की जांच नहीं करता, उसको कमजोरी दूर करने का मौका नहीं मिलता। परीक्षा उन्हीं विषयों की ली जाए, जो परीक्षा द्वारा जांचे जा सकते हैं, बाकी विषयों को परीक्षा से मुक्त रखा जाए और परीक्षा के समय विद्यार्थियों को पाठ्य पुस्तकें देखकर उत्तर देने की स्वतंत्रता भी दे दी जाए। हम उनसे कह दें कि जो चीज याद न हो, उसको पुस्तक में देख लो और फिर जवाब दो। जो जबानी कह न सकें, वे किताब देखकर समझाएं। जवाब देते समय विद्यार्थी पाठ्यपुस्तक का कैसा उपयोग करता है, इसी में तो उसकी परीक्षा है। इसके अलावा, हम विद्यार्थियों को तीन श्रेणियों में विभक्त कर दें - ऊपर के दरजे में चढ़ने लायक, नालायक और कमजोर, जो आगे पक्के बनकर चढ़ने लायक हैं। पहले नम्बर पास और दूसरे नम्बर पास का रिवाज ही मिटा दिया जाए। परीक्षा शिक्षकों द्वारा ही ली जानी चाहिए। वे ही अपने विद्यार्थियों की शक्ति को अधिक जान सकते हैं। उनकी अशक्ति के कारणों से भी वे परिचित रहते हैं और ऊपर के दरजे में चल सकेंगे

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 42

या नहीं, इसको भी वे ही बता सकते हैं। हाँ, एक सहायक की आवश्यकता तो है; विद्यार्थियों की परीक्षा लेने के लिए नहीं, बल्कि परीक्षक की परीक्षा लेने के लिए, यह देखने के लिए कि परीक्षक बराबर परीक्षा लेना जानता है या नहीं।"[1]

भारतीय विद्यालयों की मूल्यांकन प्रक्रिया में व्यक्ति के उन गुणों के मूल्यांकन का कोई प्रावधान नहीं है जो जीवन की गुणवत्ता व सफलता के मापदण्ड होते हैं। बालक की विभिन्न शिक्षण विषयों में उपलब्धि, वह भी मात्र ज्ञान स्तर की, का मापन है किया जाता है। उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का समग्र व सतत् मूल्यांकन नहीं। परिणामत: विद्यालय की परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण छात्र जीवन की परीक्षा में असफल हो जाते हैं। कुछ ऐसा ही परिणाम गिजू भाई ने अपने विद्यालय में देखा। घटना वास्तविक थी या कल्पित, यह प्रश्न गौण है परन्तु शिक्षाप्रद अवश्य है, इसमें संदेह नहीं। वे लिखते हैं कि परीक्षा के लिए उनकी शाला पूरी तरह तैयार थी। सब विद्यार्थियों ने इतिहास, गणित, भूगोल, भौतिक विज्ञान आदि विषयों में अथाह परिश्रम करके तैयारी की थी। उन्हें भरोसा था कि उनमें से कोई फेल नहीं होगा। मन में परीक्षक की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं थी। छात्रों में बड़ा उत्साह था। पूरे वर्ष अच्छा काम किया था और आखिरी दिनों में तो बहुत ज्यादा परिश्रम किया था।

परीक्षक साहब आए। वे नए थे। गिजू भाई ने उन्हें प्रचलित रीति से वाकिफ कराया, कार्य पद्धति और परीक्षण-रीति से परिचित कराया। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक सब जान लिया। उन्हें लगा कि अब वे चौथी कक्षा में सवाल लिखकर पांचवी में वाचन करायेंगे, दूसरी कक्षा वालों की अभ्यास-पोथियाँ इकट्ठी करके उन्हें और छोटी कक्षा के बालकों को घर जाने का आदेश देंगे। अभी परीक्षा का काम इस तरीके से चलेगा। लेकिन हुआ कुछ भिन्न तरीके से। साहब ने सब बालकों को कक्षा से बाहर जाने का आदेश दिया और शिक्षक को आज्ञा दी : 'पूरी कक्षा को बाहर लाइए।' वे अचम्भे से देखता रहे पर आज्ञा शिरोधार्य थी। बालकों को काम करने वाली बहन से बाहर बुलवाया गया। साहब बोले : 'कचरा सामने लाया जाए।' कचरे का डिब्बा लाया गया। साहब ने उसको इस तरह गौर से देखा जैसे गणित के सवालों को देखते हों, और परीक्षा-पत्रक में कचरे के सामने शून्य अंक रख दिया। साहब ने मुझसे कहा : 'चलिए, कक्षा में घूम आएं।' साहब ने आँखें फाड़-फाड़कर तमाम दीवारें देखी, कोने-कचौने और खिड़की-दरवाजे देखे। परीक्षा-पत्रक में लिखा : 'स्वच्छता शून्य अंक।' तब साहब ने कहा : 'इस कमरे में बैठिए।' मैं और वे दोनों बैठ गए। बाहर लड़कों ने कोलाहल शुरू कर दिया। जबरदस्त शोर हुआ। अध्यापक उनको चुप करने की कोशिश में थे। साहब ने तीसरे खाने में लिखा : 'शान्ति = 2 अंक, दो अंक कम।'

1- गिजू भाई बधेका - दिवा स्वप्न, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 92-93

साहब ने तो पानी पीने के बर्तन और ढक्कन आदि मंगवाए और देखे। अंक दिये : 5 याने पांच अंक कम। परीक्षक की मुखमुद्रा शान्त व गम्भीर थी, क्रोध न था। साहब उठ खड़े हुए और कक्षा में घूमे। बालकों की टोपियाँ देखीं, कोट देखे, पौशाक देखी, बटन देखे, बाल, नख, हाथ, पैर, मुँह व नाक देखे, दाँत और आँखें देखीं।

परीक्षक ने निरीक्षण पूरा किया और पत्रक में : 20, याने बीस अंक कम लिखे। सुबह का समय पूरा हो रहा था। हँसकर साहब ने कहा : 'आज तो छात्रों को छोड़ दीजिए, कल वापस बुलाएं।' दूसरा दिन हुआ और लड़के आए। सब परीक्षा देने को अधीर हो रहे थे। परीक्षक महोदय ने परीक्षा लेनी शुरू की। इतिहास, भूगोल आदि तमाम विषयों की विधिपूर्वक परीक्षा ली। एक का एक विद्यार्थी पास हुआ। सबों को अच्छे अंक मिले थे। परीक्षक साहब बोले : 'पढ़ाई का काम अच्छा हुआ है, लड़कों ने अच्छी मेहनत की है।'

मेरे चेहरे पर मुस्कान नहीं थी। बीते हुए कल का परीक्षा-परिणाम मेरी आँखों के सामने था। साहब ने दो तरह के परीक्षा-पत्रक भरे -

(1) जीवन की परीक्षा : मुख्य परीक्षा : शून्य परिणाम।

(2) पढ़ाई की परीक्षा : गौण परीक्षा : शत-प्रतिशत परिणाम।

पत्रकों के नीचे दस्तखत करके उन साहब ने उन्हें उच्चाधिकारी को भिजवा दिया।[1]

इस प्रकार गिजू भाई परंपरागत परीक्षा प्रणाली का विरोध करते हैं चूँकि इसका परिणाम लाभ के बजाय हानि के रूप में दृष्टिगोचर होता है। उनकी दृष्टि में मूल्यांकन का श्रेष्ठ स्वरूप 'आत्म-मूल्यांकन' है जिसमें परीक्षक और परीक्षार्थी एक ही होते हैं।

उनका मानना है कि परीक्षा ने व्यक्ति को अपने प्राणों की खोज से रोका है, उसे आत्मज्ञान के मार्ग से अवरुद्ध किया है। फलतः वह अपना सम्पूर्ण जीवन सांसारिक दृष्टि से व्यतीत करता है तथा आत्मज्ञान के बजाय परायों की पंचायती में लगा रहता है। वस्तुतः परीक्षा बाहर की नहीं, आंतरिक होती है। परीक्षा ज्ञान की नहीं, शक्ति की होती है; तथ्यों की नहीं, विकास की होती है; वह दूसरों के लिए नहीं, अपने लिए होती है; और परीक्षक भी बाहर का नहीं, अपितु भीतर का होता है।[2]

विद्यालयों में बालकों के गृह कार्य देना शिक्षकों द्वारा एक अनिवार्य तथा औपचारिक दायित्व समझा जाता है। मानो इसके बगैर उनका शिक्षण कार्य अधूरा रहता है। प्रत्येक शिक्षक अपने विषय में छात्र को गृह कार्य देता है और बालक विद्यालय से घर पहुँचते ही उसे पूरा करने की चिंता से ग्रस्त हो जाता है। घर में माता या पिता यदि गृह कार्य कराने में सक्षम हो और इस हेतु समय दे तो उसे मदद मिल जाती है अन्यथा वह इसे स्व-प्रयासों से ही जैसे तैसे निबटाता है।

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 46-47

2- वही, पृ0 99

गिजू भाई इस स्थिति से भलीभांति परिचित है। वे कहते हैं कि यह गृहकार्य भी एक त्रास है। कितने घंटों तक शाला में रहकर पढ़ना और उसके बाद भी घर लौटकर फिर उसी काम में लगना? शिक्षक तो पढ़ाने में ही थक जाते हैं, लेकिन विद्यार्थियों को तो पढ़ने की और गृहकार्य करने की - दोनों थकानों को सहन करना पड़ता है। शिक्षक तो शाला से छूटे नहीं कि काम निवटा; पर लड़कों के पीछे तो गृहकार्य का भूत लगा ही रहता है, जो न उनको रात में सुख से सोने देता, न सवेरे सुख से खेलने देता।

जब गृहकार्य पूरा नहीं होता तो लड़के अकुलाते हैं, परेशान होते हैं, घबराहट में अधिक से अधिक पढ़ते हैं। जैसे-जैसे वे दु:खी होते जाते हैं तो वैसे-वैसे उनकी मस्तिष्क की दुर्बलता बढ़ती जाती है और वे पढ़ी हुई बातों को भूलते जाते हैं। फिर तो होता यह है कि बिना समझे वे रटते रहते हैं।

गृहकार्य पूरा नहीं हुआ और खाना-खाने का समय हो गया। खाना तो खाना ही पड़ेगा, विद्यालय जाना ही पड़ेगा - इनके बिना छुटकारा ही कहां है? पर गृहकार्य? वह तो पूरा ही नहीं हो पाया। कुछ सवाल करने से रह गए। अभी कविता नहीं आई, मास्टरजी डाटेंगे, नम्बर कट जायेंगे।

गृहकार्य ने बालकों का खुशी-खुशी घूमना-फिरना, हल्के मन से बातें करना, तसल्ली से खाना-पीना, तथा चिंतामुक्त मधुर नींद लेना मानो जीवन के सभी आनंद छीन लिये हैं। गिजू भाई कहते हैं कि अपने घर में या कहीं अन्यत्र जाकर बैठता हूँ और बालकों को जब गृहकार्य में व्यस्त देखता हूँ तो मैं काँप उठता हूँ। कोई बालक इतिहास पढ़ रहा होता है, कोई कविता याद करता है और कोई अन्य किसी पाठ की नकल करता होता है।

गृह कार्य है कि पूरा ही होने में नहीं आता। बेचारा लड़का न तो खेला, न घूमने गया, गृहकार्य करता ही रहा, फिर भी उसको आया नहीं - वह काम नहीं कर सका. इस बात का मास्टरजी को क्या पता लगे? और पता लग भी जाए तो उनको क्या परवाह? उनको डांटने-धमकाने, मारपीट करने या कम्पोजिशन का काम देते कौन रोकने वाला है? और पढ़ने का काम तो आगे चलता जाता है - दूसरे दिन दूसरा पाठ, तीसरे दिन तीसरा पाठ और परीक्षा के दिन तो गृहकार्य के विशाल पर्वत। उनके नीचे कुचलकर विद्यार्थियों को मरना पड़ता है।[1]

आजकल हमारे देश में गृहकार्य को कराने के लिए घर पर बालक के लिए टयूशन रखने का चलन भी दीख पड़ता है। परिणामतः स्कूल तो स्कूल है ही, घर भी बालक को स्कूल नजर आता है। गिजू भाई प्रश्न करते हैं कि क्या हम बालकों को गृह कार्य के इस बोझ से मुक्त करना नहीं चाहते? वे स्वयं ही उत्तर देते हैं कि उपाय तो बहुत हैं, बशर्ते कि मन हो। इस विषय में उनके द्वारा निम्न उपाय

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 100

बताये गये हैं – पहला उपाय यह है कि घर से गृहकार्य करके लाना बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। जितना कुछ बालक के लिए शाला में (लेखन, वाचन, गणित) सीखने को पड़ा है, उससे कहीं अधिक और मूल्यवान शिक्षण सामग्री बाहर पड़ी है – बिना किसी पाठ्यपुस्तक के या बिना कोई पाठ रटे। विद्यालय से लौटकर बालकों को वही पढ़ाई पढ़नी चाहिए। गृहकार्य हर्गिज नहीं देना चाहिए। अगर इससे भी एक कदम आगे बढ़ने का मन हो तो बालक अपने हाथ-पैर लेकर ही शाला में जाएँ और जैसे गए थे वैसे ही लौटकर आएँ। उनकी पाठ्यपुस्तकें आदि सब शाला में रहें।

दूसरा उपाय यह है कि शाला में अच्छी पढ़ाई हो। गृहकार्य देने का मतलब है बालक को उसके लिए तैयार करना और तैयार होने का मतलब है अधिकांशत: रट-रटकर काम पूरा करना। जिस शाला में अच्छी पढ़ाई नहीं होती, वहां रटने पर ही बल दिया जाता है। यह बात सभी अध्यापक जानते हैं। अगर बालक को समझाते हुए पढ़ाया जाता है और बालक भी समझ के साथ पड़ता है तो गृहकार्य कराने की जरूरत ही नहीं पड़ती – यह हमारी अनुभूत बात है। अतएव हम बालक को अच्छी तरह से सिखाएँ, उसके मन में विचार स्थित हो जाए, इस तरह से पढ़ाएं, उदाहरण देते हुए और प्रयोग बताते हुए पढ़ाएँ।

तीसरा उपाय वे यह बताते हैं कि इस भ्रांति को दिलो-दिमाग से निकाल देना है कि जिस बालक को जबानी याद हो वही ज्ञाता है। पढ़ाने में रटने की बात बहुत प्रबल है और इसलिए वह नीरस चीज है। आवश्यक बात है समझना। तोता-रटंत बेकार है। परीक्षा में भी परीक्षक रंटत ज्ञान की अधिक अपेक्षा रखते हैं, उसके बजाय होना यह चाहिए कि वे बालक की बौद्धिक-शक्ति के प्रयोग की अपेक्षा रखें।[1]

चौथा उपाय उनके अनुसार यह है कि बालक को जो कुछ काम कराना हो, शाला में ही कराना चाहिए। विद्यालय-समय का अंतिम घंटा बालकों को दिनभर पढ़े गए पाठों का मनन करने के लिए रखना चाहिए। उस समय उनके अध्यापकजी उनके बीच घूमते रहें और उनकी उपस्थिति में बालक दिनभर की समझायी गई बातों को एक बार फिर से ताजा कर लें। जहाँ उनको कोई बात समझ में न आई हो, वह अध्यापकजी से पूछ लें और दिनभर के ज्ञान को पक्का कर लें। अगले दिन तो अगला पाठ ही पढ़ाया जाना है, उसकी बात अगले दिन ही सोची जानी चाहिए। पहले यह जरूरी है कि शाम को बालक अपने पढ़े हुए ज्ञान को स्थायी बना लें। याने पचाने का काम आज होना चाहिए, यही आज का गृहकार्य है।

बालकों को इस प्रकार काम कराया जाना चाहिए। शिक्षाधिकारियों को ऐसे ही शिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए। वर्तमान में कुछ प्रगतिशील विद्यालयों में 'गृहकार्य' की रूढ़ि को बंद कर

1- गिजू भाई बधेका – शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 101

दिया गया है, परन्तु अधिकतर विद्यालयों में हालात पूर्ववत् हैं।

4.10 विद्यालय

विद्यालय औपचारिक शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र हैं। समाज, चाहे कैसा भी हो विकसित या विकासशील, समृद्ध अथवा निर्धनता के विरुद्ध संघर्षरत् प्रगति एवं विकास में शिक्षा की भूमिका को स्वीकार अवश्य ही स्वीकार करता है। किसी भी देश के विद्यालयों की स्थिति में उस राष्ट्र के वर्तमान एवं भविष्य का अनुमान लगाया जा सकता है। गिजू भाई भी विद्यालयों की इस भूमिका को पूर्णतया स्वीकार करते हुए कहते हैं कि शिक्षाशास्त्रियों को सुधार के समस्त कार्य, नूतन भावनाओं के बीजारोपण का समस्त कार्य पाठशालाओं में कर डालना चाहिए। भावी नागरिक हमारी पाठशालाओं में तैयार होते हैं। अगर विद्यालय उन्हें नए आदर्शों से रंगते हैं, उनमें नवजीवन के विचार भरते हैं तो आने वाले कल का सूर्य अत्यन्त तेजस्विता के साथ उदित होगा। पाठशाला-व्यवहार की संपूर्ण व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि जो नागरिक पल रहे हैं उन पर नए विचारों व आदर्शों की सुस्पष्ट छाप अंकित हो और देश का भविष्य उज्जवल हो।

गिजू भाई विद्यालयों, महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों से भी अधिक बल बाल-विद्यालयों को उत्तम बनाने पर देते हैं। इनके इस विशिष्ट महत्व का वे अत्यन्त तार्किक-मनोवैज्ञानिक ढंग से स्पष्टीकरण देते हैं। उसका कहना है कि बालक दो-ढाई वर्ष तक पूर्णतया माता पर निर्भर रहता है। सामान्यत: विद्यालय वह 5-6 वर्ष की उम्र में जाता है अत: इस मध्य के काल को वह परिवार में व्यतीत करता है। ढाई से छ: वर्ष की आयु का यह काल उसके विकास की दृष्टि से बड़े महत्त्व का माना जाता है। बालक की अस्थियों वह स्नायुओं की सुदृढ़ता, इंद्रियों के शुद्ध, तीव्र, संस्कारी बनने का, बौद्धिक-शक्ति, क्रिया-शक्ति, कल्पना-शक्ति आदि मन: स्थितियों के निर्मल, बलवान व सूक्ष्म बनने का; तथा कोमल एवं जटिल भावनाओं के विकास का वास्तविक समय यही है। सात वर्ष की आयु तक बालक अपने शरीर एवं मन का जितना विकास कर लेता है, उतना बाद के पूरे जीवन में नहीं कर सकता।

जीवन पर्यंत स्थायी बनी रहने वाली बालक की अच्छी-बुरी आदतें इसी काल में बनती हैं। उसमें विवेक-अविवेक, संस्कारिता-पाशविकता, सामाजिक जीवन के अन्य गुणावगुण इसी काल में जितने आ गए सो आ गए, और नहीं आये सो नहीं आए। नीति-मय स्वभाव एवं धार्मिक भावना (स्फुट-अस्फुट) की जड़ें भी उसमें इसी काल में रूपती हैं। संक्षेप में कहा जाए तो मानव जीवन के विकास में यही समय सर्वाधिक महत्त्व का है। अत: बालक के विकास की उतनी ही अधिक देखरेख व संभाल लेनी जरूरी है, अन्यथा विकास के ऐसे वास्तविक समय में भी बालक घर का न घाट का

बन जाता है। उसके जीवन का यह काल बेकार चला जाता है तो फिर बाद में भले ही वह चाहे जितना पढ़े-गुने, पर एक बार तो क्षति हो जाती है, उसकी पूर्ति कदापि नहीं हो सकती। इस काल के बाद का समय शक्तियों को व्यवहार में लाने का, उन्हें बढ़ाने का, बलवान करने का है, पर उन्हें हस्तगत करने व संस्कारित करने का काल तो सात वर्ष तक का ही होता है।

विकास के क्रम में बालक माता के प्रेम का, पिता की बुद्धि का, परिवार के सामाजिक जीवन का, शरीर एवं इंद्रिय व्यापार का विस्तार मांगता है। सारांश यह कि बालक, अब विशाल घर माँगता है। याने बालक को संवर्धक विशाल घर की जरूरत है और उसी के साथ संरक्षक मर्यादा की भी जरूरत है।[1]

अपनी बढ़ती हुई जरूरतों के अनुरूप बालक जैसा विशाल क्रिया-क्षेत्र मांगता है, जो वैविध्यपूर्ण प्रवृत्तियाँ उसके लिए उपयोगी हैं वे सब घर में नहीं मिलतीं। न वे घरों में आ सकती हैं। स्थान और पैसे दोनों दृष्टि से हमारे घर इस सामग्री की व्यवस्था नहीं कर सकते। गिजू भाई कहते हैं कि मान लीजिए कि शिक्षाविदों द्वारा सुझाये गये इंद्रिय एवं मन की शिक्षा के शास्त्रीय उपकरण घर में जुटा लिये जायें। बालकों को उन्हें खेलने की पर्याप्त छूट मिले, इतना विशाल घर भी हो और इन सबका खर्च वहन करने में माँ-बाप समर्थ भी हों-फिर भी उनके द्वारा बालक जैसा बहुविध विकास करना चाहता है, वह हो नहीं सकता। एक तो शास्त्रीय उपकरणों के यथार्थ उपयोग की जानकारी ले पाना सब माँ-बच्चों के लिए संभव नहीं। माँ-बापों को इसके लिए फुर्सत मिल सके, उन्हें इसमें आनंद आए और दक्षता प्राप्त हो सके, इसमें काफी संदेह है। अतः शास्त्रीय साधन घर में मंगवाकर बढ़ते हुए बालक को शिक्षित करने का सफल प्रयत्न संभव नहीं है। ऊपर के विचार को एक तरफ रख दें तब भी बालक को जिस विशाल सामाजिक जीवन की जरूरत है वह घर में कहाँ से मिलेगा? घर के दो-चार बालक या गली के या सगे-सम्बन्धियों के दो-पांच बालकों का सहजीवन सामाजिक जीवन के पाठ सीखने के लिए पर्याप्त नहीं। कारण यह, कि घर के या अपने और एक समान स्तर के बालकों का अर्थ है कि एक ही वातावरण, एक ही व्यक्तित्व। इसमें समाज की विविधता नहीं, ऊँच-नीचता नही। इसमें शक्तियों की विविधता कम मिलेगी और बड़प्पन के वातावरण में मिथ्या बड़प्पन का मिथ्या अभिमान पनपेगा। सर्वसाधारण मध्यम दर्जे का सामाजिक जीवन जीने का अवसर राजमहल या घर से बाहर मिलना चाहिए और वहीं मिल सकता है। वहाँ राजा और रंक एक ही आसन पर बैठकर सीखते हैं, एक ही तिपाई पर कसरत करते हैं, एक ही तरह का नाश्ता करते हैं और एक-दूसरे का दर्जा भूलकर एक-दूसरे के सम्बन्ध सुदृढ़ बनाकर, एक-दूसरे, की दिली-एकता के कारण दोस्त बनते हैं। यह सामाजिक वातावरण गलियों के वातावरण जैसा गैरजरूरी

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 57-58

और बुराइयों से भरा हुआ नहीं होता। जिस तरह से अनावश्यक खरपतवार को उखाड़कर बगीचे को खूबसूरत बनाया जाता है उसी तरह से अवरोधक और बिगड़े हुए बालकों से मुक्त तथा दूसरे बुरे प्रभावों से सुरक्षित रखने योग्य वातावरण पोषक होता है। ऐसा सामाजिक जीवन बालकों को जिस उम्र में मिलना चाहिए उसी उम्र में वह उन्हें मिले, इसकी एक व्यवस्थित योजना बनाई जानी चाहिए।[1]

इन सभी बातों पर विचार करने के बाद देखेंगे तो पायेंगे कि गिजू भाई की यह धारणा सर्वथा उचित ही है कि व्यक्ति के विकास के लिए सभी स्थानों में एक-समान परिस्थिति पैदा करने का सामर्थ्य सिर्फ शालाओं में ही है; जो अनुकूल वातावरण प्रत्येक घर उत्पन नहीं कर सकता अथवा प्रदान नहीं कर सकता, वह वातावरण शालाओं द्वारा दिये जाने का प्रबंध किया जा सकता है। दूसरे, सामान्यतया बालकों की एक बड़ी तादाद शालाओं में आती और पढ़ाई के लिए काफी समय तक यहां रहती है, अतः शालाएँ बालकों के मन का अध्ययन करने के स्वाभाविक केन्द्र हो जाती हैं।[2]

विद्यालय चहुमुँखी व्यक्तित्वों के निर्माण के केन्द्र हैं। बालक का स्वस्थ व संतुलित विकास विद्यालयों पर निर्भर है। यदि समाज रुग्ण है तो इसका अर्थ है विद्यालय रुग्ण है। उसकी व्यवस्था व प्रक्रिया दोषपूर्ण है। इसीलिए गिजू भाई कहते हैं कि "जब तक दुनिया में दवाखाने हैं, कैदखाने हैं, दीवानखाने हैं, तब तक हमने शिक्षा की दिशा में कुछ भी प्रयास नहीं किये, ऐसा कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पाठशालाओं में संपूर्ण विकास न हो, पाठशालाएँ मनुष्य की नैतिक एवं शारीरिक दुर्बलताओं को दूर न करें, जिन-जिन कारणों से मनुष्य में पागलपन आता है, पाठशालाएं उनका उन्मूलन न करें, तो ऐसी पाठशालाएँ पाठशाला कहलाने की पात्र नहीं है। मात्र गणित, इतिहास या भूगोल जैसे विषय पढ़ाने वाली पाठशालाएं वास्तविक पाठशालाएँ नहीं हैं। ऐसी पढ़ाई तो मनुष्य चाहे जहाँ से प्राप्त कर सकता है। ऐसी पढ़ाई से व्यक्ति का वास्तविक कल्याण नहीं होने वाला। ऐसी पढ़ाई से जेलखाने, दवाखाने, पागलखाने कभी बंद होने वाले नहीं। ऐसी शिक्षा देने वाली पाठशालाएँ स्पष्टतया बुद्धिमान बालकों के लिए ही हैं। मूर्ख बालकों को आज की पाठशाला पढ़ा नहीं सकती; बीमार बालक तो इन पाठशालाओं से ही तैयार होते हैं!"[3]

गिजू भाई का मानना है कि वस्तुतः पाठशालाओं के प्रयासों से ही दवाखाने बंद होने चाहिए। वर्तमान पाठशालाओं में आरोग्य की दृष्टि से व्यापक परिवर्तन किये जाने अपेक्षित है। पाठशालाओं के भवन एकदम शहर से बाहर खुली हवा में होने चाहिएं। यह संभव न हो तो गांव के स्वच्छ मोहल्ले में खुले स्थान में भवन होना चाहिए। प्रत्येक भवन में हवा और प्रकाश पुष्कल चाहिएं। उसके आसपास की जगह ऐसी होनी चाहिए कि जो पाठशाला के शान्त एवं पोषक वातावरण के लिए सहयोगी सिद्ध हो। उसके आसपास गदंगी नहीं होना चाहिए। पाठशाला भवन गाड़ी, घोड़े, ट्राम, मोटरों

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 64-65
2- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 58
3- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 12

आदि के शोर से पर्याप्त दूर होनी चाहिए। पाठशाला को स्वच्छता का मंदिर होना चाहिए। भवन साफ किया हुआ हो, धूल-जालों से रहित। वहाँ की जमीन भी साफ-सुथरी होनी चाहिए। कहीं भी धूल न दिखे।

पाठशालाओं की जीर्ण-शीर्ण अवस्था के कारण वे शिक्षालय कम अस्तबल अधिक नजर आते हैं। इसी पर टिप्पणी करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि जिस विद्यालय की दीवारों पर जाले लटक रहे हैं या झाड़-झंखाड़ खड़े हैं, जिसकी दीवारों पर अगर कुछ टंगा भी है तो शायद कोई फटा-पुराना एकाध चित्र, दीवारों का पलस्तर उखड़ा हुआ है, जगह-जगह गड्ढे बन गए हैं, जहां पानी पीने के बर्तन न मांजे जाने से काले और गंदे हो गये हैं, जहाँ शिक्षकों की गंदी पौशाकें और उनके गंदे चेहरे उस गंदगी में वृद्धि करते हैं, जहाँ विद्यालय की टूटी बेंचे, बेकार पड़े श्यामपट्ट, सड़े हुए डस्टर, बालकों और अध्यापकों के बेतरतीब बिखरे जूते विद्यालय की शोभा को नाना प्रकार से बढ़ाते रहते हैं, उस विद्यालय में संगीत अथवा शिल्पकला की आत्मा किस प्रकार विकसित हो सकती है? वहां नूतन सृजन कैसे संभव है?[1]

विद्यालयों की इस खेदपूर्ण स्थिति में सुधार होना ही चाहिए वह भी त्वरित गति से। गिजू भाई कहते हैं कि अगर हम लोग स्वयं को नहीं सुधारते, तो शालाओं को खाली करा देना चाहिए। हमारे हाथ में एक भी बालक नहीं रहना चाहिए, तभी हम लोगों की आँखें खुलेंगी कि आइंदा से शाला में ऐसी अव्यवस्था नहीं चल पाएगी।[2]

बालकों को स्वास्थ्य-वर्धक वातावरण प्रदान करना विद्यालयों के लिए अत्यावश्यक है। विद्यालय-व्यवस्था पर विचार करते समय बालक को भुला देना अक्षम्य है। यह बालक ही है जिसके लिए विद्यालय स्थापित किया गया है। गिजू भाई कहते हैं कि अधिकांश वर्तमान पाठशालाओं में असह्य गंदगी अटी रहती है; हवा, प्रकाश तथा स्वच्छता की कमी के कारण अनेक बालक दृष्टि-मंद, क्षयग्रस्त तथा दुबले हो जाते हैं, ऐसा डॉक्टरों का मत है। पाठशाला का फर्नीचर भी बहुत खराब देखने में आता है। बेंचें और उन पर बैठने की जगहें बालकों की पीठ की दुश्मन होती हैं। बेंचों की निर्धारित जगहों पर बालकों को घंटों तलक बैठे-बैठे काम करना पड़ता है। इससे वे उकता जाते हैं, उनकी कमर झुक जाती है, उनके अवयवों में पक्षाघात जैसा हो जाता है। पहला काम यह है कि पाठशालाओं से ऐसे फर्नीचर को हटा दिया जाये। बेंचों की बजाय कक्षा में ऐसी हल्की मेजें हों, जिन्हें बालक स्वतः उठा सकें, हटा सकें और इच्छित स्थानों पर बैठकर अध्ययन कर सकें। इस भावना का क्रियान्वयन होना चाहिए। प्रत्येक बालक को मेज के साथ-साथ एक आसन भी दिया जाना चाहिए। अपना आसन लेकर बालक चाहे जहाँ, चाहे जिस लड़के के साथ मिल-बैठकर अपना विकास कर सके, ऐसी

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 15

2- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 80

व्यवस्था की जानी चाहिए। वस्तुतः वर्तमान में बेंचों आदि की यह व्यवस्था कक्षा-शिक्षण यानी समूह-शिक्षण की वजह से है। अगर वैयक्तिक शिक्षण-पद्धति को व्यवहार में लाया जाये तो फर्नीचर सम्बन्धी कितने ही सुधार अपने-आप हो जाएँ। बालकों की वेशभूषा पर विचार करना भी गिजू भाई नहीं भूलते हैं। वे कहते हैं कि बालकों के पहनने के कपड़े कैसे हों और कितने हों, यह निर्णय भी पाठशालाओं को ही करना चाहिए। कपड़ों को पहनने में बच्चों को दूसरों की सहायता लेनी पड़े या शौचादि के समय जिन्हें उतारने-पहनने में तकलीफ पड़े, ऐसी पोशाक दूर ही रखनी चाहिए। सभी कपड़ों के बटन सामने ही लगे हुए होने चाहिए। पीठ पीछे बटन लगे कपड़े, कमरबन्द वाले कपड़े या संयुक्त कोट-पतलून वाले कपड़े बच्चों के लिए बहुत खराब होते हैं। ऐसी पोशाक शरीर-शास्त्र तथा सुविधा की दृष्टि से त्याज्य है।[1]

विद्यालय-बाल सृजन शक्ति के पोषक या हत्यारे?

गिजू भाई कहते हैं कि कुछ हत्याएं पीनल कोड की धारा के अधीन नहीं आतीं। उन्हें लेकर कानूनवेत्ताओं को अपराध जैसी कोई चीज नजर नहीं आती। कानूनवेत्ताओं की न्याय-नीति सम्बन्धी मर्यादाएँ सिर्फ पीनल कोड से बंधी होती है। कुछ हत्याएँ समाजशास्त्रियों की दृष्टि में हत्याएँ नहीं होती। जिन हत्याओं को कानूनवेत्ता माफ कर देते हैं उन्हें लेकर समाजशास्त्री लोगों को दण्डित करते हैं, फिर भी लोक-रुढ़ियों की वजह से समाजशास्त्रियों की सीमाएँ मर्यादित हैं। नीति-विशारदों के प्रायश्चित-अध्याय का आकार बहुत विशाल है, फिर भी अभी उन में सभी तरह के अपराधों का समावेश नहीं होता। जीवनशास्त्र अथवा शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से देखें को मनुष्य के हाथों कई प्रकार की हत्याएँ होती रहती हैं। शिक्षाशास्त्रियों के पास राज्य, रुढ़ि अथवा धर्म की कोई भी सत्ता नहीं है, इसलिए जीवन के प्रति जो अपराध होते हैं, उनके लिए न कोई पीनल कोड़ है, न कोई उन्हें निंदनीय मानता, न कोई धार्मिक भय है। जीवन के प्रति होने वाला ऐसा एक अपराध है बालक की सृजन शक्ति की हत्या।[2]

गिजू भाई इस कटु सत्य को स्वीकार करते हैं कि घर की तुलना में विद्यालय बाल-सृजन का एक बड़ा कतलखाना है। उनके अनुसार घर में बालकों को आजादी मिलती है, वैसी विद्यालयों में कतई नहीं होती। विद्यालय कहता है, 'बस, लिखो, पढ़ो, गिनो, इतिहास याद करो, भूगोल रटो, संगीत रटो, चित्र रटो।' वे पूछते हैं कि भला इसमें सृजन कहाँ है? जहाँ बिना अर्थ समझे, बिना रुचि के, बिना अनुभव के महज रटना ही रटना हो, वहाँ साहित्य, संगीत और कला का शिक्षण निष्फल ही होता है। ऐसे में कला का सृजन सर्वथा असंभव है। कला का मूल गहन व तीव्र अनुभूति में निहित है। जब कोमल-कठोर, कड़वी-मीठी, तीव्र-मंद भावनाएँ कभी-कभार आपस में टकराकर झनझना उठती

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 13

2- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 7

हैं, तब कला का जन्म होता है। कला जीवन-मंथन से प्रकट होती है, वह समूचे जीवन का निष्कर्ष होती है। कला तो जीवन-सौन्दर्य का परिमल है।

गिजू भाई का विश्वास है कि सृजन-कार्य न पाठ्यक्रम के अधीन है, न किसी समय-विभाग चक्र के। वे स्थिति का रोचक चित्रण करते हुए कहते हैं कि मान लो कि - गणित में मन न लगने पर यदि कोई बालक सवाल हल करने के बजाय अपनी पट्टी पर चित्र बनाए और संयोगवश शिक्षक उसका चित्र देख ले तो आप सोच लीजिए कि उस बालक को अपने सृजन कार्य की कितनी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी? उसके गाल पर एक तमाचा पड़ेगा, पट्टी का प्रहार होगा और गणित के श्यामपट्ट के समक्ष गंभीर चेहरा बनाकर स्थिर खड़ा होना पड़ेगा। बालकों को प्रकृति के प्रांगण में ले जाने, वहाँ उनको प्रकृति की गोद में घंटों लोटने देने, बंदरों की भाँति पेड़-पेड़ पर चढ़ने व कूदने देने, कलकल बहती नदी के किनारे ले जाकर उन्हें अपनी अंजलियों से जी भरकर पानी पीने देने, जंगली फूलों को तोड़कर उनकी मालाएँ बनाने, रेशों से रसी बंटने और ऐसे ही भांत-भांत के काम करने देने की व्यवस्था क्या आज के पाठ्यक्रम में है? यदि नहीं है तो बालकों के सृजन का प्रश्न किससे पूछा जाए? गिजू भाई मानते हैं कि कुछ विद्यालय इस सम्बन्ध में अवश्य कुछ प्रयास कर रहे हैं परन्तु पूर्ण वे भी नहीं हैं। वे कहते हैं कि कुछ शालाओं में बालकों के लिए सृजनात्मक विषयों की सामग्री इकट्ठी की जाती है। वहाँ बालकों को बंगला बनाते, चटाई गूंथते, रंग भरते, कागज काटते या सिलाई-कढ़ाई का काम करते देखते हैं। वहाँ के शिक्षकों को हम बालकों के साथ अनेक प्रकार के काम करते देखते हैं। वे उन्हें कहानियाँ सुनाते हैं, गीत गवाते हैं, वे उनके साथ नाचते, कूदते, खेलते और हँसते-हँसाते मिलेंगे, तरह-तरह की गुड़ियाएँ गुड्डे मिलेंगे। पर साथ ही साथ ऐसी पाठशालाओं के सृजनात्मक वातावरण में हमें लालच और इनाम के बनावटी रस की बू अवश्य आयेगी।

गिजू भाई ने आधुनिक बाल-पाठशालाओं का, विशेषतया सरकारी पाठ शालाओं का चित्र बखूबी प्रस्तुत किया है। देश में बाल-पाठशालाओं की दयनीय दशा से सब परिचित हैं। उनके भवन हवा और रोशनी से रहित हैं, उनके अध्यापक-बंधुओं को मात्र पेट भरने जितनी पगार ही मिलती है; विषय, ज्ञानी और शिक्षण-पद्धति सम्बन्धी उनके विचार अत्यन्त हीन होते हैं; समाज में उनकी स्थिति अत्यन्त निम्नगामी होती है। बाल-पाठशालाओं के बालकों को देखें तो वे दबे, डरे, पद-दलित, गंदे, प्राण-विहीन, मनुष्य के रूप में चेतना-रहित प्राणी दिखाई देंगे। बाल-पाठशालाओं के पास से निकलें तो जातीय भोज के समय हम जैसा असहनीय शोर-शराबा सुनते रहे हैं, वैसा हो-हल्ला सर्वत्र व्याप्त मिलेगा और अगर बाल-पाठशालाओं के अन्दर जाकर देखें तो हृदयहीन, प्रेमहीन, फटेहाल, कंगाल अध्यापक बालकों की स्वाभाविक उत्कंठा को दबा देने की अति मूल्यवान और कठिन शिक्षा देते

नजर आयेंगे। चारों तरफ नजर उठाकर देखें तो शिक्षण-उपकरण शायद ही दिखायी देंगे। एकाध बोर्ड, एकाध चाक का टुकड़ा, डंडा और घंटा-यही सब पाठशाला के शिक्षण उपकरण होंगे। बालकों की पंक्तियाँ-दर-पंक्तियाँ कुछ-न-कुछ जरूरी व्यापार करती दिखेंगी। गिजू भाई इस स्थिति से तत्काल मुक्त होने की जरूरत पर बल देते हुए कहते हैं कि बाल-शिक्षण की बुनियाद पर हमें प्राथमिक, माध्यमिक विद्यालय तथा महाविद्यालयों के भवन निर्मित करने हैं। हमारी सच्ची परीक्षा, कीमत और दक्षता इसी में निहित है कि इस बुनियाद को ज्यादा से ज्यादा मजबूत बनायें।[1]

बालमंदिर का उद्देश्य बाल-हृदय की शोध करना है। तत्त्वतः 'पाठशाला बाल-हृदय के अध्ययन की प्रयोगभूमि है।' इस वाक्य में संपूर्ण मॉण्टेसरी-पद्धति का समावेश हो जाता है। गिजू भाई की मान्यता के अनुसार मॉण्टेसरी-पद्धति इसके तत्त्व में विराजमान रहती है। इस तत्व को स्वीकार करने के बाद इसके निमित्त देश-कालानुसार चाहे जैसी प्रयोग की योजना बनायी जाए या चाहे जैसे प्रयोग के साधन जुट जाएं, भले ही वह योजना तथा परिस्थिति आज की मॉण्टेसरी पाठशाला की योजना तथा परिस्थिति से भिन्न हो, तथापित वैसी प्रयोगशाला तो मॉण्टेसरी पाठशाला ही है। वे बालमंदिर को मॉण्टेसरी बाल-मंदिर ही मानते हैं। वे कहते हैं कि गट्टा-पेटी में या रंग की तख्तियों में मॉण्टेसरी-पद्धति नहीं है। ड्राइंग या संगीत विषय में भी मॉण्टेसरी-पद्धति नहीं है। मॉण्टेसरी-पद्धति तो स्वतंत्र स्थिति में विचरते बालकों के अवलोकनों से निष्कासित सिद्धांतों में निहित है। उनकी संपूर्ण पद्धति को थोड़े से सूत्रों में यों समझाया जा सकता है।

1. पाठशाला मनोविकास के अवलोकन की प्रयोगभूमि है।

2. स्वतंत्र बालक का अवलोकन ही वास्तविक अवलोकन है।

3. बाह्य परिस्थिति से व्यक्त होने वाले बालक के मनोव्यापार किसी आंतरिक कारण से व्यक्त होते हैं, अवएव जिन बहिर-साधनों से आंतर-स्थिति प्रकट होती है वे आंतर-स्थिति के पोषक हैं। जो-जो साधन आंतर-वृत्ति के पोषक हैं, जो-जो साधन इंद्रिय विषय, मानसिक या आध्यात्मिक ज्ञान को उद्दीप्त करते हैं वे तमाम साधन वह ज्ञान हासिल करने के स्वाभाविक हथियार हैं, अतः वे प्रबोधक साहित्य है।[2]

बालमंदिर या मॉण्टेसरी शालाः-

मॉण्टेसरी विद्यालय या बाल-मंदिर बड़ा व खुला-खुला होना चाहिए। बालकों को चलने-फिरने घूमने, खेलने-कूदने की पर्याप्त जगह हो। गिजू भाई कहते हैं कि यदि आर्थिक व्यवस्था हो सके तो शाला के कमरे बहुत बड़े-बड़े हो। स्थान की पुष्कलता शाला के लिए बहुत जरूरी है। उपस्कर अर्थात फर्नीचर वजन में हल्के व बालक के कद के अनुरूप हो। ये साधन सामान्यतया सादे व कम

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 40

2- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 49

खर्चीले हों परन्तु कला की दृष्टि से सुन्दर हो।

संग्रहालय:- शिक्षण की दृष्टि से संग्रहलायों का अपना महत्व है। शाला में कलात्मक वातावरण की रचना करने के लिए अमुक सीमा तक संग्रहालयों की आवश्यकता रहती है। गिजू भाई का सुझाव है कि शाला के साथ रखा हुआ संग्रहालय संग्रहालय न होकर कला-मंदिर बनना चाहिए। अर्थात प्रकृति में से प्राप्त होने वाली सर्व-समृद्धि जिस तरह प्रकृति में अमुक व्यवस्था में संजोई हुई होने के कारण प्रकृति को मनोहर व आनंददायी बनाती है, उसी तरह इस समृद्धि के बीच आकर घूमने वाले बालकों के लिए भी वह आनंददायी और मनोहर होनी चाहिए। अतः संग्रहणीय वस्तुओं के चयन के साथ उसकी रचना का विवेक अत्यावश्यक है। जो वस्तुएँ बालकों की कलात्मक भूख का पोषण करें वे वस्तुएँ इस संग्रहालय में हो सकती है। शाला का संग्रह स्थान इसीलिए थोड़ी-सी ही उत्तमोत्तम मूलभूत कलाओं की कृतियों का अवकाश देता है और उतना ही अवकाश कला का सच्चा वातावरण रूप बनता है।

बालक स्वयं संग्रह-योग्य वस्तुएँ एकत्रित करें, इसके लिए संग्रहालयों को बालकों के प्रवास आयोजित करने चाहिए तथा उनके द्वारा लाई गई चीजों को संग्रहालय में स्थान देना चाहिए। संग्रह एकत्रित करने के काम में जब-तब बालकों को मदद भी दी जानी चाहिए। वस्तुतः बाल-शिक्षण में संग्रहालयों को उपयोगी बना सकते हैं।[1]

शाला का श्रृंगार:- शाला के प्रति बालक आकर्षण अनुभव करें, विकर्षण नहीं। इस हेतु उसकी प्रक्रिया के साथ-साथ साज-सज्जा पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। गिजू भाई का इस विषय में कहना है कि साधनों की विपुलता में या उसके आडंबर में सौंदर्य नहीं होता। सच्चा सौन्दर्य तो सादगी में, रंग- रेखाओं के सुसंयोजन और सम्मिश्रण में है। आज की हमारी शालाओं को हम बहुत सादे, खर्च रहित या कम-व्यय वाली विधियों से सजा सकते हैं। श्रृंगार की आवश्यक भूमिका स्वच्छता होनी चाहिए। वे कहते हैं कि शाला में श्रृंगार के बतौर और कुछ उपस्कर-फर्नीचर न हो (फूलदानियाँ न हों, गमले न हों, चित्र न हों, सुभाषित न हों) तब भी अगर उसका आँगन और दीवारें साफ-स्वच्छ होंगी तो सुन्दर लगेंगी। बच्चों को वहाँ बैठना अच्छा लगेगा। उनके मन की प्रसन्नता बढ़ेगी। प्रत्येक साफ-सुथरी जगह के प्रति हमारा ऐसा ही अनुभव होता है।

साज-सज्जा और श्रृंगार को विद्यालय में स्थान देने से पहले स्वच्छता के साथ व्यवस्था की जरूरत है। सज्जा के लिए विभिन्न प्रकार की सरलता से उपलब्ध होने वाली सामग्री का उपयोग करना चाहिए। मोर पंख, घड़े, शंख-सीपियां ज्वार-बाजरा का सिट्टा, फूलदान, तोरण आदि सहज सुलभ वस्तुएँ हैं। गिजू भाई का यह कथन प्रेरणास्पद है - "एक स्वच्छ, व्यवस्थित तथा थोड़ी-बहुत

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 178-180

सजावट से शोभायमान शाला में जाकर बैठना कैसा अच्छा लगता है! हम शाला को धीमे-धीमे सजाते चलें। इससे बालकों की दृष्टि भी बढ़ेगी, ज्ञान-समृद्धि भी बढ़ेगी। शाला फकत पढ़ाई का स्थान न रहकर जीवन-विकास का स्थान बनने लगेगा।

वे कहते हैं कि यह काम हमारे हाथ में है। पहले हम इसकी उपयोगिता को समझें। यह दृश्य देखकर इसके आनन्द को अनुभव करें। इसके पीछे श्रम करें। हमारी शाला हमें और बालकों को प्रिय लगने लगेगी। बालक स्वयं पत्ते लाने, उनके तोरण बनाने, खूंटियों में टाँगने, साफ-सफाई करने, सजाने आदि में रुचि लेंगे। ऐसे काम उन्हें अच्छे लगते हैं। वे अपने आप करने लगेंगे, करते-करते अनुभव से उन्हें बहुत जानने को मिलेगा और जब भली भांति सजाई हुई शाला में हम और हमारे बच्चे पढ़ाने-पढ़ने बैठेंगे तो हमें आनन्द आएगा, हम प्रसन्नता से पढ़ायेंगे और बालक एकाग्रता से पढ़ेंगे।"[1]

शाला के उत्तम वातावरण का प्रभाव छात्रों के शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। गिजू भाई का मानना है कि शारीरिक आरोग्य की या शिक्षा की दृष्टि ऐसी अंध नहीं बन जानी चाहिए कि हम अपनी शालाओं से कला का बहिष्कार ही कर बैठें। नितांत श्रृंगार-विहीन, नग्न और मटमैले रंग में रंगी या रंगहीन दीवारों वाली आज की शालाओं और वहां की बदरंग बेंचों, स्टूलों, कुर्सियों और खाकी रंग की टेबिलों को देखकर हमें किसी भुतहे मकान का या किसी खंडहर प्राय: धर्मशाला का स्मरण हो आता है। शालाओं में जो कुछ अच्छी चीजें होती हैं वे सब ऊपर टंगी हुई होती है और जो कुछ बिगड़ा हुआ होता है, जिसका रंग काला या राख जैसा हो गया हो या जो टूट न सके ऐसा लकड़ी या लोहे का बना हुआ हो, उसे नीचे रखा जाता है। यह तमाम नीरस वातावरण बालक के हित में उसे शिक्षित करने के लिए रचा जाता है, क्योंकि वर्तमान शिक्षाविदों और शिक्षकों के मतानुसार विक्षेप डालने वाली चीजें अगर मौजूद रहती हैं तो बालक का ध्यान भंग होता है और पढ़ाई में बाधा पड़ती है। गिजू भाई के अनुसार यह स्थिति सचमुच विचारणीय है कि अध्यापक अत्यंत परिश्रम करके अपने शाब्दिक शिक्षण को बालक के मस्तिष्क में उतारने और इसके लिए भटकते एवं ऊधमी मन वाले छात्रों का ध्यान निरर्थक एकाग्र करने के लिए शाला के वातावरण से सौंदर्य निष्कासित करना चाहे। जिन शालाओं में आर्थिक कारणों से सुन्दर वातावरण संभव नहीं है, वहां के अध्यापकों की मानसिक शक्ति भी एक ही प्रकार की है। अध्यापक और विद्यार्थी के बीच ऐसा कुछ हर्गिज नहीं आना चाहिए कि जिससे शिक्षण-कार्य को क्षति पहुँचे-इस सिद्धांत का ही परिणाम है कि आज की शालाएँ गंदी और विद्रूप हैं। गिजू भाई को विश्वास है कि आने वाले कल की शालाएँ-मॉण्टेसरी शालाएँ सौंदर्य प्रधान वातावरण को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान देंगी।[2]

बालक को शाला में चलने-फिरने की स्वतंत्रता हो पर यह घूमना-फिरना सोद्देश्य हो। ऐसी

1- गिजू भाई बधेका - प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 164-165

2- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 61

स्वतंत्र गतिविधि में ही बालक का मानसिक स्वास्थ्य निहित है। शाला में बालक साफ-सफाई, रख-रखाव आदि कार्य स्वयं करें। साधन ऐसे हों जिनका वे स्वयं उपयोग कर सकें। ऐसे वातावरण में इन तमाम साधनों का उपयोग करने की बालक में वृत्ति जागेगी और इनके प्रयोग से धीमें-धीमें बालक अपनी गतिविधि को सुन्दर एवं सम्पूर्ण बना सकेगा। गिजू भाई की मान्यता है कि घूमने-फिरने की ऐसी प्रवृत्ति के लिए जब बालक के सामने एक नवीन क्षेत्र खुलता है तो वह उसमें रहते हुए अपना विकास करता है और इंसानियत प्राप्त करता है। ये क्रियाएं बालक सिर्फ करने के लिए ही नहीं करता, अपितु अपने बहुमार्गी व्यक्तित्व के विकास के लिए करता है। अपने विकास में सहयोगी एवं संरक्षक ऐसे वातावरण में आजादी के साथ काम करते-करते, अपने सहपाठियों के संसर्ग से पैदा होने वाली सामाजिक भावनाओं को जीते-जीते और स्वयं जिस वातावरण में पल रहा है और जिस पर अधिकार प्राप्त कर रहा है उस वातावरण द्वारा आत्मविकास की इच्छा को मिलने वाली तृप्ति का अनुभव करते-करते परिणामतः बालकों में हर प्रकार की जवाबदारी का ज्ञान पैदा हो जाता है।[1]

मॉण्टेसरी का प्रबोधक साहित्य (डाइडोक्टिस एप्रेटस) बालक की इंद्रियों का द्वार खोल उसका मानसिक विकास करता है। आध्यात्मिक विकास के वातावरण के बगैर शारीरिक एवं मानसिक विकास के साहित्य प्राथमिक आवश्यकता के है। संगीत, कला और साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन में कम सहयोगी नहीं। इसके अतिरिक्त सत्संग और शाला का आदर्श वातावरण भी आध्यात्मिक विकास हेतु आवश्यक तत्त्व हैं। गिजू भाई का सुझाव है शाला का वातावरण समस्त विक्षेपों से मुक्त रहना चाहिए। बालक की तल्लीनता में बाधक तत्व न हों, यही नहीं, उसमें हमेशा नयापन रहना चाहिए। हमेशा-हमेशा की एकरूपता से हर किसी को ऊब पैदा होती है और स्वाभाविक आकर्षण जाता रहता है।

विद्यालयों के लिए कुछ बातें या चीजें अपेक्षित होती है, कुछ आवश्यक होती हैं तो कुछ का होना तो अनिवार्य ही होता है। उनके अभाव में या न्यूनता में तो कल्पना करना भी दुष्कर है कि विद्यालय एक प्रभावशाली रूप ग्रहण कर सकेगा। इसी ओर संकेत करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि हमारे विद्यालय में शिक्षाशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय नहीं होगा, तो चलेगा, परन्तु मांग-तांग करके भी अगर शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों से कोई अध्ययन नहीं करेगा, तो यह नहीं चलेगा। हमारे विद्यालय का भवन आलीशान पत्थरों का बना या टाइलों जड़ा न हो, तो चलेगा; परन्तु अगर उसकी जमीन में खड्डे पड़े हुए होंगे या वह गोबर-गारे से लिपा-पुता नहीं होगा, तो यह नहीं चलेगा। हमारे विद्यालय की दीवारें रंग-रोगन की हुई और सुन्दर नहीं होगी तो चलेगा, परन्तु अगर उन पर एक भी जाला होगा या धूल चिपकी हुई होगी तो यह नहीं चलेगा। हमारे विद्यालय में अच्छे दरी-कालीन

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 65

बिछे हुए नहीं होंगे तो चलेगा, परन्तु अगर कहीं भी थोड़ा-बहुत कचरा या धूल बिखरी होगी और वह पैरों में आती होगी, तो यह नहीं चलेगा। हमारे विद्यालय में शिक्षण के ढेर सारे उपकरण नहीं होंगे, तो चलेगा; परन्तु अगर वहाँ थोड़े-से भी उपकरण हों और वे बिल्कुल काम में नहीं लाये जायें तो यह नहीं चलेगा। हमारे विद्यालय में बड़ा-सा पुस्तकालय नहीं होगा, तो चलेगा; परन्तु हाथ से लिखी गयी और बालकों द्वारा उत्साह से पढ़ने जैसी पुस्तकें न होगी, तो यह नहीं चलेगा। हमारे विद्यालय में हम बड़े भारी पंडित न हों, तो चलेगा; परन्तु अगर बालकों को सम्मान देने वाले, उनके विकास का अर्थ समझकर उन्हें उत्तम वातावरण देने वाले नहीं होंगे, तो यह नहीं चलेगा। हमारे विद्यालय में हम पढ़ाने और प्रति पल छात्रों को विवेकवान बनाने हेतु भाग-दौड़ करने वाले नहीं होंगे, तो चलेगा; परन्तु अगर हम उनके काम के बीच बाधक बनते होंगे, घोंचेबाजी करके उन्हें जबरदस्ती पढ़ाने बिठायेंगे, तो यह नहीं चलेगा। हमारे विद्यालय में बच्चे दो पल पढ़ेंगे और दो पल खेलेंगे, तो यह चलेगा; परन्तु अगर बच्चे कारखानों के मजदूरों की तरह दिनभर काम करते ही रहेंगे और हम लोग उन पर सख्त नजर किये रहेंगे, तो यह नहीं चलेगा। हमारे विद्यालय में बच्चे कम पढ़ेंगे तो चलेगा, धीमे-धीमे पढ़ेंगे तव भी चलेगा; परन्तु अगर वे चीख-चीखकर पढ़ते-पढ़ते उकता जाएं और शिथिल हो जाएं तो यह नहीं चलेगा। हमारे विद्यालय में बालकों को कोई काम समझ में नहीं आया और उन्होंने धैर्य के साथ हमें बता दिया या बाद में धीरे-धीरे उसे कर लिया तो यह चलेगा, परन्तु अगर डांट-डपट या मारपीट से वे जल्दी-जल्दी करें, तो यह नहीं चलेगा।[1]

बाल-मंदिर के सम्बन्ध अभिभावकों की भूमिकाः-

माता-पिता बालक को विद्यालय क्यों भेजते हैं? क्या मात्र पढ़ने-लिखने के लिए अथवा किसी अन्य कारण से? गिजू भाई के अनुभव इस सम्बन्ध में बड़े खट्टे-मीठे रहे हैं। वे कहते हैं कि ऐसे माता-पिता जो अपने बालकों को सच्ची श्रद्धा के साथ सही समझदारी के कारण और दूसरी पाठशालाओं की बुराइयों से परेशान होकर यहाँ भेजते हैं। ऐसे बालकों को बालमंदिर का पूरा-पूरा लाभ मिला है। जो माता-पिता अपने बालक को दूसरी पाठशाला में जाने लायक बनाने के लिए यहाँ भेजते हैं, उनसे उनका निवेदन है कि वे अपने बालक को यहाँ हर्गिज न भेजें। जो माता-पिता घर की परेशानी दूर करने के लिए बालकों को बालमन्दिर में भेजते हैं, उनके लिए गिजू भाई के मन में घृणा उत्पन्न होती है। जो माता-पिता अपने बालकों को बाल-मंदिर से अन्यान्य कारणों से हटा लेते हैं, उनके बारे में गिजू भाई शिकायती लहजे में कहते हैं कि "बहुत खबरदारी के साथ हम खाद, पानी, बीज और हवा आदि की उचित व्यवस्था करके ऐसी स्थिति खड़ी करते हैं कि बीज में से अंकुर फूटने लगता है। ठीक उसी समय माता-पिता उस अंकुर को उसकी जड़ के साथ उखाड़कर चलते बनते हैं।"[2]

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 29-30

2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 47

बाल मंदिर एक विद्यालय है। वह अपनी शिक्षण-अधिगम व्यवस्था, पद्धतियों व वातावरण में सामान्य विद्यालयों से निश्चय ही भिन्नता रखता है। परन्तु गिजू भाई कहते हैं कि जो माता-पिता यह मानकर अपने बालकों को बालमंदिर में भेजते हैं कि यहां तो सब-कुछ जल्दी-जल्दी और जादुई ढंग से पढ़ा दिया जाता है, उनके इस विचार की स्पष्टता भी आवश्यक है। कोई भी पढ़ाई जादूई ढंग से पढ़ाई नहीं जा सकती। गिजू भाई कहते हैं कि बाल मंदिर में लड़के-लड़कियों दोनों के लिए उत्तम है। जो माता-पिता यह समझकर कि यह बालमन्दिर लड़कियों के लिए अधिक अच्छा है, और लड़कों को भी यहां थोड़ा उपयोगी शिक्षण मिलता है, लड़कों को न भेजकर यहां लड़कियों को भेजते हैं, उनकी गलतफहमी दूर होनी चाहिए। हमारे लिए तो लड़के-लड़की दोनों समान ही हैं। यहाँ तो जो जिस काम के योग्य होगा, वह काम सीखेगा। जिसको भूख लगी होगी, वह खाएगा। यहाँ हम यह निर्णय करने का दिखावा नहीं करते कि यह मंदिर लड़कियों के लिए अधिक अच्छा है और लड़कों के लिए अच्छा नहीं है। अपनी ऐसी धारणा बनाकर क्या समाज एक राक्षस को खड़ा करने का दुस्साहस नहीं कर रहा है? ऐसे बालकों को बचाकर समाज बचेगा या उनके साथ वह खुद भी नष्ट हो जायेगा?

बाल-मंदिर की कुछ कमियों के कारण भी बालक स्कूल छोड़ देते हैं। इस ओर ध्यानाकर्षित कराते हुए गिजू भाई कहते हैं कि बालक स्वतंत्रता चाहता है, स्वयं-स्फूर्ति चाहता है और बाल मंदिर ये सब उपलब्ध कराने का दावा करते हैं। अर्थात् अगर ये दोनों चीजें बालक को वहाँ नहीं मिलेंगी तो वे भाग छूटेंगे। बहुधा बाल मन्दिर के शिक्षकों में बालकों के साथ व्यवहार करने का ज्ञान नहीं होता। या तो वे उन्हें अत्यधिक लड़ाते-फुलाते हैं या फिर अत्यधिक उपेक्षित छोड़ देते हैं। कई बार शिक्षक की वाणी से फूटती अशिष्टता, जल्दबाजी या कर्कशता से वे भयभीत हो जाते हैं। कई बार शिक्षक सतही तौर पर ही सिद्धान्तों को व्यवहार में लाता है, जबकि भीतर से उन्हें समझ तक नहीं पाता; वह ऊपर से स्वतंत्रता देने का दिखावा करता है, जबकि तत्काल अनुशासन जताने हेतु बांके-टेढे तरीके इस्तेमाल करता है। कई बार वह लोगों को बताने लग जाता है कि उसका बालमंदिर कैसा बढ़िया चल रहा है और बच्चे कैसे अनुशासित हैं। ये सभी बातें बालकों को अरूचिकर लगने लगती हैं और वे वहाँ से भाग जाते हैं। एक बात यह भी है कि अक्सर शिक्षक और अभिभावक बाल मन्दिर की जैसी प्रशंसा करते हैं, वैसा बालकों को वहाँ कुछ न मिलने से वे बालमंदिर के प्रति श्रद्धा खो बैठते हैं। बहुधा बालमंदिर के शिक्षक अपना विवेक भूलकर व्यवस्था कायम करने के लिए, जब वे कोई अन्य मार्ग नहीं निकाल पाते, तो बालकों पर चिढ़ते हैं, उन्हें दुत्कारते हैं, उन पर रौब जमाते हैं। ऐसे में बालक बालमंदिर के शिक्षकों को और ज्यादा धिक्कारते हैं। कुछ अन्य कारणों की चर्चा करते

हुए गिजू भाई कहते हैं कि वहाँ आने वाले बालकों में से अगर कोई बालक परेशान करता है, ता बालक को वहाँ जाना अच्छा नहीं लगता। इसके अलावा घर पर अत्यधिक आकर्षण हो, नौकरों का अवलम्बन हो, माँ जब उसे भेजना चाहती है तो पिता की मर्जी नहीं होती या इसके विपरीत होता हो, घर के बड़े-बूढ़े उसे अत्यधिक लाड़-प्यार करते हों, जो मांगे वह देते हों, खिलाते हों, तो बालक बालमंदिर में नहीं जाएगा। ऐसी परिस्थिति में बालक को जबरन न भेजना ही एक उत्तम उपाय है। बालक को न भेजने के पश्चात् उसकी वजह जाननी चाहिए और सम्बन्धित व्यक्तियों से मिलकर उसका समाधान करना चाहिए।

गिजू भाई की दृष्टि में बालक का बलपूर्वक विद्यालय भेजना तथा वहां उसको अनिच्छा होते हुए भी बल प्रयोग द्वारा बैठाये रखना पूर्णतया गलत है। वे कहते हैं कि विद्यालय न जाने के लिए प्रयाग ने घासलेट पी लिया, कालूराम कुम्हार की कुइयाँ में छिपा और अमेरिका की लड़की ने अपना पूरा विद्यालय ही जला दिया। ये तीनों सच्ची घटनाएँ हैं। दो अपने देश की, तीसरी परदेश की। इस विरोध के बलाबल के बीच का अन्तर स्पष्ट और सहज है। इससे कहीं कमजोर ढंग से तो अनेकानेक क्षीणप्राण बालक विद्यालय के प्रति अपने विरोध के साथ विद्यालय में जाते रहते हैं और वहाँ प्रकट रूप में चुपचाप, शांतिपूर्वक बैठते हैं। इस स्थिति से गिजू भाई असहमति व्यक्त करते हुए प्रश्न करते हैं कि क्या विद्यालयों को बालकों के मन में अपने प्रति अधिक प्रतिष्ठा का भाव नहीं जगाना चाहिए?[1]

नयी पाठशाला : बालकों का दूसरा घरः-

गिजू भाई एक ऐसी पाठशाला की कल्पना करते हैं, जो बालक का दूसरा घर हो, उसके अपने घर से भी सुन्दर व बेहतर। वे इसका चित्रण इन शब्दों में करते हैं - "काम करते-करते थका हुआ बालक इधर एक तरफ शाँति से लेटा आराम कर रहा है। उधर वह बालक अपने मित्र को हँसते-हँसते बता रहा है कि उसने घर पर क्या खाया-पिया था। एक बालक झूले पर बैठा है। उधर एक बालक तरह-तरह के खिलौनों से खेलने से मशगूल है। पर ये खिलौने बाजार में बिकने वाले हाथी, घोड़े या मूर्ति जैसे नहीं, इधर इस बच्चे की तरफ तो देखो, काँच में चेहरा देखते-देखते कब से अपने बालों को संवार रहा है ! सिर्फ तीन साल का है। यह सच्चाई है या सपना कि इतने नन्हें-नन्हें बालक अपने आप चालीस, पचास बालकों का नाश्ता सावधानी से परोस रहे हैं। जमीन पर गिरने वाली नाश्ते की चीजों को मुंह में डालने के बजाय टोकरी में डालते हैं। ये रहे तीन बच्चे, धीमे-धीमे, खड़का किये बिना उघाड़े प्यालों को रकाबियों से ढक रहे हैं। यहाँ एकाग्रता है, काम का आनंद है, स्वस्थता व शांति है, स्नायुओं पर नियंत्रण है। यह एक छोटी सी मंडली इतनी कम उम्र में साथ मिलकर सहकारी काम कर रही है। कुछ बालक यहां बैठे-बैठे चित्र बना रहे हैं। वहाँ एक बालक खिड़की को साफ कर रहा

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 33

है। उधर एक बालक आसन समेट रहा है। उधर वह बालक हाथ धोकर ट्वाल से पोंछ रहा है। इस कक्ष में यह धूप की गंध कैसी है? भीतर कौन है? क्या पूजा या आराधना का कक्ष है? अरे, यहाँ तो ये बालक बैठे हैं, स्वस्थ व शांत! निःशब्द ! इस धुंधले प्रकाश में अगरबत्तियों की लाल रोशनी सुशोभित हो रही है इतने सारे बच्चे क्या शोरगुल या गड़बड़ मचाने वाले ही होते हैं? यह बात मानने तक में नहीं आती कि चालीस-पचास बच्चों की नन्हीं-सी मंडली ध्यान-मग्न होकर ध्यान द्वारा आनंद व आराम की खोज करें।

गिजू भाई पूछते हैं - पर इन तमाम प्रवृत्तियों में पाठशाला कहाँ है? यहाँ तो बच्चे पतिंगों के पीछे दौड़ रहे हैं, और उन्हें कोई रोकता तक नहीं। यहाँ एक बालक कब से रेत के घरौंदे बना रहा है, कोई उसे पढ़ाता तक नहीं। यहाँ चार बालक उस कोने में गड्ढे खोदकर मैथी व मूंग उगा रहे हैं और छोटी-सी झारी से पानी सींच रहे हैं, यहाँ पाठशाला कहाँ है? पढ़ाई कहाँ है? शिक्षक महाशय कहाँ हैं? वे ये बैठे इस बालक को पेंसिल छील कर दे रहे हैं, शौच करके आए बालक को पानी से धुला रहे हैं, वह एक बालक दौड़ता हुआ आकर नमस्कार करता है और ये स्वीकार कर रहे हैं, उस नए घर के पिता की तरह बालक को कहानी पढ़कर सुना रहे हैं या माँ की तरह समाचार पूछ रहे हैं कि 'क्या बात है भाई?' 'क्या खाया था आज', 'क्या पीया था?' यहाँ शिक्षक कहीं नहीं है। और ये शिक्षक भाई या बहन ही बालक के सर्वस्व हैं। बालक के विकास की इन्हें चिन्ता है। ये विकास के शास्त्र को समझते हैं। बालक की आवश्यकताओं को जानते हैं और उसी के अनुरूप वातावरण रचकर वहां बालक को एक वृक्ष की तरह उगने, खिलने, फलने-फूलने को मुक्त करके एक सहायक बागवान की तरह पास खड़े हैं। यह नया घर ही नयी पाठशाला है।[1]

4.11 परिवार

बाल-विकास में परिवार सबसे महत्वपूर्ण कारक है। बालक परिवार में जन्म लेता है। माता से उसका पहला व घनिष्ठतम सम्पर्क होता है। पिता की भूमिका भी अभिन्न होती है। परिवार के अन्य सदस्यों के साथ भी बालक की गहन अंतःक्रिया होती है। बाल-मन पर परिवार के वातावरण के ये चिह्न अमिट होते हैं।

परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, परिवार का आकार, माता-पिता दोनों का कामकाजी होना या न होना, उनके पारस्परिक सम्बन्ध, सत्ता का स्वरूप, आस-पड़ोस का वातावरण आदि अनेकानेक कारक पारिवारिक वातावरण को प्रभावित करते हैं तथा अन्ततोगत्वा बालक के व्यक्तित्व पर इनका किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभाव पड़ता है। गिजू भाई परिवार के स्वरूप, महत्व व कार्य आदि के सम्बन्ध में अनेक कोणों से प्रकाश डालते हैं।

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 35

सत्ता का स्वरूपः- परिवार में एक व्यवस्था या तंत्र का होना आवश्यक है। वहाँ 'निर्णय लेने' के निश्चित केन्द्र हों, वह एक हो या अनेक अर्थात सत्ता केन्द्रीकृत हो अथवा विकेन्द्रीकृत यह एक अलग विषय है, मुख्य बिन्दु यह है कि सत्ता का स्वरूप निश्चित व स्पष्ट हो। इस सम्बन्ध में गिजू भाई एक बालक रमेश के परिवार का उदाहरण देकर स्थिति स्पष्ट करते हैं, जिसके परिवार में उस बालक पर हुक्म चलाने वाले अनेक लोग थे तथा उन लोगों में परस्पर सामंजस्य का सर्वथा अभाव था। वे कहते हैं - जब हम रमेश को हुक्म देने वालों की तरफ देखते हैं तो हमको क्या दिखाई देता है? हम देखते हैं कि इस घर में कोई तंत्र है ही नहीं। इसमें न एक-तंत्र है, न संयुक्त तंत्र है, और न स्वतंत्रता ही है। यहां तो ऐसा लगता है कि सर्वतंत्र है, अर्थात किसी का कोई तंत्र है ही नहीं। इस विचित्र से तंत्र में एक की बात को दूसरा काटता है, और दूसरे की बात को तीसरा काट देता है। इसमें एक-दूसरे के प्रति सम्मान की भावना है ही कहाँ? इसमें किसी तरह का कोई नियमन कहाँ है? इसके चलते रमेश को किस बात का शिक्षण प्राप्त होगा? अंधाधुंधी का या व्यवस्था का? मान-सम्मान का या असम्मान का?

ऐसी स्थिति आज हमारे अधिकतर घरों में है, और वह गिजू भाई के मतानुसार तुरन्त ही सुधरनी चाहिए। वे कहते हैं कि एक राजा के बदले सब राजा बन जाएँ और सब सबके लिए अपने मनचाहे हुक्म जारी करने लग जाएँ, तो सोचिए कि राज कितने दिन चल पाएगा? सेठ एक चाहिए। व्यवस्थापक एक चाहिए। सत्ता एक चाहिए। निःसन्देह जहाँ बड़े-बड़े काम करने हों, वहाँ संयुक्त सत्ता रहे, संयुक्त तंत्र रहे, अथवा काम को विभाजित करके विभागीय व्यवस्था खड़ी की जाए। किन्तु यह स्थिति तो कभी पुसा ही नहीं सकती कि छोटों के लिए बाकी के सब बड़े लोग उनके सत्ताधारी बनकर रहने लगें। हर सत्ताधारी इस बात का ध्यान जरूर रखे कि उसके द्वारा दूसरे किसी के भी हुक्म का अपमान या निरादर कभी न हो। हर एक सत्ताधारी अपनी मर्यादा को लाँघकर कभी कोई हुक्म जारी करे ही नहीं। यदि यह बात मान ली जाए तो एकतंत्र, संयुक्त तंत्र या प्रजातंत्र अथवा किसी भी प्रकार का कोई भी तंत्र बराबर चल सकता है।[1]

गिजू भाई की मान्यता है कि भय पर टिका तन्त्र निर्बल होता है। बालकों की स्वतंत्रता को हस्तगत करके यदि विद्यालय में शिक्षक तथा परिवार में माता-पिता व्यवस्था बनाये रखने का प्रयास करते हैं तो यह अनुचित है। इस प्रकार का अनुशासन सतही व अल्पकालिक होता है। भयग्रस्त बालक दब्बू व कायर बन जाते हैं। वे कहते हैं कि भय की वृत्ति का हमारे बालकों के दिलों से सर्वथा नाश होना जरूरी है। जिस वस्तु से डरने की कतई जरूरत नहीं है, उससे बालक कभी न डरे, ऐसा प्रबन्ध किया जाना चाहिए। सिंह से डरना पड़ता है, इसमें अर्थ है, लेकिन अंधेरे से डर लगता है, तो यह

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 85-86

अज्ञान है। सिंह से भय न लगे, ऐसी शक्ति अथवा वृत्ति हमें बालकों में विकसित करनी चाहिए, इसी भांति बालक अंधेरे से डरना छोड़ दे, इसके लिए हमें बालक के हाथ में ज्ञान-प्रदीप देना चाहिए। मूर्ख अध्यापक ही बालक की भयवृत्ति का लाभ लेकर अनुशासन व्यवस्था चलाता है, नासमझ माता-पिता ही इससे लाभ लेकर घर का तंत्र चलाते हैं और भय का आश्रय लेकर जुल्मी राज्य ही अपना शासन-तंत्र चलाते हैं। सच्चाई यह है कि जब बालक निर्भय होगा तभी शाला में व्यवस्था आएगी, माता-पिता का गृह-तंत्र चलेगा और राज्य का शासन-तंत्र स्वाभाविक रीति से चल सकेगा। परिणामतः अध्यापक, घर और राज्य के समक्ष बहुत कम शिकायतें उपस्थित होंगी।

गिजू भाई के अनुसार दबाव बहुधा मिथ्या शान्ति पैदा करता है। यह शान्ति अगर बहुत गहरे तक चली जाती है तो बच्चा बिल्कुल नामर्द बन जाता है। जिस बालक को लोग विनीत, भला, गौरवशाली आदि शब्दों से पुकारते हैं, वही आगे चलकर इन्हीं गुणों के कारण दुनिया में अयोग्य और कायर कहलाता है। यह एक सामान्य अनुभव है। भय के कारण बच्चे कायर तथा शक्तिहीन बन जाएं, इससे पहले अगर उन्हें स्वतंत्रता का स्पर्श हो जाए तो वे किसी भी दबाव के सामने सख्ती से संघर्ष कर सकते हैं, क्योंकि वे खामोश नहीं बैठ सकते। उस समय वे अस्थिर, उद्धत या शैतान आदि नामों से विभूषित किये जाते हैं। घर में बालकों को खूब दबाकर रखा जाता है, तो वहां वे शान्त रहते हैं, पर ज्यों ही बालमन्दिर के स्वतंत्र वातावरण में आए नहीं कि एक बार तो हद से बाहर निकल जाने के प्रमाण मौजूद हैं। वे कहते हैं कि इसमें घबराने की क्या जरूरत है। माता-पिता को अब उसे दबाकर शान्त करने की बजाय उसकी चंचलता को संयमित करना चाहिए। सच्ची स्वतंत्रता के द्वारा संयम कैसे प्राप्त किया जाए, इसके लिए बालमन्दिर से सबक लेने की जरूरत है।[1]

बालकों के पालन में माता-पिता दोनों की समान जिम्मेवारी:- परिवार नामक संस्था को सुचारू रूप से चलाने में माता व पिता दोनों की समान जिम्मेवारी होती है। बालक के पालन-पोषण व उचित विकास में दोनों की ही भूमिका महत्वपूर्ण होती है। दोनों में से किसी एक की लापरवाही, अनुत्तर दायित्वपूर्णता, उपेक्षा तथा अवांछनीय व्यवहार के कारण परिवार का वातावरण दोषपूर्ण हो जाता है जिसका कुप्रभाव बालक के विकास पर पड़ता है। गिजू भाई कहते हैं कि घर के दोषपूर्ण वातावरण को बदलने की पहलकदमी स्त्रियों को करनी चाहिए चूंकि वस्तुतः परिवार-तंत्र का केन्द्र वहीं है। उनका कहना है कि घर के ऐसे वातावरण को हमें बालकों के लिए बदल डालना चाहिए। हम बालकों के लिए पुराने कानूनों के चलन को तोड़ सकते हैं। मनुष्य जाति ने अपने बालकों के हितार्थ अनेक खतरे झेले हैं। आज भी हमें और खासतौर पर स्त्रियों को यह लड़ाई लड़ने की जरूरत है। जो स्त्रियां अपने बालकों के हकों के लिए लड़ेंगी, वे बालकों और स्त्रियों दोनों को स्वतंत्रता व सुख देंगी। ऐसे

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 46

माहौल के लिए संघर्ष करने वाली महिलाओं की संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ेगी, त्यों-त्यों उनके द्वारा मानव जाति का उद्धार हो जाएगा।[1]

बालकों को समय दें:- परंपरागत भारतीय परिवार व्यवस्था में पुरुष के हिस्से अथोपार्जन का दायित्व तथा स्त्री के हिस्से घरेलू कामकाज व बालकों की देखभाल का दायित्व रहा है। घरेलू कार्यों में पुरुष का हाथ बंटाना सम्मानजनक नहीं माना जाता रहा है। वर्तमान समय में हालात कुछ बदले हैं। नारी-शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण उनमें जागृति आयी है, उन्होंने खोया आत्म-विश्वास पुनः प्राप्त किया है तथा वह घर की अर्थ-व्यवस्था में योगदान दे रही हैं। परन्तु अपनी परंपरागत भूमिका का निर्वहन भी उन्हें करना ही पड़ता है। देखा जाता है कि नौकरीपेशा महिलायें घर व नौकरी के दोहरे कार्य-भार की चक्की में पिस रही हैं। पुरुष वर्ग की मानसिकता में विशेष बदलाव नहीं है। वह व्यस्त पत्नी को घरेलू कार्य में सहयोग करने को तैयार नहीं है। वह चाहता है कि पत्नी घर की अर्थव्यवस्था में सहयोग करने के लिए नौकरी भी करे तथा पूरी जिम्मेवारी से घर की देखभाल भी करे। महिलाओं से गिजू भाई कहते हैं कि आप अपने बालक को खूब साफ-सुथरा रखिए। गंदगी और क्षय की बीमारी का विचार एक ही साथ कीजिए।

माता-पिता पारस्परिक समझदारी का परिचय दें:- गाड़ी के दोनों पहिये बराबर होने से ही गाड़ी ठीक प्रकार चलती है परन्तु देखा जाता है कि परिवार की गाड़ी के दोनों पहियों अर्थात पति-पत्नी में बौद्धिक व शैक्षिक गैर-बराबरी, परस्पर समझदारी का अभाव, किसी एक का गैर जिम्मेवाराना व्यवहार परिवार में अन्तर्कलह को जन्म देने का कारण बन जाता है। इस स्थिति का सर्वाधिक कुप्रभाव बालक पर पड़ता है। गिजू भाई ऐसी स्थिति का विश्लेषण करते हुए अत्यन्त उत्तम समाधान सुझाते हैं। उनका कहना है कि आजकल स्त्री-पुरुष अधिकांशतः एक सरीखे पढ़े-लिखे नहीं हैं। जहाँ माता अज्ञानी हो और पिता शिक्षित, समझदार, उच्चादर्शी, वहाँ अगर उन दोनों के बीच वैचारिक-विरोध पैदा हो जाए तो क्या किया जाना चाहिए? कई बार पुरुष को ऐसे वचन सुनने पड़ते हैं, 'देख ली आपकी मॉण्टेसरी।' ऐसा कहते हुए बच्चों को थप्पड़ मारने के दृष्टांत हमारे सामने हैं। ऐसे अनुभव तो होते ही रहते हैं। पर ऐसी दशा में जल्दीबाजी नहीं की जानी चाहिए। इस मुद्दे को लेकर कहीं माता-पिता लड़ न पड़ें। एक-दूसरे की गलती के लिए कहीं वे आमने-सामने न तन जाएँ। उनमें भीतर-ही-भीतर परस्पर विरोध न बढ़ जाए। बालक तो उन दोनों के हैं। उनका हित-चिन्तन उन्हीं के जिम्मे है। होना यह चाहिए कि इस प्रश्न पर शिक्षण-विषयक अज्ञान को दूर किया जाए। अगर बालक को लेकर माता-पिता अपने मनों में परस्पर दुश्मन बन जायेंगे, तो जाहिर है घर, घर नहीं रहेगा, युद्ध क्षेत्र बन जाएगा, उल्टे वहाँ बालक की पढ़ाई बिगड़ेगी ही। ऐसे में माता-पिता दोनों में से जो

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 31-32

विचारवान हो, वह दूसरे साथी को धीरज से समझाने का प्रयत्न करें, शान्ति से अपने योग्य व्यवहार की छाप उस पर अंकित करे। कोई किसी के अज्ञान को अभिमान से दूर करने का प्रयत्न न करे। अज्ञानी का गुरू अधिक विनयशील और सरल होना चाहिए। अज्ञान बुद्धि-बल से आन्दोलित होता है, डरता है, पर प्रेम से अपना रास्ता नापता है। बुद्धि-बल से सत्य स्पष्ट होता है, पर प्रेम-बल से उस सत्य को स्वीकार कराया जा सकता है। अत: दोनों में से बालक का हित करने में जो भी ज्यादा समझदार हो, उसे चाहिए कि शान्ति व प्रेम से दूसरे साथी को समझाए। ऐसा करने के बावजूद अज्ञानी एकदम समझ ही जाएगा। यह भी सम्भव नहीं। इसके वास्ते अपने भीतर-बाहर बहुत-कुछ सहना पड़ता है। वस्तुत: सभी-कुछ हँसते-हँसते सहना चाहिए, तभी आखिर में सत्य विजयी होगा। सामने वाले के प्रति हम जितना क्रोध करेंगे, नफरत रखेंगे, समझ लो, उतना ही हम सत्य के प्रति कम-योग्य हैं। अत: स्त्री अथवा पुरुष को परस्पर विरोधी बनकर नहीं, अपितु मेलजोल रखकर, यह मानकर कि उनका पारस्परिक हेतु शुभ है - उसे लेकर मत-विरोध से नहीं, एक-दूसरे को मधुरतापूर्वक सुधारना चाहिए।

गिजू भाई का मानना है कि उच्च शिक्षण-सिद्धान्तों का अनुसरण करके ही, जिस प्रकार बालकों के साथ व्यवहार किया जाता है, वैसे ही जरूरत पड़ने पर अपने जीवन-साथी के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए।[1]

पारिवारिक कलह की स्थिति में व्यक्ति क्या करें? गिजू भाई कहते हैं कि जब कभी मन अत्यधिक परिताप से भर उठे, उस समय (और ऐसा परिताप स्वाभाविक भी है) सामने वाले को डांटने-फटकारने की बजाय में हमें अपने मन में दुख का अनुभव कर लेना अधिक समझदारी है। क्रोध के आवेश में सिर्फ स्वयं को ही सजा देनी चाहिए, सामने वाले को क्रोध दिखाकर वश में करने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। क्योंकि इससे उसे अधिक दु:ख होगा, कदाचित वह अत्यधिक निष्ठुर बन जाए। दिल में सहना और ऊपर से हंसना, साथ-ही-साथ यथासमय दृढ़ता से, व्यवहार से और परामर्श से यह बताते रहना कि सत्य क्या है, यही अभीष्ट है।

'बच्चों पर जुल्म होते हैं', 'क्यों मानी इनकी बात?', 'बस, यह परिस्थिति बहुत घटिया है' - ऐसे ख्याल जब भी मन में उठने लगें, तब धैर्य ही रखना चाहिए। अगर माता-पिता की परिस्थिति सचमुच ही अनीतिमय हो तो बालकों के हित में वे एक-दूसरे का त्याग अवश्य कर सकते हैं, लेकिन अज्ञानता के दोषों की वजह से कोई किसी को न त्यागे। अज्ञानता को या मूर्खता को निभा लेना चाहिए। शिक्षण को लेकर माता या पिता का अयोग्य व्यवहार घर के लिए एक अनिवार्य आपत्ति ही है, पर उसे लेकर घर टूटना नहीं चाहिए। भले ही माता-पिता दिल में दु:खी हों, पर वे इसका

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 7-8

समाधान तलाश करें। लेकिन जब समाधान ढूंढ़ पाना सर्वथा मुश्किल हो जाए, एक को सांधते तेरह टूटें, समाधान निकाल पाना कैसे ही करके सम्भव न हो, तब कोई अच्छा प्रबंध करके बालक को अच्छे विद्यालय में, और इससे भी आगे बढ़कर उसे अच्छे छात्रावास में भर्ती करा देना चाहिए। बच्चे तो होते ही हैं। यह प्रकृति का नियम है, अत: इस तथ्य को स्वीकार करके उनकी शिक्षा का प्रबंध करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

इस प्रकार गिजू भाई माता-पिता दोनों को दायित्व-बोध कराते हैं कि परिवार को विघटन से बचाने का वे हर सम्भव प्रयास करें तथा पूर्णतया असफल रहने की दशा में बालक के हित को प्राथमिकता देते हुए छात्रावास में उचित रहा है। गिजू भाई का मानना है कि भविष्य में ऐसी स्थितियाँ पैदा न हों इसके लिए अभी से परिवार-शिक्षा के उपाय तलाश कर दिये जाने चाहिएँ। इतना सब करने के बाद भी कुछ अनुकूल नहीं होना-जाना। हर चीज का विकास समय मांगता है। आज हम जो कुछ सोच या कर सकते हैं, वह दूसरे लोग अभी से क्यों न करें-ऐसी बात पूछना हमारी विकास- विषयक सच्ची कल्पना की त्रुटि प्रकट करता है। हमारे अन्य दोनों के लिए जिस प्रकार हमीं को धीमे-धीमे प्रयत्न करके आगे बढ़ना होता है, वैसे ही सामान्य स्त्री-पुरुषों को भी यही बात दिमाग में रखकर परस्पर निभाव कर लेना चाहिए और ऐसी समझदारी का अवसर लाना चाहिए। बच्चों को सुन्दर बनाने के लिए हरेक माता-पिता अपने आपको बदल डालें, यह एक खामखयाली होगी। ऐसी बात सोचने वाले लोग बालकों के हित-चिन्तक नहीं होते। जो लोग बालकों के हित-चिन्तक हैं- शिक्षाशास्त्री हैं, उन्हें चाहिए कि स्त्री-पुरुषों की शिक्षा का मार्ग भी वही तलाश करें, क्योंकि समस्याओं का समाधान वहीं सम्भव है। उन्हें पता है कि अबाल-वृद्धजनों की शिक्षा के सनातन सिद्धान्त क्या हैं?[1]

गिजू भाई पूर्णत: आशावादी हैं तथा वे चाहते हैं कि हमें किसी भी विपरीत परिस्थिति में निराश नहीं होना चाहिए। उपयुक्त कर्म करते रहना तथा शेष को ईश्वर की कृपा पर छोड़ देना ही निराशा व हताशा से बचने का सर्वोत्तम उपाय है।[2]

बालक की शक्ति में आस्था रखें:- स्वयं में विश्वास रखने वाला व्यक्ति ही दूसरों में विश्वास रखता है। व्यक्ति का आत्म-विश्वास ही व्यक्ति में वह शक्ति उत्पन्न करता है कि दूसरों में विश्वास रखते हुए उन्हें स्वतंत्रता प्रदान पर सके। मानव विकास में आस्थावान शिक्षक व अभिभावक बालक स्वतंत्रता प्रदान कर बाल-विकास में पूरी सहायता प्रदान करते हैं। गिजू भाई कहते हैं कि बालकों में अश्रद्धा उत्पन्न करके हम उनको शक्तिहीन बना डालते हैं। असल में बालकों के प्रति हमारा अविश्वास या हमारी अश्रद्धा हमारे अपने अविश्वास और हमारी अपनी अश्रद्धा की सूचक है। हमको

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 2

2- वही, पृ0 9

अपने बालकों में विश्वास रखने की अपनी शक्ति और अपने साहस का विकास करना चाहिए। यदि हम उनमें थोड़ी भी श्रद्धा रखेंगे, तो वे हमको यह प्रतीत करा ही देंगे कि वे बहुत अधिक श्रद्धा के पात्र हैं। बालक छोटा है, पर वह मनुष्य है और अपनी मनुष्यता का विकास करने के प्रयत्न में लगा है। हमारा काम है कि हम बालक में विश्वास रखें और बढ़ने में उसकी मदद करें। बालक हमारे विश्वास का अधिकारी है। हम उसको विश्वास दें।

गिजू भाई कहते हैं कि परिवार में दैनन्दिन के घरेलू कार्यों में हाथ बंटाने की इच्छा रखने वाले बालकों को भी माँ-बाप हत्सोत्साहित करते हैं। जब अपने विकास के लिए आवश्यक कोई काम उनको मिलता है, तो उनके चेहरे पर आनन्द छलकने लगता है, और उनका शरीर चेतना से भर उठता है। जैसे-जैसे वे काम करते जाते हैं, वैसे-वैसे पल-पल में काम करने की अपनी शक्ति में उनका विश्वास बढ़ता रहता है। इस बढ़े हुए विश्वास के कारण ही बालक हमसे कहते हैं : "हम काम कर सकेंगे। इसको हमें करने दीजिए। हम इसको करना जानते हैं।" यदि हम उनको काम करने से रोकते हैं तो अकसर वे हमसे झगड़ते हैं और हमारी मार भी खाते हैं।[1]

गिजू भाई कहते हैं कि इस तरह बार-बार मना करने से और यह कहते रहने से कि तुम यह काम नहीं कर सकोगे, बालक अपना आत्मविश्वास खो बैठता है। इसके बाद तो वह खुद काम करने से ही डरने लगता है। काम शुरू करते समय उसको अपने माता-पिता की बातें याद आती हैं और वह काम करना छोड़ देता है। वह खुद यह मानने लगता है कि सचमुच उससे यह काम होगा ही नहीं।

बालक अपना आत्मविश्वास खोकर दूसरों का गुलाम बन जाता है, अपंग बन जाता है। छोटे मोटे कार्यों को करने के लिए वह दूसरों का मुंह ताकता है, कि वे मदद करें। गिजू भाई कहते हैं कि हम तो यह मानते हैं कि हमारा बालक अपने काम खुद ही कर लेने के लायक नहीं है, इसलिए उसके सारे काम हमको कर देने चाहिए। अपने बालकों को चाहने वाले माता-पिता ये सारे काम करके यह मान लेते हैं कि वे अपने बालकों को बहुत सुखी बना रहे हैं। अपने बालक के महत्व को समझने का दावा करने वाले माता-पिता मानते हैं कि अपने बालकों के लिए वे जो कुछ भी करते हैं, सो सब उनकी पूजा करने और उनको सम्मानित करने के विचार से ही करते हैं। लेकिन असल में ये सब लोग अपने बालक को पल-पल में अपंग बनाते रहते हैं और उसको अपना गुलाम बना लेते हैं। हम जिसके गुलाम बनते हैं, वह हमारा बड़ा गुलाम बन जाता है। गिजू भाई प्रश्न करते हैं कि क्या हम अपने बालक पर विश्वास करते हैं? हम मानते हैं कि उसमें व्यवस्था करने की शक्ति ही नहीं होती लेकिन हमारे पास बालक को देखने समझने लायक आँख ही कहाँ है? अज्ञान के घने अंधकार ने हमको चारों ओर से घेर रखा है। अपने बालक पर विश्वास करके क्या हमने उसको कभी कोई काम

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 43-44

करने का अवसर दिया?

गिजू भाई माता-पिता से कहते हैं कि जब बालक के बदले हम कभी खाते-पीते नहीं। बालक के बदले हम कभी चलते-फिरते नहीं। बालक के बदले हम कभी खेलते-कूदते भी नहीं तो हम अपने बालक के बदले उसके बर्तन क्यों मांज दिया करते हैं। उसको कपड़े भी हम ही क्यों पहनाते हैं। भोजन के समय उसके लिए पाटा भी हम क्यों बिछा देते हैं। वे पूछते हैं कि अगर कोई हमको हमारे लायक सारे काम करने से रोक दे तो हमको उसका यह व्यवहार कैसा लगेगा? उस स्थिति में हमारी हालत गुलाम की होगी या मालिक की? क्या ऐसा मालिकपन हम पसंद करेंगे? यह मालिकपन होगा या मुर्दापन? वे माता-पिता को समझाते हैं कि असल में, बालक तो सब-कुछ कर सकते हैं। अतः हमें इस बारे में सोचना चाहिए।[1]

माँ का प्रेम बालक के लिए हितकारी हो, उसे निर्बल, शक्तिहीन, निकम्मा, आलसी, कायर, पराश्रित, परमुखापेक्षी बनाने वाला नहीं। अत्यधिक संरक्षण की भावना व बालक को लेकर सदैव दुश्चिंताओं से ग्रस्त रहना माता-पिता के लिए कदापि उचित नहीं है।

गिजू भाई की दृष्टि में बालक के प्रति माँ की अति ममता बालक के अपने विकास में ही बाधक बने, तो वह उसका मातृ-प्रेम नहीं बल्कि मातृ-स्वार्थ ही माना जायेगा। माँ यह कभी न चाहेगी कि उसके बालक को कहीं कोई चोट पहुँचे। किन्तु इसी के साथ यदि माँ इस बात की चिन्ता न रखे कि उसका बालक निष्क्रिय और अशक्त न रहे, तो मानना होगा कि माँ की बुद्धि और भावना अविकसित और अन्धी रह गई है। एक उदाहरण के द्वारा वे इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मान लीजिए कि बीस साल की अपनी उम्र में यह बालक तैरना न जानने के कारण ही किसी बाढ़ में बह जाता है, जबकि इसके वे साथी जो नदी में नहाते-नहाते धीरे-धीरे तैरना सीखकर निर्भय बने हैं, बच जाते हैं, तो ऐसी स्थिति में इस बालक की माँ क्या सोचेगी? वह तो अपना सिर पीटकर कहेगी कि हाय, हाय, मैं कैसी कम अक्ल रही कि मैंने खुद ही अपने बालक को शक्ति-सम्पन्न होने से रोका? खुद मैंने ही उसके हाथ-पाँव काट डाले अथवा उनको बाँधकर रखा।[2]

वे कहते हैं कि बहुत ज्यादा फिक्र करने वाली माताओं के बालकों की यही हालत होती है। यही सहज भी है। बालक का मूल स्वभाव अपनी हलचलों से शक्ति प्राप्त करने का है। किन्तु जब कोई शुभचिन्तक माता बालक को सब तरह के काम करने से रोकती है और बालक की सुरक्षा के विचार से उसके सारे काम खुद कर देती है या करवा देती है, तब बालक निकम्मा बनकर अन्दर ही अन्दर सड़ने लगता है। उसकी शक्ति का प्रवाह थोड़े समय के लिए जोर पकड़ने के बाद फिर क्षीण होने लगता है। बार-बार रोने और हाथ-पाँव पछाड़ने के बाद उसका अपना व्यक्तित्व कुण्ठित

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 29

2- वही, पृ0 37

होने लगता है और अन्त में बालक हताश बनकर अशक्त होते रहने की दिशा पकड़ लेता है। इस तरह धीरे-धीरे वह अपना आत्मविश्वास खो बैठता है। वह अपनी माँ को ही सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान मानने लगता है। माँ की हर बात उसके लिए शास्त्रवचन बन जाती है। वह खुद सोचने और काम करने की अपनी शक्ति खो देता है। लोग उसको अपनी माँ का पिट्ठू और माँ का फरमाबरदार कहने लगते हैं। बाद में अपने इसी फरमाबरदार बेटे से माँ कहती है : "अभागे तू ऐसा नामर्द कैसे बन गया? कम्बख्त तुझको इतना संभाला और सहेजा, क्या इसी कारण तू इतना निकम्मा बन गया है?" लेकिन यह सब तो 'का वर्षा, जब कृषि सुखानी' जैसी बात हो जाती है।[1]

गिजू भाई का मंतव्य यह लेशमात्र भी नहीं है कि माँ बालक के प्रति उदासीन हो जायें, उपेक्षा बरते या उसकी चिंता करना ही त्याग दें। वे तो मानते हैं कि माँ को बालक की चिन्ता तो रहनी ही चाहिए। लेकिन यह चिन्ता बालक के लिए हमेशा हितकारी होनी चाहिए। सब माताएँ हमेशा यह नहीं सोचतीं कि कभी किसी पर कोई भरोसा किया ही न जाए। किसी का मातृ-प्रेम भरोसे पर निर्भर करता है, किन्तु वह बालक के बारे में पूरी तरह निश्चिन्त नहीं रह सकता। माता को चाहिए कि वह अपनी इस कोमल भावना को बालक के ही हित में कुछ कठोर बना ले। इस तरह कठोर बनी हुई कोमलता को ही सच्ची और संतुलित भावना माना चाहिए। कई माताएँ अपनी दुर्बल भावना के कारण अपने बालकों को निर्बल बनाए रखती हैं, और आखिर वे उनको खो बैठती हैं।[2]

परिवार का वातावरण कलह मुक्त हो:- बालकों में यदि अवांछनीय व्यवहार दिखायी पड़ते हैं तो उसका मूल कारण अनेक बार माता-पिता का दोषपूर्ण अन्तर्सम्बन्ध व पारस्परिक व्यवहार भी होता है। गिजू भाई इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि बालक हमारी आज्ञा का पालन नहीं करते, इसके अलग-अलग कारण होते हैं। इन कारणों में एक कारण यह भी होता है कि बालक देखा करते हैं कि घर में माता-पिता एक-दूसरे की बात सुनते और मानते नहीं हैं। बालक नन्हें होते हैं। हम बड़े उनके लिए आदर्श का काम करते हैं। हम उनके लिए दर्पण बनते हैं। अगर वे हमारा अनुकरण करते हैं, तो इसमें दोष किनका है? यदि स्त्री-पुरुष या पति-पत्नी हमेशा एक-दूसरे की न सुनें, न मानें तो इस दुनिया का काम ही न चले। हम आपस में एक-दूसरे की बात मानते-सुनते हैं, इसी से तो यह दुनिया चलती रहती है। लेकिन यह भी सच है कि अकसर माँ-बाप एक -दूसरे से टकराते रहते हैं। उनकी यह टकराहट एक-दूसरे के अधिक निकट आने के लिए भी होती है और एक-दूसरे के बारे में जानकारी की कमी या समझ का फेर भी आपस की टकराहट का कारण बन जाता है। वैसे, टकराहट स्वाभाविक है, लेकिन उससे बालकों को कोई नुकसान नहीं पहुंचना चाहिए।[3]

गिजू भाई की मान्यता है कि बाल-शिक्षा का अथवा सत्य की उपासना का ऐसा कोई तत्व

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ० 37

2- वही, पृ० 38

3- वही, पृ० 26

नहीं है कि माता-पिताओं के सारे व्यवहारों की जानकारी बालकों को होनी चाहिए। कई बातें ऐसी होती हैं कि समय आने पर बालक उनको जान ही लेते हैं। जल्दबाजी में अपने मतभेदों के कारण या दूसरे किसी भी कारण से माता-पिताओं को अपने बालकों के सामने आपस में न तो लड़ना-झगड़ना चाहिए ओर न एक-दूसरे की आज्ञा का उल्लंघन भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि माता-पिता के मन में जागे झगड़ों के कारण तो आसमान में उठे बादलों की तरह कभी भी छँट जाते हैं, और अंत में एक-दूसरे के बीच रहा निर्मल आकाश-सा प्रेम प्रकट होता है। किन्तु बालक तो अपने माता-पिता को उन बादलों की गडगड़ाहट से और उसके कारण छाए अंधेरे से ही पहचानते हैं और उसी हिसाब से वे उनको मापते-तौलते भी हैं। अकसर इसके कारण हुई गलतफहमी की वजह से बालक अपने माता-पिता के विरोधी बन जाते हैं, वे मन ही मन उनको धिक्कारने लगते हैं, और उनकी आज्ञा का अनादर भी करते हैं। माता-पिता अपने आपस के झगड़ों को अपने तक ही सीमित रखें, इसी में उनका और उनके बालकों का हित निहित है। इस तरह अपने बालकों को संभालते-संभालते एक स्थिति ऐसी भी आ सकती है कि जब वे अपने आपसी झगड़ों से सदा के लिए छुटकारा पा जाएं। बालकों के सामने तो माता-पिता का अपना सच्चा प्रेमल स्वरूप ही आना चाहिए। उनका अपना जो शुद्ध, निर्मल आकाश है, वही प्रकट होना चाहिए क्योंकि वही सत्य है, और वही शाश्वत भी है। द्वंद्व तो क्षणिक ही होते हैं।[1]

आस-पड़ोस के बच्चों की तकरार को मुद्दा बनाकर न तो पड़ोसियों से लड़ना-झगड़ना ही उचित है न ही माता-पिता द्वारा परस्पर कलह करना। गिजू भाई की दृष्टि में ऐसे प्रसंग में मौन रहना ही सही सबक है। बच्चों को लेकर माँ-बाप ही लड़ पड़े तो एक नया झंझट खड़ा हो जाता है।[2]

'समस्या-बालक' 'समस्या माँ-बाप' की देन है:- गिजू भाई कहते हैं कि 'समस्या-बालक' इसी रूप में जन्म नहीं लेते हैं। बालक तो सामान्य ही पैदा होता है। उसका 'समस्या बालक' बन जाना वातावरण की देन है। दूसरा सबसे बड़ा कारण परिवार में ही होता है। परन्तु इसे देखने व ढूँढने के लिए दृष्टि चाहिए, वह भी नील जैसी। वे कहते हैं कि "काफी पहले मैंने ए.एस. नील की The Problem Child पुस्तक पढ़ी थी। मनोवैज्ञानिक के नाते नील के प्रति मेरा मत बहुत ऊँचा है। कहा जाता है कि उसे मन की गहराइयों में उतरने का कुदरती वरदान मिला हुआ है। मेरी मान्यता है कि उसमें सही चीज को उसके असली रूप में (यथातथ्य) देखने की शक्ति है। जिसे हम नग्न सत्य कहते हैं, भले ही वह उसके अपने बारे में हो अथवा दूसरों के बारे में, वह उसे देखने में सक्षम है। वह शर्महीन है। ज्यादातर लोग ऐसे होते हैं कि वे अपने आपको नग्न देख ही नहीं सकते, उन्हें स्वयं को देखने में घृणा, शर्म और संकोच होता है। ऐसे लोग अधिक संख्या में है। स्वयं को नग्न न देखने वाला

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 27

2- चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 12

व्यक्ति बाहरी दृष्टि से अपने अन्तःकरण को नहीं देख सकता। किसी को इस तरह नहीं देखा जाना चाहिए, ऐसी संस्कारी मान्यता की वजह से वे लोग स्वयं को भी नहीं देख सकते, स्वयं के बारे में भी अज्ञानी बने रहते हैं यह तो स्थूल की बात हुई, पर ऐसे लोग अपने सूक्ष्म को, मन को, भावनाओं और विकारों आदि को भी नहीं देख सकते, देखने में संकोच करते हैं, शर्माते हैं, भड़कते हैं और भय खाते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्य भीतर-बाहर से कैसा होना चाहिए, दुनिया ने इसका जो एक स्तर निर्धारित कर रखा है, उस स्तर से स्वयं का अवलोकन करते हुए वे घबराते हैं उस स्वर से वे बहुधा स्वयं को बहुत नीचे देखते हैं। इसीलिए नीचाई को ऊँचाई की ओर ले जाने का विचार हाथ में लेने की बजाय वे नीचाई को ही देखना नहीं चाहते। अर्थात वे अपनी ही तरफ देखकर अपने आपको जानना नहीं चाहते?" गिजू भाई का कहना है कि नील ऐसे लोगों में से नहीं था। वह प्रत्येक बालक को नग्न देख सकता था। बड़े अमीर का बेटा ऐसा भयंकर कैसे निकल जाता है, इसकी गहराई से पड़ताल करने की बजाय उसके मन में ऐसे विचार कभी नहीं आते कि इस तरह से किसी को उघाड़कर नहीं देखना चाहिए। वह तो मानकर चलता है कि अमीर का बालक ऐसा हो भी सकता है। अमीर का दर्जा बाहरी है, असली चीज है बालक के अन्तःकरण की मनोवृत्तियाँ। 'समस्या बालक' (The Problem Child) का विचार वही आदमी अच्छी तरह से कर सकता है जिसमें बालक को आर-पार देखने की हिम्मत हो।[1]

गिजू भाई की दृष्टि में सच तो यह है कि नील के स्कूल में जाने से पहले ही वहाँ का प्रत्येक बालक 'समस्या' बन जाता था। नील उनको अपनी स्कूल में सुधारने की मिथ्या कोशिश करता रहा, अगर कोई ऐसी टिप्पणी करे तो गलती कहां है? वे कहते हैं कि "आज के माता-पिता ही समस्यात्मक हैं, 'समस्या' हैं। जब माँ-बाप ही समस्या हैं तो उनके बच्चे दुगने 'समस्या' बालक ही होंगे, यही स्वाभाविक है। इसीलिए फकत बाल-शिक्षण से आज की उलझन का समाधान सम्भव नहीं है, इसका समाधान तो माता-पिता के शिक्षण में है, माता-पिता और शिक्षक के सहकार में है, माता-पिता की जागृति में है। हमें नील को सलाह देनी चाहिए कि उसे 'समस्या-माँ-बाप' की स्कूल शुरू करनी चाहिए। मुझे लगता है ऐसी स्कूल में बैठने वालों की तलाश में उसे कहीं दूर जाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी।"[2]

परिवार में मेहमान और बालकः- गिजू भाई बालक के परिवार के सदस्यों के कर्तव्यों की ओर ही नहीं, परिवार में आने वाले मेहमानों व मित्रों के भी सम्बन्ध में परिवार द्वारा क्या बातें ध्यान रखी जानी चाहिएँ, इस ओर भी माँ-बाप का ध्यान आकर्षित कराते हैं। वे स्पष्ट शब्दों में सचेत करते हैं कि मेहमान के प्रति सम्मान भावना व आतिथ्य सत्कार का होना तो उचित है परन्तु एक सीमा से ज्यादा

1- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 35

2- वही, पृ0 36

उनका घर में हस्तक्षेप ठीक नहीं। उन पर बहुत अधिक भरोसा करते हुए अपने बालकों को उनके सानिध्य में लम्बे समय तक छोड़ देने का भी गिजू भाई समर्थन नहीं करते हैं। वे कहते हैं कि "बालकों को अपने रिश्तेदारों और मेहमानों की भावना का अधिक लाभ देते रहना जरूरी नहीं है।"

वे माता-पिता को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि बालकों को जिस चीज की जरूरत हो, वह चीज हम उनको लाकर दे दें और अगर वे चाहे, तो हम उनसे घुमाने भी ले जाएं, लेकिन अपने मेहमानों को हम ये सारे काम न करने दें। अकसर देखा गया है कि इसके कारण बालक लोभी और लालची बन जाते हैं। जो चीजें उनको अपने माता-पिता से नहीं मिलती, उन चीजों को वे दूसरे उपायों से पाने की कोशिश करते हैं, और इस तरह वे अपने को गिरा लेते हैं। चिन्ता नहीं, यदि हमारे बालक मिजाजी दिखायी पड़ें। चिन्ता नहीं, यदि हम स्वयं अभिमानी दिखायी पड़ें। किन्तु हम अपने बालकों को हर किसी मेहमान के साथ घुलने-मिलने और खेलने-भटकने की स्वतंत्रता तो कदापि न दें।

सामाजिक व बालकों के बौद्धिक विकास की दृष्टि से विद्वान मित्रों के साथ अन्त:क्रिया के अवसर बालकों को दिये जायें। परन्तु माँ-बाप को सदैव जागरूक व सावधान रहना चाहिए। वे कहते हैं - "माता-पिता के नाते हम भी अपने मित्रों का सच्चा सदुपयोग करते रहें। हम अपने बालकों को अपने मित्रों की कुशलता का, बुद्धि का, कलाप्रियता और संस्कारिता का लाभ अवश्य ही दें। इसके लिए अपने सुयोग्य मित्रों को अपने घर में अधिक निकटता का स्थान देकर हम उनकी कहानियों, नाटकों, बातचीत, खेल और मनोरंजन आदि को सुनने और देखने की व्यवस्था अपने बालकों के लिए अवश्य ही करें। हमारे मेहमान हमारे सिर-माथे हैं, किन्तु इसके कारण हमारी होशियारी में कोई कमी नहीं आनी चाहिए।"[1]

यदि हम बालकों को सचमुच चाहते हैं तो भोजन के समय तो हम उन पर कभी नाराज न हों। भोजन के समय हम बालक के आनन्द का ही विचार करें। सोते समय हम बालक के सुखमय सपनों की ही बातें सोचें। घर में जो भी बना हो, और बालक को जो भी पसन्द हो, सो उनको तब तक खाने दीजिए, जब तक वह खाना चाहे। जब तक बालक अपनी मौज के साथ खेलना चाहे उसको खेलने दीजिए। बालक को यह कहते रहने से क्या फायदा कि वह यह चीज खाए और वह चीज खाए?[2]

एक बात और जब तक बच्चा खाता-पीता है, खेलता-कूदता है, दुर्बल या कमजोर नहीं होता, तब तक उसके पौष्टिक आहार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। बालकों की रूचि भिन्न होती है। बच्चे को जो स्वाद आए उसे खाकर अगर वह पेट भर ले तो फिक्र की कोई बात नहीं। बस उसका आहार पौष्टिक व निर्दोष होना चाहिए। व्यंजन उसकी रूचि के अनुरूप बनाए जाने चाहिएँ। व्यंजनों को बनाने की विधियों में फेरफार करके भी देखना चाहिए कि वे उसे भाते हैं या नहीं। इस बारे में बच्चों

1- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 115

2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 20

से बातचीत भी करनी चाहिए। बच्चा अगर आचार या ऐसी चीजें नहीं खाता, तो कोई नुकसान नहीं होगा।[1]

साथ-साथ भोजन करना:- परिवार में सभी सदस्यों के साथ-साथ बैठकर भोजन करने से सदस्यों के साथ बालक में प्रेम-भावना का विकास होता है, वह बहुत सी अच्छी बातें व संस्कार ग्रहण करता है। इस सम्बन्ध में गिजू भाई का मानना है कि एक साथ जीमने का अपना एक पारिवारिक आनन्द होता है। जहां बालकों और माता-पिताओं के लिए एक साथ बैठने की सुन्दर व्यवस्था हो, जहाँ भोजन करते समय माता-पिता केवल साथ में भोजन ही न करें, बल्कि वे सचमुच उनके साथ जीमें अर्थात बालकों की दुनिया के साथ घुल-मिलकर उनके आनन्द को बढ़ाते हुए भोजन करें, वहाँ यह व्यवस्था एक सुन्दर व्यवस्था मानी जाएगी। अपने उद्योगों में व्यस्त रहने वाले माता-पिता प्रायः दिन के समय में अपने बालकों के सम्पर्क में कम ही आ पाते हैं। बालकों का भोजन कर लेना ही काफी नहीं है। जरूरी यह है कि बालक संस्कार-युक्त वातावरण में, माँ की ऊष्मा के साथ, हँसते-हँसते और गपशप करते हुए भोजन करें। यह भी जरूरी है कि नन्ही मुन्नी की बारीक-सारीक बातें भी भोजन के समय सुनी जा सकें।[2]

बालक का 'भुक्खड़पन' समस्या नहीं माँ-पिता की अज्ञानता की देन है:- बहुत से बालकों में हर समय भूखे व्यक्तियों की तरह भोजन के लिए लालायित रहने का व्यवहार दिखायी पड़ता है। यह भुक्खड़पन ठीक नहीं है। गिजू भाई कहते हैं कि अपने बालकों को भूखों मारना हम पसन्द करते ही नहीं। किसी की ऐसी इच्छा हो भी तो वह एक दुष्ट इच्छा ही मानी जाएगी। किन्तु यह बात गलत नहीं है कि अलग-अलग कारणों से हम अपने बालकों को 'तृप्त होकर' 'सन्तुष्ट होकर' 'खुश होकर' भर पेट खाने ही नहीं देते हैं। जब हम अपने बालकों को भर पेट खिलाते ही नहीं हैं, तो फिर इसमें आश्चर्य ही क्या है कि उनमें ऐसा भुक्खड़पन प्रकट होता है? असल में बालक भुक्खड़ के रूप में जन्म नहीं लेता। हरेक बालक को भूख लगती है। भूख लगने पर उसको खाना ही चाहिए। भूख खाने के लिए ही लगती है। लेकिन जब भूख लगने पर भूख की सच्ची स्थिति में, हम बालक को उचित तौर पर पर्याप्त आहार देने से इंकार करते हैं, उसमें बाधक बनते हैं, तो जो भूख स्वस्थ मनुष्य में होनी चाहिए, और जब वह नहीं होती, तो चिन्ता का कारण बनती है, वही भूख विकृत बनकर भुक्खड़पन की बीमारी का निमित्त बन जाती है। लगता है कि अपने बालकों के भुक्खड़पन के लिए स्वयं हम ही जिम्मेदार हैं।

बालक के लिए स्वास्थ्यप्रद आहार का अन्दाज मिल जाने के बाद हम बालक को उसकी सच्ची भूख तृप्त करने के अवसर देते रहेंगे, तो निश्चय ही बालक भुक्खड़पन से बच सकेगा।

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 12-13

2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 77

बालक का दृष्टिकोण समझें:- गिजू भाई कहते हैं कि माता-पिता अक्सर बालकों की बातों को सुना-अनसुना कर देते हैं, और बालकों को सही मंशा को समझने के बदले उनकी बातों में अपने विचारों का आरोपण करके, अपने इन आरोपित विचारों के लिए हम बालकों को डाँटते-डपटते रहते हैं। उनका मानना है कि यह गलत है कि बालकों की दृष्टि से उनके छोटे और निरर्थक-से कामों में भी बहुत अर्थ भरा रहता है, जबकि हमको उनमें कोई अर्थ दिखता ही नहीं। असल दृष्टि हमारी नहीं, पर बालक की होनी चाहिए। बालक की दृष्टि से ही हमको उसकी गतिविधियों को देखना और समझना चाहिए। जिसके पास अपनी आँख है, उसके पास अपनी दृष्टि भी होनी चाहिए। जिसके पास अपनी जीभ है, उसको अपना स्वाद का ख्याल रखना चाहिए। जिसके पास बुद्धि है, उसको अपनी बुद्धि के उपयोग का महत्व समझना चाहिए। जो दूसरों को अपनी आँख देकर उनकी आँख बंद कर देते हैं, जो दूसरों को अपनी बुद्धि का अस्तर देकर उनकी बुद्धि को ढँक देते हैं, वे दूसरों की उन्नति के द्रोही होते हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम बालक की दृष्टि को समझें। इसी में बालक का उद्धार निहित है। जगत् को और जीवन को देखने-समझने की बालक की भी अपनी एक दृष्टि होती है. और होनी चाहिए। इस बात को स्वीकार करके, हम बालक की दृष्टि के विकास में बाधक न बनें, बल्कि सहानुभूतिपूर्वक उसकी दृष्टि को समझने का प्रयत्न करें और बालक को उसकी रूचि के काम करने दें, तो हम बालक को उसकी दृष्टि से समझ सकेंगे और बालक भी हमारी दृष्टि को समझ सकेगा। इस तरह एक-दूसरे की दृष्टि को समझते रहने से आपस का विश्वास अधिक बढ़ेगा। इसके फलस्वरूप दोनों एक दूसरे के अधिक निकट आएंगे और इस कारण दोनों अधिक आगे बढ़ सकेंगे।[1]

गिजू भाई कहते हैं कि बालक के मन की भावना के प्रदेश को जानने-समझने के लिए हमको आवश्यक प्रयत्न करने चाहिए। जब हम एक बार बालक की दृष्टि से देखना शुरू कर देंगे, तो हमारे और बालक के बीच की गलतफहमियाँ दूर हो सकेंगी और दोनों पक्ष सुखी बन सकेंगे।[2]

बड़ों का आचरण:- निःसंदेह बालक बड़ों का अनुकरण करते हैं। वे बड़ों के व्यवहार व आचरण को निरंतर देखते व परखते हैं। यह अवलोकनात्मक अधिगम उनके अपने विकास की दिशा को प्रभावित करता है। परिवार के बड़े सदस्य यदि करते कुछ है और कहते कुछ हैं तो बालक पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी ही घटनाएँ परिवार में देखकर गिजू भाई विचार करते हैं कि - "जब तक काकीजी और बुआजी, काका और भैया, मौसी और मामा सब छोटे बच्चों को इस तरह अपने मित्रों को छोड़कर गुपचुप खाने और खिलाने की शिक्षा देते रहेंगे, तब तक नैतिक शिक्षा के, धार्मिक जीवन के, सत्य विचार के ओर सत्याचरण के हमारे सारे उपदेश निरर्थक ही रहेंगे।"[3]

रुसो ने भी स्पष्ट कहा है कि बालक जन्म से अर्थात नैसर्गिक रूप से तो सत्य ही बोलता है

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 94-95

2- वही, पृ0 60

3- वही, पृ0 66

झूठ बोलना तो उसे समाज सिखाता है। गिजू भाई कहते हैं कि जैसे हम होंगे, वैसे ही हमारे बालक बनेंगे। यह कभी संभव ही नहीं है कि हम एक प्रकार का व्यवहार करें और हमारे बालक उससे भिन्न कोई दूसरे प्रकार का व्यवहार करें। बालक हमारे सब कामों को बड़ी बारीकी के साथ देखते रहते हैं और वे हमारा ही अनुकरण करते हैं। यदि हम अपने विचारों और विकारों पर अपना अंकुश लगाए रहेंगे, तो बालक भी वैसा करना सीखेंगे। अपने बालकों के लिए हमको अपना व्यवहार, अपनी वाणी और अपने काम अच्छे रखने चाहिएँ।[1]

माता-पिता बुरी आदतें रखें, दुव्यर्सन अपनायें तो बालकों को इन्हें त्यागने का उपदेश देना व्यर्थ होगा। गिजू भाई कहते हैं कि आज हम जिस चीज का त्याग करेंगे, उसका त्याग करना ये जरूर सीख लेंगे। वे कहते हैं कि परिवार में बड़ों का इतना प्रभाव बालकों पर पड़ता है कि जैसे बड़े होते हैं वैसे ही बालक बन जाते हैं।[2]

इच्छाओं पर नियंत्रण सिखायें:- मानवीय इच्छायें अनंत होती हैं। एक पूरी होती है तो दूसरी जागृत हो जाती है। नाना वस्तुओं के प्रति बड़े ही नहीं बालक भी तीव्र आकर्षण रखते हैं। समय-समय पर माँ-बाप से उनकी मांग करते रहते हैं। परन्तु बालकों की सभी मांगों को, इच्छाओं का पूरा करना सभी माता-पिताओं के लिए न तो सदैव संभव होता है न ही सदैव उचित। इस विषय में गिजू भाई का मानना है कि हम ढेरों चीजें चाह सकते हैं, लेकिन जीवन का व्यवहार ही ऐसा है कि अपनी मनचाही चीजें हमको तुरन्त ही मिल नहीं सकतीं। अपनी इसी उम्र में बालक को इस साधारण नियम की जानकारी हो जाए, तो अच्छा ही हो। यदि हम बालक को दूसरी कोई चीज दे न सकते हों, अथवा बालक जो चाहता है, वह उस चीज को पाने योग्य नहीं है, तो भले ही हम उसको विवश भाव से रोने दें, लेकिन दूसरे से उसकी चाही चीज तो उसको हरगिज न दिलाएं।[3]

बालकों से अन्तःक्रिया:- माँ-बाप को बच्चों के साथ पर्याप्त अन्तःक्रिया करनी चाहिए। उनकी बातों की अनसुनी करना, उपेक्षा करना, डांटकर उन्हें चुप करा देना ठीक नहीं है। इससे बालक माता-पिता से दूर होता चला जाता है। रमण लाल व गजानन जी के पारस्परिक संवाद में गिजू भाई रमण लाल के माध्यम से कहते हैं कि बच्चों के कामों में दिलचस्पी दिखाकर हम उनके मित्र बन सकते हैं। उनसे यह पूछ कर कि वे अपनी कक्षा में किस नम्बर से पास हुए, हम उनके मित्र नहीं बन सकते। लेकिन जब हम उनसे पूछते हैं कि उनको अपना विद्यालय कैसा लगता है? उनके शिक्षक कौन हैं और वे कैसे हैं? शिक्षकों के बारे में उनके अपने विचार क्या हैं? और वे अपने शिक्षकों का मजाक किस तरह उड़ाते हैं? जब हम इस तरह बातें उनसे पूछने लगते हैं, तो वे हमारे नजदीक आने लगते हैं। अपने विद्यालय के बारे में और वहाँ होने वाले कामों के बारे में बालक हमसे कुछ-न-कुछ कहना तो चाहते

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 10
2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 43
3- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 50

ही हैं। पर जब कोई उनकी सुनने वाला नहीं मिलता, तो वे अनमने होकर पड़े रहते हैं। लेकिन जब हम उनकी बातें सुनने में अपनी दिलचस्पी दिखाते हैं, तो वे भी दिल खोलकर हमको अपने मन की बातें कहने लगते हैं।"[1]

वे कहते हैं कि बालकों के जीवन में छोटी-बड़ी कई बातें होती रहती हैं। इन सबके बारे में हम उनसे तरह-तरह की बातें कर सकते हैं। उनके छोटे-बड़े सुख-दुःख में हम उनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं, उनके छोटे-बड़े कामों की कद्र करते रहते हैं, तो बालक भी हमको अपना मित्र मानने लगते हैं। तभी उनका दिल पुलकित होता है और खुलता भी है।

गिजू भाई माता-पिता से प्रश्न करते हैं कि क्या अपने बालकों के हितार्थ वे - "कुछ देर के लिए अखबार पढ़ना छोड़कर क्या हम अपने बालकों की प्यार-दुलार भरी बातें नहीं सुनेंगे? कुछ देर के लिए अपने धंधे की बातें भुलाकर और अपनी पढ़ाई को एक तरफ रखकर क्या हम अपने बालकों को मीठी-मीठी बातें सुनकर सुलाना पसंद नहीं करेंगे?

बालक माता-पिता दोनों का सानिध्य चाहता है। गिजू भाई माँ-बाप से प्रश्न करते हैं कि क्या अपने बालकों की भलाई के लिए हम इतना काम भी नहीं करेंगे? क्लब में जाना छोड़कर क्या हम उनको बगीचे में घुमाने नहीं ले जायेंगे? अपने मित्रों से मिलना-जुलना छोड़कर क्या हम अपने बालकों को अजायबघर और बाजार दिखाने नहीं ले जायेंगे?[2]

आया से व नौकरों से बालक को बचायें:- गिजू भाई आया व नौकरों के हाथ बालक को सौंप कर निश्चिन्त हो जाने वाले माता-पिताओं की अत्यधिक आलोचना करते हैं। आया के बारे में वे कहते हैं कि आया का मतलब है, एक अर्धदग्ध, थोड़ी अंग्रेजी पढ़ी-लिखी और पेट के लिए नौकरी करने वाली स्त्री। सेठ के हिसाब से एक ऐसा होशियार और लायक व्यक्ति जो बालकों की सार-संभाल का काम कर सके। धनवानों के घरों का एक आवश्यक आभूषण। अमीरों और उमरावों की पदवी को सुशोभित करने वाला एक अतिरिक्त साधन। बालकों के माता-पिताओं द्वारा घर के पैसे खर्च करके रखा हुआ एक ऐसा समाजशास्त्री, जो बालकों को हवाखोरी के लिए ले जाने पर वहाँ अपने दल के बीच बैठकर हल्के ढंग की सामाजिक बातें करता है और बालकों को उन बातों का लाभ देता है।[3]

नौकरों के भरोसे बालक को छोड़ना भी गिजू भाई अनुचित मानते हैं। उनका मानना है कि जिस हद तक नौकर बालक की 'हाँ' में 'हाँ' मिलाता रहता है, उस हद तक बालक नौकर का गुलाम बनता जाता है। बालक पराधीन बन जाता है। जिस हद तक एक आदमी दूसरे आदमी के लिए काम करता रहता है उस हद तक वह काम करने वाले आदमी का गुलाम बनता रहता है जिन बालकों के

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 8

2- वही, पृ0 18-20

3- गिजू भाई बधेका -माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 102-104

सारे काम नौकर-चाकर ही करते रहते हैं, वे बालक मन से और शरीर से पराधीन होते हैं, अपंग और गुलाम होते हैं।

गिजू भाई कहते हैं कि यदि नौकर रखना जरूरी हो तो माता-पिता को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि - नौकर बालक को मारे-पीटे नहीं। नौकर बालक को डराए-धमकाए नहीं। बालक की उपस्थिति में नौकर कोई गंदी बात न कहे, कोई गाली न बके। बालक जो भी काम कर रहा हो उसको बालक के बदले नौकर कभी न करें। खेलते समय बालक कोई गलत काम न करते हों अथवा ऐसा कोई खेल न खेलते हों, जिससे उनके शरीर को भारी नुकसान पहुंचता हो, तो उनको उनके मनपसंद खेल खेलने से रोका न जाए। नौकर इसका पूरा ख्याल रखें।[1]

गिजू भाई कहते हैं कि आयाओं और नौकरों की पराधीनता से कुछ-कुछ मुक्त होने के बाद जो बालक बढ़ने की उम्र वाले माने जाते हैं, उन पर एक दूसरी राजसत्ता शुरू हो जाती है। बालकों को पूरी तरह गुलाम बनाने के ये नये तरीके आयाओं और नौकरों के तरीकों के साथ खूब ताल-मेल रखते हैं, इन तरीकों में एक तरीका घर में शिक्षक रखने का है, जो बालकों को पढ़ाने का काम करता है। आजकल शिक्षक रखने की एक फैशन चल पड़ी है और उसे एक प्रकार की प्रतिष्ठा भी मिल चुकी है। लेकिन क्या कभी किसी ने सोचा है कि बालक के लिए शिक्षक क्यों न रखा जाए? वह बालक को क्या सिखा रहा है और क्या नहीं सिखा रहा, इसकी जानकारी उससे लेता ही कौन है? सब कोई यही मानते हैं कि अगर बालक ने बारहखड़ी और गिनती सीख ली है, तो वह काफी है। लेकिन कोई इस बात का विचार नहीं करता कि बालक के विकास पर पानी फिर चुका है, बालक में विकसित होने की जो शक्ति और उत्साह था, वह दब चुका है, बालक का व्यक्तित्व मर चुका है, और वह एक यंत्र-सा बन गया है। आज यह दशा हमारे बालकों की है, उनको इस दशा में से छुड़ाने के लिए माता-पिताओं को क्या करना चाहिए, गिजू भाई सुझाते हैं। ये विचार गिजू भाई के स्वानुभवों का परिणाम है। तीन से छह-सात साल की उम्र के उन बालकों के लिए है, जो पाठशाला में न जाकर घर में ही रहते हैं। गिजू भाई का यह सुझाव भी है कि बालकों को हर किसी शिक्षक के हाथ में न सौंपा जाए। वे कहते हैं कि असल में छोटे बच्चों को टयूशन की कोई आवश्यकता नहीं होती, फिर भी टयूशन लगाने की इच्छा रोकी ही न जा सके, तो किसी ऐसे शिक्षक को रखा जाए, जो शिक्षा के विषय में कुछ जानता समझता हो। उनके अनुसार ऐसे शिक्षक में नीचे लिखे गुण होने ही चाहिए-

1. जो गुण नौकर के लिए आवश्यक हैं, वे सब गुण।
2. बालक को जो भी सिखाना हो, सो जबरदस्ती नहीं बल्कि राजी-मर्जी से सिखाने की वृत्ति
3. शिक्षक स्वभाव से धीर-गंभीर, हो खुशामदी नहीं।

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 85

4. शिक्षक के सामने सदा यह विचार रहे कि उसका काम मालिक को खुश रखने का नहीं है। उसे बालक को खुश रखना है। बालक के विकास के लिए उनको शिक्षक का काम सौंपा गया है।

5. यदि शिक्षक यह अनुभव करे कि उससे बालक को कोई लाभ नहीं हो रहा है, तो वह नौकरी छोड़ देने के लिए तत्पर रहे।

साथ ही गिजू भाई यह भी स्वीकार करते हैं कि आमतौर पर कोई बिरला ही शिक्षक ऐसे गुणों वाला मिलता है। इसलिए उचित तो यही है कि बालकों को शिक्षक के बिना ही सीखने दिया जाए। कोई चिंता की बात नहीं, अगर ऐसा करने से बालक कुछ कम सीखें। क्योंकि इससे उनको विकास का, उनकी आत्मा का नाश तो होगा ही नहीं। गिजू भाई सुझाव देते हैं कि छोटे बालक खुद ही अपनी उम्र के हिसाब से ज्ञान प्राप्त कर सकें, इसके लिए कुछ सुन्दर और व्यावहारिक योजनाएँ हैं। यदि इन योजनाओं पर सावधानी के साथ अमल किया जाए तो शिक्षक अथवा नौकर की मदद के बिना भी बालक बहुत-कुछ सीख सकता है। वह इतना होशियार बन सकता है कि उसको देखकर हम अचंभे में डूब जाएँ।[1]

बालकों की निजी बातों को सम्मान दें:- निजता व्यक्ति का महत्वपूर्ण अधिकार है। अनावश्यक ही किसी की निजता का अतिक्रमण करना अनुचित माना जाता है। यह बात बड़ों की ही नहीं बालकों की निजता के बारे में भी ध्यान रखी जानी चाहिए। इस विषय में गिजू भाई का दृष्टिकोण है कि कुछ सुकुमार प्रकृति वाले बालक जिस तरह अपने नाम और काम आदि की बातें दूसरों से छिपाते रहते हैं, उसी तरह वे अपनी बातें भी छिपाए रहते हैं। ऐसे बालक बात छिपाने वाले बालक कहे जा सकते हैं। यदि थोड़ा उत्साह दिलाकर हम उनको अपने निकट लेंगे, तो वे अपनी सारी बातें हमसे कहेंगे। उसकी निजी बातों के प्रति हमको अपना सम्मान प्रकट करना चाहिए। उनमें हस्तक्षेप न करके उनकी पवित्रता को गम्भीरतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए। बालकों की बातों को जानने के लिए हम अपना व्यवहार खुफिया पुलिस का-सा न रखें और उनको अपनी निजी बातें कहने की स्वतंत्रता दें, तो वे हमारे जानने लायक बातें हमसे खुले दिल के साथ कहेंगे ही। वे निजी और प्रकट के भेद को समझेंगे ही। वे हमारी निजी बातों का भी सम्मान अवश्य करेंगे, और कान लगाकर हमारी बातें सुनने की इच्छा भी वे अपने मन में नहीं रखेंगे।

गलत सुझाव व निर्देश न दें:- नकारात्मक सुझाव अथवा निर्देश बालक के व्यवहार को अवांछित दिशा की ओर ले जाते हैं। गिजू भाई सचेत करते हैं कि माता-पिता को ऐसा करने से बचना चाहिए। वे कहते हैं कि "यह अभी रोएगा", "यह अभी मचलेगा", "यह अभी जिद करेगा", "उठा लेने को

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 84-85

कहेगा", "खाने की चीज मांगेगा", ऐसे वाक्य बोल-बोलकर हम ही बालक को पहले से सुझा देते हैं कि उसको क्या करना है। हमारी बातें सुन-सुनकर बालक ताव में आ जाता है और वैसे ही काम करते रहने की लत वाला बन जाता है। एक गलत काम के बाद दूसरा गलत काम न करने का रास्ता दिखाने के बदले हम उससे ऐसी बात कहते हैं कि जिसके कारण वह दूसरा गलत काम करने की ओर मुड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि बालक गलत रास्ते पर चल पड़ता है।[1]

शराबी पिता-परिवार का दुश्मनः- शराबी पिता बालक का ही नहीं, पूरे परिवार का शत्रु होता है, एक ऐसा शत्रु जो परिवार में रहकर स्वयं के साथ-साथ अपने परिजनों को भी हानि पहुँचाता है। ऐसे शराबी पिता के बारे में गिजू भाई का मानना है कि पिता को शराब पीने की लत है और समझाने पर भी बालक के सामने अगर शराब पीये, तो ऐसा होने पर बालक को पिता के घर से दूर हटा देना चाहिए। इसके लिए अगर माँ को पति का घर छोड़ने की नौबत आ जाए तो छोड़ देना चाहिए। अगर पति का अपनी पत्नी के प्रति शराब छुड़ाने में सहायक न हो तो पत्नी को उस प्रेम की निष्फलता समझकर अपने पुत्र-प्रेम के लिए सांसारिक सुखों का खुशी-खुशी त्याग कर देना चाहिए।[2]

बालक को आत्म-निर्भर बनाएंः- माता-पिता द्वारा बालक में आत्म-निर्भरता के गुण का विकास किया जाना भी आवश्यक है। गिजू भाई की धारणा है कि बालक का यह स्वभाव ही नहीं है कि वह कहीं चुपचाप बैठा रहे। वह तो कुछ-न-कुछ काम करना चाहता है। कई धनी-मानी लोगों और बड़े माने जाने वाले लोगों के परिवारों में प्रायः यही मान लिया जाता है कि बालकों को कुछ काम तो खुद करने ही नहीं चाहिए। ऐसे कई परिवारों में तो बालकों को नहलाने, उनके बालों में कंघी करने, उनको कपड़े पहनाने और जूते-मोजे पहनाने जैसे काम भी घर के बड़े-बूढ़े लोग या नौकर ही करते रहते हैं। अगर कोई आदमी हमारा खाना चबा-चबाकर हमारे मुँह में रखने की नौकरी करना चाहे, तो क्या हम ऐसे नौकर को रखना पसंद करेंगे? हम तो ऐसे नौकर को फौरन ही इंकार कर देंगे। लेकिन घरों में अपने बालकों को सब-कुछ हम ही चबा-चबाकर देते रहते हैं। हम खुद ही उनके सारे काम कर दिया करते हैं। गिजू भाई की दृष्टि में सच्ची माता वही है, जो बालक को उसके सब काम खुद ही कर लेना सिखा देती है। जिन कामों को दो बरस का बालक खुद कर सकता है, उनको वह खुद ही क्यों न करता रहे?[3]

वे आगे कहते हैं कि बालक जो काम आप से करवाना चाहे उसको आप मत कीजिए, बल्कि बालक को वह काम करना सिखा दीजिए। बालक जो कुछ भी करना चाहे, सो सब उसको करने दीजिए। बालक के काम को हल्का मत मानिए। बालक के काम में दखल मत दीजिए। बालक से उसका काम मत छीनिए।[4]

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 30-31
2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 17
3- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 67
4- गिजू भाई बधेका - माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 58

घर के काम-काज में बालक का सहयोग लें:- घर के दैनान्दिन के कार्यकलापों में बालक की सहभागिता व सहयोग लिया जाना बाल-विकास की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। घर में कई तरह के छोटे-छोटे काम करके बालक अपने हाथ-पैरों की आँख-कान आदि इन्द्रियों को विकसित-संस्कारित करते हैं। यही स्वाभाविक विकास है। गिजू भाई माँ-बाप से कहते हैं कि बालक घर का औरताना काम करने से जनाना बन जाएगा, ऐसा डर मन में न रखना। जिस व्यक्ति को घर का कामकाज करना नहीं आता, वह सही मायने में सुशिक्षित नहीं, अपंग है। पुरुष घर के कामकाज नहीं जानते, तभी तो घर में पराधीनता भोगते हैं। भावी पीढ़ी को सब प्रकार की पराधीनता से मुक्त होना चाहिए। बालक घर के छोटे-बड़े काम करके अन्य प्रकार के विकास के साथ-साथ स्वाधीनता के मार्ग पर आगे बढ़ेगा। वे कहते हैं कि बालक जिद नहीं करता, वह आग्रह ही है। आग्रह को जिद के नाम से पहचान कर अगर उसे तोड़ देंगे या कुचल देंगे तो वह एक कमजोर मनुष्य बनेगा। आग्रह यानि प्राण। बालक से अगर उसके प्राण छीन लेंगे तो उसमें रहेगा क्या? उसका आग्रह अगर हमें जिद प्रतीत होता है तो उसका कारण यह है कि उसके आग्रह का समुचित सम्मान देने में हमारा अपना हठ है।[1]

गिजू भाई मानते हैं कि शुरू में माँ-बाप बच्चों को उनके हाथों काम करने नहीं देते, इसलिए उनको बच्चों के काम करने पड़ते हैं। जब बच्चा बड़ा हो जाता है और वह काम करना जानता नहीं है, तो माँ-बाप को इसकी शिकायत बनी रहती है। हम सोचते हैं कि बच्चा इतना बड़ा हो गया, फिर भी वह अपना काम क्यों नहीं कर पाता है? लेकिन बच्चा चाहे बड़ा हो जाए, पर काम किए बिना तो वह काम करना कैसे जानेगा?[2]

गिजू भाई का यह कथन उचित ही है कि बालक का सहज स्वभाव तो यह है कि वह घर में घर का हर काम करना चाहता है। अगर बालक के काम की सारी चीजें छोटी-छोटी हों और घर में उसके लिए आवश्यक सुविधाएँ जुटा दी जाएँ, तो बालक अपनी रुचि के काम खुद ही करता रहेगा और माता-पिता को जरा भी परेशान नहीं करेगा।[3]

कुछ बातों की ओर गिजू भाई माता-पिता का ध्यानाकर्षित कराते हुए कहते हैं कि जब बच्चे अपनी पसंद से काम करते हैं तो अच्छा ही करते हैं। हमारा सौंपा काम उन्हें पसंद आना ही चाहिए, यह सोचना गलत होगा। बालक अपनी शक्ति को विकसित करने के लिए काम करता है और हम अपनी अशक्ति की वजह से उसे काम सौंपते हैं। बालकों से जबरदस्ती काम कराने का अवसर ही न आए, यह बात माता-पिता को उन्हें काम सौंपने से पहले ही सोच लेनी चाहिए।

वे कहते हैं कि बालक जिन कामों को अपनी रूचि के साथ करना चाहें और जिन कामों में कोई गम्भीर खतरा न हो, उन कामों को करते रहने की सुविधाएं उनको जरूर दीजिए।

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 35-36
2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 21
3- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 67

चारित्रिक व नैतिक विकास का पोषक वातावरण दें:- वर्तमान समय में व्यक्ति के लिए स्वयं को भौतिकतावश के आकर्षण से बचा कर रख पाना मुश्किल हो गया है। कृत्रिमता व ढोंगीपन के आवरण में मानव की आंतरिक स्वाभाविकता व शुचिता मानो दबकर रह गयी है। आधुनिक समाज सभ्यता के इस संकुचित व सतही अर्थ को प्रश्रय दे रहा है। गिजू भाई कहते हैं कि "जब आदमी सभ्यता का वास्तविक अर्थ भूल जाता है और सभ्यता का अर्थ ऊपरी टीम-टाम समझता है तो ढोंग बढ़ता है, सच्ची सभ्यता को तो अपना स्वरूप भीतर और बाहर एक ही तरह का रखना पड़ता है।"

गिजू भाई कहते हैं कि बालक भी ऐसे कृत्रिमतापूर्ण पारिवारिक वातावरण में दुष्प्रभावों से बचे नहीं रह पाते। वे कहते हैं कि ऊपरी टीप-टाप और चमक-दमक में विश्वास रखने वाले लोगों के बच्चे अगर ढोंगी नहीं होंगे तो कैसा आश्चर्य? चमक-दमक तो ढोंग का बाहरी पहलू है। एक शिक्षक द्वारा गिजू भाई से इसी से सम्बन्धित एक प्रश्न पूछे जाने पर कि "ऊपर से 'जी' कहने वाले और अन्दर से गंदे-गंदे विचार रखने वाले लड़के का कया किया जाये?" वे उत्तर देते हैं कि यह सवाल तो उसके माता-पिता से पूछने का है। हम शिक्षण के द्वारा इन्द्रियों का विकास करते हैं, शारीरिक बल देते हैं, बुद्धि तीव्र करते हैं, ज्ञान देते हैं, कल्पना, क्रियाशक्ति इत्यादि शक्तियों को विकसित करते हैं, और निश्चय ही चरित्र के लिए सभी तरह की तैयारियां प्रदान करते हैं। परन्तु अगर जन्म से घरों में ऐसी ही छाप पड़ेगी, घरों के कुटिल वातावरण से अगर रोजाना विधिवत शिक्षण की भांति यही सब मिलेगा, तो वहां हमारा क्या प्रभाव शेष रहेगा? तब हमारे प्रयत्नों का क्या अर्थ रह जाता है। शिक्षक के इस प्रश्न पर गिजू भाई का जवाब है "अर्थ तो वही जो हमें चाहिए। हम जो कर पाए और जो नहीं कर पाए वही। अगर हम आप दुनिया को सुधारने का दावा करते हैं तो हमारा पागलपन होगा। अगर दुनिया को सुधारना है, उसे सही ठिकाने आना है तो उसके लिए हमें सच्चा सहयोगी चाहिए और लोगों को यही मानकर हमें वांछित वातावरण देना चाहिए कि पाठशाला के साथ-साथ घर भी चरित्र निर्माण के वातावरण का महत्वपूर्ण स्थान है। तभी हमारे प्रयत्नों को कुल फल मिल सकेगा।"[1]

यह स्थिति निश्चय ही विचारणीय है तथा शीघ्र परिवर्तन की मांग करती है। इससे मुक्त होना सभी के लिए अनिवार्य है। गिजू भाई पूछते हैं कि क्या हम अपने बालकों को मुक्त नहीं करना चाहते- अपने विश्वासों की बेड़ियों से, अपने एकांगी आदर्शों से, अपने को प्रिय पढ़ाई के बंधनों से, खुशी-खुशी अपने गले में डाली रूढ़ियों की जंजीरों से, शिष्टाचार की जड़ता से, और परतंत्रता या पराधीनता के पाश से? एक बार अपने समाज की अत्याचारपूर्ण उस दासता से हम स्वयं मुक्त हो लें, और फिर अपने बालकों को भी उस दासता से मुक्त करा लें। गुलाम आदमी का बालक तो आखिर गुलाम ही बनेगा? वे कहते हैं कि आइए, हम फिर सोचें कि अपने बालकों की भलाई के

1- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 21

लिए हम और क्या-क्या करें? यह चिन्तन इसलिए आवश्यक है कि जो आज बालिका है, कल वही गृहिणी बनेगी। जो आज बालक है, कल वही नागरिक बनेगा। इनके लिए हम क्या करें? अपने आचरण का आदर्श उदाहरण इनके समक्ष प्रस्तुत करना ही होगा चूंकि आज ये हमसे जो कुछ सीखेंगे, कल वे वैसा ही आचरण करेंगे। आज हम जो नहीं करेंगे, आने वाले समय में इनसे वह हो ही नहीं पायेगा।

बालकों की संगति पर ध्यान दें:- मित्र-मण्डली अर्थात सम-वयस्क समूह भी बालक के विकास को प्रभावित करता है। गिजू भाई कहते हैं कि बालकों को गलियों और गंदी आदतों वाले बालकों की सोहबत में घूमने-भटकने से रोकना चाहिए। गलियों में खेलने वाले बालकों के गंदे खेलों से और वहाँ के हल्के वातावरण से अपने बालकों को बचा लें और उनके लिए अपने घरों में ही खेल के अच्छे-अच्छे साधन जुटा दें। बालक को घर में वे सब काम करने दें, जिनसे उनको कोई चोट न पहुँचे और जिनमें किसी तरह की कोई अनीति न हो।[1]

समझाना-बुझाना श्रेष्ठ तरीका है:- देर शाम को दफ्तर से पिता के थके-हारे घर लौटने पर अक्सर माताएँ उसके सामने शिकायतों का पिटारा खोल कर बैठ जाती हैं। दिन भर की थकान और तनाव से झुंझलाता पिता बालक पर अपनी भड़ास निकाल देता है। ऐसी स्थिति की चर्चा करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि माँ ने अपने बेटे की उपस्थिति में उसकी शिकायत न की होती, तो काम चल सकता था। अपने खिलाफ शिकायत और उलाहने सुनकर कौन बालक है, जिसका दिल दुखता न हो? कार्यालय से थककर आए अपने बेटे के पिता से कुछ देर बाद शिकायत की होती, तो क्या वह बेहतर न होता?

काल्पनिक भय से बचें:- माता-पिता व बड़े लोग अक्सर अनहोनी की आशंका से ग्रस्त रहकर डर रहते हैं। ऐसी आशंकाओं का कोई तार्किक आकार भी नहीं होता है। गिजू भाई ऐसी ही स्थिति के बारे में टिप्पणी करते हैं कि किसी बात को देखने-समझने की हमारी दृष्टि में जो फर्क होता है, उसी के कारण इस तरह सोचने की एक आदत-सी पड़ जाती है। हम बड़े-बूढ़े लोग अपने जीवन में इस बात की कल्पना कर-करके थर्रा उठते हैं कि "अगर ऐसा हो, अगर ऐसा हो, तो ऐसा हो ही जाए।" और असल में जहां कोई दु:ख नहीं होता, वहां भी हम दु:ख का अनुभव करने लगते हैं। अपनी इसी आदत के कारण ही हमने 'ऐसा हो जाता' का एक भय अपने मन में भर रखा है। हमेशा ही हमारी आदत आपसी कलह का एक कारण बनती है। वे सुझाव देते हैं कि जो हुआ नहीं है, मन में उसके हो जाने का भय रखकर या उसकी चिन्ता करके न तो हम खुद दु:खी हों और न बालकों के साथ या उनके माता-पिताओं के साथ लड़ें और झगड़ें।[2]

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 70

2- वही, पृ0 40-41

बालक को डरपोक न बनायें:- गिजू भाई का मानना है कि निर्भयता शिक्षा का प्राण है। अपने घर में आप इस सूत्र को बराबर लटकाकर रखिए। वे कहते हैं कि बालक में डर स्वाभाविक होता है। परवशता और अज्ञान इस डर के कारण होते हैं। इस डर का इलाज करने के बदले, जहाँ सचमुच डर का कोई कारण नहीं होता, वहां हम ही डर कर बालक को डरने वाला बना देते हैं। ऐसा करके हम बालक को नुकसान ही पहुंचाते हैं। बिच्छु के निकलने पर 'बिच्छु-बिच्छु' चिल्लाकर हम भागें नहीं और थर-थर कांपे नहीं, बल्कि फुर्ती के साथ हाथ में संडासी लेकर हम हिम्मत से बिच्छु को पकड़ लेंगे, तो बालक समझ जाएगा कि इसमें डरने की कोई बात है ही नहीं। सिर्फ थोड़ी होशियारी बरतना जरूरी है। जिनसे डरना जरूरी है, ऐसे शेर, बाघ या साँप का सामना भी बिना डरे किस तरह किया जा सकता है, इसकी बातें कहने से और ऐसे अवसरों पर अपनी रक्षा का ध्यान रखते हुए निडरता दिखाने से, बालक वास्तविक भय की स्थिति में भी बिना डरे अपनी रक्षा करना सीख सकेगा। सुरक्षा की दृष्टि से जहाँ-जहाँ सावधानी बरतना जरूरी है, वहाँ निडर बनकर सावधानी कैसे रखी जा सकती है, इसकी सही जानकारी बालक को दे दी जाए, तो संकट के समय में डरकर भागने के बदले या भय की शरण में जाने के बदले बालक भय से अपनी रक्षा स्वयं ही कर सकेगा।[1]

फैशन का मोह त्यागें:- फैशनपरस्ती के मोह में पड़कर किशोर या युवावर्ग के ही नहीं, वयस्कों के भी चाल-ढाल बदलने लगे हैं। उच्च वर्ग के लोगों के चाल-चलन का अनुकरण उनसे नीचे के वर्ग के लोग करते हैं और यह बीमारी लगातार फैलती रहती है। गिजू भाई इस विषय में कहते हैं कि फैशन का अपना हाल यह है कि उसको जैसे भी चलाना चाहो, वह चलती रहती है, कुछ इज्जतदार और अच्छे-भले लोग, अमुक बिरादरी के या तमुक बिरादरी के कुछ लोग जब कोई चीज चलाते हैं, पहनते हैं, बरतते हैं, तो उनको देखकर आम लोग भी वैसा ही करने लगते हैं। इसलिए आम लोगों की अगुवाई करने वालों को चाहिए कि ये अच्छी चीजों का चलन चलाएं। लेकिन बहुतेरे अगुवा लोग अक्ल के दुश्मन बनकर जब गलत फैशन चला देते हैं, वे अपने-आप लोगों को गहरे गड्ढे में उतार देते हैं।

गिजू भाई अभिभावकों को सचेत करते हैं कि हमारा जो भी होना हो, सो होता रहे, पर अपने बालकों को हम अपने पीछे-पीछे न चलाएं। हम उनकी सुविधा का और उनके आराम का ध्यान रखें. उसका अध्ययन करें और जो चीज उनके लिए उपयोगी लगे, सो बनवा दें। वैसे तो छोटे बालक भी इस बात को आसानी से समझ सकते हैं कि कौन-सी चीज उनके काम की है और कौन सी उनको नापसंद है। हम उनकी जरूरत की चीज उन्हीं से पसंद करवाएं और फैशन के नाम पर अपनी कोई चीज उन पर न लादें।[2]

फैशन के कारण पोशाकें भी बदलती है। इस पर गिजू भाई कहते है। कि हम अंग्रेजों की

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 61

2- वही, पृ0 99

नकल करके उनके ढंग की पोशाकें पहनने लगे हैं। पुरुष कोट, पतलून, मोटे बूट और नेक टाई वगैरह पहनना सीख गए हैं और स्त्रियां पोलके और फ्रॉक पहनने लगी हैं। इस फैशन के फेर में पड़कर वे अपनी लड़कियों को भी पोलके और फ्रॉक पहनाना पसंद करती हैं। लेकिन इससे बहुत नुकसान होता है। हमारे देश की आबोहवा के हिसाब से यह पोशाक जरा भी अनुकूल नहीं है। इसलिए जैसा देश हो, वैसी ही पोशाक पहननी चाहिए।[1]

'जैसा देश वैसा भेष' यह कहावत बहुत पुरानी है और सही थी। गिजू भाई कहते हैं कि अपने अनुभव से आपने जाना होगा कि बालकों को कपड़े पहनना ही पसंद नहीं होता। वे कपड़े पहनने से घबराते हैं और उनको पहनते समय वे अक्सर उकता जाते हैं। इसका कारण यह है कि परमेश्वर ने ही उनके लिए कपड़े जरूरी नहीं माना है। जब तक बालक अपने प्रभु के समीप होता है यानी जब तक वह दुनियादारी से बेखबर रहता है, तब तक उसको नंगा रहना, खुली हवा में घूमना और धूप सहन करना अच्छा लगता है। बच्चों के शरीर का धर्म ही यह है कि वह खुला रहकर भगवान् की बनाई प्रकृति के तत्वों का भरपूर उपयोग करता रहे। यदि हम इस शरीर को कपड़ों से ढकते रहेंगे और जूतों से मढ़ते रहेंगे, तो इसका ठीक-ठीक विकास नहीं हो सकेगा। इसलिए छह-सात साल की उम्र तक तो उनको बहुत कपड़े पहनाने की जरूरत ही नहीं है।

वे कहते हैं कि बालक को तो बिल्कुल ही सादे, साफ और मौसम के लायक कपड़े पहनाने चाहिए। गर्मी के मौसम में मोटे कपड़ों की जरूरत नहीं रहती। बालकों की पोशाक तो वही अच्छी है, जो उनके लायक हो, उनको अच्छी लगे और जो मौसम के हिसाब से मुनासिब हो।[2]

गिजू भाई मानते हैं कि वेशभूषा के मामले में बच्चे की पसन्दगी और रूचि को सर्वोपरि महत्व दे दिया जाये। इससे हमारी परेशानी टल जाती है। कई बार बालक उपयोगिता की दृष्टि को समझ जाता है, फिर भी रूप, रंग, आकार आदि का नजरिया उस पर सवार होकर बाधक बन जाता है। ऐसे में बच्चा और हम मिलजुलकर चलें, यही उत्तम मार्ग है। बालक को हम बेढंगे व कीमती कपड़े न पहनायें। हम उसको गहनों से न सजाएं। हम उसको साफ-सुथरा तो रखें ही रखें। बालक को जो कपड़े नापसंद हों, वे जबरदस्ती नहीं पहनाने चाहिएँ।[3]

चुम्बन - ध्यान देने योग्य बातें:- बड़े लोगों में छोटे बालकों को चूमने की ललक आमतौर पर देखी जाती है। इसका गिजू भाई बड़ी सूक्ष्मता से विश्लेषण करते हैं। वे पूछते हैं कि किसी के खूबसूरत बच्चों को देखकर हमारा मन उनको चूम लेने के लिए क्यों ललचाए? हमारी प्रीति बालकों से नहीं होती। प्रीति तो उनकी खूबसूरती से होती है। खूबसूरती के कारण ही किसी बच्चे को चूम लेने की अपनी वृत्ति का विश्लेषण हमको खुद ही कर लेना चाहिए। जब माँ कोयले-सी काली अपनी बिटिया

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 72

2- वही, पृ0 73-74

3- वही, पृ0 20

को चूमती है, तो उसके मन में माँ का प्यार भरा होता है। किन्तु जहाँ हमारे बीच कोई सहज स्नेह-सम्बन्ध नहीं होता, वहां जब रूप से आकर्षित होकर हम चूमने के लिए लपकते हैं, तो ऐसी स्थिति में हमको खुद ही सोच-समझ लेना चाहिए। जब हम छोटे बच्चों को चूमते हैं, तो वे स्वयं तो निर्दोष ही होते हैं, पर उस समय हम खुद कितने निर्दोष होते हैं, इसका विचार हमीं को कर लेना चाहिए।

माता-पिता का बच्चों से प्रति स्नेह व वात्सल्य प्रदर्शन एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। माता-पिता के प्यार-दुलार की उमंग चुम्बन से शान्त होती है। चुम्बन एक प्राकृतिक उपहार है। वह उमड़ते दिल का एक आविर्भाव है। वह प्रेम के कारण आलोकित ज्ञान-तन्तुओं का विराम है। उसमें प्रेम के गूढ़ तत्व की शक्ति निहित है। चुम्बन तो अपने प्रेम-पात्र पर अन्तर का अभिषेक है। संक्षेप में, चुम्बन दिल को दिल से मिलाने का एक साधन है और दिल से पाने की एक रीति है। यही कारण है कि गाय दिल से अपने बछड़े को चाटने लगती है। इसी कारण माँ अपने बच्चों को हंसता-खेलता देखकर मारे खुशी के पागल-सी हो उठती है और अपने उमड़ते प्रेम की एक निशानी के रूप में वह अपने बच्चे को चूम लेती है। अपने हृदय के प्रेम की जिस गहरी कथा को और मन में उमड़ती जिस भावना को, वह बोलकर प्रकट नहीं कर पाती, उसको वह चूमकर प्रकट करती है। बालक भी अपनी माँ की इस भावना को समझ लेता है, और मानो उसको सेर खून चढ़ा हो, इतनी खुशी के साथ, माँ के चुम्बन का आनन्द लेकर, वह फिर खेलने लगता है। स्नेह की ऐसी स्वाभाविक स्थिति में चुम्बन प्रासंगिक है। ऐसी स्थिति में मन की सूक्ष्म विकृत अवस्था भी क्षम्य है। क्योंकि वैसे देखा जाए, तो मनुष्य आज भी मनुष्य ही है। लेकिन जब माता-पिता चुम्बन को एक फैशन का रूप दे देते हैं और उसको लालच में या घूस में बदल देते हैं अथवा जब चुम्बन को मिथ्या लाड़-प्यार का रूप दिया जाता है, तब तो वह सब प्रकार से त्याज्य ही हो जाता है और जब माता-पिता अपनी बीमार हालत में भी अपने बच्चों को चूमते हैं, तब तो अपने अज्ञान के कारण वे भयंकर अपराध ही करते हैं।

गिजू भाई कहते हैं कि ध्यान रहे कि बालक हमेशा चूमना या चुमवाना पसंद नहीं करता। अगर बालक को जबरदस्ती चूमा जाता है, तो उससे वह वहुत दुःखी हो जाता है। इसलिए जब एक दूसरे के आकर्षण के कारण परस्पर चूमने की इच्छा जोर पकड़ती है, वही समय चुम्बन का सही समय होता है। तभी माता-पिता और बालक, दोनों आनन्द का अनुभव करते हैं। बालक तो नासमझ होता है इसलिए जब हम देखें कि बालक को चूमने से उसका मन दुखता है, तो प्रेम के अपने तीव्र वेग को भी हम रोक लें और संयम के सहारे अपनी उत्कटता को ऊँचा उठा लें।[1]

चूमते समय बालक के शरीर की और उसके मन की स्थिति का भी विचार करना चाहिए।

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 108

प्राय: बालक प्रेम-विभोर होकर हमारे पास इसलिए आता है कि हम उसको चूम लें। ऐसे समय, दूसरी कोई बाधा न हो, तो हम बालक की इस इच्छा को अवश्य ही पूरा करें। हम उसके भीतर की इस भावना का स्वागत करें।

बालक प्रदर्शन की वस्तु नहीं:- माता-पिता मेहमानों के सामने अपने बालक के गुणों व सीखी गयी बातों को प्रदर्शित कराने की प्रवृत्ति भी रखते दीख पड़ते हैं। इस पर गिजू भाई का मानना है कि मेहमानों व उन लोगों के समक्ष बालक से तरह-तरह के ज्ञान का प्रदर्शन कराना भी नहीं चाहिए। ऐसा करने से बालक उस ज्ञान के प्रति चौकन्ना हो जाता है और उसमें अभिमान आ जाता है। उसमें मुकाबले की भावना आ जाती है और एक ऐसी विचारधारा घर कर जाती है कि वह श्रेष्ठ है, दूसरे निम्न हैं। परिणामस्वरूप वह अन्तर्मुखी रहने के बजाय बहिर्मुखी बन जाता है। इससे उसका अन्त:प्राण मर जाता है। बालक को जो कुछ आता-जाता है, उसका आनन्द उसके अपने ज्ञान में निहित रहता है दूसरों को बताकर आनन्द लेने की जरूरत उसे तब पड़ती है जब उसकी स्वत: आनन्द लेने की वृत्ति को बखान कर-करके हम बिगाड़ डालते हैं। बालक न प्रशंसा चाहते हैं, न निन्दा। वे अपनी निन्दा-स्तुति स्वत: कर सकते हैं और दोनों में आनन्द ले सकते हैं। स्वयं को पहचानना सभी धर्मों का लक्ष्य है। पर स्वाभाविक स्थितियों में सीखने वाले बालकों में स्वयं को पहचानने की क्षमता स्वत: विकसित होने लगती है। जब हम उस पर अपने वातावरण, अच्छे-बुरे की पहचान के अपने विवेक, अपनी पसन्द-नापसन्द को उस पर लादने लग जाते हैं तो बालक आत्मोन्मुखी के बजाय परलक्ष्यी बन जाता है और आत्मज्ञान के मार्ग से दूर चला जाता है। इन सबका कारण यही तो है कि हम बालक से किसी के सामने उसके ज्ञान का प्रदर्शन कराते हैं।[1]

माता-पिता की एक बुरी आदत की तरफ गिजू भाई उनका ध्यान खींचना चाहते हैं। अक्सर माता-पिता अपने बालकों को घर आए मेहमानों या मित्रों के सामने पेश करते हैं और उनसे कहते हैं कि वे कुछ बोलें, गाएँ, अपना कोई काम दिखाएँ आदि-आदि। हो सकता है कि ऐसा करवाने में मित्रों को कुछ खुशी हो, लेकिन इससे बालक को तो बहुत अधिक नुकसान होता है। इससे बालक दिखावे का शौकीन बन जाता है। उसको यह आदत पड़ जाती है कि जब कोई तारीफ करके देखने वाला होता है या जब कोई प्रोत्साहित करता है, तभी उसको काम करना अच्छा लगता है। इस तरह वह नाटक करने वाला बन जाता है। बहुत-से माता-पिता अपने बालकों पर इसलिए गुस्सा होते हैं कि उनके बालक दूसरों को अपनी विद्या दिखाकर उनको खुश नहीं करते, अथवा वैसा करने से इंकार कर देते हैं। वे बालकों को इनाम देकर उनसे काम करवाने की कोशिश करते हैं, या नाराज होकर बालकों को मारते-पीटते भी हैं। गिजू भाई कहते हैं कि बालक न तो माता-पिता के लिए हैं, और न मेहमानों

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 44

के लिए हैं। हम अपने बालक-रूपी राजाओं को उनकी इच्छा के विरुद्ध दूसरों को खुश करने के लिए विवश क्यों करें? ऐसा करके हम अपने बालकों को गुलामी का सबक सिखाते हैं। यह तो अपने अभिमान को संतुष्ट करने का एक अप्रत्यक्ष उपाय है। बालक की शक्ति सबसे पहले उसके अपने आनंद के लिए है। यह आनंद हमको सहज ही मिलता हो, तो हम भले ही उसका लाभ लें। हम अपने बालकों को अपने खिलौने हर्गिज न बनाएं। हम खुद भी उनके खिलौने न बनें।

टोका-टोकी:- बालक को बात-बात पर टोकना गिजू भाई की दृष्टि में माता-पिता का अनुचित व्यवहार है। वे कहते हैं कि जिनको बार-बार दवा खाते रहने की आदत पड़ चुकती है, उन पर दवा या तो बहुत ही कम असर करती है या बिल्कुल नहीं जैसा ही असर करती है। हम बालकों को जितना ज्यादा टोकते हैं, टोका-टोकी की मात्रा उतनी ही ज्यादा बढ़ती जाती है। जिस तरह लम्बे समय के बाद दवा अपना कोई असर नहीं दिखाती, उलटे, वह कोठे पड़ जाती है, उसी तरह जब लम्बे समय तक एक ही बात बार-बार कही जाती है तो सुनने वाले पर कहे हुए शब्दों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

असल दोष इस बात में है कि बालक के साथ व्यवहार कैसे किया जाए? अधिकतर तो बालक हमारी बात सुनने और खुशी-खुशी वैसा करने के लिए तैयार होता है। उसके मन की सहज वृत्ति तो स्वस्थ होती है। उल्टे वह तो मना करने पर भी काम करने के लिए दौड़ पड़ता है। यदि हम उसको काम नहीं करने देते, तो वह रोने लगता है। किन्तु हम ही उसकी इस स्वस्थ और सहज वृत्ति को अस्वस्थ, रुग्ण अथवा विकृत बना देते हैं। जिस समय हम बालक में सहज रूप से को जाने वाली काम करने की, कहा हुआ काम करते रहने की और हमारी बात कसो सुनने की वृत्ति को रोकते हैं, उसी समय से बालक को रोकने-टोकने का सिलसिला शुरू हो जाता है।

गिजू भाई कहते हैं कि हमीं ने अपने व्यवहार से उसके कानों को बहरा बनाया और फिर हम ही शिकायत करने लगे कि बालक हमारी बात सुनता नहीं है। वे कहते हैं कि टोका-टोकी के इन उत्तेजकों से हम अपने बालक को सदा दूर ही रखें। हम उसको दवा के बदले हवा दें। जब वह सहज भाव से हमारा कहा करने को और हमारी बात सुनने को तैयार होता है, उस समय हम वैसा करने की उसकी रुचि, वृत्ति और शक्ति को बढ़ावा दें और जब वैसा करने की उसकी इच्छा न जागे, तो ऐसे समय हम उसको अपने दबाव से मुक्त ही रखें।[1]

मनाहियों के सच्चे कारण बतायें:- बड़े लोगों में छोटों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है, यह बात परिवार में अभिभावकों व बच्चों के परस्पर सम्बन्धों पर भी लागू होती है। गिजू भाई कहते हैं कि अपनी बात मनवाने का एक अजीब-सा शौक हमको होता है। इसके लिए हम बालक को डाँटते-डपटते रहते हैं और उसको मारते-पीटते भी हैं। बीच-बीच में हम उसको लालच

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 45-46

भी दिखाते रहते हैं। अपने बड़ों और बूढ़ों की बात माननी ही चाहिए। न मानने से उसको पाप लगता है। नदी उसको बहाकर ले जाती है, या वह खौलते हुए पानी के कहाड़ में गिरकर मर जाता है, अथवा मगर उसको निगल जाता है, लेकिन माता-पिता की ऐसी मनाहियों की परवाह न करके अपनी मरजी का काम करने वाला बालक तुरन्त ही समझ जाता है कि माता-पिता की मनाही बिल्कुल बनावटी है। गिजू भाई कहते हैं कि हमें अपने बालकों को गलत ढंग से समझाना नहीं चाहिए। ऐसा करके हम खुद ही उनके जीवन में अश्रद्धा और आज्ञापालकता का अभाव उत्पन्न कर देते हैं। जहाँ बालक की वास्तविक सुरक्षा के लिए उचित रोक लगाना बहुत जरूरी हो जाए, वहीं हम उसको रोकें और रोकने के बाद जब तक बालक रोक के कारण को ठीक से समझ न ले, तब तक हम उसको सच्चे कारणों की जानकारी देते रहें। बिल्कुल नन्हें बालकों को भी धीमे से समझाते हुए यदि हम उनको सही जानकारी देते हैं, तो वे उसको समझ लेते हैं।[1]

वाणी संयमन:- बालक को सत्य से असत्य की ओर, स्वाभाविकता से कृत्रिमता की ओर, सहजता से बनावटीपन की ओर ले जाने के दोषी बड़े लोग ही हैं। इस ओर संकेत करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि बाहर के कोई व्यक्ति हमसे मिलने आए हों, वे अपरिचित हों और नए हों, तो उनकी उपस्थिति में हम सोच-समझकर ही बोलते हैं। हम सोचते हैं कि अगर इस तरह बोलेंगे, तो उसका यह प्रभाव पड़ेगा, और दूसरी तरह बोलेंगे, तो उसका ऐसा अर्थ होगा। इस कारण हम अपनी वाणी पर अंकुश रखते हैं। जब हम किसी के घर जाते हैं, तो वहाँ भी हम नीति का पालन करते हैं।

जब हम अपने मित्रों और घर-परिवार के लोगों के बीच होते हैं तो वहां हमारा व्यवहार दूसरे ही प्रकार का होता है। वहां हम खुले दिल से बोलते हैं। बाहरी शिष्टता का और अपने बीच आए व्यक्ति का सम्मान करने का सामाजिक विचार मित्रों के बीच कुछ कम ही रहता है। इस कारण वहां कई ऐसी बातें होती रहती हैं, जिनको बाहर से आए हुए लोग सुनने को तैयार न हों अथवा सुनकर चौंकें। ऐसी स्थिति में खेलकूद की या हँसी-मजाक की कुछ बातें सहज ही होती रहती हैं और वे किसी को अनुचित भी नहीं लगतीं। इन सब अवसरों पर हमारे बालक तो हमारे आसपास रहते ही हैं। बालक हमारे साथ रहते हैं। वे मनुष्य तो होते ही हैं। उनके पास उनके अपने कान होते हैं। उनकी अपनी समझ भी होती है। वे हमको बराबर देखते और पहचानते रहे हैं। संगति के कारण उन पर हमारी छाप भी पड़ती रहती है। परिणामस्वरूप बालक शनै-शनै इन सब बातों का अभ्यासी बनता जाता है। वह भी कई तरह के स्वाँग रचना सीखने लगता है। अलग-अलग लोगों के साथ अलग-अलग व्यवहार करने लगता है। अपने परिवार के बड़ों और बूढ़ों के विसंगत जीवन में से वह विसंगति के, दम्भ के, बाहरी शिष्टता के और अन्दर की अप्रामाणिकता के पाठ सीखने लगता है। इन सबका

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 34

परिणाम यह होता है कि जैसे हम होते हैं, जैसा हमारा व्यवहार होता है, जैसी हमारी स्थिति होती है, उसके अनुसार हम अपना सब-कुछ अपने बालक को देते रहते हैं। सच तो यह है कि इन सब बातों में बालक हमारा वारिस बन जाता है।

गिजू भाई कहते हैं कि हम बोलना जानते हैं, इसीलिए तो हम बोलते रहते हैं। सुनने वालों को अर्थ समझना ही पड़ता है, इसलिए वे समझ लेते हैं। लेकिन सवाल यह है कि क्या हम ठीक से बोलना जानते हैं? जब कोई अच्छे, संस्कारशील माता-पिता अपने बालकों के साथ बात करते होते हैं, यदि उस समय आप वहां हाजिर रहें, तो आपको पता चलेगा कि वे माता-पिता बड़ी स्पष्टता के साथ, मिठास के साथ, धीरज के साथ और धीमी आवाज में बोलते हैं। अपने हृदय के भावों को व्यक्त करने वाले शब्दों को चुनकर वे अपनी बात कहते हैं।

गिजू भाई भविष्य के एक विद्यालय की कल्पना करते हैं। उस विद्यालय के शिक्षक इस तरह बोलते होंगे कि उनकी सुस्थिर, गम्भीर और निर्मल वाणी, व्यवस्थित रीति से, शुद्धिपूर्वक, धीमी और तालबद्धता के साथ बोलने की उनकी रीति बालक को अपने-आप शान्त और अभिमुख बनाती होगी। शिक्षक की बात तो बालक थोड़े ही श्रम से समझ लेते होंगे। चूँकि कही कई बात प्रिय लगने वाली वाणी में कही गई है, इसलिए सुनने वालों को वह प्रिय लगती है और बालकों में प्राण जगाने वाली वाणी की शक्ति के प्रत्यक्ष दर्शन उनको होते हैं।[1]

गोपनीय व निजी बातें बालकों के सामने नहीं:- दुनिया की बहुत-सी बातें गुप्त रहती हैं। अगर वे सार्वजनिक हो जाएं, तो उनके कारण संकट खड़े हो सकते हैं। जो लोग ऐसी बातों से जुड़े होते हैं, उनको इन बातों को गुप्त रखने की शर्त कबूल करनी होती है, नहीं तो उनको दूसरी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। कुछ बातें इतनी पवित्र होती हैं, इतनी अधिक महत्वपूर्ण होती हैं और इतने गहरे रहस्य वाली होती हैं कि जो उनको जानने के अधिकारी नहीं है, वे उनको न जान सकें, इसके लिए उनको गुप्त रखना जरूरी हो जाता है। इसी न्याय के अनुसार प्रायः महापुरुषों के जीवन से जुड़ी बिल्कुल निर्दोष और अत्यन्त भव्य बातों को भी बालकों से गुप्त रखा जाता है। उनको गुप्त रखना ही चाहिए। इसी तरह जीवन के सब विभागों में बहुत-सी ऐसी रक्षण योग्य बातें हैं, जिनको बालकों के सामने प्रकट नहीं किया जा सकता।[2]

बालक की त्रुटियों को बढ़ा-चढ़ाकर न कहें:- बालक की सामान्य सी त्रुटि को बढ़ा-चढ़ाकर बोलना भी एक गलत प्रवृत्ति है। गिजू भाई कहते हैं कि फौज को तालीम इसलिए दी जाती है कि वह सामूहिक रूप से व्यवस्थित काम कर सके। यदि हम बालक को अपना शरीर सन्तुलित बनाए रखने का प्रशिक्षण नहीं देंगे, अवसर नहीं देंगे, और उसकी भूलें ही निकालते रहेंगे, तो न बालक

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ० 89-90

2- वही, पृ० 97

अपनी भूलें सुधार पाएगा और न हमारे मन का असंतोष ही दूर हो सकेगा।

गिजू भाई कहते हैं कि अतिशयोक्ति के साथ बोलते रहने की हमारी आदत के कारण बालक हमारी बातों की कोई नैतिक महत्व नहीं दे पाता। उसके मन में हमारे बारे में सवाल उठते रहते हैं कि भला ये बड़े-बूढ़े लोग इस तरह झूठ क्यों बोलते हैं? भाषा की दृष्टि से भी इस प्रकार की अतिशयोक्ति को क्षमा नहीं किया जा सकता। इस तरह अतिशयोक्ति की परम्परा बराबर बनी रहती है। यदि हम थोड़ी सावधानी रखें, तो हम और हमारे बालक दोनों ही, इस प्रकार की अतिशयोक्ति से और उससे होने वाली हानियों से बच सकते हैं।

बालक की स्वतंत्रता उसके हितार्थ हो:- निःसंदेह स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है। परन्तु अनियंत्रित स्वतंत्रता, गुण-रहित स्वतंत्रता उसके लिए ही नहीं, समाज के लिए भी घातक है, इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता है। बालकों की स्वतंत्रता के संदर्भ में गिजू भाई कहते हैं कि स्वातंत्र्य का अर्थ सिर्फ यही लिया दिखता है कि बालक को किसी भी बात के लिए मना नहीं करना चाहिए, उसे किसी भी काम से रोकना नहीं चाहिए, जो कुछ वह कहे, करते रहना चाहिए। जहाँ स्वातंत्र्य का यह अर्थ लिया जाता है वहां माता-पिता तंग हो जाते हैं और बच्चे भी सुख नहीं पाते, यह स्वाभाविक है।

बालक को आजादी देने से हमारा प्रयोजन यह है कि वह अपने शरीर, मन तथा आत्मा का पूरी तरह से, निर्बाध विकास कर सके। प्राणिमात्र का नैसर्गिक अधिकार है यह। परन्तु मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और अगर सामाजिक परिवेश की उपेक्षा करके वह विकास करने का प्रयत्न करता है तो स्वयं समाज उसके विकास में बाधा डालता है। ऐसे ही यदि कोई व्यक्ति अपने शरीर को जोखिम में डालकर विकास करने का प्रयत्न करता है तो विकास का प्रयोजन ही नष्ट हो जाता है। मनुष्य के सामने सामाजिक बन्धन तो हैं, सांसारिक होने के नाते उसके नैतिक तथा धार्मिक बन्धन भी हैं। संसार के सभी ग्रन्थ कहते हैं कि ये बन्धन उत्कर्षकारी होते हैं। इस बात को लोगों ने अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न भी किया है। इस प्रकार बालक की स्वतंत्रता पर ये तीन (सामाजिक, नैतिक, धार्मिक) अंकुश होते हैं। जो कार्य असामाजिक लगें, वे बालक को नहीं करने देने चाहिए।[1]

गिजू भाई का मत है कि बालक के कहे अनुसार ही अगर हम करते रहेंगे तो हम उसे पूरी तरह परतन्त्र बना डालेंगे। बाल-स्वातंत्र्य की मर्यादा में रहकर जो ठीक लगे वह भले ही करें। पर अगर बालक अपना मनपसंद काम हमसे कराता है और हम उसे पूरा करते हैं, तो जाहिर है हम उसे अपंग बनाकर गुलाम ही बनायेंगे। जिस बालक की जितनी ज्यादा सेवा होती है, वह धीरे-धीरे परतंत्रता में ही अपनी स्वतंत्रता मानकर उसी में सुख और गर्व अनुभव करने लगता है। ऐसे में

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 38

स्वतंत्रता की मर्यादा को लांघकर अगर बालक उच्छृंखल बन जाए तो बेहतर होगा, पर अगर वह पराधीन बनकर निकम्मा बन जाएगा तो ठीक नहीं होगा। बालक को वांछित सहायता देने में जरा भी मनाही नहीं है, बस हमारी मदद ऐसी हो कि जिसके परिणामस्वरूप बालक स्वतंत्र बन सके, यानि हमारी मदद स्वातंत्र्योन्मुखी हो।[1]

निराधार आशंकाएँ अनुचित हैं:- माँ-बाप बोलते हैं, कहीं इसको कुछ हो न जाए, कहीं यह जीना गिर न पडे, कहीं यह अगनबोट डूब न जाए, कहीं रेलगाड़ियाँ टकरा न जाएं, कहीं कुत्ता इसको काट न ले, कहीं यह गरम पानी से जल न जाए। माता-पिता बार-बार ऐसी डराने वाली बातें कहते रहते हैं। सालों तक उनके आसपास ऐसी कोई घटना घटी नहीं, घटती भी नहीं, फिर भी ये 'हाय राम' और 'अरे राम' की आवाजें तो उठती ही रहती हैं। इनके कारण छोटे बच्चे सहज ही डरने लगते हैं। गिजू भाई माँ-बाप को ऐसी निराधार आशंकाओं से दूर रहने की सलाह देते हैं।[2]

बच्चों के बिगड़ने का अकारण भय त्यागें:- अनुकरण करना बालक की एक स्वाभाविक चेष्टा है। वह नयीं चीजें सीखने के लिए ही ऐसा करता है। बच्चे जो भी काम एक-दूसरे के साथ, एक-दूसरे को देखकर एक-दूसरे के सहवास में करते हैं वह 'देखा-देखी बिगड़ने' के लिए नहीं करते। एक बालक जो भी खरा-खोटा करता है, उसे देखकर अनुकरण-प्रधान बालक वैसा कर बैठता है, यह सच है। पर वह बिगड़ने के लिए नहीं करता। बेशक, उस पर अच्छे-बुरे का असर होता है। पर वह अच्छा बनने या बुरा बनने की इच्छा से प्रभाव नहीं लेता। संगति के कारण ऐसा होना सम्भव है। अच्छी संगति दीजिए और बुरे से बालक को बचाइए, यह विचार स्वीकार किया जाना चाहिए। गिजू भाई कहते हैं कि हमें व्यर्थ ही यह चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि हमारे बच्चे बिगड़ जायेंगे। कई बार हम अपना व्यक्तिगत अविश्वास ही बालक पर आरोपित कर बैठते हैं और चिन्ता करने लगते हैं कि बालक बिगड़ जाएगा।[3]

बालकों को व्यवस्थित रहने व आत्मनिर्भर बनने का प्रशिक्षण दें:- किशोर व युवाओं की अव्यवस्थित जीवन शैली व पर-निर्भरता को देखकर बड़े लोग झुंझलाते हैं, दुखी होते हैं। उन्हें ऐसा बनाने के लिए दोषी कौन है? यह चिन्तन उन्हें स्वयं करना चाहिए। गिजू भाई कहते हैं कि अगर हम बचपन से ही बालकों को व्यवस्थित रहने की रीति सिखा दें और उनको बता दें कि यह काम इस तरह और वह काम उस तरह करना है, इस प्रकार से बैठना है, ऐसी रीति से खाना है, हाथ इस तरह धोने हैं, ये सारे काम हम उनको खुद करके दिखा दें और शुरू-शुरू में वे जैसा भी कर पाएं, उनको करने दें, तो बालक धीरे-धीरे वे सारे काम करना सीख जाते हैं।

कहकर नहीं करके दिखायें:- मौखिक निर्देशों की तुलना में यदि स्वयं प्रत्यक्ष रूप से कोई कार्य

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 39-40
2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 113
3- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 32-33

करके दिखाया जाये तो अधिगम में सरलता रहती है। माता-पिता का ध्यान इसी अधिगम-भिडंत की ओर गिजू भी ध्यान आकर्षित कराते हैं। वे कहते हैं कि इस तरह 'ऐसे रखो' कहने से रखने का काम होता कहाँ है? इसके लिए तो रखना सिखाने की जरूरत होती है। रखने का अभ्यास भी होना चाहिए। पहले हम बालक को समझाएँ। उसको 'कैसे रखना' सिखाएं और फिर कहें कि 'ऐसे रखो'।[1]

घर में बालक का निजी स्थान हो:- गिजू भाई की दृष्टि में अलग स्थान का एक स्थूल अर्थ है और एक सूक्ष्म। कम से कम स्थान में भी बालक अपना काम कर सकता है। अगर बालक के काम और स्थान को घर में सब जने सम्मान दें, वह जितनी जगह पर बैठे, उसे उसी की मानते हुए कोई तब्दीली न करें, तो कहा जा सकता है कि बालक को घर में अलग से स्थान दिया गया है।[2]

गिजू भाई माता-पिता के आम व्यवहार का खुलासा करते हुए कहते हैं कि अपने लिए किराए का घर पसंद करते समय हम इस बात का विचार नहीं करते कि घर में बच्चों के लिए कोई जगह है या नहीं? भला, किराए पर घर लेते समय हमको अपने बालक क्यों याद आने लगे? बालकों के लिए अलग जगह की जरूरत ही क्या है? हमको तो यह विचार ही नया और अनोखा लगता है। वे कहते हैं कि "बालकों के समान छोटे-छोटे प्राणियों के लिए आज ही से अलग हक की बात कैसी? उनके लिए आज ही से ये सारी खटपट क्यों? यह सारा घर उन्हीं का तो है। इसमें रहकर वे खाएं, पीएं और मौज मनाएं। इस सारे घर में घूमने, फिरने और खेलने से उनको रोकता ही कौन है? लेकिन बालक गाएं कहां? वे बात कहां करें? वे खेल कहां खेले? वे नाचना-कूदना चाहें, तो नाचें और कूदें कहां?"[3]

बालक को अग्रगामी बनायें, अनुचर नहीं:- गिजू भाई कहते हैं कि माता-पिता अपने व्यवहार को आदर्श व्यवहार तथा अपनी सोच को सही सोच मानते हुए बालक को अपने जैसा बनाने की कोशिश में लगे रहते हैं। बालक से हमारी अपेक्षा यह रहती है कि हम जिस तरह बैठते हैं, बालक भी उसी तरह बैठना सीख ले। हम जिस तरह बोलते हैं, बालक भी उसी तरह बोले। तभी यह माना जाएगा कि हाँ, वह बोलना जानता है। हम जो खाते हैं, अगर बालक उसको न खाए, तो कैसे माना जाए कि बालक खाना जानता है? हम चाहते हैं कि जैसे हम हैं, हमारे बालक भी वैसे ही बनें। हमने खुद ही तय कर दिया है कि बालकों के लिए हमारा आदर्श पर्याप्त है। वे पूछते हैं कि क्या कभी हम यह सोचते हैं कि हमारे बालक हम से भी ऊँची रुचि, वृत्ति वाले बन सकते हैं। क्या हम इस इतिहास को जानते हैं कि अपने पूर्वजों की तुलना में हम किन-किन बातों में आगे बढ़े हैं? विकास की गति आगे की ओर होती है। वे कहते हैं कि दुनिया आगे बढ़ती है या पीछे हटती है? तो फिर हम क्यों उन्हें पीछे की ओर धकेलने में लगे हैं।[4]

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 68
2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 12
3- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 28
4- वही, पृ0 23

झूठा दंभ व शिष्टाचार से मुक्ति:- माता-पिता व बड़े लोग स्वयं की रुचियों, पसन्दगी-नापसन्दगी व दृष्टिकोणों को बालकों पर जबरन थोपते हैं। बालक के साथ एक जीवित प्राणी गुडडे-गुडिया की भांति व्यवहार करते हैं और इसमें सुख पाते हैं। बालक पर क्या बीतती है वे परवाह नहीं करते। गिजू भाई कहते हैं कि बालक माता-पिताओं के दंभ और अभिमान और प्रतिष्ठा को संतुष्ट करने के उपकरण भर हैं। गिजू भाई कहते हैं कि आमतौर पर आज स्थिति यह है कि धनवान लोगों के बालक घर के नौकर-चाकरों पर अपना गुस्सा उतारने वाले, अपने दुर्गुणों का प्रदर्शन करने वाले और माता-पिता को जब भी थोड़ी फुर्सत रहे, उस समय कुछ देर के लिए उनका मनोरंजन करने वाले खिलौने-भर बनकर रह गए हैं। घर में भी ऐसा कोई आदमी शायद ही रहता है कि जिसे बालक के स्वभाव की और उसकी सार-संभाल की उतनी जानकारी भी हो, जितनी मालिक के घोड़े के सईस को घोड़े के स्वभाव की और सार-संभाल की होती है।[1]

विद्यालय जबरन न भेजें:- विद्यालय जाने के लिए बालक का मन तभी होगा जब घर की तुलना में विद्यालय उसके लिए अधिक आकर्षक हो। परन्तु ऐसा होता नहीं है। इसीलिए छोटे-छोटे बालक स्कूल जाते हुए रोते हैं। छुट्टी होने पर घर की ओर ऐसे भागते हैं मानों जेल से छूटे हों। गिजू भाई कहते हैं कि आप ऐसी व्यवस्था कर दीजिए कि जिससे बालक बालमन्दिर में नियमित रूप से आ सकें। लेकिन बच्चे को उसकी इच्छा के विरुद्ध बालमन्दिर में मत भेजिए। जाति-भोज के कारण, घर में नए भाई के जन्म के कारण या ऐसे ही दूसरे पारिवारिक कारणों से बालक को दस दिनों तक घर में मत रोकिए। आप अपने बालक को घर में कुछ सिखाइए-पढ़ाइए मत। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती। हमारी रीति अलग, आपकी रीति अलग।[2]

वे कहते हैं कि बालक स्कूल नहीं जाता, तो इसका कारण ज्ञात करना चाहिए और उस कारण को दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। क्या स्कूल खराब है? मास्टर नापसंद है? बालक को वहां कोई परेशानी है? कोई कठिनाई है? कहीं हमारे बार-बार पाठशाला जाने के आग्रह के कारण बालक को पाठशाला जाने से अरुचि हो गई है? क्या उसे पाठशाला का गलत भय बैठ गया है? या घर का प्रेम ज्यादा है? माता या घर का अन्य सदस्य जैसे-तैसे उसे घर में तो नहीं रखना चाहता? क्या बालक स्वयं कमजोरी के मारे स्कूल नहीं जाना चाहता? या घर में जो ज्ञान बालक को मिल रहा है वह अभी पूरा नहीं हुआ?

बालक को अमृत-दृष्टि चाहिए:- गिजू भाई का मत है कि प्रजा राजा की अमृत-दृष्टि पाकर, बाग माली की अमृत-दृष्टि पाकर, खेत किसान की अमृत-दृष्टि पाकर, और बालक माँ की अमृत-दृष्टि पाकर पनपता और परिपुष्ट होता है। बढ़ने, खिलने और विकसित होने के एक अनिवार्य नियम का

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 82-83

2- वही, पृ0 63

ही नाम है अमृत-दृष्टि। जहाँ-जहाँ यह नियम काम नहीं करता, वहाँ-वहाँ विकास की गति रुँध जाती है, सिकुड़ जाती है, और उसमें शुष्कता और मन्दता आ जाती है। उसमें सड़ाँध शुरू हो जाती है।[1]

वे कहते हैं कि बालक हमारे घरों के पौधे या फूल-पौधे हैं। हमारे द्वारा तैयार किये गये वातावरण में वे खा-पीकर बड़े हो रहे हैं। वे हमारी आँखों तले जी रहे हैं। कड़वी या मीठी, जैसी भी हमारी नजर होगी, बालक वैसे ही बनेंगे। माली अपने ही बगीचे के फूल-पौधों की क्यारियों में दनदनाता हुआ चले, अपनी ही मरजी के काम करे, फूलों को देखकर खुश न हो, सोचे कि हाँ, ठीक है, फूल खिले हैं, तो खिले रहें, तो उसका बगीचा कभी पनपेगा ही नहीं। इसी तरह अपने बालकों के बीच रहकर हम उनकी आवश्यकताओं की उपेक्षा करें, उनको भोंदू या बुद्धू मानकर जब-तब उनको दुत्कारते और फटकारते रहें, उनकी कोमल भावनाओं का कभी विचार ही न करें, उनके प्रति अभिमुख न बनें। अपनी ही मस्ती में मस्त रहा करें, तो निश्चय ही इसके कारण हमारे बालक मुरझाने लगेंगे। उनको हमारी अमृत-दृष्टि का पोषण नहीं मिल पाएगा। बालक बहुत ही नाजुक और नन्हें होते हैं, किन्तु इसी के साथ वे बहुत ही संवेदनशील और संस्कार-क्षम भी होते हैं। वे हमारी राजी-नाराजी को, हमारे गुस्से को और हमारी खुशी को फौरन ही पहचान लेते हैं। हमको कठोर पाकर वे अपना मन मूँद लेते हैं और हमको प्रसन्न देखकर वे भी प्रसन्न हो उठते हैं।[2]

जिस घर में बालकों की तरफ प्यार से देखा ही नहीं जाता, जहाँ उनके छोटे-छोटे कामों की, उनकी छोटी-छोटी बातों की, और उनकी सहज और सरल सद्भावनाओं की कोई कीमत और कद्र नहीं होती, बल्कि जहां उनके इन कामों की उपेक्षा ही की जाती है और इनके प्रति घर के बड़ों की अरूचि ही प्रकट होती रहती है, उस घर में बालकों के प्रति अमृत-दृष्टि नहीं, बल्कि विष-दृष्टि ही अपना काम करती रहती हैं।

गिजू भाई के अनुसार बालक हमारे घरों में बढ़ने वाले पौधे हैं। जिस तरह पौधों पर हवा का और सूरज के प्रकाश का भला-बुरा प्रभाव पड़ता है, उसी तरह बालकों पर उनके माता-पिताओं का और दूसरे लोगों का भी भला-बुरा प्रभाव पड़ता ही है। यह प्रभाव अमृत के समान भी होता है और विष के समान भी होता है। जब हम इस बात को लेकर चिन्तित होते हैं कि शरीर की, मन की और रीति-नीति की दृष्टि से हमारे बालक का विकास ठीक तरह से क्यों नहीं हो रहा है, उलटे, वह मन्द और निस्तेज क्यों बनता जा रहा है, उसमें विस्मरण की और प्रमाद की मात्रा क्यों बढ़ रही है, तो हमको अपने से ही पूछना चाहिए कि इसका कारण रोज-रोज की हमारी अपनी रोक-टोक तो नहीं है न ? बालक को काम में लगा देखकर हमने अपनी प्रसन्नता व्यक्त नहीं की। हमारी यह उपेक्षा ही तो इसके मूल में नहीं है न? हमारी अपनी सहानुभूति का अभाव ही तो इसका कारण है न? ये सब अमृत-दृष्टि

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 119

2- वही, पृ0 120

के अभाव के लक्षण हैं।

अमृत की दृष्टि और विष की दृष्टि स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार की होती है। बालक को हम प्रसन्नतापूर्वक अपने पास बुलाएं और उसकी बात का जवाब दें, तो यह हमारी स्थूल दृष्टि हुई। बालक को काम करते देखकर हम स्नेह-पूर्वक उसकी ओर निहारें और मन ही मन प्रसन्नता का अनुभव करें, चाहे बालक को इसका पता भी न चले, तो वह उसके प्रति हमारी सूक्ष्म दृष्टि होगी। बालक हमसे इनाम की नहीं, कद्र की उम्मीद रखता है। बालक हमसे इनाम नहीं चाहता, वह तो चाहता है कि उसके काम को देखकर हम खुश हों। बालक हमसे यह नहीं कहता कि हम उसके कामों को देखें और उसी के पास बैठे रहें। बालक हमारी उपेक्षा नहीं, अभिमुखता चाहता है। वह जब भी हमारे पास आए, हम उसका स्वागत करें। हम शान्त और सरलभाव से, स्नेहपूर्वक उसके प्रश्नों के उत्तर दें। हम उसकी कठिनाइयों को दूर करें या उनको दूर करने में उसकी मदद करें। गिजू भाई माता-पिता का आह्वान करते हुए कहते हैं कि आइए, हम अपने बालकों का लालन-पालन अमृत-दृष्टि से करें और अपने बालकों के जीवन को सरस और सुमधुर बनाने के लिए अपने आसपास से, अपने घरों से, और अपने पास-पड़ोस से कड़वी दृष्टि को खदेड़कर अपने चारों तरफ अमृत-दृष्टि का ही विकास और विस्तार करने में लगे रहें। हम दोनों का, यानी हमारा और हमारे बालकों का कल्याण इसी में समाया हुआ है।[1]

गिजू भाई का कहना है कि बालक के प्रति माता-पिता का कर्तव्य इतना बड़ा और गम्भीर है कि उस पर भागवत भी लिखी जाए तो वह छोटी ही लगेगी।

बालकों को साफ-सुथरा रखें:- गिजू भाई माता-पिताओं से प्रश्न करते हैं कि जब अपने घर की बेजान चीजों को आप साफ-सुथरा रखती हैं, तो क्या उस समय आपको इस बात का ध्यान रहता है कि आपके घर की एक जीती-जागती वस्तु बराबर गंदी और मैली बनी रहती है? इसमें हमारी क्या खूबी है कि घर के बच्चे तो गंदे रहें और घर का सारा साज-सामान सजा-धजा बना रहे?

गिजू भाई अनुभव करते हैं कि माता-पिताओं को इस बात की पूरी जिम्मेदारी उठा लेनी चाहिए कि उनके बालक पूरी तरह साफ-सुथरे रहें। स्वच्छता की दृष्टि से माताओं को इस बात की खबरदारी रखनी ही चाहिए कि बालक की आँखें साफ रहें, दाँत साफ रहें, कानों में मैल या पीब न रहे और सिर के बालों में रूसी न रहे। इन सबकी सफाई रोज-रोज होनी ही चाहिए। बच्चों के कपड़े साफ रहें, बटन साबुत रहें और फटे हुए कपड़ों की मरम्मत होती रहे। माताओं को इन सब बातों को ध्यान रखना चाहिए। बालकों के नाखून बार-बार कटने चाहिए। यदि इन सब बातों में कोई कमी-खामी रहती है, तो इसमें दोष बालकों का नहीं, बल्कि माता-पिताओं का ही माना जायेगा।[2]

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 122

2- वही, पृ0 69

बालक को जबरन सुलाना अनुचित है:- गिजू भाई का कहना है कि किसी भी हालत में सोते समय बालक को न रुलाएं। बालक को पीट-पीट कर सुलाना निंदित कर्म है।

गिजू भाई पूछते हैं कि अपने विलास के लिए आपका पाप-पूर्ण जागरण मूल्यांकन है, अथवा अपने बालक के निर्दोष आनन्द के लिए किया गया आपका पवित्र जागरण मूल्यांकन है? नींद लाने वाली गोली खिलाकर आप अपने बालक को क्यों सुलाते हैं? क्या इसलिए कि वह आपके आनंद में बाधक बनता है? यदि आपको आराम और विलास का ही सुख लूटना था, तो आपसे किसने कहा था कि आप बालक को अपने बीच बुलाएं? क्या बालक का आपके बीच आना कोई आकस्मिक घटना-मात्र है?[1]

बालक को सम्मान दें:- बालक भी बड़ों की भाँति आत्म-सम्मान रखता है तथा दूसरों से सम्मान पाने का अधिकारी है। उसकी अवमानना करना तथा सम्मान को ठेस पहुँचाना अनुचित है। गिजू भाई कहते है। कि अक्सर हम अपने बालकों को दुत्कार और फटकार देते हैं। उनके मन की बात को समझे बिना उनकी टीका-टिप्पणी करने लगते हैं। उनके बारे में न कहने लायक बातें भी कहते हैं। उनका अपमान करते हैं। उनको अपनी सहानुभूति नहीं देते। उलटे, उनके और अपने बीच गलतफहमी पैदा कर लेते हैं। फासला बढ़ा लेते हैं। थोड़ा समय निकालकर, तनिक बालक की निगाह से सब-कुछ देखकर, हम उसके आनन्द में सहभागी बनेंगे, हम उसको अपनी सहानुभूति देंगे, तो हम अपने बालक के अन्तर को अधिक सुखी बना सकेंगे, उसको अपने अधिक निकट ला सकेंगे और उसको अधिक अपना बना सकेंगे।[2]

अनेक बार बालक अवांछनीय व्यवहार करता हुआ नजर आता है। वह ऐसा क्यों करता है? इस कारण स्पष्ट करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि रोना, पीटना, काटना आदि बच्चे के क्रोध व्यक्त करने, अपना हक मांगने, नाराजगी या नापसंदगी प्रदर्शित करने के माध्यम भी हैं।[3]

बालक को अपशब्द कहना, व्यंग करना, कटु शब्द कहना, तिरस्कार करना, उपेक्षा करना, जली-भुनी बातें कहना भी गलत है। माँ-बाप को ऐसा करने से यथासम्भव बचना चाहिए। नहीं पढोगे तो भीख मांगनी पड़ेगी। इस प्रकार की जली-कटी बातें अबोध बालकों से करके माता-पिता को क्या हासिल होता है, वही जानें, परन्तु गिजू भाई की दृष्टि में यह करना सर्वथा गलत है। वे माताओं से कहते हैं कि बहनों! हमारे घरों में बालकों की स्थिति भगवान् के भेजे देवदूतों की सी होती है। सभी बालक हमारे लिए तो हमारे छोटे-छोटे देव ही होते हैं। इसलिए उनके साथ हमारा सम्बन्ध सम्मानपूर्ण और प्रेमपूर्ण ही रहना चाहिए। सच्चा प्रेम न तो बालकों को गहने पहनाने में है, न उनको अच्छी-अच्छी चीजें खिलाने-पिलाने में है, और न कीमती कपड़े पहनाने में ही है। सच्चा प्रेम इस बात में है कि

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 20
2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 9
3- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 15

हम उनको उनकी रूचि के काम करने दें और कामों के लिए जरूरी अनुकूलताएं खड़ी कर दें। बालकों के प्रति हमारा व्यवहार प्रेम, विनय और आदर से परिपूर्ण रहना चाहिए। बालकों को छोटा मानकर उनकी उपेक्षा या उनका अनादर नहीं करना चाहिए। बालकों को डाँटिए-डपटिए मत। बालकों का अपमान मत कीजिए।

बालकों की संगति पर ध्यान दें:- सम-वयस्क समूह तथा मित्र-मण्डली का बालक पर अत्याधिक प्रभाव पड़ता है। घर के आस-पड़ोस व गली का वातावरण भी बालक को प्रभावित करते हैं। अक्सर बच्चे गंदे खेल खेलते दिखायी देते हैं। अपने अनुभव और अवलोकन के आधार पर गिजू भाई यह कहना चाहते हैं कि बालकों में यह बुराई सहज है, यह कहना अधिक उचित और सच मानते हैं कि यह वातावरण की उपज है। अधिकतर सोहबत की वजह से ही वह बुराई बालकों में आती है और सोहबत के कारण ही बालक इसको एक-दूसरे तक पहुंचाते हैं। बालकों को यह चीज बड़ों की तरफ से मिलती है। वे सचेत करते हैं कि एक काम हमें नहीं करना है और वह यह है कि बालकों को गंदे खेल खेलने के लिए हमको न तो उन्हें मारना-पीटना है और न डांटना-डपटना ही है।[1]

बचपन में बालक अपने वातावरण के प्रति बहुत जाग्रत होते हैं। उन पर वातावरण का बहुत गहरा और पक्का असर पड़ता है। पड़ोस के घर का, अपने घर का, और घर के सब लोगों का अच्छा-बुरा वातावरण मौसम की तरह बालकों छूता रहता है और उनको उसके हानि-लाभ का हिस्सेदार बनना ही होता है। जब बालक गहरी नींद में सो रहा होता है, उस समय भी उसके आसपास का वतावरण उसको प्रभावित करता ही रहता है। यह प्रभाव केवल शरीर पर ही नही, बल्कि मन पर और मन के मूल में रहने वाली अन्य शक्तियों और वृत्तियों पर भी पड़ता रहता है।[2]

गली के अनियंत्रित वातावरण के प्रति गिजू भाई का विचार है कि गली एक प्रकार का वातावरण है, उसमें पोषक और विघातक दोनों तरह के तत्व विद्यमान रहते हैं विघातक तत्वों को दूर हटाकर तथा पोषक तत्वों को ग्रहण करके उनमें से चुनाव करने की बालक को किसी ने अनुकूलता दी नहीं। पोषक तत्वों को ग्रहण कर उन्हें अपनाने में ही बालक का विकास है। घर से निकलकर बाहर आने वाले बालक के लिए वह उचित विशाल-घर नहीं है।

वे कहते हैं कि डराने-धमकाने की तरह ही बालक को शर्मिंदा भी नहीं बनाना चाहिए। शर्मिंदगी बालक को अपमानजनक लगती है। वह सोचता है कि ऐसा करके शर्म महसूस करने के बदले अच्छा यह है कि काम ऐसी सावधानी के साथ किया जाए कि माँ-बाप को उसका पता ही न चल पाए। गिजू भाई का यह भी मानना है कि हम बालकों को यह उपदेश भी न दें कि अमुक काम करना अच्छा है, और अमुक काम बुरा है। भलाई और बुराई को जानते-समझते हुए भी आदमी

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 102

2- वही, पृ0 103

भले-बुरे काम करता ही रहता है, क्योंकि उसकी क्रिया-शक्ति निर्बल होती है। उपदेश से बात तो समझ में आ जाती है, उस पर अमल करने की शक्ति नहीं आती। उपदेश के कारण उत्पन्न समझदारी से मन में भावना जागती है, अच्छा संकल्प लेने की वृत्ति बनती है, किन्तु इससे उस पर अमल करने की शक्ति प्रकट नहीं होती, क्योंकि संकल्प को कार्य में परिणत करने के लिए क्रिया-शक्ति के बल की आवश्यकता होती है। अतएव उपदेश देने के बदले हम बालक को काम करने के साधन दें, अच्छी सोहबत दें और अच्छा वातावरण दें। जब तक हाथों में काम है, जब तक मन में काम का चिंतन है, जब तक सोहबत अच्छी है, और जब तक वातावरण स्वच्छ और निर्मल है, तब तक बालक बुराइयों से सुरक्षित है।[1]

हर वह काम, जिसमें मूल रूप से हाथों और पैरों का उपयोग होता है, जिसमें ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों के सहयोग से कोई चीज बनती है, बालकों को नीचे गिरने से रोक लेता है और उनके चरित्र की रचना करता है।[2]

बालकों को अपने घरों में बंद करके भी न रखें। बालक घर छोड़कर गली में इसलिए जाते हैं कि वहां उनको दौड़ने, कूदने और अपनी बराबरी के लड़कों के साथ घुलने-मिलने के मौके मिलते हैं। अपनी एक उम्र में बालकों को दोस्तों की जरूरत होती है। अगर हम उनको अपने दोस्तों के बीच जाने से रोकते हैं तो वे हमारी आँख चुराकर निकल भागते हैं और दोस्तों की दोस्ती के साथ वे उनसे कुछ बुराइयाँ भी पा जाते हैं। माता-पिता ऐसी व्यवस्था करें कि बालकों के मित्र उनसे मिलने घर पर आएँ। अपने बालकों के मित्रों को तो हमें अपनाना ही होगा। बालकों को स्वस्थ वातावरण देने के लिए उनके कुछ चुने हुए मित्रों को अपने घर में स्थान देना होगा। बालक की सोहबत पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। इस मामले में माता-पिता के नाते हमको हमेशा चौकन्ना रहना चाहिए।

गिजू भाई कहते है। कि आप तो अपने घर का, आसपास का वातावरण निर्दोष रखें, निर्भयता स्थापित करें। बालक से किसी तरह का कोई अपराध भी हो जाए तो उसे सजा मत दो, अपितु उसका कारण ज्ञात करो और उसे प्रेम से इस तरह समझाओ कि दुबारा नुकसान न हो। तभी बालक अच्छा बनेगा। इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं।[3]

बालकों को मारना-पीटना पूर्णतः अनुचित है:- परिवार में बालकों के साथ मारपीट करना आम बात है। वैसे पहले की तुलना में अब कुछ कमी अवश्य आयी है। गिजू भाई का कहना है कि कुछेक घरों से ही, जिन पर ईश्वर की कृपा हुई है, आज बालकों का रोना नहीं अपितु खिलखिलाहट सुनाई दे रही है, मारपीट और धींगामस्ती नहीं अपितु प्रेम और सहयोग दिखाई दे रहा है, दबाव, धमकी और पढ़ाई का बोझ नहीं अपितु स्वतंत्रता और सर्जनात्मक प्रवृत्ति की विविध सुन्दरता दिखाई देती है। पर

1- गिजू भाई बधेका - माता-प्रिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 108

2- वही, पृ0 104

3- वही, पृ0 33-34

यह रेगिस्तान में एकाध बगीचे जैसी स्थिति है। लाखों घरों में आज भी बच्चे दिनभर में एक से अधिक बार मार खाते हैं। जब उनकी माँएं भी उनके पिता के हाथों मार खाती हैं, तो बालकों का तो पूछना ही क्या?[1]

गिजू भाई का मानना है कि मारने-पीटने की जो वृत्ति हम में बनी रहती है, वह इस बात की सूचक है कि हमारी सृजनात्मक वृत्ति क्षीण हो रही है। मारना-पीटना अपने-आप में एक विकृति है, एक बुराई है। इसलिए मारने-पीटने से विकृति मिटती नहीं, बल्कि उसको बढ़ावा मिलता है। मार खाने वाला बालक इसी कारण दूसरों को मारना-पीटना सीख जाता है। यही नहीं, बल्कि वह दूसरों को गंदा और बुरा बनाना सीख जाता है। मारपीट के रसायन में से बुराई अपने आप पैदा हो जाती है। इसलिए मारना-पीटना सर्वथा त्याज्य ही है।[2]

गिजू भाई कहते हैं कि मारने का काम तो कसाई का है, हत्यारे का है। मारने से तो परमेश्वर हमारे ही हाथ-पैर काट डालेगा। बालक तो गरीब और दुर्बल होता है। उसकी अपनी कोई ताकत नहीं होती। उसमें बुद्धि और समझ भी नहीं होती। आप उसको मारेंगी, तो आपकी मार सहन करके भी सिसकियाँ लेता हुआ आखिर वह आप ही की गोद में आकर बैठेगा। वह बेचारा और कहीं जाएगा भी कहाँ?[3]

वे माता-पिता से पूछते हैं कि बालक को तो आप ही ने अपने भगवान् से माँगा है न? बालक तो आपका ही माँगा हुआ वैभव है। भगवान् के घर से वह आपको मिला है। इसलिए किसी भी हालत में उसको मारना-पीटना जरूरी नहीं है। मारने-पीटने से बालक सुधरने के बदले बिगड़ता ही अधिक है। जिन बालकों को मार खाते रहने की आदत पड़ जाती है, वे बहुत ही दीन बन जाते हैं। वे बात-बात पर रोने-चिल्लाने लगते हैं। वे बेचारे बनकर रह जाते हैं। वे हिम्मत खो बैठते हैं और अपनी मारने वाली माँ की याद आते ही वे इतने डर जाते हैं, मानो किसी राक्षस की याद से कांप उठे हों।

गिजू भाई बालकों के साथ मारपीट को हिंसा मानते हुए कहते हैं कि पिटने पर बालक सिसकियाँ ले-लेकर रोता है, और बालक की इन सिसकियों में सारे घर को जला डालने की ताकत रहती है। इसलिए बालक की अंतरात्मा को कभी दुःख नहीं पहुंचाना चाहिए। बालकों के निःश्वास बहुत ही भयंकर होते हैं।[4]

घर में बालक के लिए सुविधाएँ

गिजू भाई का कहना है कि यदि एक बौना सामान्य व्यक्तियों के बीच जैसा महसूस करता है। बड़े लोगों की चीजों के मध्य जो असुविधा अनुभव करता है वैसा ही बालक के साथ भी होता है। वे कहते हैं कि हमारे घरों में बालकों के लिए सब-कुछ ऐसा ही होता है। खूंटियाँ ऊँची होती हैं।

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 91-92
2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 107
3- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 79
4- वही, पृ0 80-81

पनियारे इतने ऊँचे और बड़े होते हैं कि बालक उनके पास पहुँच ही नहीं सकते। आलमारियाँ इतनी बड़ी-बड़ी होती हैं कि बालक उनका उपयोग कर ही नहीं पाते। घर की सारी व्यवस्था और सारा साज-सामान भी ऐसा होता है कि बालक बरबस सोचने लगते हैं कि वह मनुष्यों की दुनिया है, या किसी राक्षस का देश है?[1]

घर के उपयोग के लिए जुटाया गया अधिकतर सामान ऐसा होता है कि बालक खुद उसका उपयोग कर नहीं सकता। वे पूछते हैं कि ऐसी स्थिति में बालक क्या करें? यद्यपि वे स्वीकार करते हैं कि कई घरों में बालकों के लिए प्रेमपूर्वक और उदारतापूर्वक ऐसे खिलौनों का प्रबन्ध किया जाता है, जिनसे बालक खेल सकें। बालकों से कहा भी जाता है कि वे घर के किसी एक कोने में बैठकर उन खिलौनों के साथ खेला करें। लेकिन ये खिलौने बालकों को लंबे समय तक संतुष्ट नहीं कर पाते। अक्सर देखा यह जाता है कि जब इन खिलौनों से खेलते-खेलते बालकों का मन ऊब जाता है, तो वे इनको तोड़-फोड़ डालते हैं, अथवा गुस्से में आकर इनको दांतों से चबा डालते हैं और फेंक देते हैं।

गिजू भाई कहते हैं कि यदि आप यह अनुभव करें कि बात तो सच है कि घर में बालक के लिए जैसा चाहिए वैसा एक भी कोना नहीं होता नहीं है, और घर में जो भी साज-सामान रहता है, वह बालक के लिए बहुत बड़ा और भारी होता है, तो आपको अपने घर की व्यवस्था में जरूरी सुधार कर लेना चाहिए। बालक खुद जिनका उपयोग आसानी से कर सके, ऐसे छोटे-छोटे बर्तन, छोटी लोटियाँ, छोटी थालियाँ, छोटी कटोरियाँ, छोटी मोगरी, छोटे झाड़ू, छोटे सूप, छोटी बालटियाँ आदि सामान घर में उनके लिए सुलभ कराना चाहिए। क्योंकि अपने घरों में हम जो भी काम करते हैं, हमारे घरों में रहने वाले बालक रोटी बेलने, कढ़ी हिलाने, बर्तन माँजने, बर्तन धोने और झाड़ू लगाने जैसे काम बड़ी तत्परता के साथ करना चाहता है। लेकिन चूंकि इन सब कामों के लिए घरों में सारा सामान बड़ों के लायक होता है, इसलिए इस डर से कहीं बालक को कोई चोट न लग जाये हम उसको ये सारे काम करने ही नहीं देते। बाद में जब हम उससे ऐसा कोई काम करने के लिए कहते हैं तो वह उलटकर जवाब देता है और कहा हुआ काम करता नहीं है। ऐसी स्थिति में हम यह अनुभव करते हैं कि बालक हमारा कहा हुआ काम करने से कतराता है।[2]

यदि इस योजना पर अमल किया जाए तो इससे बालक आनंदी, स्वस्थ और स्वतंत्र बन सकता है। वह माता-पिता और नौकर-चाकर की पराधीनता से छुट्टी पा सकता है। बालक स्वयं ही अपनी इंद्रियों का विकास करके अपने मन और अपनी आत्मा का विकास नाना प्रकार से कर सकता है। इस योजना का ब्योरा इस प्रकार है-

---

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 65

2- वही, पृ0 66

बालक का अपना कमरा:-

गिजू भाई कहते हैं कि सामान्य परिवारों की तो बात क्या करें? धनवानों के बंगलों में भी बालकों के लिए कोई अलग कमरा रखा नहीं जाता। इसलिए पहली जरूरत तो यह है कि बालकों को एकान्त में कमरा मिलना चाहिए। इस कमरे में सारी चीजें बालक को उम्र के हिसाब से, उसकी जरूरतों को ध्यान में रखकर जुटाई जानी चाहिए। इस कमरे का वर्णन गिजू भाई इस तरह करते हैं-

1. कमरा न बहुत बड़ा हो, और न बहुत छोटा।
2. कमरे की दीवारें नीले अथवा हल्के हरे रंग से रंगी हों।
3. बालक खड़े-खड़े हाथ लगा सकें, इतनी ऊँचाई पर कमरे में बड़े आकार के कुछ चित्र लगे हों।
4. फर्श पर नीले-लाल रंग की पट्टियों वाली दरियाँ बिछी हों।
5. कमरे में एक-एक दराज वाली हल्की-छोटी मेजें हों, जिनको बालक खुद उठा सकें और इधर-उधर ले जा सकें।
6. जब जी चाहे तब बालक आराम कर सकें, ऐसी छोटी खटिया या छोटा पलंग और उस पर साफ-सुथरा बिछौना।
7. एक कोने में हाथ-मुँह धोने के लिए पानी की छोटी टंकी, पास ही हाथ-मुँह पोंछने के लिए एक छोटा तौलिया और एक छोटे कंघे के साथ दीवार पर एक आईना हो।
8. खिड़कियों पर फूल-पौधों वाले छोटे-छोटे गमले रखे हों।
9. पानी का एक टब।
10. पेड़-पौधों में पानी सींचने के लिए एक छोटी झारी हो।
11. बालक के हाथ पहुँच सके, इतनी ऊँचाई पर दीवारों में खूंटियाँ लगी हों।
12. पानी पीने के लिए एक छोटी मटकी या गगरी हो और एक हल्का-सा छोटा प्याला या गिलास हो।

कमरे में साधन-सामग्री:-

एक पट्टा और उस पर गीली मिट्टी का एक पिंड। पास ही में हाथ धोने के लिए एक डोल या बाल्टी और एक तौलिया। मिट्टी के खिलौने सुखाने के लिए एक पटिया। छोटे-छोटे रूमाल। कुछ ब्रुश और एक छोटी पेटी-कपड़ों को तह कर रखने के लिए, रबर की छोटी-बड़ी गेंद और लकड़ी के वल्ले, लकड़ी के पहिए अथवा लोहे की पट्टी वाले पहिए और हुक, अलग-अलग धातुओं के और अलग-अलग कीमतों वाले सिक्के, ऊन, सूत और रेशम के नमूने, जो 'सैंपल' के रूप में मिलते

हैं। इनके टुकड़ें, हर किस्म के दो-दो, चौपड़ नहीं, केवल गोटें, रंग-बिरंगी चकरियाँ, छोटी झाडू और छोटे सूप, लट्टू और डोरी, दो-चार छोटी काली तख्तियाँ और खड़िया मिट्टी की पेटी, चित्रों के अलबम, हमारे देश के जीवन का परिचय कराने वाले सुन्दर और साफ चित्र, स-र-ग-म के सुर निकालने वाले कांच के प्यालों के दो सैट, लकड़ी के घन के 20 टुकड़े, एक घड़ियाल और हथौडी, मॉण्टेसरी-पद्धति में काम आने वाली गट्टों की तीन पेटियाँ, मॉण्टेसरी-पद्धति में काम आने वाला मिनारा, चौड़ी सीढ़ी और लंबी सीढ़ी एवं मॉण्टेसरी-पद्धति में काम आने वाले रंगों की पेटी।

गिजू भाई की धारणा है कि ये सारे साधन ऐसे हैं कि यदि बालक को इनके बीच खुला छोड़ दिया जाए, तो बालक खुद ही अपनी पसन्द का साधन लेकर उसके साथ खेलना शुरू करेगा और इससे बालक अपना विकास खुद ही करता रहेगा। बहुत ही जरूरी हुआ तो बालक को एकाध बार ही यह समझाना होगा कि इन सब साधनों का उपयोग क्या है और उसको इनका उपयोग किस तरह करना है। बाद में तो बालक खुद ही सब-कुछ कर लेगा। बालक को ये साधन सौंप देने से वह स्वतंत्र बनेगा, आनंदी बनेगा, स्वस्थ बनेगा और नौकर अथवा आया की गुलामी से उसे छुटकारा मिल जाएगा। वह जिद करना और झगड़ना भूल जाएगा। साधन सब अच्छे होने चाहिए, ऐसे-वैसे नहीं। मॉण्टेसरी-पद्धति के जो साधन व्यवस्थित रूप से बने हों, उन्हीं साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए।[1]

गिजू भाई का सुझाव है कि घर में वाचनालय एवं पुस्तकालय भी होना चाहिए। उसका रख-रखाव तथा संचालन का दायित्व बालकों को ही सौंपा जाना चाहिए। कुछ परिवार सहयोगपूर्ण ढंग से भी यह व्यवस्था कर सकते हैं।

गिजू भाई के अनुसार बालक के लिए घर कोई छोटी-मोटी दुनिया नहीं है। वहाँ उसके लायक कई काम मौजूद है। हमारा ध्यान उनकी तरफ गया नहीं, और हमने बालकों को वे काम सुझाएँ नहीं। बालक जब-जब भी खुद अपनी रुचि के काम खोज लेते हैं तब-तब हमने अनजाने में उनका विरोध किया है। उनके कई अच्छे कामों को दबा देने के लिए हमने उनको धमकाया भी है और सजा भी दी है लेकिन अव इन बातों को हम भूल जाएँ और नए सिरे से नया सिलसिला शुरू करें। बालक की रुचि के ऐसे काम हम उसको करने देंगे तो वह तुरन्त ही उनको करने लगेगा। उनमें वह तल्लीन हो जाएगा। उनको करके वह आनन्द और सुख का अनुभव करेगा। वे कुछ ऐसे कामों की जानकारी देते हैं -

1. कागज और कैंची:- बैठे-बैठे कागज काटने का काम बच्चों को अच्छा लगता है। इस काम के साथ वे कैंची का उपयोग करना सीख जाते हैं। इससे उनकी अंगुलियाँ और हाथ के स्नायु सुदृढ़ बनते

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 88

हैं। धीरे-धीरे वे निश्चित आकार काटने लगते हैं। दूसरा काम कागज कोरने का है। कागज को दो तहा या चार तहा मोड़कर उसको अगल-बगल से और बीच में से काटने पर उसमें कुछ आकृतियाँ तैयार हो जाती हैं। बाद में जब कागज की तहों को खोला जाता तो बढ़िया कारीगरी का एक नमूना सामने आता है।

इसके अलावा कैंची की मदद से बालक घर में मौजूद बेकार अखबारों आदि में से चित्र काट सकता है। चित्रों में बॉर्डरों और तरह-तरह के अक्षरों का भी समावेश किया जा सकता है। इन सबको इकट्ठा करके बालक इनका एक संग्रह तैयार करे। हर बालक घर में क्या करें? महीने में ऐसे एक संग्रह की जिल्द बंधवा दी जाए तो बालक का अपना एक चित्र-संग्रहालय तैयार हो सकता है। इस काम के लिए बालक को कैंची, गोंद की एक कटोरी, दातौन का या दूसरा कोई ब्रुश, कागज और पत्र-पत्रिकाएं दे दी जाए। इन्हीं के साथ कचरा डालने के लिए एक टोकरी और हाथ पोंछने के लिए कपड़े का एक टुकड़ा भी अवश्य दिया जाए।

2. दियासलाई की डिब्बियाँ : खाली और भरी हुई:- बालक दोनों तरह की डिब्बियों का उपयोग करते हैं। छोटा बालक भरी हुई डिब्बी की दियासलाइयाँ बाहर निकालेगा और फिर उन्हें भरेगा। यह काम वह बार-बार करेगा। उसका यह खेल लंबे समय तक चलता रहेगा। छोटे बालक को इस खेल से अच्छा शिक्षण प्राप्त हो जाता है। इससे आँखें स्थिर होती है, हाथ पर काबू आता है और एकाग्रता पुष्ट होती है। खाली डिब्बियों को खोलना और बन्द करना एक खेल बन जाता है। इससे आँखों और हाथों के स्नायुओं को व्यायाम का लाभ मिलता है। इसके अलावा इन डिब्बियों की मदद से बंगले बनाए जा सकते हैं। बंगले से मतलब है, तरह-तरह की रचना, जैसे-दीवार, चबूतरा, कुआँ, तालाब, रेलगाड़ी आदि-आदि। दीवारें कई प्रकार की बन सकती हैं। ये डिब्बियाँ घर में मिल सकती हैं या आसानी से इकट्ठा की जा सकती हैं। दियासलाई की डिब्बियां रखने के लिए बालक को एक छोटी-सी पेटी दे दीजिए और बैठकर बंगले आदि बनाने के लिए एक आसन भी दीजिए।

3. लकड़ी की ईंटें और घन:- ये साधन बहुत महत्व के हैं। लकड़ी की ईंटों और घनों की मदद से बालक मीनार, दीवार, घर, कुआँ, बावड़ी, तालाब आदि स्थापत्य सम्बन्धी नाना प्रकार के आकारों का निर्माण करता है। एक दीवार बनाते समय उनके कई-कई प्रकार तैयार करता है। इसके अलावा ईंटों और घनों को जमीन पर जमाकर वह उनसे तरह-तरह की आकृतियाँ बनाता है। इस पेटी का उपयोग करने में बालक को बड़ा मजा आता है। उसकी आत्मा छोटे रूप में किन्तु संपूर्ण कल्पना के साथ नई-नई रचनाएं रचती है। कलात्मक सृजन के लिए यह काम सुन्दर और उपकारक है। एक अथवा दो या दो से अधिक बालक भी इकट्ठा होकर इन साधनों का उपयोग करते हैं।

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 34

4. चित्र देखना और चित्र बनाना:- बालकों के लंबे समय तक व्यस्त रखने वाले कामों में चित्र देखने और चित्र बनाने के काम महत्व के हैं। हर एक घर में कुछ चित्रों का संग्रह रहना चाहिए। इनमें पोस्टकार्ड-चित्र विशेष रूप से हों। इन चित्रों में बालकों को अच्छे लगने वाले विषयों के चित्र पसंद किये जाने चाहिए, जैसे- पशु-पक्षियों के कार्ड, पतंगों या तितलियों के कार्ड, हाट-बाजार के कार्ड और हमेशा पास-पड़ोस में घटने वाली घटनाओं के चित्र आदि। माता-पिता चित्र खरीद न सकें तो वे इधर-उधर पड़े रहने वाले अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं में छपे तरह-तरह के चित्रों के संग्रह तैयार कर सकते हैं।[1]

जिस तरह चित्र देखना एक आनंददायक और विकासक काम है, उसी तरह चित्र बनाना भी वैसे ही काम है। बालक भी चित्र बना सकते हैं, लेकिन वे चित्र उनके अपने हिसाब के चित्र होंगे, बड़े चित्रकारों के हिसाब के हर्गिज नहीं। लेकिन बच्चों के बनाए ये चित्र यदि उनको व्यस्त रखते हैं, उनको आनंद देते हैं, उनको एक कदम आगे बढ़ाते हैं तो वे उनकी बहुत मूल्यवान कृतियाँ ही हैं। अपने विकास की कक्षा में रहकर मनुष्य जैसा भी सृजन करता है, उसके लिए वही उसका अद्‌भुत और भव्य, संपूर्ण और सुन्दर सृजन होता है। इस दृष्टि से बालकों द्वारा खींची गई लकीरें भी चित्र हैं।

5. मिट्‌टी के खिलौने:- बालकों को मिट्‌टी के खिलौने बनाने की अनुमति दीजिए। बरसात के मौसम में गारा तैयार मिलता है। दूसरे मौसमों में बालक को खेत की, गली की या आंगन की मिट्‌टी के गारे का उपयोग करने दीजिए। थोड़ा खर्च करके इस काम के लिए सफेद या लाल पीली मिट्‌टी का भी उपयोग किया जा सकता है। जो लोग पैसे खर्च कर सकते हैं, वे इस काम के लिए 'क्ले' और 'प्लेस्टिसिन' नामक मिट्‌टियाँ मंगवा लें। मिट्‌टी का संग्रह करने के लिए बालकों को एक बर्तन सौंप दीजिए। खिलौने बनाने के लिए एक पटिया, हाथ धोने के लिए पानी से भरी एक बाल्टी और कपड़े का एक टुकड़ा उन्हें दे दीजिए। मिट्‌टी का काम एक सृजनात्मक काम है। इस काम के कारण हाथों के स्नायु विशेष रूप से विकसित होते हैं। साथ ही पता चलता रहता है कि बालक के अवलोकन के विषय क्या-क्या है। अपनी कृतियां और अपने खेलों के माध्यम से बालक अपनी मनोवृत्ति को प्रकट करते रहते हैं।

6. आलपिन और कागज:- आलपिन की मदद से बालक तरह-तरह के काम करते हैं। सबसे छोटे बच्चे आलपिन रखने की गादी यानि 'पिनकुशन' में से आलपिनें निकालने और फिर उनको गादी में खोंसने के काम में विशेष रूचि लेते हैं। थोड़ी बड़ी उम्र के बालक आलपिन की मदद से कागज में छेद करके उनमें कई तरह की आकृतियाँ तैयार करते हैं। आलपिनों से गिनती का काम भी होता है।

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 35

आलपिनों को अलग-अलग ढंग से सजाकर उनके कई 'डिजाइन' भी बनाए जा सकते हैं। इस काम के लिए बालक को एक प्याला, एक 'पिनकुशन' और थोड़ा मोटा कागज दिया जाए।

7. कपड़े के टुकड़े:- खासतौर पर छोटे बच्चों को कपड़ों के छोटे-छोटे टुकड़े दे दिये जाएं तो रूमाल की तरह उनको तहते रहने का काम वे लंबे समय तक करते रहते हैं। इससे उनको उतना ही लाभ होता है, जितना हाथ से की जाने वाली दूसरी किसी क्रिया से होती है। कपड़ों के कुछ टुकड़ें एक पेटी में या एक पोटली में रखकर बालक को दे दीजिए। कपड़े के ये टुकड़े रंग-बिरंगे हों तो और भी अच्छा हो। टुकड़े रूमाल के नाप के होने चाहिए। टुकड़े गंदे हर्गिज न हों। गंदे होने पर उनको धो लेना चाहिए।

8. मंदिर की पेटी अथवा देवघर:- आमतौर पर यह देखा गया है कि बालकों को घर का खेल खेलना अच्छा लगता है। इस खेल में आज की सामाजिक बुराइयां घुस जाती हैं, जैसे- रोना, सिर पीटना, सांसारिक जीवन आदि। अतएव इस खेल के बदले खेलने की उनकी वृत्ति तृप्त हो सके और उन्हें काम भी मिल सके, इस दृष्टि से उनको मंदिर की एक पेटी दीजिए। मंदिर की पेटी का मतलब है - सुन्दर, कलापूर्ण रचना के लिए आवश्यक सारे साधन। जैसे, तांबा-पीतल के छोटे-छोटे बर्तन, तस्वीरें, गादियाँ, महुए की अथवा ऐसी ही दूसरी लकड़ी के या हाथी दांत के बने खिलौने आदि-आदि। बालक इन सबको सजा कर रखें। उनको रूचे और जंचे तो बीच में वे देव के रूप में कोई चीज रख दें। धार्मिकता बढ़ाना इसका हेतु बिल्कुल न हो। एक पेटी या डिब्बे में से सारी चीजें रखी रहें। एक या एक से अधिक बालक मिलकर यह खेल खेलें।

9. बागवानी:- पेड़-पौधों की परवरिश का काम बालकों का अपना एक महत्व का काम है। वे छोटी उम्र में अपने गमलों की सार-संभाल रख सकते हैं। आंगन में क्यारियाँ बना दी जाएं तो बीज बोने से लेकर पौधों की परवरिश तक के सारे काम वे कर सकते हैं। वे बड़े पेड़ों को पानी पिला सकते हैं। बालकों को पानी सींचने और मिट्टी खोदने के ऐसे साधन और औजार दिए जाएं, जिनका उपयोग वे सरलता से कर सकें। उनको घर के आंगन में थोड़ी खुली जगह दीजिए। गेहूँ-ज्वार के कुछ दाने, और सुलभ हों तो फूल-पौधों के कुछ बीज दीजिए। उनको उनके ढंग से अपने बाग की रचना करने दीजिए। हम उनसे यह न कहें कि इस तरह से बोओगे तो बीज उगेंगे, नहीं तो नहीं उगेंगे। हम इस झंझट में पड़े ही नहीं।[1]

हमारी दृष्टि से थोड़े बीज बर्बाद भी हो जाएं तो हो जाने दें। बालकों को जैसे-जैसे अनुभव होता जाएगा, वैसे-वैसे इस काम में उनकी निगाह खुलती रहेगी। उनका बोया हुआ एक बीज भी उगेगा तो उनके लिए तो वह एक उत्सव ही बन जाएगा। जब वे उत्साह के साथ इन कामों में लगे होंगे तो

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 38

उनको इनमें मजा आएगा। छोटे-छोटे हाथ छोटे-छोटे कामों को पूरी गम्भीरता के साथ अपनी पूरी ताकत लगाकर काम कर रहे होंगे। उनके चेहरों पर पसीने की बूंदें या सुर्खी दिखाई देंगी। वे एकाग्र और प्रसन्न होंगे। अपनी रूचि के किसी काम में तल्लीन हो जाने पर जैसे हम दिखाई पड़ते हैं, वैसे ही बालक भी दिखाई पड़ेंगे। बालकों को शुरू में ही समझा दिया जाये कि उनको औजारों का उपयोग किस तरह करना है, उनको कहाँ रखना है, और व्यवस्था एवं स्वच्छता की दृष्टि से क्या-क्या, कैसे-कैसे करना है।

10. प्राणियों की परवरिश:- बालकों के लिए यह एक बढ़िया काम है। बालक कुत्तों के और उनके पिल्लों के साथ खेलते हैं। इस काम में बालकों को मजा आता है। कुतिया के पिल्लों, छोटे बच्चों और अपने छोटे भाई-बहनों, जैसे-अपने सब जीते-जागते मित्रों के लिए बालकों के मन में बड़ा प्यार होता है। वे उनको खिलाते हैं, पिलाते हैं, खेलाते हैं, अपनी छाती से लगाकर रखते हैं, उनको अपने साथ सुलाते हैं, उनके साथ हंसते-बोलते हैं, और उनके सुख से सुखी और दु:ख से दु:खी होते हैं। बालकों की अपनी यह एक जीती-जागती दुनिया होती है। बालक इसी के साथ बढ़ते हैं। इसके बीच रहकर वे अपने प्रेम का विकास करते हैं। इन सबके परिचय से उनको कई तरह के अनुभव प्राप्त होते रहते हैं।

बालकों के लिए हरेक घर में ऐसे सब कामों की व्यवस्था करना आवश्यक नहीं है। सब घरों में सब काम करवाना संभव ही नहीं है। इसलिए साधन, सम्पत्ति, सुविधा आदि का ध्यान रखकर जितने कामों की व्यवस्था सहज ही की जा सके की जाए। काम बालक के लिए हैं, बालक काम के लिए नहीं है। बालक काम किए बिना रह नहीं पाता। उसको बहुत कुछ करना होता है। इसलिए इन कामों में से कई काम वह न करें तो भी हमको उसकी चिंता नहीं रहनी चाहिए। मतलब यह कि हम बालक के लिए काम की अनुकूलता कर दें लेकिन उसके काम करने के लिए बाध्य न करें। बालक जो भी काम करें सो अपनी राजी-खुशी से ही करें। बालक के लिए हम जिन-जिन कामों की व्यवस्था कर दें उन कामों को वह शान्तिपूर्वक कर सके, बीच में किसी का कोई हस्तक्षेप न हो, इसका ध्यान हम जरूर रखें। वही काम सच्चा माना जाए जो बालक को व्यस्त रखे, प्रसन्न रखे, एकाग्र रखे, जिसको करते-करते बालक हंसे, गाए और दूसरों को उसमें सम्मिलित करना चाहे।

11. नाटक खेलना:- बालकों को नाटक खेलना अच्छा लगता है। नाटक खेलकर बालक मुख्य रूप से अभिनय करने की अपनी वृत्ति को वेग और संतोष देता है। अभिनय एक कला है। उसके द्वारा मनुष्य का कला-प्रिय स्वभाव प्रकट होता है। यह वृत्ति सहज है और बाल-विकास के काम में इसका अपना स्थान है। नाटक घर में ही खेले जाए। उनके लिए कोई नई चीज खरीदी न जाए। कोई खास

व्यवस्था न की जाए। नाटक खेलने की इच्छा हो जाए तो नाटक शुरू कर दिया जाये। बालक खुद ही तय करें कि उनको कौन-सा नाटक खेलना है। नाटक का 'प्लाट', उसकी कथावस्तु, सबके ध्यान में रहती है। बालक नाटक के संवादों को कभी रटकर याद न करें।

12. मिकैनो आदि:- मिकैनो अथवा ऐसे खेल या साधन, कि जिनके उपयोग से बालकों में यंत्रों के उपयोग की बुद्धि और कुशलता बढ़ती है, घर में रखे जाने चाहिएं। यदि मध्यम श्रेणी के परिवारों के लिए साधन महंगे सिद्ध हों तो इनको छोड़ा जा सकता है अथवा दो-चार पड़ोसी मिलकर ऐसे साधन सबके लिए इकट्ठा खरीद लें और किसी एक घर में उनको रख दें। बालक वहां पहुंचकर उनका उपयोग करें। मिकैनो के लिए या ऐसे दूसरे साधनों के लिए एकान्त स्थान और बैठक की व्यवस्था की जानी चाहिए। जिस बालक को ऐसे खेलों का शौक होता है, वह तो इन खेलों को मीठे भोजन के रूप में अपना ही लेगा।

13. फूल और पत्तियाँ इकट्ठा करना:- बालकों को खोजना, इकट्ठा करना और रखना-धरना अच्छा लगता है। इसका मतलब यह है कि बालकों में संग्रह और संचय की अच्छी वृत्ति रहती है। इस वृत्ति का अर्थ होता है, 'म्यूजियम स्पिरिट' वस्तु संचय की वृत्ति। बालक अपने आसपास की दुनिया से और पदार्थों से जो ज्ञान प्राप्त करता है, उस ज्ञान को ज्यों का त्यों अपने सामने रखने के लिए वह वस्तुओं का संग्रह भी करता है। यह भी कहा जाता है कि इसके द्वारा बालक अपनी प्राथमिक स्थिति की परिग्रह वृत्ति की सद्गति या उच्च गति को व्यक्त करता है।

अपने आसपास की दुनिया को देखने और उसमें जो अच्छा लगे, उसको इकट्ठा करने के लिए बालकों को खुला छोड़ देना चाहिए। वे जो भी कुछ इकट्ठा करें, हम उसका स्वागत करते रहें। अपनी इकट्ठी की गयी चीजों को अच्छी तरह सजाकर बालक अपनी कला विषयक दृष्टि का विकास करेंगे। उनके द्वारा इकट्ठी की गयी चीजों को संभालकर रखने की अनुकूलता हम अवश्य ही कर दें।

14. रेत का ढेर:- आँगन के सामने रेत के ढेर का मतलब होता है, बालकों के लिए तरह-तरह के कामों का एक जीता-जागता केन्द्र। बालकों को इस ढेर के पास पहुँचने दीजिए। वहाँ उनको उनकी रुचि के अनुसार कुएँ, बगीचे, रास्ते, किले, पहाड़ आदि बनाने दीजिए। उनको समझा दीजिए कि वे अपने सिर को रेत से बचा लें। रेत के बीच बैठकर बालक ढेर सारे काम करते रहते हैं। इसकी प्रतीति हमको तभी होगी, जब हम खुद उनको काम करते देख लेंगे। घर के सामने आँगन हो, और वहाँ रेत के ढेर की व्यवस्था करना पुसा सम्भव हो तो यह व्यवस्था अवश्य कीजिए। गिजू भाई कहते हैं कि अलबत्ता, शहरों में इसकी व्यवस्था करना कठिन ही होगा।

ऊपर जिन कामों की चर्चा की गयी है, गिजू भाई उनके अलावा ऐसे दूसरे भी कई काम बताते हैं, जैसे-सिक्कों को मांजना, रंगोली पूरना, तकली चलाना, झाड़ना-बुहारना, बर्तन माँजना, कपड़े धोना, पढ़ना, लिखना आदि-आदि। घर में ये सब काम किए जा सकते हैं।

पंचम अध्याय

शिक्षा के विविध पक्षों पर गिजू भाई के विचार

शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न अंगों पर अपने विचार रखने के अतिरिक्त गिजू भाई ने शिक्षा से सम्बन्धित अन्य विविध पक्षों जैसे, परिवार-शिक्षा, कैशोर्य शिक्षा, नैतिक शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, सह शिक्षा, प्रकृति शिक्षा आदि विषयों पर भी स्वतंत्र रूप से चिंतन किया है। इन्हीं विविध पक्षों से सम्बन्धित उनके विचार निम्न प्रकार हैं :-

5.1 परिवार-शिक्षा

परिवार शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। बाल्यकाल में बालक पर सर्वाधिक प्रभाव माता-पिता तथा परिवार के सदस्यों का तथा उसके वातावरण का पड़ता है। शैशवस्था भावी जीवन का आधार-काल है। मानव-विकास की नींव शैशव है। जैसा शैशव वैसा युवक। आज के युवा-वर्ग की दुर्दशा के लिए वे स्वयं दोषी हैं अथवा उनके माता-पिता? गिजू भाई कहते हैं कि आज के युवक को कोई दोष न दें, दोष उनको दिया जाना चाहिए, जिन्होंने बालकों को सताया है, जिन्होंने बालकों की बढ़ती हुई शक्ति को रोका है, और जिन्होंने उनकी कल्पना और क्रिया के विकास के मार्ग में रोड़े अटकाए हैं। जो लोग अपने ही संकीर्ण और क्षुद्र स्वार्थ में और जीवन के गोरख-धंधों में उलझे रहे, जो बालक को समझे ही नहीं, वे लोग ही आज के पंगु युवक के, निःसत्व और निर्वीर्य युवक के निर्माता हैं, और इसी कारण वे आज के युवकों के द्रोही हैं। वे अपनी युवावस्था के चलते यौवन का आनंद लूटने में बालक के लालन-पालन को भूल गए। अपने यौवन के काव्य में रमकर वे बालक के भव्य काव्य को न तो समझ सके और न सुन ही सके। उन्होंने बालक के विकास में नहीं, उसकी माँ का विकास करने में अपनी सारी शक्ति खर्च कर दी। उसको देखते रहने में वे बालक को देखना भूल गए। उन्हीं ने हमको आज के युवक भेंट में दिये हैं, और आज के युवकों के जटिल प्रश्नों के लिए हम उन्हीं के आभारी हैं। अच्छा होता, यदि उन्होंने अपने बालकों की फिक्र की होती। उन्होंने अपनी जवानी के सुखों का उपभोग करते हुए भी बालक के सुख की खोज की होती, तो अच्छा रहता। अच्छा होता, यदि अपने सुखों की बलि देकर वे बालक के सुख के लिए खप गए होते। ऐसा हुआ तो, तो दुनिया बहुत पहले ही स्वर्ग की तरह सुखमय बन चुकी होती और बालकों के लालन-पालन की अथवा युवकों की अपनी एक भी समस्या शेष रही न होती। 'बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेय' गिजू भाई कहते हैं कि यह सब तो हो चुका है। अब किसको उलाहना दिया जाए और किसको न दिया जाए? सवाल यह है कि अब किया क्या जाए? कहाँ से शुरू किया जाए? कौन शुरू करें? परस्पर दोषारोपण में समय व ऊर्जा का अपव्यय करना उचित नहीं है। गिजू भाई

कहते हैं कि - हम बालकों से ही शुरू करें। बालकों के लालन-पालन से लेकर मनुष्यों के लालन-पालन का और उद्धार का काम अपने हाथ में लें। छोटी सुकुमार अवस्था में ही हम बाल-जीवन की सार-संभाल शुरू करें और बालक के विकास को संपूर्ण और शुद्ध रूप से गतिमान बनाएं। उनका मानना है कि इस दायित्व का निर्वहन निश्चिततः युवक ही करें। इस काम को वे युवक संभाले, जिनके घर में बालक हैं। वे युवतियाँ संभाले, जिनके घर में बालक हैं, माँ-बाप के रूप में युवक और युवती ही बच्चों के लालन-पालन के और उनके विकास के सच्चे अधिकारी हैं और सच्चे जिम्मेदार भी हैं।

स्त्री में कुदरत ने मातृ-प्रेम दिया है। इस प्रेम से अधिकांश बालक विकास करके बड़े होते हैं। इस प्रेम की सुरक्षा की जानी चाहिए। शिक्षण की व्यवस्था अगर हम अपने हाथ में ले लें, तब भी इसी प्रेम को माध्यम बनाना होगा। इस प्रेम को अलबत्ता अधिक अच्छा, अधिक बलवान, अधिक व्यापक बनाने में हम स्त्री की सहायता करें।

गिजू भाई कहते हैं कि आज स्त्रियाँ बालकों को पीटती हैं, हमारे नये शैक्षिक-विचारों का विरोध करती दिखती हैं। इसके अनेक कारणों में से एक कारण यह है कि उनके समक्ष कोई और आदर्श नहीं है।

जितनी कमियाँ और उपेक्षा हमारे गृहस्थाश्रम धर्म में होंगी उतनी ही अव्यवस्था और उपेक्षा हमारे घर में, बालकों के लालन-पालन में और स्वयं स्त्री में आ जाएगी। स्त्रियाँ गृह-जीवन की शांति, सुख व प्रेम आदि चाहती हैं। अगर ये तत्त्व उन्हें मिल जाएं तो वे बिना किसी विरोध के बाल-विकास का काम संभाल लेती हैं। पर अगर हम उनसे कहें कि 'हम तुम्हें चाहते हैं। यह काम तुम करो और इसके लिए तुम अपने-आपको योग्य बनाओ' तो अगर वे विरोध न करेंगी, तो संतुष्ट भी नहीं होगी। अतः पुरुषों को इस प्रवृत्ति का ऐसा प्रबंध करना चाहिए कि स्त्री यह मानकर चले कि गृह-जीवन के लिए यह प्रवृत्ति अनिवार्य है और यही गृह-सुधार का आधार है। जब हमारी प्रवृत्ति में स्त्री का विकास नहीं होता, तो वह जबरदस्त मुश्किलें पैदा कर देती है।

वास्तविकता है और प्रेम इस वास्तविकता में अपना स्थान मांगता है। प्रेम स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों से जुड़ा रहता है। जिस तरह से शरीर और आत्मा से जुड़े रहकर जीवन आगे बढ़ता है, वैसे ही प्रेम आगे बढ़ना चाहता है। प्रेम न आग्रही है, न निराग्रही। उसका स्वयं का बल है, जो बहुत प्रखर है। उसके द्वारा हम अपना दर्द औरों को कह सकते हैं। पत्नी बालकों का तभी उत्तम रीति से लालन-पालन करेगी, जब उसे अपने पर पति का प्रेम बरसता हुआ प्रतीत होगा, याने जब वह उसके प्रेम को अनुभव करेगी।

गिजू भाई इसे स्वीकार करते हैं कि पत्नी जिस गलत ढंग से बालक को संभालती है उससे हमारा विरोध है। पर वह मात्र विरोध है, क्रोध नहीं। विरोध का मतलब यह नहीं कि दिनभर हम 'तुझे कोई अता-पता नहीं, तुझे कुछ नहीं आता-जाता' कहें, यह बात गलत है। विरोध का यह मतलब भी नहीं कि अनादर और उपेक्षा की वृत्ति अपना लें। विरोध को बाहर व्यक्त करने के बजाय हमें अन्दर अंत:करण में व्यक्त करना चाहिए। अगर हालात को बदलने के लिए किसी से लड़ेंगे-झगड़ेंगे, तो जाहिर है हम दु:खी ही होंगे। मौन अन्दर के दु:ख को तीव्रता से अनुभव कराता है। पर ऊपर से प्रसन्न रहना चाहिए, बालकों को हमेशा खुश रखना चाहिए वातावरण को प्रेम से भरने का श्रम करना चाहिए, भले ही भीतर का अंत:करण दुखी होता हो। पत्नी को प्रेम से भिगोना चाहिए तथा उसके प्रति कोमलता दिखानी चाहिए। साथ-ही-साथ ईश्वर से भी विनती करते रहना चाहिए। बालक के कल्याण की बात सोचकर पति को पत्नी के अधिक समीप जाना चाहिए और जब बाहर के तमाम साधारण उपायों को आजमाने पर रास्ता न मिले, तो ईश्वर का स्मरण करके नम्रतापूर्वक समाधान के मार्ग की याचना करनी चाहिए। अगर बालकों के प्रति हमारा प्रेम निर्मल होगा, तो ईश्वर समाधान का रास्ता निकालेगा।[1]

गिजू भाई कहते हैं कि पूर्वी देशों की महिलाओं को फकत आभूषण की तरह घर में बैठे रहना और स्त्रीत्व धर्म का पालन करना सिखाया जाता है, इससे स्पष्ट पता लगता है कि पुरुष समस्त काम खुद अकेले करना चाहता है। वह अपना काम भी करता है और स्त्री का काम भी करता है। इसका परिणाम अनिष्टकारी होता है। स्त्री का प्राकृतिक बल और उसकी प्रवृत्ति करने की शक्ति गुलामी की बेड़ों में जकड़कर सड़ जाती है। स्त्री का भरण-पोषण किया जाता है और उसकी ताबेदारी उठाई जाती है। यही नहीं, ऐसा करके उसे मानव के रूप में जो व्यक्तित्व मिला है, उसका उपहास करके उसे कमजोर बनाया जाता है। मानव के बतौर मिलने वाले उसके हकों को छीन लिया जाता है। समाज में उसका व्यक्तित्व शून्य मात्र रह जाता है। जीवन को बचाने के लिए या उसकी सुरक्षा के लिए जिन-जिन शक्तियों की जरूरत पड़ती है उन तमाम शक्तियों का स्त्रियों को गुलाम रखकर ह्रास कर दिया जाता है।

जो माता अपने बेटे को अपने-आप चम्मच पकड़कर खाने के बजाय स्वयं चम्मच पकड़कर खिलाती हैं, और जो माता और कुछ नहीं तो स्वयं खाकर नहीं समझाती कि कैसे खाए बल्कि जो जानबूझकर ग्रास देती है, गिजू भाई की दृष्टि में वह सच्ची माता नहीं है। ऐसी माता अपने बालक की स्वाभाविक स्वतंत्रता और मनुष्य की महत्ता का अपमान करती है। ऐसी माता प्रकृति द्वारा उसकी गोद में सौंपे गये एक मनुष्य को पुतला समझकर प्रकृति की अवमानना करती है।[2]

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 53-56

2- गिजू भाई बधेका -मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 31-32

माता-पिता दोनों को ही बालक की परवरिश पर ध्यान देना चाहिए। गिजू भाई की दृष्टि में वह बालक अनाथ बालक है, जिसके पिता के नौकर बालक को धमकाते और मारते-पीटते हैं। वह बालक अनाथ बालक है, जिसके माँ-बाप इस बात का ध्यान ही नहीं रखते कि बालक कहाँ है और क्या करता है? वह बालक अनाथ बालक है, जिसको फोड़े-फुन्सी हुए हों, कान में से पीव बहता हो, दाँत सड़ रहे हों, सिर में जूँ पड़ी हो, फिर भी जिसको कोई दवाखाने न ले जाता हो। वह बालक अनाथ बालक है, भूख लगने पर भी जिसको भोजन कराने के लिए भोजन बनाने वाली अपने आलस्य के कारण उठती नहीं है। वह बालक अनाथ बालक है, जिसके माता-पिता पास में पैसा होने पर भी उसको उसकी जरूरत की चीजें देते नहीं हैं। वह बालक अनाथ बालक है, जिसके नौकर या आया तय करते हैं कि उसको क्या पहनना है और क्या नहीं पहनना है। वह बालक अनाथ बालक है, जिसको अपने माता-पिता के मित्रों के सामने, उनको खुश करने के लिए, गाना अथवा नाचना पड़ता है।[1]

विवाह पूर्व तैयारी:- पति-पत्नी की कलह और परिवार का विघटन वर्तमान में एक सामान्य परिघटना होती जा रही है। पति-पत्नी विवाह तय करने वालों अर्थात माता-पिता के मत्थे सारा दोष मढ़ देते हैं। गिजू भाई कहते हैं कि आज तक सारा दोष रूढ़ियों के मत्थे मढ़कर युवकों और युवतियों ने विवाह-व्यवस्था से लाभ उठाया है। यदि अब वे प्रेम के नाम पर झटपट ब्याह कर लेने की रूढ़ि को ही अपनायेंगे, तो वे आत्म-वंचना ही करेंगे और उनको इसके फल भोगने होंगे। उनके अनुसार स्त्री-पुरुष दोनों को अपने ब्याह के पहले ब्याह की तैयारी के काम में जुट जाना चाहिए। उनको समझ लेना होगा कि बालक उनके प्रेम का परिणाम और परिपाक होगा। बालक के लालन-पालन और पोषण-संवर्धन में उनको अपना सारा जीवन खपा देना होगा। जीवन को यज्ञ मानकर चलना होगा। प्रेम के माध्यम से बालक की सेवा को उत्सव का रूप देना होगा। इन सब बातों को समझ लेने के बाद ही उनको वैवाहिक जीवन की दिशा में कदम रखने होंगे।

गिजू भाई का मत है कि आज तो विवाह कुहरे में कदम रखने के ढंग का एक काम है। अशुद्ध-शुद्ध भावना और छिपाए गए स्वार्थों से प्रेरित होकर युवक और युवतियाँ प्रेम के नाम पर ब्याह की जिस गांठ से बँधते हैं, वह गाँठ कल ढीली करने या तोड़ने के लिए होती है। ब्याह की गाँठ के बंधन दृढ़ रहे और यह दृढ़ता भावी पीढ़ी के संवर्धन और संस्कार के काम में खर्च हो, इसकी कल्पना कुछ ही लोगों को रहती है, और इसकी परवाह तो किसी को रहती ही नहीं।

वह यह जरूरी मानते हैं कि ब्याह करने से पहले युवक चेतें। स्वयं अपना भरण-पोषण करने में समर्थ होने पर भी चेतें। दोनों स्वस्थ, सशक्त और वयस्क होने पर भी चेतें। दोनों ब्याह तभी करें, जब वे बालकों का लालन-पालन करने योग्य बन जाएं, जब बाल-संगोपन की दृष्टि से वे अपने मन

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 91

को व अपनी बुद्धि को तैयार कर लें। गिजू भाई कहते हैं कि आज बालक का जन्म एक आकस्मिक घटना-सा लगता है। नासमझ स्त्री-पुरुष को बालक अपने दाम्पत्य जीवन में विघ्न-रूप प्रतीत होते हैं। इसीलिए वे उनको अपने से दूर रखना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि बालक उनके बीच आएँ। वे बालक की कीमत को समझते ही नहीं और समझना चाहते भी नहीं। दो बच्चों का छोटा परिवार भी आज के युवक-युवती के लिए बहुत कष्टप्रद बन गया है। जी का जंजाल-सा बन गया है।

लेकिन उनकी दृष्टि में बालकों का जन्म कोई आकस्मिक घटना नहीं है। जिस हद तक ब्याह एक आकस्मिक घटना है, उसी हद तक बालकों का जन्म भी आकस्मिक घटना कहा जा सकता है। अनजाने ही क्यों न हो, किन्तु बालक प्रकृति के सहज प्रेम और प्रेरणा की अनमोल देन है। दुनिया के सभी समझदार लोगों ने और माता-पिताओं ने इस ईश्वरीय देन को प्यार के साथ अपनाया है। फिर भी आज के युवक इससे घबराते हैं। अपनी शिक्षा-दीक्षा के कारण और समाज और धर्म के क्षेत्र में बने विचित्र वातावरण के कारण, वे बालकों को बोझ-रूपी मानने लगे हैं। इसके फलस्वरूप वे अपने बालकों के साथ अधोगति की दिशा में बढ़ते जा रहे हैं।

गिजू भाई का मानना है कि जहाँ-तहाँ से बटोरे हुए झूठे-सच्चे आदर्शों की खिचड़ी पकाकर खाने वाले माता-पिता अपने ही हृदयों को स्वयं पहचान नहीं पाते। वे अपने ही जीवन को संभाल लेने में लापरवाही बरतते हैं। वे खुद ही अपने-आपको धिक्कारते हैं। खुद ही अपने बालकों की निन्दा करते हैं, उनको डांटते-फटकारते हैं, उनसे झगड़ते हैं और कभी-कभी यह भी यह बैठते हैं कि हाय राम अब इनसे छुटकारा कैसे पाया जाए? वे बालक को अपने काका, दादा, या माता-पिता के हवाले करके सैर-सपाटे के लिए, घूमने-फिरने के लिए, मौज-मस्ती करने के लिए, पढ़ने और नाचने-कूदने के लिए घर के बाहर निकलना चाहते हैं और इन सब कामों के लिए छटपटाते रहते हैं। किन्तु बालक कुंकुम् के पदचिन्हों के साथ घर में लक्ष्मी लेकर आए हैं। अपनी तोतली बोली के साथ वे जीवन-शास्त्र, शिक्षा-शास्त्र और प्रेममय जीवन की साक्षी बनकर आए हैं। इन सब बातों को देखने और समझने के बदले आज के युवक और आज की युवतियाँ उपन्यासों, नाटकों और सिनेमा घरों में आनंद को खोजती हैं। वे भाषणों, सभाओं और सम्मेलनों में सम्मिलित होती है और दावतों में हाजिर रहने के लिए भाग-दौड़ करती रहती है और बालक बार-बार उनकी इन गतिविधियों में बाधक बनते हैं। इस स्थिति पर गिजू भाई की यह अति-संक्षिप्त टिप्पणी ही उनके हृदय की व्यथा स्वत: स्पष्ट कर देती है। उनके शब्द हैं - "अभागे माता-पिताओं के अभागे बालक।"

गिजू भाई वैवाहिक जीवन को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं। इसकी महत्ता स्वीकार करते हुए उनका मानना है कि ऐसे जीवन के लिए तैयारी आवश्यक है और यह तैयारी स्त्री अथवा पुरुष को

कर लेनी चाहिए। विवाह-संस्था की सदस्यता स्वीकार करने वाले इसकी अवगणना कर नहीं पायेंगे। बाह्य रूप में अवगणना करके आखिर वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने वाले गलती के साथ पाप भी करेंगे। मन में नि:संतान रहने की अभिलाषा रखकर कृत्रिम रीति से गृहस्थाश्रम चलाने वालों को अंत में बालकों के लिए तरसना पड़ेगा और जब कृत्रिमता के प्रायश्चित के रूप में उनको वंध्यत्व प्राप्त होगा, तब वे अपने को ही शाप देंगे।

गिजू भाई अपेक्षा रखते हैं कि इस स्थिति के आने से पहले ही हरेक युवक और युवती को चाहिए कि जिस तरह वे शरीर-शास्त्र का, इतिहास, भूगोल, पाक-शास्त्र और आभूषण-कला आदि का परिचय प्राप्त कर लेते हैं, उसी तरह वे बालकों के लालन-पालन की विधि का और शिक्षा-शास्त्र का भी ज्ञान प्राप्त कर लें। वे यह स्वीकार करते हैं कि कई लोग इसमें शर्म महसूस करते हैं, लेकिन वह झूठी शर्म है। जिस तरह आगे किसी के बीमार पड़ने का ध्यान रखकर नर्स का काम सीखने में शर्म नहीं है, जिस तरह आगे कभी काम आने वाली कोई विद्या सीखने में शर्म नहीं है, उसी तरह बाल-संगोपन की विद्या सीख लेने में कोई शर्म नहीं होनी चाहिए। किसी भी युवक या युवती को माता-पिता बनने के लिए क्या तैयारी करनी होगी? क्या-क्या पढ़ लेना होगा? घर कैसे तैयार करना होगा? खुद अपने को, अपने शरीर को और मन को किस तरह तैयार कर लेना होगा? और अंत में, अपने आसपास का सारा वातावरण कैसा बना लेना होगा? इन सब बातों पर भी विचार करना गिजू भाई की दृष्टि में अत्यावश्यक है। उनका मानना है कि हम वैवाहिक के सामान्य कार्यों के लिए भी जब पूर्व तैयारी करना जरूरी मानते हैं तो बालक के जन्म जैसी महत्वपूर्ण घटना की पूर्व तैयारी के प्रति क्यों उदासीन रहे। वे कहते हैं कि जब हमारे घर में कोई मेहमान आता है तो उसके लिए हम थोड़ी जरूरी तैयारी कर लेते हैं। यह तैयारी तात्कालिक ही होती है। इसमें किसी को कोई आपत्ति भी नहीं होती। लेकिन हमारे घर में जो स्थायी मेहमान आने वाला है, उसके लिए तो हमको लंबी और स्थायी तैयारी की आवश्यकता होती है। यह तैयारी हमको सोच-समझकर, सम्मानपूर्वक करनी चाहिए। यह मेहमान हमारा एक अंग है, हमारे वंश की बेल को बढ़ाने वाला है, हमारे कुल का दीपक है, यह मनुष्य-जाति के पुनीत पदचिन्हों को अनंत विकास की दिशा में आगे बढ़ाने वाला एक व्यक्ति है। हमें इन सब बातों का ध्यान रहना चाहिए और इसके लिए हमारी तैयारी भी भव्य होनी चाहिए। उनका मानना है कि हरेक युवक और युवती और कुछ नहीं तो कम-से-कम यह सोचकर ही अपने शरीर को स्वस्थ और सुदृढ़ बना लें कि यही शरीर फिर उसके घर में जन्म लेने वाला है। माता-पिता का शारीरिक स्वास्थ्य जैसे होगा, बालक भी वैसे ही बनेंगे। यही नहीं, बल्कि शारीरिक स्वास्थ्य से सुखी माता-पिता ही अपने बालकों की अच्छी सार-संभाल कर सकेंगे और खुद भी बालकों के सुख

का आनंद लूट सकेंगे। आज की स्वस्थ और दुर्बल माताओं के लिए बालक भार-रूप और दु:ख-रूप बन जाते हैं। भले ही हम इस दु:ख से दु:खी हो लें, लेकिन इस दु:ख के लिए जिम्मेदार तो माता-पिता ही हैं।

गिजू भाई उम्मीद रखते हैं कि अपना वैवाहिक जीवन शुरू करने के बाद भी माता-पिता अपने शरीर को संभाल कर शारीरिक सुखों का उपयोग करेंगे, तो वे बालक के लिए आशीर्वाद-रूप बन सकेंगे। जो अपनी प्राण-शक्ति को बिना सोचे-समझे अधिक खर्च करते रहेंगे, या बर्बाद कर डालेंगे, उनको अपने जीवन के आनंदपूर्ण दिन कम कर लेने होंगे। सुख का उपयोग करने के लिए भी सुख का संयमित उपयोग आवश्यक है। गिजू भाई के मतानुसार बालक-रूपी अतिथि का स्वागत करने के लिए हमको अपने मन में भी तैयार होना चाहिए। हमको यह जान लेना चाहिए कि छोटे बालक की खुराक क्या हो सकती है, उसके दाँत आने लगें या वह बीमार पड़े तो हमको तात्कालिक उपाय क्या करने होंगे? बालक के बोलना सीखने का समय कब आता है और उस समय हम किस तरह उसकी मदद कर सकते हैं, अपना विकास करने की उसकी रीति क्या है, और उस रीति में हम उसको कितना संरक्षण दे सकते हैं, किस हद तक उसकी मदद कर सकते हैं आदि-आदि। वे कहते हैं कि हमको जानना चाहिए कि बालक की अपनी शक्ति क्या है, उसको किस प्रकार के शिक्षण की आवश्यकता है और वह अपने मन का कैसा विकास चाहता है? हमको जान लेना चाहिए कि बालक की कल्पना-शक्ति, क्रिया-शक्ति, प्रेरणा और स्वयं चेतना आदि की स्थिति क्या है और कैसी है? हमको यह सब जानना होगा। लोग इसको मानस-शास्त्र कहते हैं। इस मानस-शास्त्र के बाल-शिक्षा सम्बन्धी सामान्य सिद्धान्तों का ज्ञान हर एक माता-पिता को प्राप्त कर ही लेना है। इसके लिए उनको इस विषय की पुस्तकें पढ़नी चाहिए। बालकों के पालन-पोषण में लगे विद्यालयों और परिवारों में जाकर सब-कुछ देखना-समझना चाहिए। गिजू भाई सावधान करते हुए कहते हैं कि माता-पिताओं को बालकों के बारे में फैली हुई अनेक गलत धारणाओं को शुद्ध कर लेना होगा। अगर नई पीढ़ी के युवक और युवतियाँ भी पुराने अंधविश्वासों और तौर-तरीकों के बीच ही अपने बालकों का पालन-पोषण करेंगी, तो इस दुनिया के लिए आगे बढ़ने की कोई आशा नहीं रह जायेगी। युवक और युवती अपने को प्रगतिशील मानते भी होंगे, तो भी उनका यह भ्रम लंबे समय तक टिक नहीं सकेगा।

बालक के पालन-पोषण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका माता की होती है। माँ बनने के बाद तो स्त्री को अपना सम्पूर्ण कर्तव्य बालक के विकास में लगाना होता है इसी में स्वयं की तथा जनता की महान् सेवा है, इसी में जीवनदर्शन के महान् पाठ पढ़ने को मिलते हैं और प्रति-पल बालक से जीवन धर्म का पाठ बराबर सुनने को मिलता है। गिजू भाई कहते हैं कि माँ बनने से पहले स्त्री को

बालकों के लालन-पालन और संस्कार-शिक्षा का पाठ नहीं पढ़ाया जाता, अतएव घर में बच्चे के जन्म लेने के वक्त वह एकाएक खिन्न हो जाती है, उसका मिजाज बदल जाता है फलतः बच्चे को नुकसान पहुंचता है। इसके लिए माता को अपना स्वभाव काबू में रखने की जरूरत है। पति-पत्नी को झगड़ा करने की बजाय इस बात का पता लगाने की जरूरत है कि बालक का पालन-पोषण कैसे किया जाए? बालक माँ-बाप के पुण्य-प्रेम का सार होता है। अतः माता-पिताओं को माँ-बाप बनने के बाद का जीवन बालक के इर्द-गिर्द व्यतीत करना चाहिए।[1]

गिजू भाई की मान्यता है कि महान प्रतिभाओं व विभूतियों को, ऐसी विभूतियों को जिन पर मानव समाज गर्व करता है, जन्म देना माता-पिता पर निर्भर है, बशर्ते वे इस ओर तत्पर हों। इस विषय में उनके ये शब्द स्मरणीय हैं - "बालक, जो हमारे लाड़ले और मंहगे मेहमान हैं, हम से सच्ची स्वतंत्रता की, सहानुभूति-युक्त सहायता की और बाल-विकास से सम्बन्धित प्रयोग-सिद्ध ज्ञान की आशा रखते हैं। हम अपने को इसके लिए तैयार कर लें। जब अपनी ऐसी तैयारी के साथ हम बालकों के आगमन के लायक बनकर उनके स्वागत के लिए उनकी बाट देखते हुए खड़े रहेंगे, तो निश्चय ही हमारे घरों में विभूतियाँ जन्म लेंगी, हमारे वातावरण में वे अपना अद्‌भुत विकास करेंगी और हमारा और हमारे समय की दुनिया का कल्याण करेंगी। तभी हम अपनी जवानी की, अपने गृहस्थ-जीवन की, और अपनी गृहस्थी के सुख की धन्यता को समझ सकेंगे।"

5.2 कैशोर्य-शिक्षा

मनुष्य के जीवन में वह अवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है जब किशोर किशोर न रहकर युवा बन जाता है। युवावस्था में मनुष्य पर जो छाप अंकित होती है तथा जीवन के जो आदर्श निर्मित होते हैं, वह छाप और वे आदर्श जीवनपर्यन्त नहीं मिटते। मनुष्य की यह अवस्था अत्यन्त चंचल अवस्था मानी जाती है। इस अवस्था को जो मनुष्य काबू में रखते हुए अपनी जिन्दगी की नाव को किसी चट्टान से टकराये बगैर सीधे-सीधे महासागर में ले जाता है, वह विजयी होता है, ऐसी मान्यता है और अनुभव है। गिजू भाई के अनुसार सहवास, स्वाध्याय, गीतश्रवण, कथाश्रवण, नाटक-दर्शन और भवाई-दर्शन आदि इस अवस्था में मनुष्य के जीवन निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। युवावस्था इन्द्रियों एवं मन के वेग में प्रबल बाढ़ की सी अवस्था है।

इस अवस्था में बालक को प्रबल एवं स्पष्ट रूप से अपने यौन का ज्ञान हो जाता है। वह पुरुष है या स्त्री, इस बात का स्पष्टतापूर्वक उसके मस्तिष्क में आविर्भाव होता है। यौन-ज्ञान का प्रारम्भ होते ही वह स्वयं को दूसरों से अलग मानने लगता है। उसे अन्य यौन का व्यक्ति अपने से इतना अधिक भिन्न लगता है कि उस यौन से सम्बन्धित विचार उसके मन में अधिक से अधिक भिन्न

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 63

लगता है कि उस यौन से सम्बन्धि विचार उसके मन में अधिक से अधिक घुलते रहते हैं। बस तभी से वह अन्य यौन में रूचि लेने लगता है, उसमें उसे मोह पैदा होने लगता है, वह उनके रहस्यों-मर्मों को जानने की कोशिश करने लगता है। वह इस तलाश में लग जाता है कि उस यौन का उसके साथ क्या सम्बन्ध है, वह यौन उसके विकास में तथा उसके हार्दिक भावों को संतुष्ट करने में कैसा स्थान रखता है? इस प्रकार की मानसिक वृत्ति को सामान्यतया प्रेमवृत्ति कहते हैं। युवावस्था प्रेम की अवस्था है। जिस प्रकार माता के स्तनपान और प्रेम से बाल्यावस्था में पोषण मिलता है वैसे ही युवावस्था में जीवन-साथी बनने की योग्यता वाले तथा माता के जैसे पवित्र प्यार की भेंट देने वाले व्यक्ति की अपेक्षा रहती है। इस अपेक्षा की सांत्वना सन्मार्ग की ओर ले जाती है, इस अवस्था का मनुष्य माता की ही भांति अपने प्रेमी व्यक्ति का निर्दोष प्रेम प्राप्त कर सकता है, अतः शिक्षकों, माता-पिता एवं गुरूजनों को ध्यान देने की आवश्यकता है। गिजू भाई का मत है कि अन्य यौन के बारे में विचार करने का सम्पूर्ण प्रदेश कल्पना का है। कल्पना के इस प्रदेश में हम सब कमोबेश भटक चुके हैं। आज हम समझदारी की उस अवस्था का अध्ययन करें तो हमें लगेगा कि उस काल का हमारा भ्रमण मोहक और आनन्ददायी होते हुए भी कितना अधिक मार्ग से बाहर का था। माता-पिता अपने अनुभव से, शिक्षक अपने निखालिस सम्पर्क-संसर्ग से तथा साहित्य अपने उदात्त भंडार से युवकों को सन्मार्ग की ओर नहीं खींचेंगे तो अनेक युवक-युवतियों को भटक-भटककर मर मिटने का दुर्भाग्य हम लोगों को सहन करना पड़ेगा, सरस्वतीचन्द्र और कुमुद जैसे कितने ही मनुष्यों की हमें बलि देनी पड़ेगी।

गिजू भाई की दृष्टि में अमुक उम्र में जो विकास स्वाभाविक है, उसे विकार मानते हुए दबाने का प्रयास करना गलत ही नहीं, नुकसानदायी भी है। अनिष्ट प्रेम के भय से शुद्ध प्रेम को रोकने का प्रयत्न करेंगे तो शुद्ध प्रेम भी अशुद्ध बन जाएगा, यह विचारणीय बात है। भूख को मिटाने का उपाय उपवास नहीं, पौष्टिक भोजन है। इसी प्रकार स्वाभाविक आकांक्षा को तृप्त करने का उपाय आकांक्षा की उचित परितृप्ति में निहित है। जब मनुष्य ऐसी तृप्ति से विहीन रहता है तब अनिष्ट जैसे आचरण और परिणामस्वरूप भयंकर रोग फूट निकलते हैं। प्रेमकथाएं एक प्रकार से पौष्टिक आहार का काम करती हैं। उद्दाम लहू में बहने वाला प्रेम-निर्झर ऐसी कथाओं से व्यवस्थित होकर अमृतमयी नदी बन जाता है, पर अगर उस निर्झर को रोकने का प्रयत्न किया जाएगा तो वह रिक्त प्रदेश में एक विशाल नद की भांति फैल जाएगा ओर सभी कुछ डुबो देगा। इस सम्बन्ध में वे एक स्विस महिला के विचार उद्धृत करते हैं। वे लिखती हैं : "ऐसे समय में जबकि विश्व-पुरानी भावनाओं को सबसे पहले उभारा जाता हो, वह (लेखिका) प्रेमकथाओं की हिमायत करती है – ऐसी प्रेमकथाएं, जो अपनी प्रकृति में

शुद्ध और आदर्शों में उच्च हों। हम न तो मानव-प्रकृति को बदल सकते हैं और न किसी सोलह वर्षीय किशोर को उस कुँवारी लड़की के चुम्बकीय आकर्षण से मोहित होने से रोक सकते हैं, जो उसकी नजरों में सुन्दर हो। हाँ, हम उसे एक आदर्श जरूर दे सकते हैं, जिससे उसकी भावनाएं दूषित होने के स्थान पर उदात्त बन सकें। हम किसी कन्या के दिल में कविता और आदर्श जगा सकते हैं जिससे वह अपने सपनों के राजकुमार के योग्य बनी रह सके और यह काम हम साहित्य के माध्यम से कर सकते हैं। इसके बजाय कि हम उसे बिना किसी निर्देशन के भटकने दें या जो कुछ भी हाथ लगे, पढ़ने दें अथवा उसके पास हर समय एक सेंसर बोर्ड की तरह बैठकर वर्जित चीजों से उसे चौकस करते रहें (जो कि लुभाती हैं), हमें चाहिए कि उसे प्रसन्नतादायक और हितकारी साहित्य की तरफ ले जाएं। ऐसे साहित्य की कोई कमी नहीं है।"

गिजू भाई मानते हैं कि जिन-जिन शालाओं में सहशिक्षा की व्यवस्था है उन-उन शालाओं में ऐसी कल्पित कथाओं की जरूरत कम है। जहाँ जीवन्त प्रेम की गुंजाइश है वहाँ कल्पित प्रेम की कहानियों को स्थान नहीं। सहशिक्षा में जिस शुद्ध प्रेम की अपेक्षा है, उसके बारे में वे आगे चर्चा करते है।[1]

हमारे समाज को अनेक प्रश्न बेचैन करते हैं। गिजू भाई कहते हैं कि उनका समाधान ढूँढ़ने के लिए हम भगीरथ भी करते हैं, पर वे अनुत्तरित, अन-सुलझे रह जाते हैं। कभी धर्म-ग्रन्थ के पन्ने पलटकर देखते हैं, कभी समाजशास्त्र को उलटते-पलटते हैं, लेकिन प्रत्येक प्रयत्न के बाद भी उलझन घटती नहीं, बढ़ती जाती है। स्थापित धार्मिक एवं सामाजिक रुढ़ियाँ कहती हैं कि जातिगत बंधन उचित हैं, वैवाहिक बंधन आवश्यक हैं। लेकिन उनके वर्तमान परिणामों से जीवन निष्फल व असह्य बन जाता है। कठिनाइयां दूर नहीं होती। लोग कई रास्ते बताते हैं पर निराशा उन रास्तों से कहीं अधिक है। ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न का समाधान तो तभी संभव है जब मनुष्य स्वभाव को, उसकी आंतरिक मनोवृत्ति और आंतरिक क्षुधा को जाना जाए और उसे तृप्त करने का ऐसा प्रबंध किया जाए कि जो व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए उपादेय सिद्ध हो। यह प्रबंध स्वयंवर रचने में, कन्या की पसंद से वर चुनने में या किसी मध्यस्थ द्वारा वर-वधू के गुण-दोष तय करके उन्हें थोपने में नहीं। यह प्रबंध मनुष्य की भावनाओं को देखकर किया जाता है कि वह विवाह के योग्य है अथवा नहीं, अगर है तो किसके साथ उसका योग सफल रहेगा। पर इसके लिए तो मनुष्य को जन्म से ही देखा जाना चाहिए। स्नेह संबंधों को विकासमान स्थिति में रखकर जाति-जाति के दर्मियान आकर्षण, समान व्यसन, आदर्श आदि की खोज की जानी चाहिए और तदुपरांत सहकार, सहजीवन की स्वयंभू-वृत्ति में से लग्न-संबंध उद्भूत होना चाहिए। वैवाहिक जीवन में हम समर्पण और निरन्तरता की अपेक्षा रखते हैं,

---

1- गिजू भाई बधेका - कथा कहानी का शास्त्र, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 50-51

लेकिन जब संबंधों की रचना ही स्वाभाविक मिलन की आवश्यकता पर नहीं तो जाहिर है कि अलग-अलग तरह से उसमें विकृतियां आ जाती हैं। स्वाभाविक मिलन का आधार गिजू भाई के अनुसार 'व्यतिषजति पदार्थान् आंतर: कोऽपि हेतु:' या 'मनोहि जन्मांतर संगतिज्ञ' अर्थात् नैसर्गिक आकर्षण याने प्रेम है। ऐसा प्रेम स्वत: समर्पित होता है। इसमें स्वाभाविक निरंतरता होती है। इसी में मानव-जीवन का उद्धारक बल निहित रहता है। उनका सुझाव है कि यह सब पता लगाने के लिए बालकों को स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए। निर्दोष स्नेह-संबंधों में से उनके जीवन-सम्बन्धों को पहचान कर उन पर वैवाहिक-जीवन की रचना करनी पड़ेगी। गिजू भाई एक घटना का उल्लेख करते हैं कि - मेरे अनुभव में दो बालकों के परस्पर आकर्षण की छाप सुदृढ़ है। मुझे पता न था कि ऊपर से रूप में असमान होने पर भी वे भीतर से एक-दूसरे के पूर्णत: पूरक होंगे। मुझे लगा कि वे एक-दूसरे की प्रवृत्ति के लिए घातक हैं अत: उन्हें अलगाने के लिए मैंने एक हजार एक प्रयत्न किये, पर परिणामस्वरूप वे तो प्रच्छन्न रूप से अंदर और बाहर से परस्पर और ज्यादा समीप आने लगे। मुझे लगा कि वैसा करके मैं तो उन्हें समीप लाने में और अधिक मदद करने लगा था। जब तक वे कक्षा से बाहर नहीं चले जाते तब तक मेरे चंगुल से छूटने के लिए आँखों के इशारों द्वारा संदेश पहुंचाने का प्रपंच रचने लगे। मैं समझ गया कि ये तो गए हाथ से। उन दोनों की आत्मा के स्वाभाविक आकर्षण के मध्य आकर मैं उन्हें क्या सिखा सकता था? चित्रकारी करने या किताब पढ़ने या गणित के हिसाब करने की दिखावटी तरकीब के नीचे वे तो मिलने की युक्तियां-प्रयुक्तियां रचते थे। मुझे एकाएक सूझा कि ये तो पुराने सम्बन्धी हैं। रूप-गुण की दृष्टि से असमानता तो हमारे ख्याल से है, अपनी दृष्टि से तो वे एक-दूसरे के लिए लैला-मजनूं से भी बढ़कर हैं। मैंने अपने मित्रों से कहा, 'चलो, तुम्हें दिखाऊँ, वैवाहिक-जीवन की सफलता का गहन रहस्य।'

इस तरह से शिक्षक, समाज, विद्यार्थीगत धर्म आदि सबों के सामने तन कर एक हो जाने वाले बिरले ही उदाहरण हैं। गिजू भाई की मान्यता है कि अगर बच्चों के माता-पिता उनके पारस्परिक आकर्षण से जोड़ी रचने का काम हमें सौंप दें तो समाज के अनेक दु:ख मिट जाएँ। उनके ही शब्दों में "मैंने बालकों को मैत्रीपूर्ण जीवन-यापन की साधना का अवसर प्रदान किया। आज वे टेबिलों को सटाकर पास-पास बैठते हैं। अलग-अलग पेंसिल देता हूँ तो वे सबों को मिला देते हैं। एक बालक पेंसिल की नोंक निकालता है और दूसरा चित्र बनाता है। अगर जाति-अनुकूल भिन्न प्रवृत्तियाँ करते हैं तो वहाँ भी साथ ही काम करते हैं। भाई पढ़ता है, तो बहन गीत गाती-गाती चित्र बनाती है। किसी भाई का नापसंद चेहरा बहन को प्रिय लगता है और किसी बहन का कर्णकटु राग भाई को प्रिय लगता है। झाड़ने-बुहारने, साफ-सफाई व अन्य कार्यों में वे यथा-संभव साझेदारी रखते हैं, लड़ने के लिए

भी साझे की छड़ी रखते हैं। काम करते-करते कभी-कभार थकान उतारने को लड़ भी लेते हैं। वे कदाचित हमें देख लें तो हंस पड़ते हैं। वे प्रसन्न रहते हैं। अब से तो वे 'गिजू भाई' पर भी नाराज नहीं होते। उन्हें सह-जीवन की छूट होने के कारण वे अब बहाना भी नहीं करते और यथा-मति, यथा-शक्ति अपना विकास किये चलते हैं। पाबंदियों और स्वस्थ प्रवृत्तियों के अभाव से इस आयु के बालक जिन अनेक निम्न-स्तरीय प्रवृत्तियों की तरफ झुक जाते हैं, उस तरफ ये बालक न मुड़कर स्वस्थ जीवन बिताते हैं। इस स्थिति में गिजू भाई को सामाजिक वैवाहिक संबंधों की समस्याओं का समाधान नजर आता है। इसके लिए स्वतंत्रता की हिमायत करने वाली मदाम मॉण्टेसरी का वे अपार उपकार मानते हैं।"[1]

5.3 नैतिक शिक्षा

नैतिक शिक्षा पर भी गिजू भाई स्वतंत्र व निष्पक्ष चिंतन करते हैं तथा बेबाक तरीके से अपने विचार व्यक्त करते हैं। गिजू भाई 1898 की एक घटना का उल्लेख करते हैं। इटली के टूरीन गाँव में शिक्षाशास्त्रियों का सम्मेलन आयोजित हुआ था। वहाँ धुरंधर शिक्षाविद इकट्ठे हुए थे। सम्मेलन का उद्घाटन सत्र बड़ी ही धूमधाम से चल रहा था। पहले ही दिन 'नैतिक शिक्षा कैसे प्रदान की जाए' इस विषय पर विशद विचार-मंथन होने को था। सम्मेलन की कार्यवाही शुरू होते ही समाचार आया कि किसी इटलीवासी ने आस्ट्रिया की रानी एलिजाबेथ की हत्या कर डाली। किसी इटलीवासी के द्वारा यूरोप में यह तीसरा जघन्य कृत्य था। अखबारों में शिक्षाशास्त्रियों के विरुद्ध कड़े शब्दों में आलोचना छापी गयी थी। पूरी जनता काँप उठी थी और जिस शिक्षा की वजह से ऐसा भयंकर परिणाम सामने आया था, उस शिक्षा के आयोजनकर्ताओं को शाप देने लगी थी।

सम्मेलन में आये शिक्षाशास्त्रियों के चेहरों पर शर्म की काली छाया फैल गयी थी। वे विकट उलझन में पड़ गये थे। सभा में शान्ति छाई थी। उस समय मि0 बेंसीवनी ने 'नैतिक शिक्षा कैसे प्रदान की जाए' विषय पर बड़ा ही गंभीर व सुंदर भाषण दिया। उनके बाद डॉ0 मेरिया मॉण्टेसरी ने अपना भाषण दिया। उन्होंने कहा, 'अगर हम यह बात अपने दिमाग में नहीं रखेंगे कि अनेक लोग ऐसे भी होते हैं जो भयंकर से भयंकर अपराध करने में सक्षम हैं वे सब विद्यालयी-शिक्षा से निकलने के बावजूद वैसे के वैसे रह जाते हैं, तो हम उन्हें नीति की शिक्षा देकर भी किसी नीतिमय नहीं बना पायेंगे। कई बालक ऐसे होते हैं कि जो हमारे उलाहने और डाँट को न मानते हुए कक्षा के अनुशासन विषयों के विपरीत आचरण कर बैठते हैं। ऐसे बालकों को अंत में विद्यालयों से निकाल दिया जाता है और परिणाम यह निकलता है कि वे बालक बड़े होते ही समाज के शत्रु बन जाते हैं और लोगों को आतंकित-त्रस्त करते हैं। अगर हमारी शिक्षा, हमारा नीति-बोध ऐसे बालकों तक न पहुँच सके.

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 71

तो हमारी नीति-शिक्षा का कुछ भी अर्थ नहीं। अच्छे-भले बालकों के लिए तो नीति-शिक्षा का न कोई अर्थ है, न आवश्यकता। विद्यालय नामक संस्था अकेले अच्छे, भले, बुद्धिमान बालकों के लिए ही नहीं अपितु हर तरह के बालकों के लिए है यानी आने वाले कल के चोर, लुटेरे, हत्यारे बालक भी इसमें शामिल हैं।'

गिजू भाई मानते हैं कि इस व्याख्यान से शिक्षा-जगत् में एक नया प्रकाश उद्दीत हुआ। उस दिन से, खासतौर पर शिक्षा के क्षेत्र में एक वैज्ञानिक-दृष्टि का प्रवेश हुआ है और तभी से हमारी शिक्षा के आदर्शों एवं व्यवहार में जबरदस्त बदलाव आने लगा है। उसी क्षण से शिक्षा में नवयुग का आगमन हुआ है।[1]

वे कहते हैं कि कहानी द्वारा कहें या उपदेश द्वारा कहें, मुख से कहें या लेख से कहें, मनुष्य को नीति-ज्ञान देने का जबरदस्त शौक लग गया है। इसका कारण कुछ और नहीं तो यह तो है ही कि मनुष्य में नीति की वृत्ति कहाँ से आती है और कैसे विकसित होती है, इसका उसे वैज्ञानिक ज्ञान नहीं है। जहाँ-जहाँ हमें शरीर-विज्ञान से सम्बन्धित बातों का ज्ञान होता है, वहाँ-वहाँ हम शरीर-शास्त्र से सम्बन्धित गलतियाँ नहीं करते। उदाहरण के लिए हम समझते हैं कि बालक को चलना, दौड़ना, बातें करना एकाएक नहीं आ जाता, अपितु एक लम्बे समय तक स्वयंप्रेरित प्रयास करने के बाद ही बालक इन क्रियाओं पर अधिकार करता है। इनके लिए हम भी जल्दबाजी नहीं करते, करें भी तो हमारा वश नहीं चलेगा, यह हमें पता है। इसीलिए जब हम अपने आफिस जाते हैं या किसी गाँव जाते हैं तो छोटे बच्चे से यह कह नहीं जाते कि, "जब तक मैं वापिस लौटूँ तब तक मेरे जितने लम्बे हो जाना या मेरे जितने वजनी हो जाना।" ऐसा कहें तो हमारी मूर्खता मानी जाएगी। इसका कारण यह है कि हम शारीरिक विकास के सामान्य नियमों को तो जानते ही हैं। लेकिन जब हम बालक को उपदेश देते हुए या कहानी कहते हुए यह कहते हैं कि देखो, अब तुम सच बोलना या चोरी मत करना, तो हम बालक का और स्वयं अपना मजाक ही उड़ाते हैं और मानसिक-विकास के भयंकर अज्ञान का प्रदर्शन करते हैं। शारीरिक-विकास के नियमों और क्रियाओं से भी ये मानसिक विकास के नियम और क्रियाएं अधिक उलझनभरी और कठिन हैं - यह बात हम नहीं जानते, तभी तो हम कथन मात्र से मनुष्य को शिक्षित-संस्कारित करने को भागते हैं। गिजू भाई का निश्चित मत है कि मानसिक विकास की अपेक्षा आत्मा की शक्ति का विकास करना अधिक कठिन है। मनुष्य शरीर की शक्ति को बढ़ा सकता है, मनुष्य बुद्धि का वैभव प्राप्त कर सकता है लेकिन अगर मनुष्य आत्मा की शुद्धि प्राप्त करने में पूरी जिन्दगी व्यतीत कर दे, तब भी सफलता दूर ही रहेगी। जो विकास अत्यन्त कठिन है, सूक्ष्म है, उसी विकास को सिर्फ कहानी से सिद्ध करने की धृष्टता करके हम अपनी विचित्रता

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 7

ही दिखाते हैं। वे कहते हैं कि सत्य का पाठ पढ़ाकर बालक से सत्य की अपेक्षा रखने वाला व्यक्ति या तो मूर्ख होता है, अज्ञानी होता है या फिर ढोंगी। हम मूर्ख हैं, पर इससे भी बढ़कर अज्ञानी और ढोंगी हैं।[1]

नीति-शिक्षण के माध्यम से रूप में मानने वाले लोग बालकों में नीति-शून्यता अथवा नीति के रोग की उपस्थिति का आरोपण करते हैं। परिणामों को देखने वाला और परिणामों के साथ लड़ने वाला व्यक्ति विज्ञान के प्रदेश में उलटे रास्ते चलने वाला है, यह बात समझ में आती है, लेकिन नीति शिक्षण के कार्य में हमें इतना भी समझ में नहीं आता। कोई भी रोग, कोई भी अनीतिमयता परिणाम से भयंकर नहीं होती परन्तु अपने कारणों से भयंकर होती है; परिणाम तो कारणों के सहज प्रतिफल हैं। कारणों को निर्मूल करने के बजाय मनुष्य को परिणाम के साथ लड़ने का प्रयत्न त्याग देना चाहिए। मनुष्य नीतिवान है या अनीतिवान अथवा वह नीतिवान क्यों नहीं होता और अनीतिमय क्यों हो जाता है, इन कारणों की खोज में ही उसकी दवा विद्यमान रहती है। उन कारणों की ओर से बेफिक्र रहकर उनके परिणामों पर मरहम-पट्टी करना मनुष्य को स्वाभाविक के बजाय अस्वाभाविक बनाने जैसा है।

गिजू भाई कहते हैं कि यह सच है कि रोग प्रत्यक्ष रूप से दिखना बन्द हो जाता है, पर रोग अधिक गहरे उतरकर अपनी जड़ें जमा लेते हैं। इसी से आज समाज में, तत्त्वतः विचार करें तो खुलेआम अनीति का आचरण करने वाले लोगों की बजाय छिप-छिपकर अनीति का आचरण करने वाले लोग अधिक हैं और इस वर्ग की संख्या बहुत अधिक हैं, अतएव गुप्त रूप में अनीति का आचरण करने वाले लोगों को ही बहुमत में हल्का गिना जाता है। सच्ची बात तो यह है कि जो नीतिभ्रष्ट है वह नीति-दंभी से ज्यादा पतित नहीं होता। पहला तो आकाशदीप जैसा है, जो अपने रास्ते पर बढ़ने वाले सभी सज्जनता रूपी जहाजों को बचाकर चलने हेतु रास्ता दिखाता है, जबकि दूसरे वाला पानी के नीचे, लहरों के नीचे छिपा हुआ लोहे की चट्टान जैसा है जिससे टकरा कर रोजाना कितने ही जहाज डूब जाते हैं। ऐसे में मरहम-पट्टी करने की क्रिया से दंभी लोग पैदा करने की बजाय नीति-शिक्षण का काम हाथ में न लेना सही व सुरक्षित कदम है।

वर्तमान स्थिति पर टिप्पणी करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि आज मनुष्य इतना अनीतिवान बन गया है कि वह स्वयं अनीति का भय चारों तरफ देखता है। उसकी वृत्ति सभी में अनीति आरोपित करने की हो चली है। अधिकांशतः नीति-शिक्षण के झंडाबरदार अपने हृदय में विद्यमान अनीति के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए निकले हुए होते हैं। ये लोग स्वयं से नहीं लड़ सकते, इसीलिए समाज से लड़ने के लिए प्रेरित होते हैं। जो आदमी जिस वस्तु से डरता है, उसे दुनिया से खदेड़ बाहर करने को दौड़ता है, लेकिन जो आदमी जिस वस्तु से निर्भय है, उसकी उस वस्तु को खदेड़ बाहर करने

1- गिजू भाई बधेका - कथा कहानी का शास्त्र, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 148-149

में रुचि नहीं होती। महान् सत्व से विहीन व्यक्ति हमेशा अपने स्वभाव के विरुद्ध लड़ने के लिए धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र और तत्त्वज्ञान का उपयोग करता है, लेकिन निशाना मारने का साधन मनुष्य को बनाता है, यह उसकी भूल है। माता-पिता नीति-शिक्षण की बातें करते हैं, संस्था के संस्थापक नीति-शिक्षण की हिमायत करते हैं, शिक्षक नीति-शिक्षण के लिए दौड़ते हैं और लेखक नीति-शिक्षण के लिए पुस्तकें लिख देते हैं। ये सभी अधिकांशतः स्वयं अपने ही विरुद्ध, अपनी ही न्यूनताओं और अपूर्णताओं के विरुद्ध बगावत करने की मेहनत करते हैं। इनमें केवल भाड़े पर काम करने वालों और उच्च सत्व वालों को माफी मिल सकती है। ऐसी वृत्ति वाले नीति-शिक्षण के नाम पर स्वयं में विद्यमान अनीति को दूसरों के लहू में भोंकने का काम करते हैं। तभी तो जैसे-जैसे नीति-शिक्षण बढ़ रहा है वैसे-वैसे दंभ भी बढ़ता जा रहा है; और दंभ धूर्तता से अधिक भयंकर है। जहां साँप अधिक होते हैं और जहां साँप का त्रास दिमाग से निकलता नहीं, वहां की वाचनमाला और कहानियों में साँप को मारने की युक्तियां मिल जाती हैं। दुर्बल देश की कहानियों में दुर्बलता मिटाने और स्वस्थ रहने की महिमा की बातें अधिक देखने में आती हैं। जिस देश, प्रजा या व्यक्ति को जिस रोग से ग्रसित होना पड़ा हो, उस देश, प्रजा या व्यक्ति की कहानियों में उस रोग का अस्तित्व व्यक्त होता है। 'नीति-शिक्षण' 'नीति-शिक्षण' का प्रचंड घोष करने वाली जनता की नसों में भयंकर से भयंकर अनीति के तत्त्व घुस गए लगते हैं, और यही इसका निदान है। गिजू भाई कहते हैं कि ईसाई लोग मनुष्य को जन्म से ही जैसे पतित मानते हैं, वैसे अगर हम भी मानते हों तो नीति-शिक्षण की कहानियां सर्वप्रथम सुनाने की धृष्टता करने का विचार करें, यह बात दूसरी है कि यह धृष्टता बेकार जाने की है। परन्तु जो बालक जन्म से अनीतिवान नहीं है, यदि ऐसा हम मानें तो अभ्यासक्रम में नीति-शिक्षण को स्थान देना हमारी भावी संतति का अपमान है, मानवीय आत्मा का अपमान है। अगर नीति-शिक्षण देने वाले लोगों के मन-मस्तिष्क की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जांच करें; तो पता चलेगा कि वे अनीति से डरते हैं और उससे भी ज्यादा वे समाज में अव्यवस्था के भय से डरते हैं। इन लोगों की यह मान्यता है कि अमुक नीति के नियमों से मनुष्य सामाजिक बनता है। मनुष्य को मनुष्य बनने देने के बजाय उसे सामाजिक बनाने की वृत्ति में नीति-शिक्षण को आगे करना पड़ता है। मनुष्य हमेशा अपना दौर चलाना चाहता है; राजा राज चलाना चाहता है, प्रजा प्रजातंत्र चलाना चाहती है, गृहपति गृह चलाना चाहता है, शिक्षक शाला चलाना चाहता है और व्यक्ति व्यक्तित्व चलाना चाहता है। सच पूछो तो कोई किसी को पूरी तरह स्वतंत्र नहीं रहने देना चाहता। एक प्रजा दूसरी प्रजा को अपनी जैसी प्रजा बनाने का प्रयत्न करती है। जो लोग अपनी प्रजा को उनकी जीवन शैली से मुक्त करने का बीड़ा उठाते हैं, उनको अपना बलिदान देना पड़ता है। उनको कोई नीति-विशारद, नीति शास्त्री अथवा शिक्षक नहीं

कहता, वरन् उन्हें समाजद्रोही, प्रजाद्रोही और अनीति-प्रेरक कहा जाता है। ऐसे लोगों में सुकरात, ईसा मसीह या महात्मा गाँधी जैसों के नाम दिये जा सकते हैं।

गिजू भाई की धारणा है कि नीति-शिक्षण मनुष्य को आत्मा की स्वतंत्रता से भ्रष्ट करने की कोशिश करता है। जो-जो व्यक्ति अपने जीवन में नीति पर चलना नहीं चाहते, जो-जो व्यक्ति स्वयं नीतिवान नहीं है, और जिनके मन, वाणी एवं कर्म नीति के जीते-जागते दृष्टांत नहीं है, वही लोग नीति-शिक्षण के पूरे पक्षधर बनते हैं, उन्हीं के हाथ में नीति-शिक्षण शोभा देता है। उन्हें अपने जीवन से कुछ बताना तो होता नहीं, अतः वही लोग नीति-शिक्षण के लिए कथाओं का उपयोग करते हैं। जब माता-पिता अपने जीवन की सुगंध नहीं फैला सकते तब वे कल्पित अथवा ऐतिहासिक जीवन की कथाओं से उसका बदला उतारने का प्रयास करते हैं। यही कारण है कि प्रसंग-प्रसंग के अनुसार नीति कथा के लिए तैयार रहने वाला पिता प्राकृत लोगों में बड़ा विद्वान और नीतिज्ञ कहलाता है। सच बोलने में जो बल है, सुन्दता है, चमत्कार है; वह बल, वह सौन्दर्य, वह चमत्कार सत्यनिष्ठ मनुष्य की किसी कल्पित कहानी में नहीं होता।[1]

गिजू भाई के अनुसार किसी भी विषय की हकीकतों को जानना और उस विषय के रहस्य को जानना दो अलग बाते हैं। कई विषयों की हकीकतों मात्र को जानने से मनुष्य का व्यवहार चल सकता है, पर कई विषयों के रहस्यों को जाने बिना हकीकतें भारस्वरूप अथवा निरर्थक रह जाती हैं। नीति की हकीकतों को लेकर यही बात है।

गिजू भाई बेहिचक स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि हकीकतों से मनुष्य नीतिवान नहीं बन सकता। हकीकतों के ज्ञान से मनुष्य में नीति सम्बन्धी रूचि हो पाना अल्प मात्रा में सम्भव मान लें तब भी रहस्य-भेद के बगैर यह रूचि भी अल्पायुषी ही बनकर रह जाती है। शिक्षक पढ़ाई में, माता-पिता जीवन में और गुरू व्यवहार में जब भी हकीकत और रहस्य में फर्क देखेंगे तो वे सर्वप्रथम रहस्य बतायेंगे और तब हकीकत बतायेंगे। रहस्य की हम सुगन्ध से उपमा दे सकते हैं। गुलाब की हकीकत और उसके ज्ञान को जाने बगैर उसकी सुगंध तो संभव है। गुलाब में से सुगंध सहज ही निकलकर मनुष्य की घ्राणीन्द्रय का आह्वादित करती है। इस आह्वाद के कारण ही मनुष्य गुलाब का ज्ञान पाने को प्रेरित होता है। नीति की सुगंध का अगर बालक को स्पर्श हो जाए तो फिर वह नीति के गुलाबी रंग और उनकी गुलाबी पंखुडियों का परिचय प्राप्त करेगा ही करेगा। जब आदमी को आत्मा की पहचान हो जाती है तो शरीर को ढूंढते कितनी देर लगती है। लोगों की कथनी-करनी में कितना अंतर है इसका गिजू भाई प्रत्यक्ष उदाहरण देते हुए कहते हैं कि मेरा एक मित्र कहता है : 'नीति-धर्म तो मनुष्य के पसीने से निकलने चाहिए।' फिर भी मुँह से (उपदेश से) निकलने वाले नीति-धर्म में

1- गिजू भाई बधेका - कथा कहानी का शास्त्र, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 146

उनका विश्वास है, यह एक नई बात है।[1]

आज की दुनिया में देखा जा रहा है कि मनुष्य स्वयं अनीति पर चलता है। जो कुछ गलत से गलत हो सकता है, वह करता है, परन्तु चरित्र, धर्म, आचरण, नैतिकता व कर्तव्य पर वह उपदेश बड़े सुंदर शब्दों में देता है। इसी पर व्यंग्य करते हुए गिजू भाई कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति मानता है कि वह स्वयं नीति-शिक्षण और धार्मिक-शिक्षण देने का अधिकारी है। मनुष्य दूसरों का भला करने का अधिकार बिना इजाजत लिए धारणा करना चाहता है, पर इसके लिए साधनों के उपयोग को लेकर सावधानी रखनी पड़ेगी। हमें अधिकार है यह बात ही गफलत भरी है। दूसरों का चरित्र गढ़ने का जिम्मा अपने ऊपर लेना जोखिम का काम तो है ही, इससे भी अधिक मूर्खता भरा भी है। बावजूद इसके आश्चर्य है कि इस काम को आसान माना जाता है। मनुष्य को आसान से आसान काम वह लगता है, जो उसे खुद नहीं करना होता। इसीलिए नीति-शिक्षण के श्रवण का और कथन का काम आसान और सहज है। जो मनुष्य उपदेश दे सकता है, जो कहानी कह सकता है, वह नीति-शिक्षण दे सकता है, ऐसा विचार लोगों को अस्वाभाविक नहीं लगता। इसी से प्रत्येक शिक्षक नीति-शिक्षण के लिए योग्य माना जाता है।[2]

असत्य बोलने की शिक्षा बालक को बड़ों से मिलती है। निर्भय बालक सत्य बोलने से नहीं डरता है। भय ही उसे झूठ बोलने को बाध्य करता है। इस सम्बन्ध में गिजू भाई का मानना है कि झूठ का मूल है भय। सबसे पहला काम है बालक को उस भय से मुक्त करना। बुजुर्गों वाली धारणा असत्य है। भय और सख्ती से बालक वश में आता प्रतीत होता हो - मात्र ऊपरी दृष्टि से; भीतर तो वह बड़ों को समाप्त करने की बात सोच रहा होगा। ऐसे में बड़ों दिनों-दिन सख्ती बढ़ानी पड़ेगी। यह तो नशेबाजों वाला तरीका हुआ। क्षण भर को सतही लाभ प्रतीत होता है और बाद में फिर से उसका प्रभाव ठंडा पड़ने लगता है, परिणामतः भय और सख्ती की मात्रा बढ़ानी पड़ती है। ऐसे में बालक चिकना घड़ा बन जाता है और परेशान करने लगता है। इसका उपाय यही है कि बालक को बड़े-बुजुर्गों से दूर हटा दें, या फिर बड़े-बुजुर्गों से उनके बुजुर्गपने का अधिकार छीन लें। बालक के दिल में, लगता है बुजुर्गों का डर गहरे पैठ गया है, इसलिए बालक को दूसरों के हाथों सौंप दिया जाए ताकि उसे निर्भय वातावरण मिले। गिजू भाई इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निर्भय बालक ही सच बोलता है।[3]

आत्म-वंचना की स्थिति भी व्यक्ति के लिए अत्यन्त हानिप्रद होती है उसके व्यवहार के विषय में गिजू भाई का विश्लेषण है - लेकिन जब मनुष्य स्वयं अपने को ही गलत समझता है तो वह असत्यवादी से भी भयंकर हो जाता है। सत्य उत्तम है; लेकिन जानबूझकर बोला गया असत्य

1- गिजू भाई बधेका - कथा कहानी का शास्त्र, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 147

2- वही, पृ0 148

3- गिजू भाई बधेका - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 11

आत्मवंचना से उत्पन्न हुए भासमान सत्य से ज्यादा अच्छा है।[1]

सकारात्मक व नकारात्मक अभिवृत्तियों का निर्माण बालक में वातावरण के प्रभाव से होता है। रूढ़ियों, अंधविश्वासों, पूर्वग्रहों, दृष्टिकोणों व मूल्यों का पोषण परिवार, विद्यालयों व समाज के द्वारा किया जाता है। गिजू भाई का मानना है कि हम बड़े लोग घरों में बैठे-बैठे कई तरह की बातें करते रहते हैं। जैसे, जात-पाँत की बातें, सगे-सम्बन्धियों की बातें, लेन-देन की बातें, बचपन की बातें, दोस्त और दुश्मन की बातें और अड़ोसी-पड़ोसी की बातें। इसी तरह साहित्य की, काव्य की, विज्ञान की, विद्यालय की, दवाखाने की और रेलगाड़ियों आदि की अनेकानेक बातें चलती रहती हैं। हमारे बालक हमारे आसपास घूमते रहते हैं। उनके अपने कान होते हैं और उनक पास उनकी अपनी समझ भी होती है। हम जो कुछ भी बोलते रहते हैं, वह सब बीज-रूप में उनके पास पहुंचता रहता है। समय आने पर, खाद-पानी पाकर, अनुकल वातावरण मिलने पर, ये बीज उग निकलते हैं।

गिजू भाई का कहना है कि स्थिति विचारणीय है तथा गंभीर विमर्श की मांग करती है। वे कहते हैं कि हमको सोचना होगा कि क्या हम अपने बालकों के कानों तक चाहे जैसी ऐरी-गैरी बातें पहुंचने दें? अगर नहीं, तो क्या हम अपनी बातचीत के विषयों को बदलेंगे? और, सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि क्या दुनिया को देखने की अपनी दृष्टि में हम कोई परिवर्तन करेंगे? क्या हम मौन रहना अधिक पसंद करेंगे? हम अपने बालकों को स्वयं सोचने की और सच-झूठ को खुद ही पहचान लेने की शक्ति देकर दुनिया के बारे में अपनी राय बनाने की स्वतंत्रता देंगे, या उनको अपनी ही राय के वातावरण में पाल-पोसकर उनकी अपनी राय को मिटाते ही रहेंगे?[2]

5.4 धार्मिक शिक्षा

गिजू भाई बालकों को धार्मिक शिक्षा देने का समर्थन नहीं करते हैं। उनका मत है कि छात्रों के सुकुमार मस्तिष्क ईश्वर, आत्मा और धर्म जैसे कठिन विषयों को ग्रहण कैसे कर सकते हैं? धर्म केवल जीभ पर ही नहीं रहता। धर्म तो एक जागृति है, जिसका अन्तस्तल में जागना ही उचित है। यह भावना तभी जागती है, जब मनुष्य को इसकी भूख लगती है। इसका भी अपना समय होता है।

वे कहते हैं कि अपरिपत्व व अनिच्छुक बालकों को धर्म की घुट्टी पिलाने का कोई औचित्य नहीं है। उनके अनुसार - 'धर्म कोई गाजर-मूली नहीं, न वह बाजारू वस्तु ही है। पुस्तक में छपी हुई बातें ही धर्म नहीं है। क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि ऐसी महत्त्व की बात को तो अधिक से अधिक गूढ़ और गुप्त रखना चाहिए और कठोर परिश्रम के बाद ही वह साधक को प्राप्त होनी चाहिए? लेकिन आज तो हम घर-घर और मदरसे-मदरसे उपदेश करके लोगों में धर्म का प्रसाद बांटने निकल पड़े हैं! धर्म को यों बेचने या भेंट धरने से कोई धर्मात्मा नहीं बन सकता!'

1- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 37
2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 80-82

गिजू भाई का अटल विश्वास है कि समय आने पर मनुष्य में जवानी और बुढ़ापे की तरह धर्म-जिज्ञासा का भी स्वयं विकास हो जाता है। असमय के गृहस्थाश्रम की भाँति असमय का यह धर्म-परिचय भी उन्हें असामयिक ही मालूम पड़ता है। वे कहते हैं कि बचपन ही से धर्म को प्रतिदिन की चर्चा का और श्लोक-पाठ का विषय बना डालने से तो उल्टे उसके विषय की सच्ची जिज्ञासा ही मन्द पड़ जाती है। धार्मिक क्रियाओं को भी अपना महत्त्व है, पर यह आवश्यक नहीं कि उनको इतना महत्त्व दे दिया जाए कि उनके कारण मनुष्य का विकास ही रुक जाए और मनुष्य जड़वत् बन जाए।

वे कहते हैं कि 'मेरी समझ में तो छोटे बच्चों को धर्मोपदेश न करना ही अच्छा है। उनको तो इस समय स्वस्थ शरीर, तन्दुरुस्त मन, निर्मल बुद्धि और कभी न थकने वाली क्रियाशक्ति की आवश्यकता है- और आवश्यकता है, उनको हर तरह बलवान बनाने की।'

गिजू भाई सुझाव देते हैं कि धर्म के उत्तम तत्वों को शिक्षा से जोड़ा जा सकता है। वे कहते हैं कि हम धर्म को जीवन में उबारने का प्रयत्न करें। माता-पिता भी प्रयत्न करें और शिक्षक भी प्रयत्न करें। पाठ्य-पुस्तक में दूसरी कथाओं के साथ धार्मिक पुरुषों और प्रसंगों की कथाएँ भी दी जा सकती हैं। समय आने पर बालकों को दूसरी कथाओं की तरह पुराण और उपनिषद् की कथाएँ भी कही जा सकती हैं। जिस प्रकार हम ऐतिहासिक पुरुषों की कहानियाँ कहते हैं, उसी प्रकार बालकों को धर्मात्मा पुरुषों की कथाएँ भी सुना सकते हैं। बालकों के लिए शुरू के वर्षों में इतनी तैयारी पर्याप्त है। कर्मकाण्ड और श्लोक-पाठ, धर्म-शिक्षण और धार्मिक पुस्तकों के अभ्यास को हम भविष्य के लिए छोड़ सकते हैं।"[1]

गिजू भाई का मत है कि एक ओर बड़ी संख्या में साधु व स्वामी लोग धर्म प्रचार में लगे हैं वहीं शिक्षकों की कमी है। अतः स्वामी व साधु लोग बालकों की शिक्षा का काम सम्भाल लें, तो अच्छे शिक्षकों का अभाव दूर हो जाए और इस दिशा में सच्चा काम होने लगे।

गिजू भाई माता-पिता से भी आग्रह करते हैं कि वे रूढ़ियों व कर्मकाण्डों से बालकों को बचायें। वे कहते हैं कि बालकों को धार्मिक शिक्षा देकर, धर्म के काम, अनुष्ठान कराकर रूढ़ियों की पोशाकें पहनाकर उन्हें कभी धार्मिक नहीं बनाया जा सकता। वे पूछते हैं कि तोते की तरह नीति का शिक्षण देकर, उपदेश पिलाकर क्या बच्चों को नैतिक बनाया जा सकता है।[2]

गिजू भाई ईश्वर के सम्बन्ध में रूस वालों की मान्यता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि रूस वाले बड़े जबरे हैं! वे कहते हैं कि आकाश में भी ईश्वर का खोजा, यह वहां भी नहीं है। भला अब ईश्वर को कैसे मानें? उसके विद्यालयों में विधिवत पढ़ाया जा रहा है ईश्वर नहीं है, नहीं है, नहीं है

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 45-47
2- वही, पृ0 58

अंत्यज को छूना पाप मानने वाला कोई कहेगा, 'हाय! हाय! रूस का तो सत्यानाश ही होगा! शांतं पापं, शांतं पापं!' आकाश में नहीं तो पाताल में रहने वाले ईश्वर को तो मजा आता होगा। परन्तु रुस की यह प्रशंसा वे क्यों करते हैं? कारण जो वे बताते हैं निश्चित ही हृदय स्पर्शी है। वे कहते हैं कि ईश्वर भी इधर-उधर छिपकर रूस की प्रशंसा कर रहा होगा। वह कहता होगा कि 'हैं तो बेटे प्राणवान, बलवान! वे लोग कदाचित आत्मा का राज्य लेंगे, मेरे दर्शन करेंगे।' ईश्वर जानता है कि 'निर्बल हिन्दुस्तान वालों ने मुझे ग्रन्थों में, घट-पट आदि बातों में तथा पत्थरों में रखा, ढोंगी खिस्तियों ने मुझ बाइबिल में और चर्च में रखा, इस्लामियों ने मस्जिद में रखा, पर इन लोगों ने तो मुझे धकेल ही दिया और रूस को साफ कर दिया। अब स्वच्छ रूस के हृदय में मैं धीरे-धीरे अधिक स्पष्ट दिखाई देने वाला हूँ। इस समय मैं उन्हीं में मूर्त हुआ हूँ। वे सब सबों के लिए जीते हैं, यही ईश्वर की उपासना है। मैं उनके भीतर विराजमान हूँ तभी तो वे न कहीं मेरी तलाश करते हैं, न मुझे कहीं बिठाते हैं; जबकि उन अन्य लोगों के अन्दर मैं नहीं हूँ तो वे मुझे ढूँढ़ते हैं और मुझे जहाँ-तहाँ बिठाते हैं। पर मैं ऐसा कोई नहीं कि उनको दिख जाऊँ?'

गिजू भाई कहते हैं कि मैं भी कैसा हूँ कि ईश्वर की तरफ से सब कुछ जाहिर करने बैठ गया। दु:ख इसी बात का तो है ईश्वर ने मुझे बनाया और मैं उसे बना रहा हूँ। मनुष्य यहीं तो भयंकर भूल कर रहा है, क्यों न हो, अंतत: मैं मनुष्य ही तो हूँ।[1]

रुस नास्तिक है परन्तु गिजू भाई पक्के आस्तिक। उनकी धार्मिकता विलक्षण है। उक्त बातें कहने का साहस गिजू भाई जैसा निर्मल हृदय वाला व्यक्ति ही कर सकता है। उनके शब्द मानों उनके अपने नहीं, परमात्मा के शब्द हैं।

गिजू भाई वर्तमान स्थिति पर सटीक टिप्पणी करते हैं -"हम लोग अधिकतर अन्धविश्वासी जीवन जी रहे हैं। आजकल के धर्म का एक बड़ा हिस्सा अन्धविश्वास से प्रभावित है। पाखण्डी लोग धर्म के नाम पर अन्धविश्वासी लोगों से अनुचित लाभ उठाते रहते हैं। अन्धविश्वासी मन यानी अन्ध श्रद्धा वाला मन। इसी कारण अन्धविश्वासी आदमी शास्त्र-वचन को अटल वचन मानता है। वह देवों और परियों की बातों को न मानने वालों को नास्तिक समझता है और भूत-प्रेत आदि की कहानियों का सही भेद जानने से इंकार करता है।"[2]

गिजू भाई के अनुसार अन्धविश्वासी वह है जो मानकर चलता है। बिना प्रमाण मांगे ही हर किसी बात को मान लेता है। अन्धविश्वासी को अपने अन्धविश्वासों का त्याग करना चाहिए। जैसे, हम कहते हैं : "याद रखो, अगर तुमने हनुमान जी को फूलों की माला नहीं पहनाई, तो वे तुम पर नाराज हो जाएंगे।" "तुम भूतनी को लपसी चढ़ाने की मन्नत नहीं मानोगी, तो भूतनी तुमको दु:ख

1- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 83

2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 57

देगी।" "मैंने अपना चूल्हा ठण्डा नहीं किया था, इसलिए शीतला माता मुझ पर बहुत नाराज हो गई और मेरे बेटे को चेचक निकल आई।" अन्धविश्वासी आदमी इन सब बातों को सच मानेगा और कहेगा : "हाँ, ये सब तो सच्ची बाते हैं।"

गिजू भाई के अनुसार अन्धविश्वासी मनुष्य का मतलब है, निर्मल तर्क बुद्धि को न मानने वाला आदमी। अन्धविश्वासी आदमी कभी यह पूछता ही नहीं कि ऐसा क्यों होता है? वह कभी यह कहता ही नहीं कि मैं तो यह सब तभी मानूँगा, जब मुझको इनका भरोसा हो जाएगा।

वे कहते हैं कि हमने अपने बड़ों-बूढ़ों से कारण पूछे। हमको जवाब नहीं मिले। क्या अब हम स्वयं ही अपने अनेकानेक अन्धविश्वासों के कारणों को जानना चाहेंगे? भले, अपने लिए न सही, पर क्या अपने बालकों के लिए हम कारणों की खोज करेंगे? अपने बालकों के प्रश्नों के उत्तर में क्या हम उनको कारण बताने का प्रयत्न करेंगे?

गिजू भाई कहते हैं कि पहले हम स्वयं इस बात का भरोसा कर लें कि सारे अन्धविश्वास एकदम मिथ्या हैं। खूसट एक पक्षी है। वह अपने लिए ही बोलता है। आँख फड़कने का कारण शरीर की कोई गड़बड़ी हो सकती है। यदि इस तरह हम अपने अन्धविश्वासों की छान-बीन करेंगे तो हमको अपनी नासमझी पर खुद ही हँसी आएगी।[1]

5.5 दलित शिक्षा

गिजू भाई दलितों व वंचितों की शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे। उनके लिए बालक बालक था, दैव स्वरूप। उसकी जाति, वर्ण व धर्म का उनकी दृष्टि में कोई महत्व न था। गिजू भाई ने दलित बालकों की शिक्षा के लिए स्वयं उन्हें शिक्षण करके पहल की, उन परिस्थितियों में जबकि उन्हें बहिष्कृत, त्याज्य व हेय माना जाता था। उनका यह साहस अद्वितीय था। वे अपने अनुभव बताते हैं- जिस तरह वर्षों की प्यासी धरती वर्षा आते ही पानी को सोख लेती है उसी तरह ये बालक भी मेरे पाठ को ग्रहण कर रहे थे। इससे भी बढ़कर जिस तरह अधिक भूखा-प्यासा आदमी खाना-पानी मिलते ही एकदम से खाने-पीने लगता है तो कई बार खाना या पानी उसकी श्वासनली में चला जाता है, उसी तरह ये ज्ञानपिपासु और क्षुधार्त बालक जल्दी-जल्दी पाठों को ग्रहण करने लगे। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। मेरे मन में विचार आया, 'जिन बालकों को पढ़ना नहीं है, उन्हें विद्यालय जाना पड़ता है और जबरन ग्रास निगलने पड़ते हैं; उनको अजीर्ण हो जाता है और वे बीमार पड़ जाते हैं।' अर्थात् जबरन पढ़ने जाने के बजाय बालक कई तरह के ढोंग करते हैं कि सिरदर्द है या पेट दर्द है जबकि जिन बालकों को पढ़ने की भूख है उन्हें कोई नहीं पढ़ाता। परम्परा के दास लोग इनकी पढ़ाई को पाप समझते हैं, भ्रष्टता समझते हैं। अपने से किसी को आगे न बढ़ने देने की इच्छा वाले द्वेषी लोगों द्वारा

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 58

तय किये गये कड़े कानूनों के ये बेचारे लोग बिना किसी अपराध के शिकार बन जाते हैं।

जब गिजू भाई उन्हें पढ़ाते थे तो लोग चारों ओर से देखने के लिए आ जाते थे। कहते थे, 'भाई! ब्राह्मण होकर इन ढेढ़ों को पढ़ाते हो? उनके पास जाने से आप भ्रष्ट नहीं हो?' गिजू भाई कहते थे, 'यह काम ब्राह्मण का ही तो है। अगर मैं गुरू हूँ तो शिष्यों के पास जाने से मैं भ्रष्ट नहीं हो जाऊँगा। गुरू कभी भ्रष्ट नहीं होगा।'

लोग उत्तर नहीं दे पाते थे और समाधान भी नहीं निकलता था; क्योंकि गिजू भाई के अनुसार वे नये ब्राह्मण थे और उनका शास्त्र भी नया था। परम्परा तो तोड़ने वाले का लोगों पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वे तोड़ने वाले की हिम्मत देखकर मन ही मन उसकी प्रशंसा करते हैं। पर वे उसे स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि स्वयं उनमें साहस का अंश नहीं होता।

उनके बगल में शंकर का मंदिर था। वहाँ पुजारी इत्यादि उनके इस काम की खूब चर्चा करते थे तथा विरोध भी करते थे। उनके रसोइए को वे मंदिर में न आने की बात कहते थे और घबराहट के मारे रसोइया वहाँ जाता नहीं था। पर वे अपनी इच्छा के मुताबिक जब चाहते, मंदिर में चले जाते थे। रसोइया परम्परा का भक्त था अतः परम्परा के पुजारियों का खौफ मानता था, लेकिन उन्होंने तो उसको त्याग दिया था अतः परम्परा की निर्बलता उनमें नहीं थी, बल्कि इसके विपरीत वे बलवान बने थे। मन्दिर के लोग भी उनके विरुद्ध कुछ नहीं करते थे, फकत भावपूर्वक देखते थे, क्योंकि जिन बेड़ियों में वे कैद थे, गिजू भाई उनसे मुक्त थे। थोड़े समय के बाद ढेढ़ आने बंद हो गये। शायद लोगों ने उनको आने से रोका होगा। परम्परा के पुजारियों का गिजू भाई पर तो कोई जोर चल नहीं सकता था, पर वे लोग निर्बलों पर तो अपनी कमजोरी लाद ही सकते थे। उन्होंने ढेढ़ों से कह दिया था, 'देख लेना रे, पढ़ने गए तो पिटाई किये बिना नहीं छोड़ेंगे और गांव से निकलवा देंगे सो अलग।' और युग-युगों से दासता भोगने वाले बेचारे ढेढ़ उनसे कितना मुकाबला कर सकते थे?

गिजू भाई कहते हैं - "मुझे लगा कि मैं ढेढ़ों का गुरू बनकर बैठ जाऊँ, इसमें क्या हासिल होने वाला है। अगर मैं परम्परा का उच्छेदन करके सबों को इससे मुक्त करा सकूँ तो समय रहते बेचारे बच सकेंगे। कुछ समय पहले मेरे पास उन लोगों के दो बालक पढ़ने आए थे। मैं उन्हें गायत्री मंत्र और अष्टाध्यायी रूद्री का पाठ सिखाने लगा। मुझे लगा कि मेरा यह कदम परम्परा तोड़ने का कोई गम्भीर और सच्चा मार्ग नहीं था, फकत एक तरह की उद्धतता है। परम्परागत आचारों के सामने उकसाने की बात भी है। किले को हिलाने जैसा काम है। पर अचरज की बात यह थी कि ढेढ़ों को वह सब सीखना नहीं रूचा। वे बोले, 'अंग्रेजी सिखाएँ।' बेचारे ढेढ़!"

वे कहते हैं कि इस तरफ तो ये परम्परा की पकड़ में हमारे साथ आगे बढ़ना नहीं चाहते, उस

तरफ से परम्परा के प्रदेश से बाहर वाले लोगों के मोह में नये ही मार्ग पर बल्कि कहें उल्टे मार्ग पर जाना चाहते थे। दूसरा कोई विषय नहीं मिला तो वे अंग्रेजी सीखने चल पड़े! जातीय भोज में जिस तरह शेष बचे भोजन पर ढेढ-वाघरी टूट पड़ते हैं वैसे ही अब जब कि अंग्रेजी पढ़ने का मोह छोड़ने का अवसर आया है तब ये लोग उसके पीछे हाथ धोकर पड़ेंगे। पर इसके लिए इन लोगों को उलाहना देने की जरूरत नहीं है। हमारी पंक्ति में ये लोग अंतिम सिरे पर हैं; हमारे पीछे-पीछे घिसटते चले आ रहे हैं। हम भी इस मोह में पड़े थे और आगे बढ़े थे; इन्हें भी जब यह अनुभव होगा तब पता चलेगा। मैं उनको अंग्रेजी तो कैसे पढ़ाता? मैं तो उनसे विहीन हो गया?

गिजू भाई अपने छात्रों की सराहना करते हैं कि उनके मुँह पर वेद की वाणी अच्छी लगती थी, शोभा देती थी। उनका मानना है कि भगवान ने जिन-जिनको उत्पन्न किया है, उन सभी के कंठ में वेदवाणी गूँज सकती है। ढेढ़ के कंठ से भला निकलकर गिर थोड़े ही रही थी। गिजू भाई स्वीकार करते हैं कि उनके मन में भगवान का न्याय और मनुष्य के अन्याय के विचार बहुत स्पष्टता के साथ प्रकट हो रहे थे।[1]

गिजू भाई कहते हैं कि मैं कभी कभार विचित्र बन जाता हूँ। मैंने उन ढेढ़ों को सिखाने के लिए एक पवित्र ब्राह्मण को नियुक्त किया, जो छू जाने पर नहाता था। वह मेरे अध्यापन-मंदिर का विद्यार्थी था। तत्त्व से उसने इंकार नहीं किया। वह बोला, 'सीखना अवश्य, पर दूर से।' मैं बोला, 'अच्छा।' अब विशेषता देखिए! वेद छुआछूत नहीं जानता अपितु आदमी छुआछूत रखता है, इस विचार तक तो उस ब्राह्मण ने पहुँचा दिया। मुझे भरोसा है कि कुछ अर्से में वे स्वयं भी छुआछूत नहीं मानेंगे। जब तक मनुष्यत्व है तब तक कोई किसी से छुआछूत न करें। बेचारे गरीबों से दूर रहना, उन्हें दुत्कारना, उन्हें पढ़ाना नहीं, क्या इससे मनुष्यत्व नहीं घटता? और अगर वे अनेक बार छू जाएं तो इसमें किसका दोष? पर डरने की बात तो यही है कि लम्बे समय तक मनुष्यता का मोल घटता जाएगा और उसके बजाय छुआछूत बढ़ जाएगी तो बेचारा मनुष्य मनुष्य नहीं रहेगा अपितु टेढ़-भंगी हो जाएगा! महात्मा गाँधी ऐसा ही कुछ कहते थे कि हमारे ही पाप से आज हम अंत्यज बन गए हैं। मुझे लगता है कि आज के ब्राह्मण का अंत्यज बनना जितना आसान है उतना अंत्यज का ब्राह्मण बनना कठिन नहीं है।

अंत्यज की चर्चा से गिजू भाई को बड़ के नीचे बैठकर पढ़ने वाला वह बालक याद आ जाता है। वे कहते हैं कि उसकी आँखें इतनी अधिक भावपूर्ण, प्रेमपूर्ण थीं कि शायद ही आज के किसी शिक्षक ने अपने शिष्य में देखी होंगी। बालक के हृदय में उत्कृष्ट प्रेम था। मेरे प्रति तो वह विशेष रूप से भावयुक्त था। ज्ञान की प्यास बुझाने वाले की तरफ वह मान, ममता तथा आभार के साथ

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 45

देखता था। वह मुझे कहता था, 'आप मुझे अच्छी तरह से सिखाइए, मैं भी अच्छी तरह से सीखूँगा। दूसरा लड़का न आए तो कोई बात नहीं। वह पढ़ना न चाहे तो कोई बात नहीं। मुझे पढ़ाइए। मैं सीखूँगा-पढ़ूँगा। मैं आपसे ही पढ़ूँगा, किसी और से नहीं।' इसका नाम है अभिमुखता। गिजू भाई के अनुसार ऐसे बच्चों को पढ़ाने में गुरू की गरिमा बढ़ती है। वे कहते हैं कि हमें तो सबको पढ़ाना है, बंजर धरती में हल जोतना है! हमें विद्यार्थियों की तरफ नहीं अपितु पाठ्यक्रम की तरफ देखना होता है, ऐसे में भला ऐसी प्रेमयुक्त आँखें देखने को कैसे मिलें? पर गुरभावी अन्तःकरण की समझ के लिए यह बालक एक महान् अध्ययन है। वह कह रहा था कि तुमसे ही पढ़ूँगा। दूसरों को न पढ़ाएँ तो कोई बात नहीं, मुझे पढ़ाइए। वह दूसरों से ईर्ष्या नहीं करता। वह कह रहा था कि दूसरे सीखना-पढ़ना चाहते हैं या नहीं, इससे उसे लेना देना नहीं है। मैं तो अपना जीवन खोजना चाहता हूँ। मुझे औरों की तरह नहीं, उनकी चिंता नहीं। मैं आप में तन्मय हो जाऊँ, आप में सराबोर हो जाऊँ, यह पात्र आपके द्वारा छलक उठे, बस इतना ही चाहिए। आप दूसरों पर बरसें, अवश्य बरसें, पर उनकी चिंता आप जानें। मैं तो अपनी बात सोच सकता हूँ और इसीलिए आपकी याचना करता हूँ। यह हृदय-प्रवाह अत्यन्त शुद्ध प्रेम का है। गिजू भाई स्वीकार करते हैं कि भंगी के गंदे फटेहाल बालक में उनको जो शुद्ध प्रेम देखने को मिला वैसा अन्यत्र स्वच्छ वस्त्र धारण करने वालों की टीमटाम के पीछे देखने को नहीं मिला, न मिलेगा।[1]

5.6 मूल्य शिक्षा

गिजू भाई ने प्रेम, परानुभूति, समता व समानता, स्वातंत्र्य, दया, करुणा, अहिंसा, अपरिग्रह, नियमन, मैत्रीभाव, सामाजिक संवेदनशीलता जैसे मूल्यों के बालकों में विकास किये जाने पर बल दिया है। उनके द्वारा वर्णित कुछ महत्वपूर्ण मूल्यों का भी यहाँ विवेचन किया गया है।

आत्म-साक्षात्कारः-

गिजू भाई कहते हैं कि मोक्ष या आत्म-साक्षात्कार के सम्बन्ध में तो उसी व्यक्ति को बोलने का अधिकार है, जो स्वयं मुक्त हो या आत्मज्ञानी हो। लेकिन फिर भी हम लोगों ने अपनी निम्न भावनाओं से मुक्ति हासिल की है। पशु स्वयं को जितना पहचान पाए हैं, उनसे कहीं अधिक हमने अपने को पहचाना है, अपनी क्षमता को जाना है। इस तरह स्थूल से सूक्ष्म में, अंधकार से प्रकाश में तथा पशुता से मानव बनने की दिशा में जाने वाला, इंद्रियों के स्थूल भोग से सूक्ष्म-संस्कारी क्रिया की तरफ जाने वाला, मन के स्थूल वैभवों से सूक्ष्म तत्त्व-चिंतन की तरफ जाने वाला तथा समस्त मानवीय क्षुद्रताओं से मुक्त होते-होते ऊँचाई की तरफ जाने वाला मनुष्य ही सच्चे अर्थ में मुमुक्षु है। ऐसी प्रवृत्ति का मार्ग ही मुक्तिमार्ग है। आत्म-साक्षात्कार का अंतिम अनुभव तो वही जानता है, जो

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 47

उसका अधिकारी हो, लेकिन मनुष्य जब से अपनी इंद्रियों व मन के विकारों, अविकारों, वेगावेग को पहचानने लगता है; तभी से वह आत्मदर्शन की दिशा में बढ़ने लगता है।[1]

सौंदर्यः-

सौंदर्य एकाग्रता की प्रेरणा देता है और थके हुए मन को आराम, शांति व आनंद देता है। ध्यान एवं शांति के सर्वोत्तम स्थल हमारे देव-मंदिर कई बार श्रेष्ठ सौंदर्ययुक्त कलाकृतियों से युक्त देखने में आते हैं, उसकी यही वजह है। विज्ञान की दृष्टि से मनुष्य के जीवन के वास्तविक विकास का स्थल यही है, जहां अप्रतिम सौंदर्य का अभाव नहीं। गिजू भाई कहते हैं कि अगर हमें अपने विद्यालयों को मानवीय विकास की अवलोकन-भूमि-प्रयोगशालाएं बनाना हो तो शालाओं को सौंदर्य से हर्गिज विमुख नहीं रखा जा सकता। आज के यांत्रिक शक्ति वाले तथा अधिभौतिक दृष्टि से जीवन यापन करने वाले जनसमुदाय के युग में सौन्दर्य का इतना संहार हो रहा है कि जितना पहले कभी नहीं हुआ। आज के साधन सुन्दर जरूर कहे जाते हैं, पर वस्तुतः सुन्दर नहीं है - सुन्दरता की थोड़ी-बहुत मीसांसा करने वाले को भी इसका तत्काल अनुभव हो जाता है, अत्यंत सस्ती है। सौंदर्य कीमती चीजों में नहीं रहता। सौंदर्य का वस्तु के साथ सम्बन्ध नहीं है, अपितु वस्तुओं से उद्भूत होने वाली प्रेरणा अथवा चेतना से सम्बन्धित है। हमें वस्तु के मूल्य पर सौंदर्य को आधारित नहीं करना है, अपितु वस्तु में रहने वाले प्राण की उच्चता पर आधृत रखना है।[2]

प्रेमः-

गिजू भाई की दृष्टि में मनुष्य का मनुष्य के प्रति प्रेम सर्वाधिक नाजुक चीज है। यह प्रेम अत्यधिक निर्व्याज होता है तथापि भव्य होता है। वैज्ञानिक दृष्टि प्राप्त करने के लिए इसकी जरूरत पड़ती है। पर बहुत कम सौभाग्यशाली लोग ही यह दृष्टि प्राप्त कर पाते हैं, जबकि मनुष्य के अधिकारी तो सभी बन सकते हैं। भगवान ने प्रेम करने का मानवीय अधिकार चंद संस्कारी लोगों अथवा वर्ग के लिए ही सुरक्षित नहीं रखा। यह अधिकार नैसर्गिक है और सार्वजनिक है।[3]

स्वाधीनताः-

गिजू भाई का मानना है कि स्वतंत्रता का सही अर्थ, उसका सच्चा रहस्य, उसका सही मर्म अभी हमारी समझ में नहीं आया। इसका कारण यह है कि हमारा सामाजिक जीवन और वातावरण इतनी अधिक गुलामी से युक्त है कि प्रति क्षण हम गुलामी का ही श्वासोच्छ्वास ले रहे हैं। जिस युग में 'सेवक' नामक संस्था विद्यमान है, उस युग में स्वाधीन जीवन का ख्याल आ पाना ही मुश्किल है; फिर उसके बीजारोपण की अथवा विकास की तो बात ही क्या करें? गुलामी के दिनों में स्वातंत्र्य का सच्चा अर्थ तो विकृत और अंधकार में ही था। जो जनता 'सेवक' नामक संस्था के अस्तित्व को

1- गिजू भाई बधेका - वाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 25

2- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 62

3- वही, पृ0 76

स्वीकार करती है और यह मानती है कि एक आदमी दूसरे आदमी की नौकरी करता है तो इसमें उन्नति की बात है, तो निःसंदेह जानिये कि ऐसी जनता के लहू में गुलामी है। हम सब ऐसी ही गुलाम वृत्ति के दास होने के कारण मनुष्य की चाकरी को सभ्यता, नम्रता, उदारता, समर्पण आदि सुंदर नाम देकर अपनी निर्बलता को छिपाते हैं।

गिजू भाई के अनुसार सच तो यह है कि जो व्यक्ति नौकरी करने लगता है उसकी स्वाधीन चेतना घट जाती है, शक्ति मर्यादित हो जाती है। वे कहते हैं कि- 'मुझे चाकरी की जरूरत नहीं है क्योंकि मैं निर्वीर्य नहीं हूँ'- यह विचार भावी मानवीय अस्तित्व का आधार-स्तंभ होगा। मनुष्य को आत्मा का स्वराज्य मिले, उससे पहले इस विचार को उसने सिद्ध कर लिया होगा। मात्र स्वाधीन मनुष्य ही स्वराज्य का उपयोग कर सकता है। स्वाधीन मनुष्य के लिए ही राज्य है। जो दूसरों को पराधीन रखकर स्वयं भी पराधीन रहता है वह स्वराज्य का मुंह कभी नहीं देख सकेगा। जो शिक्षा बालक को स्वाधीनता के मार्ग पर आगे बढ़ने में मदद देती है वही शिक्षा प्राणवान है। स्वतंत्र व्यक्ति आत्म-निर्भर होता है।

गिजू भाई मानते हैं कि वस्तुतः हमारे नौकर हम पर आश्रित नहीं हैं अपितु हम ही उन पर आश्रित हैं। पर जव तक हम यह स्वीकार नहीं करेंगे कि हमारी वर्तमान नैतिक दशा अधम स्तर तक जा चुकी है, तब तक हम यह बात कदापि स्वीकार नहीं करेंगे कि यह 'सेवक' संस्था जो हमारे सामाजिक विधान का प्रधान अंग बनी हुई है, गैर-जरूरी मदद स्वाभाविक विकास में अवरोध पैदा करती है। वे कहते हैं कि हमें बालकों को ऐसी ही सहायता देनी चाहिए कि जिससे वे अपने निजी उद्देश्य पूरे करने और अपनी इच्छाएँ तृप्त करने की शक्ति प्राप्त कर लें। यही सब स्वाधीनता का शिक्षण है। पराधीनता से स्वेच्छाचारिता पैदा होती है। जो लोग दूसरों की चाकरी से इतराते-इठलाते हैं उनमें स्वेच्छाचारिता आती हैं। नौकरी की सेवा-टहल लेकर मालिक उन पर हुक्म चलाते हैं, इसका कारण यही है कि चाकरी मिल जाने से वह निर्बल हो गया है और अपनी स्वाधीनता को खो बैठा है।[1]

नियमनः-

व्यक्ति द्वारा स्वतः व्यवस्थित व संयमित ढंग से कार्यों को सम्पन्न करने का अर्थ है - नियमन। गिजू भाइ का विश्वास है कि नियमन उपदेशों से नहीं लाया जा सकता। ऐसा नियमन मुँह-जबानी आदेश अथवा उपदेश से अर्थात् वर्तमान प्रचलित नियमन की युक्तियों से तो आ ही नहीं सकता। ऐसा सच्चा स्वानुशासन शिक्षक पर निर्भर नहीं रहता, अपितु प्रत्येक बालक के अंतर्जीवन में होने वाले विकास पर अवलंबित है। स्वानुशासन उपालंभों से अथवा बड़ों के उपदेश से नहीं लाया

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 31

जा सकता। गलतियां निकालकर, गलतियों के लिए उपालंभ देकर अथवा गलतियों के लिए बालक को सामने डांट-डपटकर नियमन नहीं लाया जा सकता। कदाचित् शुरू-शुरू में इन तरीकों से ऊपरी अनुशासन दिखाई देगा, पर वह लंबे समय तक नहीं टिक पाएगा। सच्चे नियमन का प्रथम प्रभाव प्रवृत्तियों से उदित होता है। किसी क्षण किसी प्रवृत्ति विशेष में बालक को अपूर्व आनंद आने लगता है। उसके चेहरे के भावों से, अत्यंत एकाग्रता व काम में बरती जाने वाली सावधानी से इस बात का प्रमाण भी मिलता है। बस, इसी क्षण बालक के नियमन के मार्ग पर पहला कदम रखा है, यही समझ लेना चाहिए, फिर बालक की प्रवृत्ति का प्रकार चाहे जो हो, भले ही वह इंद्रिय-शिक्षण के उपकरणों वाली क्रीड़ा हो या बटन लगाने की प्रवृत्ति हो, या रकाबियाँ उठाकर चलने की प्रवृत्ति हों।

वे मानते हैं कि यह प्रवृत्ति स्वेच्छाचारिता से बालकों पर लादी नहीं जा सकती। यह प्रवृत्ति स्वयं-स्फुरित होनी चाहिए। बालक के विकास की जरूरतों से उद्भूत होनी चाहिए और वह उद्भूत होती ही है, क्योंकि विकास के लिए मनुष्य स्वभाववश प्रवृत्ति करना चाहता है। जिस प्रवृत्ति की तरफ हमारे जीवन की अंत:शक्तियाँ बिना रूके मुड़ जाती हैं, अथवा जिस प्रवृत्ति में मनुष्य हर कदम पर ऊपर चढ़ता जाता है, वह प्रवृत्ति ही नियमन देने वाली होती है। ऐसी प्रवृत्ति ही मनुष्य में सुव्यवस्था लाती है और उसके समक्ष विकास की अनंत संभावनाओं के प्रदेश उद्घाटित करती है।

गिजू भाई की दृष्टि में नियमन यथार्थ नहीं, वस्तु नहीं, एक मार्ग है। इस मार्ग पर चलने वाले बालक में सद्-असद् के विचार यथार्थत: पैदा होते हैं। यह मार्ग निश्चित हेतु को सिद्ध करने के लिए अंत:करण से उभरती प्रवृत्ति को करने में निहित है। निश्चित हेतु को सिद्ध करने के लिए की गयी प्रवृत्तियों से आतंरिक सुव्यवस्था जनमती है और बालक को उसका भव्य आनंद प्राप्त होता है। भिन्न-भिन्न क्रियाएं करते समय वह अपने अंतर में जागृति और आनंद अनुभव करता है। इनसे वह अपना शब्द-भंडार निर्मित करता है। वह इनसे माधुर्य तथा बल संचित करता है। यह माधुर्य और बल धार्मिकता का मूल है। जब सुव्यवस्था प्रवृत्ति करने के परिणामस्वरूप आध्यात्मिक ज्योति प्रकट होती है तब उसके चेहरे तथा गंभीर चमक-युक्त आँखों के भाव सरस व कोमल बनते हैं।[1]

वे कहते हैं कि बालक की अंतर-वृत्ति क्या है, किस दिशा में जा रही है, यह हमें देखना है। हम नियमन के लिए उस पर कोई प्रवृत्ति लादें, इसकी बजाय उसे उसके द्वारा पसंद की गयी प्रवृत्ति करने को देंगे तो बालक में नियमन आ जाएगा, यह एक यथार्थ सिद्धांत है। अत: हम बालकों की प्रवृत्ति के बीच में न आएं, अपितु उसकी अपनी प्रवृत्ति को सम्मान दें। उनका विश्वास है कि जो बालक संयमित बन जाता है वह निष्क्रियता से भटकता नहीं, अपितु पहले से अधिक व्यवस्थित बनता है। वह विकास में एक डग आगे बढ़ाता है और स्वाधीनता का उपयोग करता है। उसकी शांति का

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 36-37

अर्थ निष्क्रियता नहीं, अपितु वह एक प्रवृत्ति ही है।

नियमन विकास का परिणाम है। विकास क्रमशः तथा धीमे-धीमे होने वाली क्रियाओं का फल है। अतः बालक को पसंद हो, ऐसी प्रवृत्तियां अपनी गति से करने की उन्हें पूर्ण अनुकूलता दी जानी चाहिए। हमें बिना प्रयोजन बीच में नहीं आना चाहिए। गिजू भाई के अनुसार जब हम नन्हें बालकों से संयमी बनने की बात कहते हैं, तब वस्तुतः हम उनसे आकाश के चन्द्रमा की माँग करते हैं।

वे कहते हैं कि सच्चा नियमन किसमें निहित है, हमें इस पर विचार करना चाहिए। सामान्यतः बालकों में नियमन नैसर्गिक है। किशोरों और युवाओं में यह स्वाभाविक है। मनुष्य में यह स्वयं जन्मता है। जनता का यह अत्यन्त बलवान लक्षण है। मनुष्य-हृदय में यह चीज प्रेरणा जितनी ही दृढ़ है। नियमन के चमत्कारिक गुण पर ही सामाजिक जीवन का प्रासाद खड़ा है। याने यह उसकी नींव की तरह है। नियमन ने जो राज-मार्ग बनाया है उस पर संस्कृति का रथ चला जा रहा है।

नियमन याने समर्पण। संसार में नियमन को लेकर इतने सारे प्रसंग हैं कि हम इसे पहचानते भी नहीं। जो वीर युद्ध के नियमन का अनुसरण करता हुआ अपनी जीवन-सुध को समर्पित करता है, हम उसकी प्रशंसा करते हैं, पर अगर वह वहाँ से भाग छूटता है तो उसे बदमाश या पागल कहने लगते हैं। अनेक लोगों को जीवन-मार्ग पर आगे ले चलने वाले व्यक्ति की आज्ञा के अनुसरण का गहन आध्यात्मिक अनुभव होता है, उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए जो कुछ भी भेंट देनी पड़े, उसके लिए उनकी इच्छा बनी रहती है।

गिजू भाई नियमन को जीवन का कानून मानते हैं। बालक में यह गुण आ सकता है। लेकिन वे कहते हैं कि अभी हमने बालकों को पहचाना नहीं। नियमन की शक्ति विकसित करने के लिए उनमें जिस क्रियाशक्ति की जरूरत पड़ती है, उसे हमने कहाँ विकसित होने दिया। उल्टे, हम उसके बीच बाधक ही बने हैं। मात्र इच्छा करने से संयमित नहीं हुआ जा सकता। इसके लिए मनुष्य में क्रियाशक्ति का बल होना चाहिए। जब हम किसी बालक को कोई काम करने का आदेश देते हैं तो हमारे मन में यह बात छिपी रहती है कि अमुक आदेश का पालन करने के लिए बालक में क्रिया करने की अथवा न करने की शक्ति विद्यमान है। अगर बालक की क्रियाशक्ति और बुद्धि का बराबर विकास हो तो नियमन स्वाभाविक है। यह क्रियाशक्ति नियमन का प्राण है।[1]

स्वातंत्र्यः-

स्वातंत्र्य वह मूल्य है, जिस पर गिजू भाई विशेष बल देते हैं। स्वातंत्र्य याने प्रवृत्ति। स्वातंत्र्य में से ही संयमन याने व्यवस्था प्रकट होती है। स्वातंत्र्य का अर्थ अतंत्र या परतंत्र - दोनों में से एक

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 43-44

भी नहीं है। हमारी अथवा अन्य की निर्भरता से मुक्त करके बालक को स्वयं अपने पर आधारित करने का नाम है – स्वतंत्रता के मार्ग पर ले जाना।

नियमन में, महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अपनी पसंद की प्रवृत्ति का वह बार-बार कितना पुनरावर्तन करता है। प्रवृत्ति का पुनरावर्तन अन्तर-रस का साक्षी है। नियमन के मार्ग में बढ़ने वाले बालक में ऐसा पुनरावर्तन स्वाभाविक है। बालक का यथार्थ ज्ञान अथवा शक्ति पुनरावर्तन से जाग्रत होते हैं।

उनके अनुसार नियमन में पुनरावर्तन का महत्वपूर्ण स्थान है। जब बालक पुनरावर्तन की स्थिति में पहुंच जाएं तो समझ लेना चाहिए कि वे स्वयं-विकास की राह पर हैं। इसका बहिर्-चिह्न है- सवाधीनता या नियमन। बेशक, सभी बच्चे पुनरावर्तन करने में एक समान नहीं होते। पुनरावर्तन का आधार भीतरी आवश्यकता पर टिका है।

स्वतंत्रता पर निर्मित शिक्षा-पद्धति का काम यह है कि उस बालक को स्वतंत्र बनाने की शिक्षा देने के लिए आगे आना है। स्वतंत्र वातावरण में बालक जैसे-जैसे धीमे-धीमे आगे बढ़ता जाएगा वैसे-वैसे स्वयं को अधिक से अधिक व्यक्त करता जाएंगा, अपने मूल स्वभाव को अधिक निर्मलता से बाहर ला सकेगा। अतएव शिक्षण में प्राथमिक महत्त्व की बात है बालक को स्वाधीनता के मार्ग पर लेकर चलना।

गिजू भाई मानते हैं कि एक बार स्वतंत्रता के सिद्धांत को अंगीकार करने की बात है, फिर तो दंड और पुरस्कार अपने आप भाग जायेंगे। स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप संयम सीखा हुआ व्यक्ति हर हालत में ऐसे पुरस्कार की स्पृहा रखता है कि जो उसे कभी अपमानित नहीं होने देता, न ही निराश करता। शिक्षाविद् का कर्त्तव्य यह है कि बालक के मन में कोई बात जबरन न ठसाये, न ही उसे खाली बिठाये रखे। काम करने के लिए संतुलन अर्जित करने का नाम है संयमन। कुछ न करके मात्र निष्क्रिय बन जाने, बैठे ही रहने अथवा बताये जितना काम करने का नाम संयमन नहीं है। वे कहते हैं कि अगर शिक्षण में सच्ची स्वतंत्रता दाखिल हो जाए तो और तमाम मुश्किलों के साथ दंड व पुरस्कार की प्रथा भी समाप्त हो जाए और बालक स्वयं-स्फुरण से स्वतंत्र प्रवृत्तियों में लगकर स्वतंत्रा के मार्ग पर बढ़ने लगे, अपने-आप उसमें नियमन जा जाए।

गिजू भाई के अनुसार संयमित वह है जो स्वयं अपना राजा है। याने जब उसे अपने जीवन में कोई कार्य करने की जरूरत पड़े तो उस सम्बन्ध में वह अपना सुंदर व्यवहार व्यक्त कर सके।[1]

उन्हीं के शब्दों में –"जो स्वयं स्वतंत्र नहीं है वह दूसरों को स्वतंत्रता देने में सक्षम नहीं हो सकता।"[2]

1- गिजू भाई बधेका – मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 46

2- गिजू भाई बधेका – चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 42

निर्भयता:-

गिजू भाई के अनुसार निर्भय व्यक्ति ही सच्चा व्यक्ति है। वे कहते हैं कि जिन्दगी को जोखिम में डालना हर हालत में निर्भयता का लक्षण नहीं होता; जिन्दगी को बचाना हर हालत में डरपोक का लक्षण नहीं होता। उनके अनुसार निर्भयता या तो पूर्ण अँधेरे में अर्थात् अज्ञान में है, या फिर पूर्ण प्रकाश में अर्थात् ज्ञान में है, यद्यपि दोनों की कीमत अलग ही है।

वे कहते हैं कि इन्द्रियों में जिसका अनुभव नहीं किया जा सकता उसे न मानना चाहिए और जो इंद्रियों से अनुभव हो रहा है उसके पीछे मानवी शक्ति होनी चाहिए, ऐसी मान्यता निर्भयता की शिक्षा है। ऐसी निर्भयता की शिक्षा इंद्रियातीत अनुभवों के विषय में भी निर्भय रहने का मार्ग प्रशस्त करती है।[1]

5.7 प्रकृति-शिक्षा

प्रकृति का साथ और सहवास बालक में जीवन का संचार करता है। पृथ्वी के सीधे स्पर्श में बालक का असीम आनन्द छिपा है। बालक को खुले रहकर खेलना बहुत अच्छा लगता है। बालक की दृष्टि में सृष्टि का सारा जीवन ही चमत्कारों से भरा-पूरा है। धरती की निर्दोष धूल बालक को चन्दन से भी अधिक प्यारी लगती है। हवा की मीठी लहरें बालक को हमारे वासना-पूरित चुम्बन से कहीं अधिक लगती हैं। गिजू भाई कहते हैं कि हमको इतनी फुर्सत ही कहाँ कि हम अपने बालक के साथ चाँद की चाँदनी में घूमने निकलें? वे पूछते हैं कि क्या हमको चाँदनी पर कविता नहीं लिखनी है? क्या हमको हरिण और बुढ़िया लोक-कथा के मूल की खोज नहीं करनी है? क्या हमको इस बात का पता नहीं लगाना है कि चन्द्रमा में जीते जागते प्राणी रहते हैं या नहीं? किन्तु इन सब कामों के लिए आज फुर्सत किसके पास है? मनुष्य सच्चा कवि कैसे बने? मनुष्य चित्रकला में चमत्कार के दर्शन किस तरह करे? प्रकृति के पीए बिना मनुष्य प्रकृति को चित्रित कैसे करें? वह उसका गान कैसे गाए? वह उस पर कविता कैसे लिखे? क्या बिना भोजन के भी पेट कभी करता है? अपने बालक को प्रकृति से दूर रखकर हम उसको क्या बनाएंगे? देव या दानव?[2]

गिजू भाई मानते हैं कि उगते सूरज की कोमल किरणें बालक को हमारे खुरदरे हाथों से अधिक मुलायम लगती हैं। जहाँ हमको कुछ नहीं दिखाई देता, वहां बालक को चमत्कार दिखाई देता है। छोटे-से पतंगे को देखकर बालक पागल बन जाता है। पतंगे के साथ वह खुद भी पतंगा बन जाता है। मेंढक को देखकर वह उछलने और कूदने लगता है। घोड़े को देखकर वह हिनहिनाने लगता है और गाय को देखकर वह उसको टिटकारने लगता है! घास का एक छोटा-सा तिनका बालक के लिए एक बड़ी संग्रहणीय बीज बन जाता है। वे कहते हैं कि कभी आप अपने बालक की जेब टटोलेंगे तो उसमें

1- गिजू भाई बधेका - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 60-61

2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 25

आपको घास के तिनके, फूल और पत्तियाँ ठूँसी हुई मिलेंगी। प्रकृति के साथ समरस हुए बिना बालक प्रकृति के रहस्यों को कैसे समझ सकेगा?

चाँद की चाँदनी, नन्ही-सी नदी, खेतों की मिट्टी, बाड़ी के घर, टेकरी के कंकर, खुले मैदान की हवा और आसमान के रंग - ये सब वे उपहार हैं, जो बालक को प्रकृति से प्राप्त हुए हैं।

पहले बालक प्रकृति की मिठास को समझता है और बाद में वह हमारी मिठास को समझ पाता है। नीचे धूल में लोटकर जब बालक ऊपर आसमान की ओर ताकता है, तो उस समय वह क्या करता है? उस समय वह सारी प्रकृति को पी रहा होता है। वह सारी सृष्टि पर छा जाना चाहता है। चाँद बालक को नित नया आनन्द देता है।[1]

प्रकृति द्वारा यह शिक्षण ही गिजू भाई की दृष्टि में स्वाभाविक शिक्षण है। इस शिक्षण में नैतिक विकास सहज स्वाभाविक बनता है और वह धार्मिक विकास के सुदृढ़ आधार के रूप में चिरस्थाई रहता है। इसके लाभ वे इस प्रकार गिनाते हैं-

1. **प्रकृति-शिक्षण से नीति-शिक्षण उद्भूत होता है :-** वनस्पति तथा प्राणि-संवर्द्धन के अवलोकन से बालक का ध्यान मानव-विकास की प्रक्रिया की तरफ जाता है। बालक पौधों एवं पशुओं का बड़े ही गौर से अवलोकन करता है, मनोयोग से उनकी जरूरतें पूरी करता है तथा उनके विकास में आनन्द लेता है। इस ज्ञान से उसे अपने चारों तरफ अवलोकन करने वाले तथा आवश्यकताएं पूरी करने वाले शिक्षण का महत्त्व समझ में आता है। धीमे-धीमे यह बात उसकी समझ में आती है कि जिस प्रकार वह स्वयं वनस्पति एवं पशुओं की तरफ उन्मुख है उसी तरह शिक्षण भी उसकी तरफ उन्मुख है। वह अपने निजी अनुभवों के द्वारा दूसरों के हृदय को परख सकता है तथा उनकी हार्दिक संभाल एवं प्रेम की सच्ची कद्र कर सकता है। इस आन्तरिक अनुभव के परिणामस्वरूप बालक माता-पिता व गुरू की महत्ता को भली-भांति समझ लेता है। थोथे नीतिशास्त्र एवं बौद्धिक शिक्षण से बालक को जो ज्ञान नहीं दिया जा सकता वह ज्ञान और वह भावना बालक के हृदय में वनस्पति एवं पशुओं-प्राणियों के अवलोकन से सहज ही उद्भूत हो जाती है। यहां बागवानी तथा प्राणि-संवर्द्धन से नैतिक विकास का बीजारोपण होता है। बालक इस कार्य से चेतना जगत के साथ एक प्रकार का साम्य, एक जीवन्त सम्बन्ध महसूस करता है। इस कार्य से बालकों की अवलोकन क्षमता विकसित होती है, जो वैज्ञानिक ज्ञान अर्जित करने का प्रथम सोपान मानी जाती है।

2. **प्रकृति-शिक्षण में स्व-शिक्षण के मूल निहित है :-** प्रौधों और प्राणियों के पालन-पोषण में लगे हुए बालक को जिस समय अपने अनुभव से यह पता लगता है कि पौधों का जीवन यथासमय ध्यानपूर्वक आहार देने पर निर्भर करता है, उन्हें पानी-खाद न देंगे तो वे सूख जायेंगे, प्राणी भूखे मर

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 26

जायेंगे- उसी समय से मानो उसे अपने जीवन के परम कर्त्तव्य का एकाएक ज्ञान होता है, वह जागृत-सावधान हो जाता है-मानो उसके भीतर निरंतर एक आवाज सुनाई देती है कि जो काम तुमने अपने जिम्मे लिया है, उसे हर्गिज भूल मत जाना। अन्तर्मन उसे निरन्तर याद दिलाता रहता है, अपने दायित्व-बोध का स्मरण कराने वाली यह आवाज न माता-पिता की आज्ञा होती है, न गुरू का उपदेश। यह आवाज बालक की देखरेख में पनपने वाले जीवों की है। यह आवाज हर पल अपने विकास के लिए बालक को निमंत्रित करती है। बालक जिन प्राणियों का पालन-पोषण करता है और जिन पौधों की देखभाल करता है उनके साथ उसकी सुदृढ़ मैत्री, ऐसा एक दृढ़ सम्बन्ध बन जाता है कि माता-पिता अथवा गुरूजी उसे दायित्व-बोध कराएं या न कराएं, धार्मिक-शिक्षा उनमें धर्मबुद्धि उत्पन्न करे या न करे, तब भी बालक अपने इन मित्रों के लिए सभी तरह से काम करता ही रहता है। बिना किसी बाहरी आदेश, उपदेश या प्रलोभन के उनका यह मित्र-कर्म चलता रहता है। इसी में स्व-शिक्षण का रहस्य समाहित है।

3. **प्रकृति की शिक्षा धैर्य एवं विश्वास की पोषक होती है :-** जमीन में बीजों को बोने की क्रिया से लेकर जब तक उसका अंकुर नहीं फूटता, उस पर धीमे-धीमे डालियाँ व पत्ते नहीं आ जाते और फिर फूल व फल नहीं आ जाते, तब तक की सम्पूर्ण क्रिया को निरंतर देखने में बालक की अक्षय श्रद्धा एवं धैर्य की पूर्ण शिक्षा समाहित रहती है। धैर्य एवं आशा भरे उत्साह के गुण में श्रद्धा का मूल निहित होता है और श्रद्धा जीवन की आधारशिला है। जीवन की यह फिलोसोफी बालक यहां स्वाभाविक रीति से अपने जीवन में उतारते हैं। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों निःसंदेह यही होगा-इस तरह प्रतीक्षा करने, तपश्चर्या करने में ही श्रद्धा का बल समाया हुआ है। यही बाल बालक वनस्पति विकास के अवलोकन द्वारा स्वयं में भरता है। जो धीरज और विश्वास शास्त्र सुनने से पैदा नहीं होता वह इस बागवानी के काम से उत्पन्न होता है।

गिजू भाई कहते हैं कि बालक को हम जो सामाजिक-शिक्षण देना चाहते हैं, उसका उद्देश्य यह होना चाहिए कि बालक को स्वतंत्र रहने में जो सुख व आनंद मिलता है, उससे कही अधिक सुख और आनंद उसे सामाजिक जीवन में प्राप्त हो (बालक को किसी प्रकार का नुकसान किये बगैर)। अतएव बालक की प्राकृतिक स्वतंत्रता हमें उतनी ही मात्रा में लेनी चाहिए कि जिसके परिणामस्वरूप उसे सामाजिक जीवन में अधिक सुख व आनंद मिले और वह भी अन्य निरर्थक क्षतियों का शिकार न बने। यदि हम सचमुच ऐसा कर सकें तभी हम बालक का प्राकृतिक सुख पाने के अधिकारी हैं। पर हम लोग सामाजिक शिक्षण देने के नाम पर उसके प्राकृतिक सुख में बाधा डालने लगते हैं। आजकल ऐसा कहा जाता है कि बाल-शिक्षण में बहुत प्रगति हो गयी है, फिर भी हम बालकों को

अपनी अंतरात्मा व्यक्त करने तथा अपनी आंतरिक क्षुधा को तृप्त करने से उन्हें अभी तक रोकते रहे हैं। हम अभी तक इस भ्रांत धारणा से मुक्त नहीं हुए कि बालकों को स्वतंत्रता दिये जाने से अत्यंत नुकसान होता है। हम अब भी उन्हें अपने लिए खिलौने समझते हैं, मानो वे हमारे आनंद, लालन-पालन और लाड़-दुलार के पुतले मात्र हों। फूलों से लदे बाग में उधर-उधर दौड़कते बालक देखकर एक अच्छा-भला शिक्षक और एक समझदार समझी जाने वाली माँ भी यही सलाह देगी कि 'फूलों को मत छूना' या 'घास में उछल-कूद मत करना।' वे यही समझते हैं कि दौड़कर पैरों को गति देने से तथा ताजा हवा लेने से शरीर की सभी जरूरतें पूरी हो जाती हैं। पर यहाँ वे गलती करते हैं। मात्र शरीर के विकास के लिए बाग में घूमना नाकाफी है। वस्तुतः प्रकृति के सभी अवयवों के सम्पर्क में आने में ही प्रकृति का शिक्षण समाहित है। प्रकृति के प्राणदायी तत्त्वों की बातें करने, महिमा गाने या मात्र देखने से कोई लाभ नहीं है। जब बालक और प्रकृति के अवयवों के बीच से माता-पिता और शिक्षक अलग हट जायेंगे और बालक प्रत्यक्षतया प्रकृति से संपर्क-संसर्ग जोड़ लेगा तभी उसे प्रकृति के बहुमूल्य रत्न प्राप्त हो पायेंगे। जब शारीरिक-विकास के लिए भी इतनी बात है तब भला आत्मिक विकास के लिए तो कहा भी क्या जाए? शरीर एवं आत्मा के नैसर्गिक विकास का यही रास्ता है कि बालक को प्रत्यक्षतया जीवंत प्रकृति के प्राणवान परिबलों के संसर्ग में छोड़ दें तथा सृष्टि के समृद्ध भंडारों से वह जो कुछ प्राप्त करना चाहता है, उसे प्राप्त करने दें।[1]

गिजू भाई स्वीकार करते हैं कि मनुष्य ने अपने सामाजिक जीवन को सुखद बनाया है तथा समष्टि जीवन को जीवंत प्रेम से बांधा है, फिर भी उसको यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि मनुष्य सबसे पहले प्रकृति का बेटा है। वह प्रकृति की गोद से ही मनुष्य की गोद में आया है। प्रकृति ही मनुष्य की आत्मा एवं देह की प्रथम धाय है अतः उसे चाहिए कि वह बाल्यावस्था से ही प्रकृति के अवदान से अपने प्राणों को भर ले। अपने आत्मिक विकास के तत्त्व उसे प्रकृति से ही ग्रहण कर लेने चाहिए। प्रकृति से हमारा प्रगाढ़ सम्बन्ध है अतएव उसका हम पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य है।

ऐसे में ही गिजू भाई को यह मार्ग समीचीन प्रतीत होता है कि प्रकृति-शिक्षण तथा सामाजिक-शिक्षण को समन्वित किया जाए। उनका मत है कि प्राकृतिक संबंध से जुड़े बालक को सामाजिक-शिक्षण देना जरूरी है क्योंकि सामाजिक जीवन ही उसका अभीष्ट है। लेकिन साथ ही साथ यह भी जरूरी है कि बालक को प्रकृति जीवन से विलग न होने दें। जिस बालक को प्रकृति-शिक्षण पहले नहीं मिलता, उसका जीवन पड़े-पड़े सड़ जाता है, तब उस पर सामाजिक शिक्षण का लाभ कम असर डालता है। उस पर की गयी शिक्षण की मेहनत बेकार जाती है। हमें प्रकृति तथा समाज के मध्य का अंतर समाप्त करना होगा। उसे घटाने के लिए बालक को प्रकृति के परिबलों के

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 221-225

बीच रखने तथा उसमें उसे अपना विकास ढूँढ़ने देने की आवश्यकता है। नितांत छोटे बालक को माँ की गोद से छीनना और जबरन उसे विद्यालय भेजना जितना भयंकर अत्याचार है, प्रकृति की गोद में खेलते बालक को वहाँ से हटाकर सामाजिक शिक्षण की बेड़ियों में जकड़ देना भी उतना ही भयंकर अत्याचार है। माँ के और विद्यालय के बीच में आवागमन करने वाला बालक विद्यालय जाने योग्य बन जाए, यह प्रबंध करना जिस प्रकार आवश्यक है, उसी प्रकार प्रकृति एवं समाज की बीच आने-जाने वाला बालक समाज-प्रिय बने यह प्रबंध करना भी लाभदायक है। इन दिनों बाल-आरोग्य की दृष्टि से प्रकृति-शिक्षण पर ध्यान दिया जाने लगा है।

षष्ठम् अध्याय

वर्तमान भारतीय परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में गिजू भाई के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता

मनुष्य अपने विकास को लेकर आत्मलक्ष्मी है। इतनी विशाल दुनिया उसके विकास का साधन बनी हुई है, फिर भी व्यक्तिगत विकास के लिए वह उपकरणों का चयन करता है। उसके विकास के माध्यम कौन-कौन से हैं, वे उसे ढूँढ़ने पड़ते हैं और उन्हें रखकर दूसरों को वह छोड़ देता है। मनुष्येतर प्राणियों को प्रेरणा से ही पता लग जाता है कि उन्हें क्या चाहिए और क्या नहीं। अतएव उन्हें अपने विकास के लिए दुनिया में ढूँढ़ने नहीं जाना पड़ता, न उस पर उन्हें प्रयोग करने पड़ते। उनके अनुसार दुनिया का अस्तित्व बस इसी में है कि प्रेरणानुसारी जीवन जीया जाए। लेकिन मनुष्य में अन्य प्राणियों वाली प्रेरणा का तत्त्व बहुत कम होता है और बुद्धि का तत्त्व बहुत अधिक, इसी कारण उनकी स्थिति प्राणियों से भिन्न है। विकास निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। विकास के साधन अनंत हैं। इस विशाल विकास को अनंतता में से सिद्ध करने का काम जितना ऊँचा है उतना ही मुश्किल भी। इस पर सिद्धि में ही मनुष्य मनुष्य है। मनुष्य में प्रेरणा नहीं, फिर भी आत्मलक्ष्मी होने के कारण उसकी दिशा सुस्पष्ट है। जब मनुष्य को स्वतंत्र स्थिति में स्वयं-स्फुरणा से विकास साधने का मौका मिलेगा, तभी वह इस विशाल संसार से अपने विकास के साधन ढूँढ़कर आत्मतृप्ति पा सकेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। और यह काम बिना किसी शिक्षा के संभव है। परन्तु शिक्षण की क्रिया एक उपयोगी क्रिया है, इसमें अनुभव और विज्ञान की बुद्धिमत्ता का सार है। अतः अगर शिक्षण की क्रिया मानव-विकास के सहज नियमों को ढूँढकर जगत की पाठशाला से एक छोटी-सी पाठशाला में लाएँ और वहाँ मनुष्य को विकास करने का प्रबंध कर दें तो विकास के पीछे मनुष्य ने अब तक जितना समय, बुद्धि और शक्ति का अपव्यय किया है, नये मनुष्य को वह सब न करना पड़े। इस दृष्टि से बालमंदिर बाल-जगत मंदिर है। इस मंदिर में प्रकृति के जो साधन मनुष्य के विकास हेतु मुक्त पड़े हैं, वे मनोवैज्ञानिक की दृष्टि से अधिक सरल हैं, अधिक प्रत्यक्ष हैं। प्रकृति के आँगन में शिक्षा को उत्तेजित करने वाली सामग्री का भंडार भरा है, पर सीधे-सीधे वे शिक्षा के सहज नियमों का अनुसरण करके संजोये नहीं गये हैं।

मॉण्टेसरी के साधन आजमाए हुए हैं, सिद्ध हैं। बालमन जितना सादा और अकृत्रिम होता है उतने ही सादे ये साधन हैं। बाल-विकास की तमाम प्राथमिक जरूरतों को ये तृप्ति देने वाले हैं। इंद्रिय-विकास, शब्द-ज्ञान, बुद्धि की कसरत, प्रकृति का परिचय, वाणी संरक्षण आदि मॉण्टेसरी-पद्धति की वस्तुएँ बाल-जीवन की ही है।

इन साधनों की महत्ता इनमें विद्यमान रहने वाले स्वयं-शिक्षण को उत्तेजित करने की शक्ति में है। स्वतंत्रता और स्फूर्ति की शिक्षा के प्रबंध में स्वयं-शिक्षण ही संभव है और वहाँ शिक्षण-उपकरण भी स्व-शिक्षण प्रदान करने वाले, याने स्वयं भूल सुधार करने वाले होने चाहिएं। मॉण्टेसरी के उपकरण (साहित्य) इसी प्रकार के हैं। प्रकृति का नियम भी यही है। प्रकृति उपदेश नहीं देती, ठोकर लगाकर भूल सुधारती है। अर्थात् प्रकृति की सामग्री स्वयं-शिक्षण देने वाली है। जिन साधनों के व्यवहार में मुश्किल नहीं पड़ती, किसी भी प्रकार परिश्रम उठाना नहीं पड़ता, अर्थात् उसमें पड़ने वाली भूल को सुधारने की तकलीफ नहीं पड़ती, वे साधन विकास करने नहीं दे सकते। मॉण्टेसरी-पद्धति के उपकरणों में यही खूबी है, ये स्वाभाविक रूप में प्रवृत्ति करने को प्रेरित करते हैं और चाहे कितना ही परिश्रम करना पड़े लेकिन फिर भी काम को पूरा करने हेतु बालक को संलग्न रखते हैं। बालक श्रमपूर्वक क्रिया करते हैं और उसमें एकाग्रता का दर्शन असाधारण नजर आता है। क्रिया शक्ति का यह प्रदर्शन अत्यंत बेहतरीन होता है। कल्पना का बल कम नहीं होता, बल्कि काम में आनंद प्राप्त होता है। आनंदपूर्ण कार्य में श्रम नहीं होता, यह कहना गलत होगा। वस्तुतः जिस किसी भी कार्य में आनंद आता है, वह दूसरों की नजर से भले ही कठिन या परिश्रम मुक्त हो, तथापि वह कष्ट रहित होता है, उसे करने में आनंद ही आता है। व्यक्ति को काम में पीड़ा तभी महसूस होती है जब वह अपनी इच्छा के विरुद्ध जाकर याने विकास के मार्ग के विपरीत जाकर उसे करता है। याने दुःख का मूल विकास-मार्ग के विरुद्ध जाने में निहित है। दुःख देने में विकास नहीं है अपितु आनंद के साथ दुःख को सहन करने में विकास है। (मॉण्टेसरी के) उपकरण विकासोन्मुखी हैं, अतः उन्हें साधने में बालकों को आनंद के साथ परिश्रम करना भी पड़ता है। इस प्रकार से मॉण्टेसरी-पद्धति का अर्थ है स्वतंत्रता, स्वयं-स्फूर्ति और स्वाभाविक साधनों की साधना-त्रयी! इन तीनों ही तत्त्वों में मॉण्टेसरी पद्धति समा जाती है। मॉण्टेसरी-पद्धति के गट्टे पेटी संगीत, चित्रकला, व्यायाम, रस्सी पर चलने, हाथों से काम करने आदि के सारे काम इन तीनों तत्त्वों में विद्यमान हैं। गिजू भाई स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि जिन कार्यों के पीछे ये तीनों तत्त्व नहीं है, वह मॉण्टेसरी-पद्धति नहीं है और जहाँ ये तीनों तत्त्व हैं, वहाँ चाहे कोई-सा भी देश क्यों न हो, और कैसे ही उपकरण क्यों न हों, मॉण्टेसरी-पद्धति विद्यमान है।

गिजू भाई का विचार है कि देह और प्राण भिन्न-भिन्न होते हुए भी दोनों में से ऐक्य के अभाव में जिस तरह मानवीय जीवन के अस्तित्व में कमी आ जाती है, उसी तरह सिद्धांतों और साधनों के बिना मॉण्टेसरी-जीवन कदापि संभव नहीं।[1]

गिजू भाई जैसे मॉण्टेसरी पद्धति के सच्चे उपासक यहाँ तक कहते हैं कि मॉण्टेसरी-पद्धति, याने

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ० 50

मॉण्टेसरी पद्धति के साधन, इसके उपकरण। इनके बिना मॉण्टेसरी-पद्धति असंभव है। इस पद्धति के सिद्धांत तो निःसंदेह इसके प्राण-स्वरूप ही है। इसके बिना साधन तो केवल जड़ चीज ही हैं। यही नहीं, इन सिद्धांतों के परिपालन में से ही साधनों की उत्पत्ति होती है। अब तक के शिक्षाविदों ने शिक्षण के लिए जो भी रचना की है या साधन निर्मित किये हैं या उनको व्यवहार में लाने की पद्धति बनाई है, उन सबके पीछे शिक्षण-विषय को केन्द्र में रखा गया है, शिक्षार्थी को याने विधेय को लक्ष्य में नहीं रखा गया है। डॉ0 मॉण्टेसरी ने जो साधन बनाये हैं केवल विधेय को लक्ष्य में रखकर ही, उनके अनुरूप ही बनाये हैं, याने बालक कैसे सीखते हैं। डॉ0 मॉण्टेसरी ने इसका अत्यंत सूक्ष्म विवेचन किया है उनके द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धांत है कि जिन साधनों को बालक बार-बार उपयोग में लाता है और जिन क्रियाओं के पुनरावर्तन में वह तल्लीन रहता है, वे साधन उसके विकास हेतु पोषक ही हैं। जिनमें बालक को आनंद मिलता है उन्हीं का वह पुनरावर्तन करता है। विकास में जो चीज मदद देने वाली होती है, उसी चीज में बालक को आनंद मिलता है। अतः कहना न होगा कि साधनों को प्रयुक्त करने के लिए पुनरावर्तन में विकास समाहित है। इसी पुनरावर्तन से शिक्षण संभव है।

मॉण्टेसरी द्वारा आविष्कृत साधनों के संबंध में एक विचारणीय तथ्य यह भी है कि इन्होंने इन साधनों को बनाकर जिस भांति प्रकृति मानव को अनेक प्रकार से शिक्षा देती है उसी भांति मर्यादित परिस्थिति में तदनुकूल शिक्षण देने की योजना बनायी है। अर्थात् प्रकृति जिस प्रकार मनुष्य को अनुभव कराकर, ठेस लगाकर, स्वयं गलतियाँ सुधरवाकर ज्ञान देती है, उसी प्रकार मॉण्टेसरी पद्धति बालक को ज्ञान प्रदान करने का प्रबंध करती है। यह मान्यता मॉण्टेसरी सिद्धांतों की विरोधी नहीं।

डॉ0 मॉण्टेसरी द्वारा निर्धारित किये गये साधन त्रिविध विकास सिद्ध करते हैं-मानसिक, नैतिक और शारीरिक। यह पद्धति मनुष्य को ज्ञान प्राप्त करने के अथवा अंत:शक्ति व्यय करने के औजार देती है। परन्तु जीवन की किसी भी दिशा में जाने के लिए इसके द्वारा सरल से सरल मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसीलिए ये साधन मात्र साधन है, साध्य नहीं कि बस बालकों में उन साधनों से मिलने वाले लाभ आ स्वत: जायेंगे। गिजू भाई का मानना है कि हमें संपूर्ण साधन-समूह को काम में लेने की जरूरत है। अकेला साधन निष्प्राण है। सबों के साथ मिलकर ही या तो मॉण्टेसरी-पद्धति को संपूर्णतया स्वीकार किया जाए या फिर इसे संपूर्णतया त्याग दिया जाए। एक-दो साधनों को काम में लाने से कोई पाठशाला मॉण्टेसरी शाला नहीं बन जाती। न ही उससे कोई लाभ मिल पाता। जो साधन जिन प्रयोजनों की सिद्धि हेतु बनाये गये हैं, उन्हें उन्हीं की सिद्धि हेतु प्रयुक्त करना चाहिए। मॉण्टेसरी-पद्धति के साधन बालकों के चतुर्मुखी विकास का दावा नहीं करते। जो चीजें बाल-जीवन के विकास में सर्वाधिक महत्व की हैं और जिन्हें सिद्ध करने के लिए साधनों की भरपूर कठिनाई थी, वही साधन

डॉ0 मॉण्टेसरी ने विशेष रूप से सबसे पहले आविष्कृत किये हैं। गिजू भाई की मान्यता है कि अभी नए साधनों की गुंजाइश है ही, अतः विशिष्ट साधनों के द्वारा अन्य वृत्तियों को तृप्ति देने की बालक को इजाजत देने के बजाय अन्य वृत्तियों की तृप्ति हेतु नए-नए साधन ढूँढ निकालने की जरूरत है। इस तरह से साधनों में अभिवृद्धि हो सकती है और मूल साधनों का दुरुपयोग रुक जाता है।

इस पद्धति के साधन क्रमिक है। अब तक के प्रयोगों से यह तय हो चुका है कि सामान्यतः बालक का विकास किस क्रम से होता है। उसके आधार पर बाल-विकास के साधनों को प्रयोग में लाने का क्रम निर्धारित हुआ है। गिजू भाई मानते हैं कि इस क्रम को प्रयोग के रूप में किसी भी जगह काम में लाया जाए तो सिद्धांत को क्षति नहीं पहुंचेगी। हमें यह बात समझ लेनी है। साधनों को लेकर समय के संदर्भ में यह बात ध्यान देने की है कि प्रत्येक साधन के इस्तेमाल में बालक के मानस का एक निश्चित उम्र में सही समय आता ही है। उस सही समय पर अगर उसे साधन न दिये जायें और बालक इनका उपयोग न करे तो वह इनसे मिलने वाले लाभों से जीवनभर वंचित रहता है। अमुक समय ही महत्त्व का है। वह समय चला जाता है, तो समझो साधन निरर्थक हैं।

जनसाधारण में मॉण्टेसरी-पद्धति को लेकर कुछ मान्यताएँ हैं। गिजू भाई बड़े सटीक ढंग से इनको स्पष्ट करते हैं। एक मान्यता है कि मॉण्टेसरी-पद्धति में खेल-खिलौनों पर ही दिया जाता है। वस्तुतः मॉण्टेसरी-पद्धति के शिक्षण-उपकरणों अन्य खिलौनों जैसे खिलौने नहीं होते कि उनकी तरह इनसे बालकों का दिल बहलाया जा सके। ये उपकरण इंद्रिय-विकास के उपकरण होते हैं, और मात्र इसी काम आते हैं। अगर इन्हें उचित तरीके से बालक के पास रखा जाए और बालक इनका सही-सही उपयोग करे, तभी इनका लाभ मिल सकता है। अन्यथा होगा यह कि इन उपकरणों को या तो बच्चे हाथ तक नहीं लगायेंगे, या तोड़-ताड़ डालेंगे और परिणामतः इन्हें उठाकर आल्मारी में रखना पड़ेगा। आया तो एक साधारण-सी नौकरानी होती है। शिक्षण में उसकी रुचि हो भी कैसे सकती है? जबकि मॉण्टेसरी-पद्धति का निष्णात शिक्षक होने का अर्थ है वह इस वैज्ञानिक-दृष्टि को समझे, इसे स्वयं जाने, अनुभव करें, जीवन में उतारे। यह कठिन काम है। आयाओं से यह हो भी कैसे सकता है?

एक और मान्यता है कि मॉण्टेसरी-पद्धति ऐसी जादुई छड़ी है कि बालक नितांत सुघड़, सयाने, सुंदर बन जाते हैं और बिना परिश्रम किये, अल्पवय में ही झटाझट अंकों-अक्षरों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। ऐसी मान्यता भारत में तो है ही, अमेरिका में भी है। गिजू भाई मानते हैं कि बात बिल्कुल सही है कि इस पद्धति के द्वारा विकासमान बालक सुंदर एवं सुघड़ बनता है तथा अल्पवय में ही इंद्रियों, शरीर, बुद्धि एवं कल्पना के विकास में आश्चर्यजनक प्रगति करता है। निःसंदेह अंक-ज्ञान एवं अक्षर-ज्ञान में भी वह अन्य पाठशालाओं के बालकों से आगे बढ़ा हुआ महसूस होता है लेकिन

यह सब मॉण्टेसरी-पद्धति के जादू का नहीं, उसकी स्वाभाविकता का फल है। बावजूद इसके, मॉण्टेसरी-पद्धति इन फलों में निःशेष नहीं हो जाती। जहाँ-जहाँ भी लोग ऐसा मानते हैं कि मॉण्टेसरी-पद्धति, याने जो ऊपर वर्णित है वही सब, तो वहाँ-वहाँ लोग उसे समझते नहीं। अपूर्ण समझ के कारण ही यूरोप उसे अपनी वैश्यवृत्ति से स्वीकार करता है, तथा अल्पायु से ही अच्छे नतीजे प्राप्त करने के लिए इसका उपयोग करता है।

वस्तुतः मॉण्टेसरी-पद्धति अपने सिद्धांतों में निवास करती है। इन सिद्धांतों को विस्मृत करके परिणाम की ओर लपकने वाले नुकसान में रहते हैं, तभी तो डॉ0 मॉण्टेसरी को मॉण्टेसरी पाठशाला पर पहरा बिठाना पड़ा। गिजू भाई कहते हैं कि हमें इस सच्चाई से रंचमात्र भी इधर-उधर होने की जरूरत नहीं है कि मॉण्टेसरी-पद्धति उत्तम नतीजे लाने के लिए नहीं है अपितु समग्र विकास प्राप्त करने के लिए है।

एक मान्यता ऐसी है, और जो अच्छे-अच्छे विचारकों तथा विवेक-सम्पन्न लोगों तक में व्याप्त है कि मॉण्टेसरी-पद्धति याने बालकों को मनमर्जी मुताविक काम करने देने वाली पद्धति। उसमें बालकों की न मारपीट होती है, न उन्हें डराया-धमकाया जाता है, न ही पढ़ाया जाता है। बालक खेलते हैं, भटकते हैं और मजे करते हैं। ऐसी धारणा रखने वाले लोगों को गिजू भाई सुझाव देते हैं कि अगर मॉण्टेसरी-पद्धति संबंधी दो-एक किताबें वे पढ़ लें तो सव कुछ जान लें। वे कहते हैं कि उन लोगों का अज्ञान हमें दूर करना है।[1]

बेशक इस पद्धति में मारपीट या धमकाना तो हर्गिज नहीं, और जिसे लोग पढ़ाना कहते हैं, वैसा पढ़ाना भी नहीं है। एक तरह से यह बात भी सही है कि मॉण्टेसरी पाठशाला में बालक जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं और अलबत्ता, वे खेलते हैं, भटकते हैं, मजे करते हैं। मारपीट करके या डरा धमकाकर पढ़ाना कितना गलत और बुरा है, इसकी पुनरावृत्ति करना उचित नहीं है। मारने-पीटने से मनुष्य किस तरह मनुष्य न रहकर राक्षस या दीन-दास (गुलाम) बन जाता है, वह कितना जड़-बुद्धि या चरित्रहीन बन जाता है। इस पद्धति में से मार, लालच, डांट-डपट आदि को निष्कासित कर दिया गया है। जब बालक को जबरन पढ़ाया जाता तभी तो उसे मारने-पीटने की जरूरत पड़ती है। जब हम मानकर चलते हैं कि बालक-स्वभाव से दुष्ट होता है तभी तो उसकी कमजोरियों के लिए उसे सजा देने की जरूरत पड़ती है। मॉण्टेसरी-पद्धति के सिद्धांतों पर चलने वाली पाठशालाओं में शिक्षक पढ़ाने के लिए नही बैठता, उसे तो सिर्फ सीखने का मार्ग सरल बनाना होता है। क्या-कुछ पढ़ना है और क्या-क्या नहीं पढ़ना, यह सब बालक की आंतरिक रुचि पर निर्भर करता है। पढ़ाने को वैठकर बालक की आंतरिक रूचि में बाधा डालने वाला व्यक्ति मॉण्टेसरी का शिक्षक नहीं होता।

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 70

संपूर्ण जगत ज्ञान का विषय है। मॉण्टेसरी-पद्धति अपनी पाठशाला में समग्र ज्ञान के मूल तत्त्वों का वातावरण रचकर उसमें से बालक को अपनी पढ़ाई का विषय ढूँढ निकालने की अनुकूलता प्रदान करती है। ऐसी अनुकूलता उपलब्ध कराने की संपूर्ण फिलोसोफी ही मॉण्टेसरी-पद्धति है। बालक पाठशाला में मनचाहा काम करते हैं, इस कथन में सच्चाई तो है ही पर इसका अर्थ भिन्न है। मॉण्टेसरी पाठशाला जीवन-विकास का स्थल होता है। वहाँ जीवन-विकास का वातावरण होता है। वहाँ जीवन-विकास को आवश्यकतानुसार मार्ग दिखाने वाले, रास्ते पर प्रकाश डालने वाले दीप-स्तंभ होते हैं। ऐसी परिस्थिति में अपने जीवन-विकास के लिए बालक उन्हें जो रुचे वह काम कर ही सकते हैं।

गिजू भाई मानते हैं कि बच्चे खेलें और मौज-मजे करें यही तो इस नवीन पद्धति का प्राण है। जीवन कटुता से भरा हुआ नहीं है, न ऐसा होना ही चाहिए। पर जीवन की दृश्यमान कटुताएँ हम लोगों ने ही पैदा की हैं और उनको हम बालक की भेंट चढ़ा देना चाहते हैं। हम लोग जो अपने दुख-दर्दों से घिरे हुए हैं, कम से कम भावी नागरिकों को हमें उससे बचाने की उदारता दिखानी ही चाहिए। हमारा संपूर्ण जीवन एक आनंदमय उत्सव होता है, अतः हमारी समस्त प्रवृत्तियाँ भी आनंदपूर्ण होनी चाहिए। 'काम के समय काम और खेल के समय खेल' का सिद्धान्त अब पुराना पड़ गया है। अब तो 'काम के समय खेलो और खेल के समय काम करो' का सिद्धांत जीवन-मर्म बन गया है। विकास की संपूर्ण क्रिया में मॉण्टेसरी-पद्धति मनुष्य को आनंद करते हुए ही देखती है, इसी से जब बालक खेलते हैं या मजे करते हैं, तो वहाँ वे विकास के अलावा और कुछ नहीं करते, यह बात वह भली-भांति जानती है। बालक कई बार गिरते हैं, रोते हैं, फिर भी चढ़ते हैं और फिर गिरते हैं, रोते हैं। आखिर में उन्हें सफलता मिलती है तो वे हँसते हैं। वे सब विकास के मार्ग पर हैं और इसीलिए आनंद की बात है। केवल दुख-दर्द में मानव-जाति अपना विकास नहीं कर सकती। यह बात और है कि वह दुख-दर्द को ही सुख-रूपी माने। अतः मॉण्टेसरी पाठशाला बालक के लिए आनंद का धाम है, यह सच है, लेकिन ऊपरी अर्थ में।[1]

मॉण्टेसरी-पद्धति को लेकर कुछ और मान्यताएँ भी हैं। कुछ अध्यापकों के अनुसार मॉण्टेसरी-पद्धति याने बैठे-ठाले बालकों के अवलोकन की पद्धति। कुछ लोग सोचते हैं कि यह कोई कठिन काम नहीं है। शिक्षण-उपकरणों के बीच बालकों को छोड़ दो, बस विकास हो जाएगा। अध्यापक को तो सिर्फ खड़ा रहना है। कुछ लोग मानते हैं कि इस पद्धति में कोई खास अध्ययन करने का या अनुभव लेकर सीखने जैसा कुछ नहीं। दो-एक किताबें पढ़ लो, उपकरण मंगाकर पाठशाला खोल लो, काम बन गया! ऐसे ही लोगों को हाथों नकली मॉण्टेसरियाँ चल रही हैं? कुछ लोग यों भी मान बैठते हैं कि छः महीने या बारह महीने भावनगर के अध्यापन-मंदिर में रह आए, बस हो गए

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 72

मॉण्टेसरी-निष्णात! ये तमाम मान्यता अर्धसत्य हैं।

गिजू भाई मानते हैं कि मॉण्टेसरी-पद्धति कोई पढ़ाने का 'मैथड' है तो नहीं, कि फटाफट सीख लिया। यह कोई मनोवैज्ञानिक सिद्धांत भी नहीं, कि जिसे रट लिया। यह कोई ऐसी स्थूल चीज भी नहीं कि अवलोकन मात्र से पकड़ में आ जाए। इसका प्रदेश विशाल और गहन है। यह एक दर्शन है। एक जीवनव्यापी विषय है। इसका अध्ययन करने या इसे समझने का अर्थ है जीवन को जानना और समझना और यह कोई इतनी आसान बात नहीं।[1]

विश्व के अनेक देशों में इस पद्धति को बाल-शिक्षा हेतु अपनाया गया। मॉण्टेसरी-पद्धति का सूर्य धीमे-धीमे आकाश पर चढ़ता चला जा रहा है, तथापि अज्ञान का अंधेरा अब भी सघन और गहरा है। सामान्य-जन इसे न समझें या गलत समझें तो इसमें कैसा आश्चर्य, जबकि विचारवान लोगों, विद्वानों, शिक्षकों, शिक्षाविदों, राष्ट्र के आचार-विचार को निर्मित करने वाले युग-प्रवर्तकों तक में इस पद्धति को लेकर नासमझी या अधकचरी समझ देखने का मिलती है। गिजू भाई इसे एक चौंका देने वाली दुखद स्थिति मानते हैं।[2]

आज मॉण्टेसरी-पद्धति यूरोप, अमेरिका, चीन, जापान, फिलीपीन, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका तथा अन्य अनेक देशों में वेग से फैल रही है। कारण स्पष्ट है कि इसके सिद्धांत मानव-विकास की स्वाभाविक आवश्यकता तथा क्रम पर निर्मित हैं। अपनी जमीन पर खड़े रहकर आज के देश जिस तरह की शिक्षा पद्धति की अपेक्षा करते हैं, वैसी शिक्षा-पद्धति मॉण्टेसरी के सिद्धांतों पर आयोजित करके उपलब्ध की जा सकती है, ऐसी आस्था उन लोगों की बन चली है जिन्होंने अलग-अलग देशों में इस दिशा में प्रयोग करके अनुभव हासिल किया है। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि मॉण्टेसरी-पद्धति जीवन विकास की पद्धति के रूप में विविध धर्मों एवं राजनीति-व्यवस्था वाले देशों के लिए अनुकूल ठहरती है और फिर शिक्षा-पद्धति होने के बजाय जीवन-पद्धति होने के कारण इसकी सार्वदेशिकता व सार्वभौमिकता स्वाभाविक है।[3]

मॉण्टेसरी-पद्धति का मूल बाल-सम्मान में निहित है। जिसे मनुष्य के विकास की चिंता हो उठी, मनुष्य के उद्धार के लिए जिसका हृदय द्रवित हो उठा, मनुष्य-जीवन जैसी अमूल्य वस्तु को जिसने अनेक मताग्रहों, परंपराओं और शिक्षा की बेड़ी से जकड़ी हुई देखकर संपूर्ण पद्धति के विरुद्ध एक प्रकार का विद्रोह छेड़ दिया, उसके हृदय से जन्मी है यह और उसके अथाह श्रम से ही इसकी देह निर्मित हुई है।

उपकरण, पद्धतिपरक पाठ, कमरों की लम्बाई-चौड़ाई आदि-आदि बाते तो इस सिद्धांत से उद्भूत हुई ही हैं। सिद्धान्त के बगैर इन सबका कोई अर्थ ही नहीं है। ये बातें शिक्षक पर निर्भर नहीं

1- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 72

2- वही; पृ0 68

3- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 69

करतीं। गिजू भाई कहते हैं कि अगर इन चीजों का जड़तापूर्ण उपयोग किया जायेगा तो वह वर्तमान शिक्षण-पद्धति की जड़ता से किसी भी तरह कम नहीं होगा। अगर आपने सिद्धान्त समझ लिये हैं तभी ये उपकरण आपके काम के हैं और तभी आप उपकरणों को साध्य मानने की बजाय साधन मानेंगे। सिद्धांत समझे हैं तभी उपकरणों में जो चेतना है उसे समझ सकेंगे, संकीर्ण अर्थ पर नहीं जायेंगे। लेकिन यदि उपकरणों को ही आपने (मॉण्टेसरी) पद्धति के नाम से पहचान लिया है, केवल ऊपरी सतही अर्थ ही ग्रहण किया है तो फिर आपके हाथों में गट्टे और फ्रेम ही रह जायेंगे। बालकों के लिए वह सब भार स्वरूप हो जाएगा और जीवन-विकास सिद्ध करने के नाम पर, बाल-स्वातंत्र्य के नाम पर स्वयं आप उसके विकास को रोकेंगे और उसके गले में गट्टों की बेड़ियाँ डालेंगे।[1]

गिजू भाई पूछते हैं कि दुनिया में नया क्या है? सत्य वही के वही हैं। जहाँ-जहाँ भी प्रवर्तित होते हैं वहाँ-वहाँ उनके एक जैसे ही स्वरूप दिखाई देते हैं। सच्चा विकास स्वतंत्रता में निहित है। स्वतंत्रता यानी नियमन। सच्चा मनुष्य स्वाधीन होता है, पराधीन नहीं। दूसरे पर भरोसा करके चलने वाली उधार की बुद्धि वाला नहीं, अपितु अपनी मौलिक बुद्धि वाला; परावलंबी नहीं अपितु स्वावलंबी। ये सत्य युगों पुराने हैं, सच्चे शिक्षाशास्त्री के समक्ष शिक्षा के आदर्श हमेशा यही रहे हैं, पर अब तक भला यह बात किसके ख्याल में आई थी कि तीन वर्ष के बालकों में भी स्वाधीनता, स्वतंत्रता, संयमन आदि के दर्शन सहज ही हो जायेंगे? किसने इस कल्पना को श्रद्धापूर्वक प्रयोग की कसौटी पर चढ़ाया और यह सिद्ध कर दिखाया कि नितांत नन्ही वय के बालक स्वतंत्रता का सच्चा लाभ उठा सकते हैं और अपना विकास स्वयं साध सकते हैं? और किसने विकास के अनुकूल उपकरणों की खोज करके बालकों का विकास प्रत्यक्ष कर बताया? मॉण्टेसरी का यह दावा नहीं है कि उसने कुछ नया काम कर दिखाया है, बल्कि उसके बजाय प्राचीन सत्यों को नया मार्ग, नई दिशा, नया स्वरूप प्रदान किया है। लेकिन यह नया रूप प्रदान करने की नवीनता में ही इसका सम्पूर्ण कार्य नितान्त नया और मौलिक बन गया है।

गिजू भाई कहते हैं कि मॉण्टेसरी की शोध के मूल में जो तत्त्व विद्यमान हैं, उन्हें लोगों को समझना है। ये तत्व मॉण्टेसरी के नहीं हैं, न इटली या यूरोप के हैं अपितु संपूर्ण विश्व के हैं। जिसका विकास हम साधना चाहते हैं उसका अवलोकन किया जाना चाहिए। अवलोकन द्वारा यह ढूँढ़ा जाए कि उसके विकास में अवरोधक या रोचक बातें क्या-क्या हैं? यह एक वैज्ञानिक सत्य है अतएव सार्वत्रिक है। गिजू भाई सावधान करते हैं कि इस सत्य को आप संकीर्ण या संकुचित न कर डालें। आप इसे चाहे जो नाम दीजिए, भले ही आप इसे मॉण्टेसरी-पद्धति कहें। इसे आप नाम से मत बाँधना। इसकी वफादारी इसके यथार्थ परिपालन में है। यह परिपालन आप निर्मल एवं स्वतंत्र बुद्धि से करना,

---

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 31

दृढ़ता व निर्भयता से करना। कहीं आप पोथी-पण्डित मत बन जाना कि देखें मॉण्टेसरी क्या करती हैं अथवा गिजु भाई ने क्या लिखा है या तारा बेन का क्या कहना है? ऐसा कहकर आप अपनी उलझन का हल निकालने की आशा मत रखना। अपनी परेशानी आपको स्वयं हल करनी हैं। मैंने तो आपको सिर्फ रास्ता दिखाया है, अब समाधान आपको ही करना है। प्रत्येक बालक का नया-नया अनुभव करके आपको ही उसके मन की खोज करनी है और विकास का मार्ग खोलना है। अपने निजी अनुभवों को आप पूरा सम्मान दीजिए, उसी से सच्चे शिक्षण का उद्‌भव होगा। जिस (शिक्षण) पद्धति के सिद्धान्त मानवजाति को गुलाम-मानसिकता से मुक्त करना चाहते हैं, अगर आप उसी पद्धति के गुलाम हो जायेंगे तो उद्देश्य निरर्थक चला जाएगा। प्रत्येक पद्धति सत्य का शोध चाहती है और सत्य-शोधन यथार्थ अनुभव में निहित है-यथार्थ अनुभव उसी को होता है जो स्वयं अपनी आँखों से देखता है, कानों से सुनता है, जो स्वयं विचार करता है, जो भ्राँतियों और आचारों से तटस्थ रहता है, जो सत्य समझी जाने वाली भूल को स्वीकार करता है और जो सत्य के समक्ष असत्य को छोड़ने के लिए तैयार रहता है। पद्धति आप से यही चीज माँगती है।[1]

गिजू भाई शिक्षकों से कहते हैं कि यहाँ के आलीशान भवनों में चलने वाली खर्चीली मॉण्टेसरी-पद्धति को आप लोगों ने देखा है। उनके अनुसार आप कहीं यह मत समझ लेना कि इन तमाम के बिना मॉण्टेसरी पाठशाला चल नहीं सकती। वस्तुतः मॉण्टेसरी पाठशाला का जन्म इटली के गरीब लोगों की झोंपड़ियों में ही हुआ है। अतः जब तक हम अपने गरीबों तक इस पद्धति का लाभ नहीं पहुँचायेंगे तब तक इस पद्धति की सच्ची जीत नहीं होगी। जिस जगह शारीरिक गँदगी है और दिमागी अँधेरा है वहीं इस पद्धति का प्रकाश ले जाना होगा। आप हरिजनों व निर्बल वर्ग को इस पद्धति का लाभ पहुँचायेंगे तभी उसका खर्च सार्थक सिद्ध होगा। आप शिक्षक हैं। पढ़ाना आपका काम है। पैसों के लिए अपनी शक्ति वैश्य बेचता है। पैसों का मोह छोड़ देंगे तभी आप गरीबों की तथा गांवों की सेवा कर सकेंगे। अगर आपको सचमुच ऐसा लगे कि आज हमारे देश ने निर्मल बुद्धि का सच्ची क्रिया-शक्ति का दिवाला ही निकाल दिया है तब तो आप जहाँ सघन अंधेरा हो, जो अधिक असहाय हों, जो साधनविहीन हों, उन्हीं के पास जाना और उन्हें आगे लाने के लिए परिश्रम करना।[2]

"मॉण्टेसरी-पद्धति में देश-काल के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए। प्रत्येक देश के मनोविज्ञान के अनुकूल बनकर हमें मॉण्टेसरी के ही स्तरानुकूल अपने शिक्षण साधनों की योजना बना लेनी चाहिए। इससे हमारा व्यक्तित्व बनेगा और राष्ट्रीय प्राण को क्षति नहीं पहुंचेगी।' ऐसा कहने वाले लोग गट्टा-पेटियों के बदले क्रमशः छोटे-छोटे चूल्हों-तपेलियों को आँख की इंद्रिय के विकास उपकरण के रूप में हमारे समक्ष रखते हैं। गिजू भाई ऐसे विद्वानों की सोच से सहमत नहीं हैं। वे प्रश्न करते हैं

1- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 32

2- वही, पृ0 33

कि गट्टों में ऐसा क्या विदेशी तत्त्व है और चूल्हों-तपेलियों पर क्या हिन्दुस्तान का ही एकमात्र हक है? वस्तुतः इस प्रकार की कोई भी सोच हमारी संकीर्णता की ही परिचायक है। गट्टा-पेटी कोई इतनी मँहगी चीज भी नहीं है कि हम इसे भारतीय विद्यालयों में उपलब्ध न करा सकें। गिजू भाई कहते हैं- "कतिपय मर्यादाओं के साथ मेरी मान्यता है कि मन सार्वभौम है अतएव मनःव्यापार देश-काल से अबाधित होते हैं। मैं भारतीय-मन, अमेरिकी-मन, अफ्रीकी-मन आदि भेद स्वीकार नहीं करता। इन सभी मनों में जो अंतर है वह विकास की भिन्न-भिन्न श्रेणियों का है। कदाच यूँ भी कहा जा सकता है कि अफ्रीकी-मन बाल-मन है, पश्चिमी देशों का मन युवा-मन है और भारतीय-मन वृद्ध-मन है। यह कथन एक तरह से विनोदपूर्ण कथन है। अगर कदाच मन की सार्वभौमिकता को स्वीकार न करूं तब भी चूल्हे-तपेलियों से जब तक मॉण्टेसरी-पद्धति के सिद्धांतों को न स्वीकारूँ तब तक देशानुकूलता अथवा राष्ट्र प्रेम के वहम से उन्हें मैं गट्टों के स्थान पर कबूल नहीं करूँगा। एक बात सबको बतानी है कि डॉ0 मॉण्टेसरी ने प्रबोधक-साहित्य अपनी स्वेच्छाचारिता से नहीं बनाए थे। ये साधन तो स्वयं बालकों ने अपने आप बनाए हैं। जिस समय बालक अपने साधन ढूँढ़ रहे थे, उस समय उन्हें अनिवार्य सहायता की आवश्यकता थी वही सहायता मॉण्टेसरी ने उन्हें उपलब्ध की। साधनों को तो डॉ0 मॉण्टेसरी बालक के अंतःकरण को उनके द्वारा व्यक्त करने की वस्तु मानती है। जब से स्वतंत्र बालक की आत्मा अमुक वस्तु के माध्यम से व्यक्त होती है और उस वस्तु से संबंधित अपने संबंध को बालक अमुक रीति से व्यक्त करता है तब वे वह वस्तु अंतर को व्यक्त करने योग्य हैं, ऐसी डॉ0 मॉण्टेसरी की मान्यता है।"[1]

गिजू भाई स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि हम यह बात समझ लें कि किसी भी वस्तु से सम्बन्धित एकाग्रता तथा उस वस्तु को पुनःपुनः व्यवहार में लाने की वृत्ति-ये दो चीजें मॉण्टेसरी पाठशाला के प्रबोधक साहित्य का निर्णय करती हैं। फिर चाहे ये उपकरण गट्टे हों या जमीन में खोदे गए गड्ढे, या फिर मिट्टी के बने चूल्हे और तपेलियाँ हों। उपकरणों के संबंध में यही कहा जा सकता है कि जिस वस्तु में अधिक एकाग्रता जमाने का तथा पुनरावर्तन को उत्तेजित करने का बल है वह वस्तु सर्वश्रेष्ठ है। हम समझ सकते हैं कि डॉ0 मॉण्टेसरी ने एक तरह से जो उपकरण इस वक्त सुझाये थे वही सर्वत्र व्यवहार में लिए जाएँ, ऐसा उनका कोई आग्रह नही हो सकता। हमें मॉण्टेसरी के उपकरणों को ही व्यवहार में लाने की जड़ता से मुक्त होने की, स्वतंत्रतापूर्वक इन साधनों पर विचार करने की और साथ ही साथ नए साधन रचने की शक्ति अर्जित करनी जरूरी है। गिजू भाई अनुभव करते हैं कि जिन-जिन बातों से सम्बन्धित उपकरण तलाश किये जा चुके हैं, उनसे अधिक सरल, अधिक शिक्षाप्रद और स्वयं भूल सुधार करने वाले उपकरण ढूँढ़ने में बहुत वक्त लगेगा या फिर वह आज के

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 50

इन उपकरणों का ही स्पष्ट रूपांतरण होगा। मर्म तो उनका वही रहेगा। वे कहते हैं कि इस सम्बन्ध में तो परीक्षा के बतौर मॉण्टेसरी के सिद्धांत हमें हमेशा मार्ग दिखाते ही हैं, अतः हम निर्भय हैं।

डॉ0 मॉण्टेसरी पाठशाला को प्रयोगभूमि के रूप में स्वीकार करती हैं। प्रयोगभूमि के बतौर पूरी दुनिया को स्वीकार कर पाने की चेष्टा कल्पना से परे है। अतएव प्रयोग के साधन ऐसे होने चाहिए कि जो पाठशाला के वातावरण में सहज उपलब्ध हों और जिन्हें वहां रखा जा सके। इस कारण से डॉ0 मॉण्टेसरी ने जिन साधनों को रचा है वे साधन प्रकृति की जिन-जिन चीजों में बालक का मन एकाग्र हो जाता है और वे उनके साथ पुनः-पुनः खेलने को दौड़ते हैं, उन समस्त वस्तुओं के अर्क-रूप प्रतिनिधि हैं। यह भी स्वीकार करने में हमें संकोच नहीं होना चाहिए कि संपूर्ण प्रकृति में जो-जो बहुविध स्थल बालकों को आकृष्ट करते हैं उन समस्त वस्तुओं के प्रतिनिधि मॉण्टेसरी-पद्धति के वर्तमान उपकरणों में नहीं हो सकते। इस प्रश्न पर गंभीर चिंतन की पुनः आवश्कता है।

प्रकृति अलग-अलग हिस्सों में बिखरी हुई पड़ी है। इसमें व्यापक कार्य-कारण संबंध ढूंढ पाने का काम बालक के लिए कठिन है। फिर प्रकृति में वस्तुओं का साम्य, वैषम्य एवं क्रम (जिनकी समझ से शिक्षण का काम चलता है) तीनों बालक को एक साथ मिलते नहीं। अतएव प्रकृति में रहने वाली चीजों में बालक तल्लीनता से उत्कृष्टता बताए इसके बजाय अंतःव्यापार के समक्ष कार्य-कारण व्यक्त करने वाले तथा परस्पर साम्य, वैषम्य एवं क्रम बताने वाले, उपकरणों पर बालक अधिक एकाग्र हो और उनका अधिक पुनरावर्तन करे, इस स्वाभाविक अनुभव से ही मॉण्टेसरी के उपकरण बने हैं। प्रकृति हमें अनुभव कराकर ज्ञान देती है। अगर हम गलती कर बैठें और अगर उसे सुधारेंगे नहीं तो प्रकृति उसे सुधारने को हमें विवश कर देती है और गलती को सुधारने के बाद ही हमें अपने मार्ग पर जाने देती है। यह गलती हम स्वयं ही सुधार लें, इसी में हमारी शिक्षा निहित है। अतएव प्रकृति के प्रतिनिधि स्वरूप साधन अपने आप गलतियाँ सुधारने तथा स्व-शिक्षण देने वाले होंगे तो बालकों को उनमें तल्लीन होने और उनका पुनरावर्तन करने की आवश्यकता पड़ेगी। मॉण्टेसरी के उपकरण इन तत्वों को पूरा करते हैं इसी से पाठशाला में ये प्रयोग के साधनों के साथ-साथ शिक्षण के भी साधन बने हुए हैं। इन तमाम सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए अगर हम नए उपकरण बना सकते हैं तथा बालक के अवलोकन के साथ उपकरणों द्वारा उनका प्रत्यक्ष विकास कर सकें तो चाहे जैसे नए उपकरण क्यों न बनाएँ, उसमें मॉण्टेसरी के प्रति वफादारी ही है। गिजू भाई स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि बेशक एक बात समझ लेनी है। मॉण्टेसरी ने बालकों के जिन व्यापारों का अवलोकन किया है, वे व्यापार संपूर्ण हैं, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। मन के व्यापार गणित की बड़ी-बड़ी संख्या को लांघकर उस पार जा सकते हैं। मॉण्टेसरी को जितना सत्य नजर आया उतने की

ही उन्होंने बात की है। नए सिद्धांतों का दर्शन करने का मार्ग खुला है। वे कहते हैं कि इंद्रिय विकास में स्वाद व घ्राण संबंधी प्रयोग शेष हैं। खगोल, भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र आदि विषयों के प्रति बालकों के स्वाभाविक व्यापार कैसे हो सकते हैं, ये अवलोकन अभी अधूरे हैं। अगर हम इन नई दिशाओं में प्रयोग कर सकें और सिद्धांतों के अनुसार नए साधन बना सकें तो वे आद्य-प्रणेता डॉ0 मॉण्टेसरी को भेंट में दिये जा सकेंगे।

बालमंदिर अगर प्रयोग के लिए ही है, ऐसा मानें तो वह उक्त अर्थ में मॉण्टेसरी ही हो सकता है, यह मंदिर इटालियन, अमेरिकन या इंग्लिश होना जरूरी नहीं। इटली के बालक विद्यालय में बूट पहने-पहने खाना खाते हैं, इसमें मॉण्टेसरी-पद्धति को कोई लेना-देना नहीं। इटली के बालक अपने स्वाभाविक आहार मेंढकों को पत्थरों से मारने में मजा लेते हैं, वही व्यापार भारत में पतिंगों को निर्दोष भाव से पकड़कर उड़ाने में परिणत होता है तभी तो मॉण्टेसरी-पद्धति के रहस्य का कोई अर्थ है। मेंढ़क खाने वाले इटली के बालक मेंढकों को मारें, और अहिंसक व दया-वृत्तिप्रदान भारत के बालक पतिंगों को पकड़कर उनके रंगों के मजे लें और छोड़ दें तो इन दोनों क्रियाओं में मॉण्टेसरी की दृष्टि से बाल मानस के ही दर्शन होते हैं। फर्क सिर्फ देश-काल वातावरण का ही है। परिस्थिति के फर्क के कारण देश-काल, जो सार्वभौम मानस को मर्यादित करते हैं वे किसी भांति का विसंवाद खड़ा नहीं करते। अत: यह स्पष्ट है कि भारतीय बालमंदिर मॉण्टेसोरियन बना रह सकता है, भले ही इटली, अमेरिका या यूरोप की पाठशाला से उसका रूप, रंग-ढंग व उपकरण भिन्न ही क्यों न हो!

गिजू भाई घोषित करते हैं कि मॉण्टेसोरियन बालमंदिर एक म्यान में दो तलवारें नहीं रख सकेंगे। ये दो तलवारें हैं प्रयोग करने और पढ़ाने की। अच्छी-अच्छी पद्धतियों का मिश्रण करके बालमंदिर को आदर्श रूप देने का अर्थ है उस प्रयोगभूमि को अधिक शास्त्रीय बनाना, अवलोकन के तरीकों को अधिक विश्वसनीय व निर्मल बनाना, प्रकृति को उत्तम रीति से प्रातिनिधिक बनाना और सम्पूर्ण परिस्थिति को कार्य-कारण की उच्च श्रृंखला से जोड़े रखना। साथ ही त्रुटि को अपने आप सुधारने व स्वशिक्षण का प्रबंध किया जाए, अगर ऐसा हो तो डॉ0 मॉण्टेसरी को उस बालमंदिर से कोई विरोध हो भी नहीं सकता, हर्गिज नहीं। लेकिन अगर अध्यापक वैज्ञानिक के बजाय महज 'मास्टरजी' बनकर बैठ जाए, अवलोकन करना छोड़कर सिर्फ पढ़ाने लग जाए, मौन छोड़कर भाषण देने लग जाए तो हर्गिज नहीं चलेगा। उक्त दृष्टि से बालमंदिर की प्रगति निस्सीम है और यह निस्सीम प्रगति मानव-जीवन का अनवधि विकास ही बालमंदिर का उद्देश्य है, और यही हो सकता है।[1]

शिक्षा के मसले को लेकर समय-समय पर देश में अनेक आयोग व समितियाँ गठित की गयीं। परन्तु कोई विशेष सुधार या सकारात्मक परिवर्तन परंपरागत शिक्षा पद्धति में देखने को नहीं

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 52-53

मिल सका। कारण यही है कि किसी स्वतंत्र मौलिक सोच का परिचय हमारे नीति-निर्माता देने में असमर्थ थे। गिजू भाई कहते हैं कि जब सरकार ने इस देश में शिक्षा-सम्बन्धी रीति-नीति का एक पैमाना तय किया, तो विलायत में जो शिक्षा-पद्धति पुराने समय से चली आ रही थी, उसी को इस देश में भी चलाया गया। इसलिए यहां इसकी जड़ें बहुत गहरी जमी हुई हैं। अब विलायत में तो इस पद्धति को बड़ी हद तक तिलांजलि दी जा चुकी है, किन्तु अपने इस देश की शिक्षा की गाड़ी तो बहुत ही धीमी गति से चलती है। तिस पर इस गाड़ी को चलाने वाला व्यक्ति न तो कोई जिम्मेदार व्यक्ति है और न इस काम में उसकी कोई दिलचस्पी ही है।

विद्यालयों की दुर्व्यवस्था व दूषित वातावरण तथा अमनोवैज्ञानिक तौर-तरीकों से क्षुब्ध होकर गिजू भाई बड़ी तीखी टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि "दुनियाभर की पाठशालाएं बन्द कर डालें तव भी बालक को कोई नुकसान नहीं होने का। बल्कि, आजकल की पाठशालाएं बन्द हो जाएं तो बहुत ही लाभ होगा।"

गली मौहल्लों में 'मॉण्टेसरी-स्कूल' का बोर्ड लगे बाल-विद्यालय देखे जा सकते हैं। परन्तु वास्तव में इस विद्यालयों में मॉण्टेसरी-पद्धति का लेशमात्र भी अनुकरण नहीं किया जाता है। गिजू भाई का मानना है कि ऐसा कहा जाता है कि 'हमारे यहाँ मॉण्टेसरी-पद्धति चलती है। परन्तु उनमें मॉण्टेसरी-पद्धति जैसा कुछ भी तो देखने को नहीं मिलता। बल्कि वहाँ मॉण्टेसरी-पद्धति की मखौल उड़ाई जाती है। यह सब देखकर इस पद्धति को समझने वालों के दिल में दुख होना स्वाभाविक ही है।[1]

बाल-विद्यालय बाल-विकास के नहीं 'बाल-विनाश' के केन्द्र बन गये हैं जहाँ बालकों की नैसर्गिक क्षमताओं व प्रवृत्तियों की दोषपूर्ण पद्धतियों, पुस्तकों, परीक्षा प्रणाली शिक्षक-व्यवहारों के माध्यम से हत्या कर दी जाती है, उनकी सर्जनात्मकता को कुचल दिया जाता है। ऐसे विद्यालयों में भेजकर उनको 'कुशिक्षा' दिलाने से अच्छा है वहां भेजा ही न जाये। गिजू भाई की तल्ख टिप्पणी है- अपने बालक को बुरी पुस्तकों और बुरी सोहबत से हम बचा लें। हम उसको प्राणघातक पाठशाला से जरूर ही हटा लें।[2]

गिजू भाई उस विद्यालय को याद करते हैं जिसमें वे पढ़े थे। उस समय के विद्यालय व उसके तरीके कितना बदल सके हैं, यह आज के सरकारी स्कूलों पर दृष्टिपात करके जाना जा सकता है। लगता है गिजू भाई आज के इन्हीं स्कूलों का शब्द-चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं- "हमारी शिक्षा याने जानकारी, जानकारी, जानकारी ! ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान ! इतिहास की वर्ष वार घटनाएं। याद, साबरमती और ढाढर नदी के ऊपर वाले शहरों के नाम याद, महाजनी हिसाब और पाठ तो फर्राटे से याद,

---

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 42

2- गिजू भाई बधेका - माता-पिता से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 20

कविता और उनके अर्थ याद। भौतिक शास्त्र और शरीर शास्त्र जो भी विषय पढ़ना बैठे उनके सारे विवरण कंठस्थ। इसका नाम जाना, उसका नाम पढ़ा। लेकिन इनमें से विकास कहां किस चरण में था, यह पता लगाना मुश्किल है। पर पढ़ाई का यही स्तर था और हम उससे भली-भांति परिचित हैं।

हमारी पाठशाला शिक्षण की प्रयोग भूमि नहीं थी। वह क्रीड़ांगण नहीं थी। नाट्यशाला नहीं थी, संग्रहालय भी नहीं थी। न कलामंदिर ही थी। वह बगीचा भी नहीं था। टूटी-फूटी चारदीवारें, मैला-कुचैला उखड़े तले वाला आंगन, दागों वाली बेंचे, टूटी हुई पट्टियों और फटी हुई किताबों वाले हम तथा डंडा लेकर घूमते हमारे अध्यापक ! यह थी हमारी पाठशाला !

वहाँ हम बहुत जुर्म करते थे। सिर्फ बातें करते, पाठशाला-कार्य नहीं करते, कबूतर उड़ाते, मास्टरजी कोई नई चीज लाते तो टेबिल से उड़ा लेते, एक-दूसरे की खासियतों की नकलें करते, किसी विद्यार्थी को उत्तर न आने की दशा में मास्टर की मार से बचाने के लिए उसे उत्तर लिखकर दे देते, खेल याद आते और ध्यान नहीं रहता तो इधर-उधर देखते, शिक्षण श्यामपट्ट पर हमें किताब करना सिखाते और उसमें मजा नहीं आता तो हम झोंके खाते, घर से करके लाने को दिया जाता और किया न होता तो डर के मारे बहाना बनाते कि सिर में दर्द था, मास्टरजी का डंडा तोड़ डालते या छुपा देते। ये सब हमारे अपराध थे और हम थे अपराधी। फिर शिक्षाशास्त्र के द्वारा हमें सजाएँ दी जातीं। खड़े रहो, अँगूठा पकड़ों, उठ-बैठ करो, तमाचे खाओ आदि-आदि ! अगर सजा देने के विविध तरीकों की सूची तैयार करे तो पाठशालाओं का अच्छा-खासा पीनल कोड तैयार हो जाए।

वे कहते हैं कि पाठशाला के शिक्षक की दशा कैसी थी? उसकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति की दयनीयता की बात उसकी ज्ञान-समृद्धिगत दरिद्रता की कथा के बारे में नहीं कहूँगा। आज के संदर्भ में बालकों के प्रति व्याप्त तिरस्कार के बारे में अवश्य कहना चाहता हूँ। अगर यह समस्या समझ में आ जाए तो चाहे बीता कल कैसा ही क्यों न रहा हो, आने वाले कल का शिक्षक अवश्य बदल जाएगा। वे पूछते हैं कि शिक्षक जो वेतन पाता है, उसकी तुलना में क्या वह सच्चे दिल से बालकों को पढ़ाने का परिश्रम करता है?[1]

शिक्षकों से गिजू भाई को आशा है कि वे वर्तमान दशाओं में परिवर्तन लाने के लिए कुछ करेंगे, विशेषकर गांवों के शिक्षकों से, चूंकि देश की बहुसंख्यक जनसंख्या गांवों में वसती हैं तथा विकास की किरणें वहां तक सरलता से नहीं पहुँच पा रही है। वे ग्रामीण विद्यालय के शिक्षक से कहते हैं कि सरकार की तरफ से चलने वाली ग्राम पाठशाला के अध्यापक को भी यह सोचना चाहिए कि वह गांव का अध्यापक है। गाँव के अनुकूल या प्रतिकूल जैसा भी अभ्यासक्रम उसे पढ़ाने को दिया गया है उसे हमेशा अपने शिक्षण में गाँव को दृष्टि में रखना है। भले ही वह अभ्यासक्रम में अपनी

1- गिजू भाई बधेका - माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 111

तरफ से फेरफार न कर सके, पर उसे अभ्यासक्रम के साथ ग्रामीण बालकों को ऐसी शिक्षा देनी है, उनमें ऐसी भावना पैदा करनी है कि वे गाँव में ही रहें, वहीं रहकर अपने वतन की तरक्की करें, अपने ग्रामीण उद्योगों को पुनर्जीवित करें।

गिजू भाई कहते हैं कि प्रत्येक गाँव के अध्यापक को हमेशा यह सोचते रहना चाहिए कि उसके गाँव के लिए शिक्षा कैसी हो? अपने ये विचार उसे उच्च अधिकारियों को बताने चाहिए और उनमें फेरफार की मांग करनी चाहिए। वह ग्रामवासियों को भी बताये कि वैसा परिवर्तन लाने के लिए वे आंदोलन करें। स्वयं भी उन परितर्वनों के लिए अपने विचार सर्वत्र फैलायें।[1]

भारत जैसे लोक कल्याणकारी जनसत्तात्मक राज्य में शिक्षा में सुधार लाने के लिए आमूल चूल परिवर्तनकारी एवं प्रभावी कदम शासन की ओर से ही उठाया जाना चाहिए, चूंकि शिक्षा-व्यवस्था का दायित्व उसी का है, उसके पास सत्ता है, संसाधन है। अभाव है तो इच्छा शक्ति का दृढ़ संकल्प का। परन्तु क्या हम इस सुधार के लिए सरकार का मुंह ताकते रहें और हाथ पर हाथ रखे बैठे रहें? गिजू भाई कहते हैं कि शिक्षकों को अपनी दशाओं में सुधार लाने के लिए तो प्रयास करने ही होंगे। समग्र शिक्षा-व्यवस्था में बदलाव लाने के लिए भी सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करना होगा।

गिजू भाई कहते है कि- "हम सोचते हैं कि हमारे विभाग में सुधार आ जाए तो अच्छा रहे, हम सोचते हैं कि हमारी गरीबी मिट जाए तो अच्छा रहे, हम सोचते हैं कि हमारा वेतन बढ़ जाए तो अच्छा रहे, हम सोचते हैं कि हमारी तरक्की हो जाए तो अच्छा रहे; पर इन सबके लिए हम स्वयं क्या करते हैं? अगर कोई दूसरा व्यक्ति इस दिशा में प्रयत्न करे तो करे, बस उसी पर हम आश्रित बने बैठे रहते हैं। इस प्रवृत्ति को हमें छोड़ देना है और अपने पैरों पर खड़े होना है।"[2]

गिजू भाई शिक्षण की परंपरागत अमनोवैज्ञानिक तथा शिक्षक-केन्द्रित पद्धतियों का मुखर विरोध करते हुए कहते हैं कि पुरानी पद्धतियों ने लम्बे समय से जो जड़ें चला रखी हैं, हमें उन्हें उखाड़ फेंकना होगा तथा सत्य का पता लगना होगा। सत्य को पाने के लिए हमें सत्य के जितना ही विशुद्ध एवं निष्कलंक बनने का प्रयत्न करना होगा। हमें परंपरा और भ्रांति की बेड़ियाँ तोड़नी हैं तथा निर्मल बुद्धि की किरणें निर्भयता से विकीर्ण करनी हैं।[3]

गिजू भाई मानते हैं कि बालकों के लिए मॉण्टेसरी व किंडरगार्टन नाम से भी जो विद्यालय देश में चल रहे हैं उनमें इन पद्धतियों का समुचित ढंग से प्रयोग नहीं किया जाता, अन्य विद्यालयों की तो बात ही क्या है। वे पूछते हैं कि क्या पाठशालाओं की स्थिति में बदलाव आया है? ट्रेनिंग कालेजों से अच्छी शिक्षण-विधियाँ सीखकर आए शिक्षक क्या अपनी पाठशालाओं में उनके अनुसार शिक्षण-कार्य करते हैं? वे थोड़ा बहुत किंडरगार्टन और मॉण्टेसरी-पद्धति के बारे में शायद ही जानते हैं। गिजू भाई

1- गिजू भाई बधेका - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 85

2- गिजू भाई बधेका - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ0 98

3- गिजू भाई बधेका - मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 157

प्रश्न करते हैं कि क्या उनकी पाठशालाओं में फ्रॉबेल के उत्साहवर्द्धक खेल हैं? क्या उनमें मॉण्टेसरी का बाल-सम्मान है। कहीं शिक्षकों को उत्साह पाठ्यक्रम, परीक्षा-पद्धति तथा जीवन की जटिलताओं के कारण कुचल तो नहीं गया ? सजा मिट रही है तो इनाम बढ़ने लगे हैं। रटाई घट रही है तो विविध युक्तियों- प्रयुक्तियों से आनंद उत्पन्न करने वाले प्रयत्नों द्वारा दिया जाने वाला शिक्षण बढ़ने लगा है। लेकिन इनके परिणामस्वरूप वास्तविक ज्ञान नहीं बढ़ रहा। संगीत, चित्रकला आदि बढ़ रहे हैं तो एक ओर पाठ्यक्रम के विषय बढ़ रहे हैं और दूसरी ओर कक्षा-शिक्षण में इन विषयों की पढ़ाई लज्जास्पद देखने में आती है। सार रूप में गिजू भाई कहते हैं कि परिस्थिति बदली नहीं है, सिर्फ पासा बदला है, पर बातें वहीं की वहीं हैं।[1]

गिजू भाई मॉण्टेसरी पद्धति को अपनाने व फैलाने के लिए दृढ़-संकल्प थे। उनका कहना था कि भारतीय मॉण्टेसरी-पद्धति को भारत में अपनाते वक्त हम इसे भारतीय प्राण से अलंकृत करेंगे। मॉण्टेसरी-पद्धति यहाँ प्रयोग-भूमि ही बनी रहेगी, भले ही वह हिंदुस्तान के छप्परों नीचे, हिन्दुस्तान की जमीन पर, हिन्दुस्तान के आसन पर बैठे। हम मॉण्टेसरी वाली टेबल-कुर्सियों के बजाय बालकों को अपने (मन से) चित्र बनाने का काम पाटों (बाजोट) पर करने को देंगे। भारतीय मॉण्टेसरी पाठशाला के बालक नाश्ता लेंगे, पर टेबल-कुर्सी पर बैठकर या जूते पहने नहीं। मॉण्टेसरी-गृह में बालकों को हम कला का वातावरण देंगे, पर हमारी पुष्प-सज्जा व श्रृंगार का काम मिट्टी के पात्रों में बबूल, आंवला या नील के पत्तों से ही हो जायेगा। भारतीय मॉण्टेसरी बालकों के हाथ में वाद्य-यंत्रों के लिए इकतारा और मंजीरे होंगे। प्लास्टिसीन के बजाय कुम्हार के यहां की सादी माटी से बालक तरह-तरह के खिलौने बनायेंगे। हमारी पाठशाला के आंगन में बालक राई, मैथी, तुलसी, मरवा, कनेर, बारहमासी आदि के बीच घूमेंगे। यहां के बगीचों में आंवला भी होगा।

वे कहते हैं कि सब जरूरी चीजें यहाँ होंगी। इस देशी पाठशाला में हाथ पोंछने के लिए ट्वाल ही होगा, पैर पोंछाने के लिए पाँवदान के बिना काम नहीं चलेगा। खाने के लिए हाथ धोना अनिवार्य होगा और खाने के बाद कुल्ले भी करने पड़ेंगे। बालों के संवारकर रखना होगा, नाक पोंछने के लिए रूमाल जरूरी होगा और मल-मूल के लिए निर्धारित स्थान तो होंगे ही। ये सब नहीं होंगे तो मॉण्टेसरी पाठशाला नहीं बनेगी।

बाल-शिक्षा में सुधार लाने का संकल्प गिजू भाई ने लिया था। उनका निश्चय था कि हमें मॉण्टेसरी पाठशाला स्थापित करनी ही पड़ेगी, और वह भी हमारी अपनी आबोहवा में ही। हमें अपने देश का शास्त्रीय दृष्टि से अवलोकन करके उसके आंकड़ों पर बालकों की पढ़ाई का प्रबंध करना चाहिए। स्वतंत्रता और स्वयं-स्फूर्ति का वातावरण (याने प्रयोग-भूमि की स्वाभाविक आधारभित्ति)

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 33

हमारे यहां भी हो। शास्त्रीय शोध के लिए सत्यनिष्ठा, तटस्थता, अमताग्रह चाहिए साथ ही समाज को रूढ़ियों व धार्मिक कट्टरता से मुक्त होना चाहिए। इनके अलावा बाल-विकास को मापने के तथा विकास के तमाम सहायक साधन भी यह प्रयोगशाला स्वत: माँग लेगी। यह प्रयोगशाला, धर्म, जाति या देशों के फर्क को स्वीकार नहीं करेगी। भारत के बच्चे आज शरीर व मन से कहाँ हैं, और अगला कदम किसमें निहित है, यह खोज यह प्रयोगशाला हिन्दुस्तान के लिए ही करेगी। जिस प्रकार मॉण्टेसरी-पद्धति का अर्थ स्पेन अपने लिए, स्विट्जरलैंड अपने लिए, आयरलैंड अपने लिए करता है वैसे ही हिंदुस्तान भी (अपना मौलिक) करेगा। ऐसी प्रयोगभूमि को जब तक हम स्थान-स्थान पर स्थापित नहीं कर देंगे तब तक समझ लें कि हमारा काम बहुत धीमा है।[1]

गिजू भाई राष्ट्र विकास का मूल ग्राम्योदय में ही देखते थे। ग्राम्य-शिक्षा का हल करके ही राष्ट्रीय प्रगति का लक्ष्य हासिल करना संभव है। उनकी दृष्टि में गाँव की शिक्षा का हल ही राष्ट्रीय जीवन का समाधान था। वे कहते हैं कि बाल-जीवन के प्रश्नों का हल ढूँढ़ने के लिए हम मॉण्टेसरी को वहाँ भी ले जायेंगे। स्वावलंबन और स्वतंत्रता ये दोनों मॉण्टेसरी-पद्धति के प्राण हैं। ये चीजें मॉण्टेसरी-पद्धति के पास न होतीं तो हमें उसकी कोई जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन गाँवों को आज श्रममय जीवन की आवश्यकता है। हमारे वर्तमान जीवन की यही एक महान् बुराई है कि वह प्रमादी और परावलंबी बन गया है। गाँव इसी कारण से लूटे जाते हैं कि वे अज्ञान में डूबे हैं, वहमों के अंधेरे में गर्क हैं, बुद्धि की जड़ता में खोये हैं। यही वजह है कि गांव आज सबसे अधिक भयत्रस्त है और गांव याने हम सब-हम, हमारे शहर, हमारा संपूर्ण राष्ट्र। इन गाँवों के लिए हमें यह मॉण्टेसरी-पद्धति दूर फेंक देने की चीज लगती, अगर यह निर्भयता की शिक्षा देने वाली न होती, स्वावलंबी बनाने वाली न होती, निर्मल ज्ञानदात्री न होती, गुलामी से मुक्ति देने वाली न होती।

गिजू भाई के इन शब्दों से गाँवों में मॉण्टेसरी शिक्षा पद्धति की प्रासंगिकता स्वत: स्पष्ट हो रही है। ग्रामीण बालक ही नहीं शहर की मलिन बस्तियों के बालक की दशा का सजीव व मार्मिक वर्णन गिजू भाई करते हैं- "जो बालक आज गँदगी में सड़ चुका है, जो माता-पिता के दुराचारों और दुष्चक्रों में अंतिम साँसें गिन रहा है, जिस बालक की शिक्षा अक्षरज्ञान जितनी भी नहीं है, जिस बालक की वैज्ञानिक आंखे मुंदी हैं, जिस बालक की भावनात्मक तीव्रता पशुता के उस पार जाने नहीं लगी, जिस बालक के नाखून बढ़े हुए हैं, माथे में जुएँ भरी हैं, कपड़े फटे हैं, दुर्गंध फूट रही है, नाक वही जा रही है, कान और आँख से मवाद बह रहा है और जो गाँव की धूल में पड़ा है, वही बालक आज शहरों के गरीब मोहल्लों में, मिल-मजदूरों की झोंपड़ियों में, पिछड़ी जातियों के मोहल्लों में है। ऐसे बालक मूक वेदना को सुनकर ही मॉण्टेसरी दौड़ी आई है। जिस प्रकार गरीबों की सहायतार्थ दौड़े आने

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 37

वाले को पैगंबर की संज्ञा मिलती है, उसी प्रकार डॉ0 मॉण्टेसरी को भी आने वाली युग में अवतारी जैसा ही सम्मान मिलेगा।"

गिजू भाई डॉ0 मॉण्टेसरी जैसी ही दृष्टि रखते थे। जैसा मॉण्टेसरी अनुभव करती थीं, गिजू भाई ने भी उसी संवेदना की अनुभूति की तभी वे मॉण्टेसरी के गुणों की, उनकी भावनाओं व पद्धति को हृदय की अन्तरतम गहराईयों तक अनुभूति करने में सक्षम हो सके। मॉण्टेसरी की भाँति ही गाँवों के दुःखी बालकों के दुःख को जैसे उन्होंने देखा, वैसे ही ऊपर से दिखने वाले शहरों, श्रीमंतों, अमीर, उमरावों के बालकों के दुःख को भी वे देख सके। आयाओं और नौकरों के हाथों में कुचले जाते, धमकाये जाते बालकों को वह सहन न कर सके। माता के मौजूद रहते बालक को दूसरी औरतों का दूध पिलाने वाली अमाताओं को उन्होंने खेदपूर्वक देखा। सुंदर वस्त्र पहने हुए लेकिन नौकरों के द्वारा अपंग बने बालकों को देखकर उनका दिल जलने लगा और प्रेम तथा हेत में प्रभु द्वारा मांगे हुए बालकों को मिथ्या प्रेम व हेत के नीचे कुचले जाते देखकर उन्हें बहुत पीड़ा हुई। उन्होंने बालकों की तरफ देखा और उनके बाल-हृदय में प्रवेश किया। बाल-हृदय के निमित्त उन्होंने मॉण्टेसरी-पद्धति का अनुसरण किया।

गिजू भाई का आह्वान था कि- "हम याने हम सब ! हम याने हमारे धनी व निर्धन, हम याने शिक्षण की सत्ताएँ और हमारी राज्य सत्ताएँ, और हमारे प्रत्येक माँ-बाप। हम सब मिलकर जागें, अपने घरों को रहने योग्य बनायें अपने धन को लाखों बालकों के लिए खर्च करें, अपनी शिक्षा-सत्ता का बालकों को निमित्त सदुपयोग करें तथा अपनी राज्य-सत्ता भी बालकों के राज्य के निमित्त खर्च कर डालें।[1]

गिजू भाई को विश्वास था कि मॉण्टेसरी-पद्धति को अपना बनाने के लिए अगर धनिक धन देगा तो विद्वान लोग अपनी बुद्धि देंगे। मॉण्टेसरी का साहित्य हमारे यहाँ अत्यन्त कम है। मॉण्टेसरी के अध्ययनकर्ता उपेक्षित हैं। अध्ययन के साधन कम हैं। गिजू भाई पूछते हैं कि क्या हम साहित्य की अभिवृद्धि के लिए अपना धन व बुद्धि खर्च करने में विलंब करेंगे। एक बार हमने समझ लिया कि बालक हमारा महान् धन है, हमारा यह जीवन उस पर निर्भर है। यह आसपास पड़ी समस्त जीवन प्रवृत्ति तो इसकी होनी ही है, खुद अपना जीवन भी हम बालक के लिए ही जीते हैं तो हम अपना सर्वस्व अर्पित कर देंगे। उन्हें विश्वास था कि किसी भी देश में, किसी भी काल में कोई बात समझ में आ जाए तो बाद में धन और बुद्धि कभी पीछे नहीं रहते।

गिजू भाई का स्पष्ट मत था कि हमारी शिक्षा की सत्ता को यह नवयुग लाने के लिए अब अपनी पद्धति बदलनी पड़ेगी। जो काम सारा संसार कर रहा है अगर उसे भारतवर्ष नहीं करेगा तो

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 38

जाएगा कहां ? अब तो शिक्षा का बजट सबसे पहले - और उसमें भी बाल-शिक्षण का बजट सबसे पहले तैयार होना चाहिए। अध्यापक महाशय को पुस्तकों के भंडार के बीच से बाहर निकालकर बच्चों के बीच गाना, बजाना, कूदना चाहिए। अर्थात् अध्यापक को पुराना बाना त्याग कर नया बाना पहनना पड़ेगा। बालकों को तब तक संतोष नहीं मिलेगा जब तक कि अध्यापकगण सिर्फ परीक्षा देने के लिए ही किंडरगार्टन या मॉण्टेसरी-पद्धतियों को पढ़ेंगे और बाद में, वापस भूल जायेंगे। बालक तत्काल कह देंगे कि हमें बोदे और पचास वर्ष पुराने बाल-शिक्षण के संशोधन नहीं चाहिए, तुम्हारी शिक्षा की सत्ता हमें तभी मान्य है कि जब वह हमें सत्ता का शिक्षण प्रदान करने की अपेक्षा समानता की शिक्षा दे। हमारी शिक्षा सत्ताओं को ही करना है यह काम ![1]

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में गिजू भाई का यह सुझाव अत्यन्त प्रासंगिक है कि हम अनिवासी भारतीयों तथा विदेश जाने वाले भारतीयों का सहयोग लेकर मॉण्टेसरी बालमंदिरों को समृद्ध बनायें। वे कहते हैं - "हम अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए प्राचीनकाल से ही देश-देशान्तरों से संबद्ध रहे हैं, और समय-समय पर परदेश की समृद्धि को अपने देश को समृद्ध बनाया है। आज दुनिया भर में बाल-शिक्षण की भी कितनी ही कोठियाँ हैं। हम भी अपने लिए उपयोगी माल लाने वहां क्यों न जाएं? हमारा एक-एक श्रीमंत विलायत जाते वक्त विलायत के प्रवास से प्राप्त धन एक-एक मॉण्टेसरी शिक्षक तैयार करा सकता है और निश्चय कर ले तो गरीबों के लिए अपनी निजी एक-एक मॉण्टेसरी पाठशाला चला सकता है। मुझे विश्वास है कि आने वाले एक दशक में बालक-शिक्षण निष्णात स्त्री-पुरुषों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाएगी।

मॉण्टेसरी-पद्धति के प्रचार-प्रसार के लिए गिजू भाई मिशनरी भावना अपनाने को कहते हैं। वे मॉण्टेसरी उपकरणों की उपलब्धता सुनिश्चित करने तथा 'ब्यूरो ऑफ मॉण्टेसरी लिटरेचर' की स्थापना किये जाने पर भी बल देते हैं। हमें बालक के माता-पिता को नहीं भुलाना चाहिए। उन्हें बाल-शिक्षण की दृष्टि देने का प्रयत्न किये बिना हम उन्हें उलाहना भी कैसे दे सकते हैं। वास्तविक शिक्षा-गुरु तो माता-पिता हैं और घर पहली पाठशाला। अतएव माता-पिता के लिए अध्यापन-मंदिर खोलने का गिजू भाई का विचार मनोरंजक होते हुए भी महत्वपूर्ण है।

गिजू भाई कहते हैं कि यद्यपि हम प्रगति-पथ पर अग्रसर हैं तथापि घरों व पाठशालाओं में अभी मॉण्टेसरी भावना (स्प्रिट) आते बहुत वक्त लगेगा। बालक के प्रति हमारी दृष्टि निरंतर श्रेष्ठता की तरफ बढ़ रही है। कल की तुलना में हम आज बालक के लिए अधिक चिंतातुर बने हैं। पर अब भी बहुत कुछ शेष है। बहुत कठिनाइयाँ हैं। हमें इन तमाम कठिनाइयों पर नियंत्रण करना पड़ेगा।

नए युग के ये पूर्वचिह्न कहीं भावी के गर्भ में हैं तो कहीं सुस्पष्ट दिख रहे हैं! लेकिन इस

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 39

बाल-युग का नया शुभारंभ तो हो ही चुका है। आज पूरी दुनिया में बाल-शिक्षण, बाल-विकास, बाल-साहित्य, बाल-पोशाक, बाल-आहार आदि अनेक प्रश्नों की उत्साह एवं आग्रहपूर्वक चर्चा चल रही है। बालकों के उद्धार में संसार का उद्धार देखने वाले विद्वान् क्रांत-दृष्टि से कह रहे हैं- नयी पीढ़ी को हाथ में लो, नयी पीढ़ी को व्यक्तित्व प्रदान करो, नयी पीढ़ी को परतंत्रता से बचाओ। नयी पीढ़ी को व्यष्टि समष्टिगत जीवन का मेल समझाओ। इस दुनिया को लड़ाई-झगड़ों से, बैर-द्वेष से, युद्धों से, अनाथाश्रमों और पागलखानों से कचहरियों और कैदखानों से, गरीबी और विलास से, सत्ता और गुलामी से बचाना हो तो नयी पीढ़ी की शिक्षा को नया स्वरूप प्रदान करो। जिस घर और जिस पाठशाला ने आज की यह दुनिया बनाई है उसे तोड़ डालो और अंधेरे को मिटाने के लिए नई रोशनी आने दो।[1]

गिजू भाई मैडम मारिया मॉण्टेसरी तथा उनके पूर्ववर्ती आचार्यों के प्रति असीम श्रद्धा रखते थे। वे कहते हैं कि - "इस नई दुनिया के नए पैगाम का परचम आज किसके हाथ में है? जिन्होंने अथाह श्रम और सेवा में जीवन के वासंतिक दिवस बालक के पास बैठकर बिताये हैं, जिन्होंने परेशान वे बेचैन बालकों की चीख-पुकारें ही नहीं, बल्कि उनके अंत: करण की व्याथा को सुनकर दुनिया भर को चुनौती दी है, कि 'बालक को आजादी हो', 'बालक को सम्मान दो' और जिनके पूर्ववर्ती आचार्य आज आजादी की प्रत्यक्ष भेंट समर्पित की हुई देखकर अपना जीवन धन्य मानेंगे, जिन्होंने एक बालक को नहीं अपितु अनेक बालकों को शरीर नहीं, बल्कि जान देकर जगन्माता का अमूल्य पद हासिल किया है वे सब आज के बाल-पैगंबर हैं। उनके जीवन का तपश्चर्या का आज उत्सव है।"

इन बाल-पैगंबरों के आदर्शों का अनुकरण करके ही भारतीय बाल शिक्षा के परिदृश्य में सकारात्मक परिवर्तन लाना संभव होगा। हम प्रण लें कि शिक्षा की कोई भी योजना बनाते समय बालक को नहीं भूलेंगे। हमारे लिए तो वह कहीं भी बाधक नजर नहीं आता। हाथ-पाँव छोटे-छोटे हैं, उसके और इंद्रियों का अभी पूरा विकास हुआ नहीं है। उसकी भाषा बन रही है, बुद्धि खिल रही है, पर उसकी आत्मा महान् है। उसकी विकास-शक्ति अमर्यादित है। बालक को हम न भूलें, क्योंकि वह हमारी आशा है, हमारी अनंत चिरंजीविता है, हमारा सर्वस्व है। वह हमेशा हमारे आगे रहे हम उसके पीछे। उसे विकास के हर अधिकार हैं और इसका उत्तरदायित्व हमारा है। हमें भविष्य में उसके पीछे जाना चाहिए और उसके साथ-साथ हमें अपना भविष्य गढ़ना है। हमारी समस्त जीवन-प्रवृत्तियों में बालक हमारी नजरों के सामने रहना चाहिए। घर में, बाजार में, बाग, बगीचे में, रेल में, सर्वत्र बालक को प्रथम स्थान पर रखना चाहिए।

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 36

प्रत्येक शिक्षक, माता-पिता, संवेदनशील नागरिक, बुद्धिजीवी, सामाजिक कार्यकर्ता, शिक्षाकर्मी के साथ-साथ प्रत्येक उस व्यक्ति को गिजू भाई के इस आह्वान को स्वीकार करना होगा जो हृदय से राष्ट्र-विकास का आकांक्षी है। "अतएव बालक को उचित स्थान देने-दिलाने के लिए, आइए, हम कमर कसें, हथियार थामें और युद्ध करें। आइए, बालक के बीच आने वाले अवरोधों को हम हटा दें। बालक के लिए, बल्कि स्वयं अपने लिए आइए, हम इस दुनिया को अस्थिर कर डालें, व्यथित और अशांत कर दें। बालकों के अधिकारों के निमित्त शिक्षकों और अभिभावकों द्वारा छेड़ा हुआ युद्ध भले ही इतिहास में न लड़ा गया हो, पर हम लड़ेंगे। इस युद्ध में हम जात-पांत भुल दें, रंगभेद भुला दें और एकमात्र बालक के ही लिए, समग्र मानव जीवन की उम्मीद के लिए, समग्र मनुष्य जीवन की मनुष्यता के परिणाम के लिए विजयी युद्ध करें। यह युद्ध हमारी संकीर्णता, हमारे मताग्रह, हमारे अज्ञान, हमारी गुलामी, हमारे भेदभाव और हमारी नास्तिकता के विरुद्ध लड़ना है हमें। पहले हमें इनसे मुक्त होना पड़ेगा, तभी बालक के प्रति हमारा युद्ध पूरा होगा। और हमारे जीवन का कर्त्तव्य भी तभी पूरा होगा। आइए, हम एक होकर अपने इस कार्य की सिद्धि के लिए प्रार्थना करें कि तेजोमय हमें तेज दे, चेतनमय हमें चेतना दें, अनंत विजय हमें विजय दे।"[1]

प्रो0 अनिल सद्गोपाल[2] कहते हैं कि हमारे पास गाँधी, टैगोर, डॉ0 जाकिर हुसैन तथा गिजू भाई बधेका सरीखे दिग्गजों के शैक्षिक चिंतन की समृद्ध विरासत है, परन्तु अपने गैर-जिम्मेदाराना रवैये के कारण हम जहाँ से चले थे, वहीं टिके हैं। एक ओर भारत में गिजू भाई जैसे बाल-शिक्षा मर्मज्ञों ने पूर्व प्राथमिक शिक्षा में अनूठे प्रयोग किए और इसका शिक्षा शास्त्र विकसित करने में सृजनात्मक योगदान दिया, वहीं दूसरी ओर पूर्व प्राथमिक शिक्षा कभी भी राष्ट्रीय एजेन्डे का हिस्सा नहीं बन पाई। 'समेकित बाल विकास सेवाएँ' नामक कार्यक्रम के तहत चलने वाली आँगनवाड़ियाँ 'खिचड़ी-दलिया' केन्द्र बन कर रह गयी हैं। उनमें पूर्व प्राथमिक शिक्षा का पुट जोड़ने का सरकारी इरादा, हालाँकि, आज भी कागजों पर मौजूद है। प्रो0 सद्गोपाल की दृष्टि में कुल मिलाकर स्थिति यह है कि पूर्व प्राथमिक शिक्षा लगभग एक अभिजात व मध्यमवर्गीय प्रक्रिया बन गयी है। इस महत्वपूर्ण शैक्षिक चरण के संदर्भ में राज्य की सु-परिभाषित भूमिका के अभाव में पूर्व प्राथमिक शिक्षा का पूर्ण बाजारीकरण हुआ और उससे जुड़ी तमाम विकृतियाँ इस पर हावी हुई। शिशुओं को दाखिले के साथ ही परीक्षा, बोझिल पाठ्यक्रम, भारी भरकम बस्ते, मातृभाषा की जगह अंग्रेजी, खेलकूद व आनंद की जगह अनुशासन आदि विकृतियों का शिकार होना पड़ता है। भारतीय बचपन के लिए बाल-शिक्षा का यह एकांगी, बोझिल एवं संवेदनहीन स्वरूप आज एक गंभीर खतरा बन चुका है।

1- गिजू भाई बधेका - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 42

2- अनिल सद्गोपाल, शिक्षा में बदलाव का सवाल, ग्रंथ शिल्पी (इण्डिया) प्रा0 लि0, लक्ष्मी नगर, दिल्ली, पृ0 145-152

भारतीय बालक से उसका बचपन छीनकर उसे 'ज्ञान के गलियारे' में बलपूर्वक धकेलते हुए व्यवस्था का अनुशासित व विनम्र चाकर बनाने की दुस्साहसिक कुचेष्टा के विरुद्ध समय रहते यदि हस्तक्षेप नहीं किया गया तो गिजू भाई के स्वप्न अधूरे ही रह जायेगें। बालक के लिए लड़े जाने वाले 'मुक्ति-संग्राम' में हमारी सहभागिता ही गिजू भाई को हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

अध्याय सप्तम्
निष्कर्ष एवं सुझाव

गिजू भाई ने अपना सम्पूर्ण जीवन बालकों की हितों की रक्षा हेतु अर्पित किया। बाल-शिक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान अतुलनीय है। वे सर्वतोमुखी व्यक्तित्व के स्वामी थे। वे प्रत्यक्ष रूप से कार्य करते हुए स्वानुभव द्वारा सीखने में आस्था रखते थे। अपने सिद्धान्तों में उनकी अटूट आस्था थी। वे आत्मविश्वास व समर्पणशीलता से अपने कार्य में संलग्न रहते थे। अपनी कमियों को वे निःसंकोच स्वीकार करने का साहस रखते थे। वे अध्ययनशीलता, कर्म-प्रधान चिंतनयुक्त प्रज्ञा, प्रयोगशीलता, कर्तव्यनिष्ठता, विनम्रता, विनोदप्रियता, आत्म निरीक्षण करने क्षमता तथा सर्जनात्मकता के गुणों से ओत-प्रोत थे। स्वयं बाल स्वभाव रखने वाले गिजू भाई बाल मन की गहरी पैठ रखते थे। संवेदनशीलता व ममत्व से परिपूर्ण व्यक्तित्व रखने वाले गिजू भाई बालकों के हित के लिए आजीवन संघर्षरत् रहे।

वकालत का पेशा त्याग कर गिजू भाई शिक्षण की ओर उन्मुख हुए। उन्हें इस ओर प्रेरित करने में अनेक कारकों का योगदान रहा। मारिया मॉण्टेसरी की पुस्तक 'मॉण्टेसरी मदर' द्वारा इसका बीजारोपण हुआ। 'मॉण्टेसरी मैथड' पुस्तक से भी वे अत्यधिक प्रभावित हुए। स्वाध्यायी होने के कारण उन्होंने अनेक विद्वानों की पुस्तकें पढ़ीं तथा उनसे प्रभावित हुए। परिवार के अनुभवों, किशोर अवस्था में मित्र-मण्डली के अनुभवों तथा अपने बालकों के साथ हुए अनुभवों से उन्होंने बहुत कुछ सीखा। वे बाल शिक्षाविद् नील से भी अत्यधिक प्रभावित थे। रुसी बाल साहित्य ने भी उनके चिंतन को नई दिशा प्रदान की। अफ्रीका प्रवास के दौरान एडवोकेट स्टीवैन्स ने उन्हें स्व-विवेक से कार्य करने की सीख दी। मामा हरगोविन्द के निर्भयता व दृढ़ता के गुणों से वे अत्यधिक प्रभावित थे। वस्तुत: उन्हीं की प्रेरणा से उन्होंने शिक्षण का कार्यभार ग्रहण किया। अपने स्कूली जीवन की यादें उनके स्मृति-पटल पर सदैव कोंधती रहती थीं और स्कूलों की दुर्दशा को बदलने के उनके संकल्प को सदैव मजबूत करती रहती थीं। शिक्षण के दौरान विद्यालय में किये जाने वाले प्रयोगों के समय उनके कुछ अधिकारियों ने भी उनको प्रेरित करने तथा उनका मनोबल बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

गिजू भाई मॉण्टेसरी से अत्यधिक प्रभावित थे। उनके शैक्षिक चिंतन को सुनिश्चित दिशा प्रदान करने में मॉण्टेसरी एक सशक्त प्रेरणा स्रोत के रूप में दृष्टिगोचर होती है। मॉण्टेसरी के पूर्ववर्ती शिक्षाविदों में ऐसे अनेक नाम उल्लेखनीय हैं, जिनके विचारों ने तत्कालीन शिक्षा जगत को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से तथा किसी न किसी सीमा तक अवश्य प्रभावित किया तथा मॉण्टेसरी तक आते-आते यह प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगा।

डॉ0 मॉण्टेसरी के पूर्ववर्ती आचार्यों में जॉन लॉक, कोंडिलेक, जेकब परेरा, रूसो, ईटार्ड तथा एडवर्ड सेगुइन के नामों की गणना की जा सकती है। जॉन लॉक ने मॉण्टेसरी के महानद का क्षीण-प्रवाही निर्झर मात्र विद्यमान है। कोंडिलेक व परेरा ने उस निर्झर को कुछ विपुलता प्रदान करके एक जल-धारा की प्रतिष्ठा प्रदान की है। रूसो ने तो मानो नदी ही प्रवाहित कर दी। उसकी दो धाराएं बनीं - एक में पेस्टोलॉजी और फ्रॉबेल सैर के लिए निकल पड़े और दूसरी में ईटार्ड एवं सेगुइन के प्रबल प्रवाह आकर मिल गए। ये प्रवाह उच्छृल गतिमान हुए, जोर से बहे तथा बाढ़ से उफनकर छलछलाने लगे। उसी से निर्मित हुआ मॉण्टेसरी का महानद, जो आज अपने अविच्छिन्न, अविरल तथा अद्‌भुत प्रवाह से शिक्षण की भूमि पर सतत् बह रहा है तथा गिजू भाई जैसे शिक्षाविद्‌ों को इस दिशा में कुछ नया करने के लिए निरंतर प्रेरित कर रहा है।

गिजू भाई के शैक्षिक विचार

शिक्षा की अवधारणा :- गिजू भाई का मत है कि शिक्षा-व्यवस्था पर विचार करते समय क्या पढ़ाना? किसलिए पढ़ाना? और कैसे पढ़ाना? इन तीनों प्रश्नों पर चिंतन आवश्यक है। वे मानते हैं कि मनुष्य को शिक्षा देने की शुरूआत करने से पूर्व ही उसमें अनेक प्रकार के संस्कार मौजूद रहते हैं। वह पूर्व जन्मों के संस्कार, समष्टिगत उपलब्धियाँ, पूर्वजों का उत्तराधिकार, गर्भावस्था के प्रभाव तथा समाज व वातावरण के प्रभावों से जनित संस्कार लेकर विद्यालय में प्रवेश करता है। शिक्षा देते समय इस सम्पूर्ण स्थिति को ध्यान रखा जाना चाहिए। शिक्षा मानव की स्वाभाविकता की रक्षा करने वाली तथा उसके स्वभाव को उच्चगामी बनाने वाली हो।

गिजू भाई की दृष्टि में शिक्षा जीवन-व्यापी प्रक्रिया है। इसका उद्‌गम मानव के भीतर से है। शिक्षा विकास है। विकास की आधारशिला है अनुभव, अनुभव स्वतंत्र क्रिया में निहित है। मार्ग के अवरोधकों को दूर करने तथा मानव के सम्मुख अपने जीवन लक्ष्य को सिद्ध करने की अनुकूलता जुटाना ही सच्ची शिक्षा है।

गिजू भाई का मत है कि शिक्षा की प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु बालक है। शिक्षा के द्वारा उसके वांछित विकास के अनुकूल परिस्थिति या वातावरण उत्पन्न किया जाना चाहिए। बालक की शारीरिक, मानसिक व हार्दिक-इन तीनों वृत्तियों का सृजनात्मक पोषण ही शिक्षा का कार्य है।

गिजू भाई शिक्षा को अंतस्थ शक्तियों के प्रकटीकरण व विकास की प्रक्रिया भी मानते हैं। सभी के आंतरिक रुझानों को पूर्णरुपेण विकसित कर सके, इस हेतु वांछनीय वातावरण व साधन उपलब्ध कराना भी शिक्षा है। गिजू भाई शिक्षा को स्वातंत्र्य व स्वयं-स्फूर्ति के साधन के रूप में देखते हैं। बुद्धि को स्वतंत्र, विवेकपूर्ण व तार्किक चिंतन में सक्षम बनाने वाली शिक्षा ही उनकी दृष्टि

में सच्ची शिक्षा है। वे कहते हैं कि – जो शिक्षा बालक को स्वाधीनता के मार्ग पर आगे बढ़ने में मदद करती है, वही शिक्षा प्राणवान है। शिक्षा सच्चे मानव का विकास करने वाली हो, ऐसा मानव जो परानुभूति, सहिष्णुता, मैत्रीभाव, सेवाभाव, प्रेम, समानता, कल्पनाशीलता, औदार्य तथा सद्-असद् विवेक से युक्त हो।

शिक्षा के उद्देश्य :- गिजू भाई शिक्षा के वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों प्रकार के उद्देश्यों को महत्वपूर्ण मानते हुए उनके मध्य सुन्दर समन्वय स्थापित करते हैं। वे व्यक्ति तथा समाज के मध्य कोई द्वंद्व नहीं देखते। उनके अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्नवत् हैं :-

1. स्वास्थ्य विकास
2. आध्यात्मिक विकास
3. चारित्रिक विकास
4. स्वतंत्र बुद्धि व स्वावलम्बन का विकास
5. व्यावसायिक दक्षता का विकास
6. आत्म-अभिव्यक्ति
7. शान्ति व बंधुत्व का विकास
8. समता व समानता
9. सृजनात्मक क्षमता का विकास
10. आत्म-निर्भरता का विकास
11. निर्भयता का विकास
12. वैज्ञानिक बुद्धि का विकास
13. धार्मिकता का विकास

पाठ्यक्रम :- गिजू भाई के अनुसार पाठ्यक्रम बालक की रुचि, रुझान व विकासावस्था के अनुरूप हो। पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु एवं कार्यकलाप बालक की स्वाभाविक इच्छा तृप्ति में सहायक हों।

गिजू भाई लड़कियों व लड़कों के लिए समान पाठ्यक्रम का समर्थन करते हैं। वे पाठ्यक्रम में गणित, विज्ञान, प्राणिशास्त्र, भूगोल, इतिहास, समाज विज्ञान, कला, भाषा व संगीत जैसे परम्परागत विषयों के साथ-साथ व्यावसायिक कौशलों का विकास करने वाले विषयों को शामिल करना भी आवश्यक मानते हैं। गिजू भाई पढ़ाने के विषय की अपेक्षा उसको पढ़ाने की पद्धति पर अधिक बल देते हैं। उनके अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण में बालकों की रुचि, रुझानों व आवश्यकताओं को ध्यान रखा जाए। पाठ्यक्रम क्रिया-केन्द्रित, श्रम में आस्था उत्पन्न करने वाला, स्वावलम्बी बनाने वाला तथा

वैज्ञानिक बुद्धि उत्पन्न करने वाला हो।

उपर्युक्त विषयों के अलावा गिजू भाई पाठ्यक्रम में सिलाई, कढ़ाई-बुनाई, डाक-पेटी, रंगोली, मिट्टी का काम, शांति का खेल, कथा-कहानी, नाटक, प्रकृति परिचय, चित्रकला, चरखा, खेलकूद, बागबानी जैसे विषयों व कार्यों को सम्मिलित करने पर विशेष बल देते हैं।

शिक्षण पद्धति :- गिजू भाई छोटे बालकों के लिए मॉण्टेसरी शिक्षा-पद्धति का पुरजोर समर्थन करते हैं। उनका मानना था कि इस पद्धति का उद्देश्य बालक के शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्व-स्फुरित विकास में सहायता देना है न कि बालक को पढ़ा-लिखा कर शिक्षित बनाना।

वे मानते थे कि सच्चे इंद्रिय शिक्षण पर ही बालक की जीवन भर की शिक्षा निर्भर करती है। उनके अनुसार सीखना बालक के लिए एक आनंददायक क्रिया होनी चाहिए। शिक्षण भी आनंद से पूर्ण हो। यांत्रिक, उबाऊ व नीरस शिक्षण अधिगम का मार्ग अवरुद्ध करता है।

'प्राथमिक विद्यालय में शिक्षण पद्धतियाँ' शीर्षक पुस्तक में गिजू भाई ने विभिन्न प्रचलित शिक्षण पद्धतियों का उनके गुण-दोष विवेचन करते हुए विस्तार से वर्णन किया है तथा उनकी उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला है। इनके द्वारा वर्णित पद्धतियाँ अग्रलिखित हैं :- व्याख्यान-पद्धति, प्रश्नोत्तर-पद्धति, जोड़ीदार-पद्धति, नाट्य-प्रयोग-पद्धति, संयोगीकरण और पृथक्करण पद्धतियाँ, सिद्धान्तमूलक और दृष्टान्तमूलक-पद्धतियाँ, त्रिपद-पद्धति, प्रत्यक्ष-पद्धति, दर्शन-पद्धति, योजना-पद्धति, किंडरगार्टन-पद्धति, स्वयंशिक्षण-पद्धति, उन्मेष-पद्धति, कालक्रमानुसारी-पद्धति, व्युत्क्रम-पद्धति, पुस्तकालय-पद्धति, मुखपाठ-पद्धति, बैन-पद्धति, श्रवण-पद्धति, कथा-पद्धति, चलचित्र-पद्धति, उस्ताद-पद्धति।

अनुशासन :- गिजू भाई की अनुशासन सम्बन्धी अवधारणा उनके अपने बाल्य-जीवन के अनुभवों, आस-पड़ोस के प्रत्यक्ष अनुभव तथा विद्यालय के स्वानुभवों पर आधारित है। भय व दमन पर आधारित अनुशासन के वे घोर विरोधी थे। लालच, प्रशंसा व पुरस्कार को भी वे अनुशासन स्थापना का अच्छा तरीका नहीं मानते थे। दमनात्मक अनुशासन का प्रयोग करने वाले विद्यालयों को वे बालकों की प्रथम जेल कहते हैं। बालकों को मारना-पीटना, डाँटना, धमकाना, उनकी इच्छा के विरुद्ध रोकना, धक्का देना, आँखें दिखाना ये सभी तरीके उनकी दृष्टि में गलत थे। वे मानते थे कि बालक को दण्ड देकर बड़े लोग अपनी असंयमी वृत्ति का ही परिचय देते हैं। गिजू भाई कहते थे कि बालक को स्पर्धा के विष से बचाया जाना चाहिए। उसमें आत्म-प्रेरणा का भाव विकसित करें। बालक के अवांछनीय व्यवहार के मूल कारण को जानकर उसका समाधान करना ही गिजू भाई की दृष्टि में व्यवहार-परिष्करण का सर्वोत्तम तरीका है। उनका मत है कि शिक्षक का व्यवहार, शिक्षण पद्धति तथा विषय-वस्तु यदि

बालक को रुचिकर होंगे तो स्वाभाविक रूप से अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी। माता-पिता व शिक्षकों को चाहिए कि वे बालकों को पढ़ाने के मामले में जल्दबाजी व हठधर्मिता न दिखायें। स्वयं को उन पर थोपे भी नहीं।

गिजू भाई मानते हैं कि बालक स्वभाव से व्यवस्था-प्रिय होते हैं। उनके विषय में अन्यथा धारणा ठीक नहीं। वे शान्ति-प्रिय व कर्म-प्रिय होते हैं। उनका कहना है कि दो बालकों में परस्पर तुलना भी कदापि नहीं करनी चाहिए। मौखिक निर्देशों जैसे-यह करो, यह मत करो का विशेष प्रभाव भी बालक पर नहीं पड़ता है। बालक को आदेश देने से पूर्व उस पर विचार कर लेना चाहिए। गिजू भाई कहते हैं कि हर मामले में बालक को 'ना' कहने में हमारा बडप्पन नहीं है, इससे बचें। अत्यन्त आवश्यक होने पर ही 'ना' कहें। फिर उस 'ना' को बालक की जिद पर 'हाँ' में न बदलें। बालक यदि किसी कार्य या वस्तु के लिए बार-बार 'ना' कहता है तो उसका कारण तलाशें। गिजू भाई मानते हैं कि बालक हठी या उपद्रवी नहीं होते, वे अपने कार्य स्वयं करना चाहते हैं। अतः इसके अवसर उन्हें प्रदान करें। घरेलू कामकाज में भी उनकी यथा सम्भव सहायता लें। काम करते समय उनकी त्रुटियाँ न निकालें अपितु गलती होने पर कार्य का सही तरीका बतायें।

बालक :- गिजू भाई के हृदय में बालकों के लिए असीम प्रेम था। मानव जीवन की सर्वोत्तम अवस्था वे बाल्यावस्था को मानते थे। बालक को वे 'घर का आभूषण', 'आँगन की शोभा', 'भावी पीढ़ी का प्रकाश', 'प्रेम की मूर्ति', 'जनता का पैगम्बर', 'खिलती हुई कली', 'प्रकृति की सर्वोत्तम कृति' तथा 'प्रभु की अनमोल देन' मानते हैं। वे कहते हैं कि बालक से प्रेम नहीं अपितु उसकी पूजा करें, सेवा करें। उनके अनुसार स्वर्ग बालक की प्रसन्नता, उसकी हँसी व निर्दोष मस्ती में है। बालक हमारा प्रेरणा-स्रोत है, अलौकिक आनन्द की खान है।

गिजू भाई कहते हैं कि जैसा हमारा बालक होगा, वैसा हमारा भावी नागरिक बनेगा। वह आने वाले युग का स्वामी है। गिजू भाई बालक को समुचित सम्मान व स्वतंत्रता देने के प्रबल पक्षधर थे। वे कहते हैं कि बालक को उसके शरीर से नहीं आत्मा से पहचाने, उसके विकास में मदद करे तथा उसकी आत्मा जिस लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर है, उस ओर बढ़ने में हर सम्भव मदद करें।

शिक्षक :- गिजू भाई शिक्षण कार्य को आत्मोन्नति की साधना तथा पवित्रतम कार्य मानते हैं। उनकी दृष्टि में शिक्षण कार्य सर्वसाधारण को ऐहिक व परमार्थिक यथार्थ लाभ कमाने व बलवान बनाने के लिए है। शिक्षक अपने कार्य को उपासना समझें, कार्य के प्रति सच्ची सेवा भावना रखें, व्यवसाय के प्रति आस्था व निष्ठा रखें, सृष्टि मात्र से प्रेम करें तभी वे सच्चे शिक्षक कहलायेंगे।

गिजू भाई की दृष्टि में शिक्षक सच्चा मार्गदर्शक नेता, दृष्टा व प्रेरक है। वह भावी पीढ़ी का

निर्माता है। उसका व्यवसाय सर्वोत्कृष्ट है। शिक्षक में संकल्पशीलता, निराभिमानिता, गौरवानुभूति, आत्मिक बल, कर्तव्यनिष्ठा तथा निरंतर विकासोन्मुखता के गुण होने चाहिएँ।

गिजू भाई परम्परागत जाति व्यवस्था से हट कर शिक्षक की एक सर्वथा नूतन एवं विशिष्ट जाति के रूप में पहचान करते हैं। शिक्षक की इस नयी जाति में ब्राह्मण वृत्ति, क्षत्रिय वृत्ति, वैश्य वृत्ति एवं सेवा वृत्ति सभी के गुण समाविष्ट होंगे। इस नूतन जाति का धर्म-निर्भयता व साहस का संचार करना, सेवा करना, ज्ञान प्राप्ति का सतत् प्रयास करना तथा विद्यालय के लिए साधन जुटाना होगा।

गिजू भाई शिक्षक के लिए यह आवश्यक मानते हैं कि वह मानसिक व शारीरिक रूप से पूर्ण स्वस्थ हो, वह संतोषी स्वभाव रखे, मन व शरीर की स्वच्छता बनाये रखे, प्रकृति-प्रेमी हो, स्वस्थ आदतें रखने वाला तथा कुटेवों से दूर रहने वाला हो। गिजू भाई के अनुसार शिक्षक को अंतर्मुखी होना चाहिए, अन्यथा बहिर्मुखी होकर वह गैर शैक्षणिक कार्यों में लिप्त रहेगा। शिक्षक को चाहिए कि वह अधिकारियों की चाटुकारिता न करे, अनावश्यक वार्तालाप से बचे, अक्षर ज्ञान का मोह त्याग दे, बालक से प्रेम रखे, दण्ड व लालच का प्रयोग न करे, बालकों को स्वच्छता के लिए प्रेरित करे तथा उनमें आत्मविश्वास जागृत करे। गिजू भाई शिक्षकों द्वारा ट्यूशन किये जाने के भी विरोधी थे। उनका मानना था कि यदि शिक्षक अतिरिक्त आय का कोई साधन अपनाये तो वह सम्मानजनक हो। शिक्षक को सदैव आत्म-मूल्यांकन तथा आत्म-सुधार करते रहना चाहिए।

गिजू भाई छोटी कक्षा के अध्यापक की भूमिका व दायित्व को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। मॉण्टेसरी शिक्षक उनकी दृष्टि में एक वैज्ञानिक अवलोकनकर्त्ता की भूमिका रखता है। उसे चाहिए कि वह दैवी दृष्टि से बालक का, उसके अंतर्मन का, गहन व सूक्ष्म अवलोकन करे। ग्रामीण विद्यालय के शिक्षक के गुण व कर्तव्यों की ओर विशेष रूप से गिजू भाई ध्यान आकर्षित कराते हैं। वे कहते हैं कि ग्रामीण शिक्षक पर अज्ञानता, कुरीतियों व अंधविश्वासों को दूर करने का महत्वपूर्ण दायित्व है।

गिजू भाई शिक्षक संघ की भूमिका इंगित करते हुए कहते हैं कि उसका कार्य शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों में सुधार के लिए संघर्ष करना है। शिक्षक स्वयं अपनी कमियों को देखें और उन्हें दूर करने का प्रयास करें तभी वे समाज का विश्वास जीतने में सफल होगें। शिक्षकों को चाहिए कि वे बालक-विकास की दृष्टि से परिवार के साथ निकट सम्पर्क बनाये रखें। शिक्षक दीन-हीन न बनें, अपनी शक्ति व स्थिति को पहचानें तथा स्वावलम्बी बनें। गिजू भाई मानते हैं कि शिक्षकों की स्थिति में सुधार के लिए राज्य द्वारा भी समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

शिक्षक-छात्र सम्बन्ध :- गिजू भाई शिक्षण की जनतांत्रिक पद्धति को सर्वोत्तम मानते हैं। वे कहते हैं कि एकतांत्रिक शिक्षण-पद्धति में शिक्षक की भूमिका नौकर की तथा छात्र की भूमिका सेठ की बन जाती है। शिक्षक ही शिष्य के लिए सब कुछ करता है। वह भोजन चबाकर छात्र के मुख में डालता है। बालकों के मस्तिष्क को सूचनाओं से भर दिया जाता है। इस प्रकार छात्रों की स्व-प्रेरणा समाप्त हो जाती है।

गिजू भाई कहते हैं कि शिक्षक बालक को अपने प्राणों जैसा ही प्राणवान मानें, उसे विकसित होने की प्रेरणा दें। शिक्षक की सहायता मर्यादित हो। वह बालकों की स्व-स्फुरित गतिविधियों को न रोके, कृत्रिमता व आडम्बर का आवरण हटाये, उनकी मनोवृत्ति समझे, उनसे प्रेम व मैत्री भाव रखे तथा इस प्रकार उनका सच्चा मार्गदर्शक बने। गिजू भाई कहते हैं कि आत्मीयता, ममत्व व स्वयं बाल-हृदय रखने वाला शिक्षक ही छात्रों का प्रेम व विश्वास जीत सकता है। बालकों को शारीरिक दण्ड देने वाला, नाना प्रकार से प्रताड़ित करने वाला, टोका-टाकी करने वाला शिक्षक बालकों को शत्रु नजर आता है। वे कहते हैं कि- "शिक्षकों को अब दुनिया के राजाओं (बालकों) के सामने अपना ताज उतार देना चाहिए और बालकों की स्वतंत्र सभा का एक सभासद होकर पेश आना चाहिए।" उनका मानना है कि बालकों के मन में शिक्षक के प्रति पूर्ण निर्भयता होनी चाहिए।

मूल्यांकन एवं गृह कार्य :- गिजू भाई स्वीकार करते हैं कि परीक्षा के नाम पर बालकों पर बड़ा अत्याचार होता है। निरंतर होने वाली ये परीक्षाएँ उनका ही नहीं उनके माता-पिता का भी सुख-चैन छीन लेती हैं। गिजू भाई परीक्षा के प्रचलित तौर-तरीकों से लेशमात्र भी सहमत नहीं थे। वस्तुतः वे परीक्षा की इस प्रणाली में विश्वास ही नहीं रखते। मूल्यांकन का अर्थ उनकी दृष्टि में बालक के विकास का तथा शिक्षक का इस विकास में सहयोग देने की शक्ति का मूल्यांकन है। परीक्षा उनकी दृष्टि में बाहरी वस्तु है तथा इसके परिणाम भी लाभकारी नहीं होते हैं। यह व्यक्ति को बहुर्मुखी बनाती है अर्थात् बाहरी पैमाने पर व्यक्ति को अपना मूल्यांकन करना सिखाती है। दूसरों से अधिक अंक प्राप्त करने वाले में मिथ्याभिमान को तथा कम अंक प्राप्त करने वाले में निराशा व कुंठा को जन्म देती है। अंतः प्रेरणा के स्थान पर बाह्य-प्रेरणा से निर्देशित होने वाला व्यक्ति सदैव अपने कार्य के मूल्यांकन के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है। परीक्षाकाल बालकों के लिए बड़ा दुखद व पीड़ाजनक होता है। बालक परीक्षा के नाम से ही थरथर काँपते हैं। गिजू भाई कहते हैं कि परीक्षा बाह्य न होकर आंतरिक हो, ज्ञान की नहीं वरन् शक्ति की हो, तथ्यों की नहीं वरन् विकास की हो, दूसरों के लिए नहीं अपितु अपने लिए हो तथा परीक्षक भी बाहर का नहीं अपने भीतर का हो।

गिजू भाई विद्यालयों में गृह-कार्य की परम्परा को भी उचित नहीं मानते हैं। उनका मानना है

कि इससे बालकों पर अनावश्यक ही बोझ बढ़ जाता है।

विद्यालय :- गिजू भाई राष्ट्र के भावी नागरिकों के निर्माण में विद्यालय की भूमिका को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं। उनका कहना है कि पाठशाला-व्यवहार की सम्पूर्ण व्यवस्था ऐसी हो कि जो नागरिक पल रहे हैं उन पर नये विचारों व आदर्शों की सुस्पष्ट छाप अंकित हो सके। वे नये बाल विद्यालयों की स्थापना करने तथा वर्तमान विद्यालयों की दशा में सुधार करने पर विशेष बल देते हैं। जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल गिजू भाई ढाई से सात वर्ष की अवस्था का मानते हैं। उनके अनुसार इस वय में बालक को जैसे 'विशाल घर' की जरूरत होती है वह उसे बाल विद्यालय व उसके वातावरण में ही प्राप्त हो सकता है।

गिजू भाई कहते हैं कि बालक का स्वस्थ व संतुलित विकास विद्यालयों पर निर्भर है। यदि समाज रुग्ण है तो इसका अर्थ है कि विद्यालय रुग्ण हैं। गिजू भाई देश के विद्यालयों की जीर्ण-शीर्ण अवस्था देखकर अत्यन्त दुख व क्षोभ अनुभव करते थे तथा इनके त्वरित सुधार की आकांक्षा रखते थे। उनका मानना था कि हमारे विद्यालय बाल सृजन-शक्ति के पोषक नहीं वरन् हत्यारे बन गये हैं।

गिजू भाई ने मॉण्टेसरी पद्धति के अनुरूप ही बाल मंदिरों की स्थापना की। वे बाल मंदिर के लिए आवश्यक स्थान, साज-सज्जा, उपकरण, वातावरण तथा शिक्षक की भूमिका पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं। बाल मंदिर में पढ़ने वाले बच्चों के अभिभावकों से उनकी कुछ विशेष अपेक्षाएं थीं। वे उनसे सहयोग व विश्वास की आशा रखते थे। वस्तुतः गिजू भाई जिस आदर्श बाल मंदिर की कल्पना करते हैं वह बालकों की पाठशाला नहीं वरन् एक 'नया घर' है।

परिवार :- बालक के विकास में परिवार सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। गिजू भाई का मत है कि परिवार में एक सुनिश्चित व्यवस्था या तंत्र हो, निर्णय लेने का निश्चित केन्द्र हो, सत्ता का स्वरूप स्पष्ट हो। यह तंत्र भय पर आधारित न हो। उनका मानना है कि परिवार को सुचारू रूप से चलाना व बालकों का पालन-पोषण करना माता-पिता दोनों की समान जिम्मेवारी है। माता-पिता के पास बालकों के लिए पर्याप्त समय होना चाहिए। पारिवारिक कलह व द्वंद्व बिल्कुल न हो तथा परिवार का वातावरण प्रेम व आनन्द से परिपूर्ण हो।

गिजू भाई कहते हैं कि मानव-विकास में आस्थावान शिक्षक व माता-पिता बालक की अंतर्निहित क्षमताओं व शक्तियों में आस्था रखते हुए उसे पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करें तथा आगे बढ़ने में उसकी मदद करते रहें। उनका मत है कि माँ का प्रेम बालक के लिए हितकारी हो, उसे शक्तिहीन, निर्बल, निकम्मा, कायर व पराश्रित बनाने वाला नहीं हो। बालक के प्रति न तो पूर्ण उदासीनता व उपेक्षा ही उचित है न ही अत्यधिक संरक्षण। गिजू भाई कहते हैं कि 'समस्या-बालक' 'समस्या

माँ-बाप' की देन हैं। बालक जन्म से 'समस्या-बालक' नहीं होते हैं, ये वातावरण की देन हैं। गिजू भाई माता-पिता को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि बालकों का मेहमानों व रिश्तेदारों से अधिक सम्पर्क भी उचित नहीं है। इस सम्बन्ध में सतर्कता आवश्यक है। बालकों के खान-पान पर ध्यान रखा जाए तथा इसे लेकर माँ-बाप अनावश्यक चिंता व्यक्त न करें। बालक को रुचिपूर्वक जैसा खाना पसंद हो उसे खाने दें। परिवार के सभी सदस्य जहाँ तक सम्भव हो साथ-साथ भोजन करें।

गिजू भाई कहते हैं कि बालक की बातों पर, उनके प्रश्नों पर व उनके दृष्टिकोण पर माता-पिता द्वारा ध्यान दिया जाए, उनकी अवहेलना व तिरस्कार करना अथवा उनकी बातें अनसुनी करना अनुचित है। परिवार में बड़ों का आचरण श्रेष्ठ व आदर्श हो तभी बालक पर उसका प्रभाव पड़ेगा। बालक को अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखना भी सिखाया जाए। आया व नौकरों को परिवार में रखने का गिजू भाई विरोध करते हैं। घर पर बालक को ट्यूशन पढ़वाना भी वे उचित नहीं मानते। गिजू भाई का मानना है कि माता-पिता द्वारा बालकों की निजी बातों को सम्मान दिया जाना चाहिए। माता-पिता द्वारा उन्हें गलत सुझाव या निर्देश न दिये जाए। बालक को आत्म-निर्भर बनाने के लिए घर के कामकाज में बालक का सहयोग लिया जाये। बालकों की संगति पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

गिजू भाई कहते हैं कि बालक को बहम व अंधविश्वासों से दूर रखकर निर्भय बनायें। माँ-बाप स्वयं भी अनावश्यक शंकाओं व काल्पनिक भय से बचें। माता-पिता फैशन का मोह त्याग कर बालक के लिए आरामदायक व उपयोगी वस्त्र बनवायें। गिजू भाई की दृष्टि में बालक प्रदर्शन की वस्तु नहीं है। मेहमानों के सामने उससे उसके ज्ञान व किसी कौशल विशेष का प्रदर्शन कराना उचित नहीं है। झूठे दंभ व शिष्टाचार से स्वयं भी मुक्त रहें तथा बालकों को भी मुक्त रखें। बालक को निरंतर टोकाटाकी करना तथा प्रत्येक कार्य के लिए मना करना उचित नहीं है। यदि मना करना आवश्यक हो तो उसका कारण बताया जाये। माता-पिता को चाहिए कि वह बालकों के सम्मुख गोपनीय वार्तालाप न करें, आपसी बहस से बचें तथा वाणी पर संयम रखें। बालक को पर्याप्त स्वतंत्रता दें तथा यह स्वतंत्रता उसके हितार्थ हो। बालकों का सहयोग घरेलू कामकाज में लेकर, उन्हें अपने कार्य स्वयं करने देकर व्यवस्थित रहने व आत्मनिर्भर बनने का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। माता-पिता द्वारा बालकों से मारपीट किया जाना गिजू भाई नितांत अनुचित मानते हैं।

गिजू भाई का सुझाव है कि घर में बालकों का निजी स्थान हो, यदि उन्हें अलग कमरा दिया जा सके तो बहुत उचित होगा। वे कमरे में उपलब्ध कराये जाने वाले साजो-सामान व साधनों का भी उल्लेख करते हैं। कागज, कैंची, दियासलाई की डिब्बियाँ, लकड़ी की ईंटें व घन, चित्र बनाने का

सामान, आलपिन व कागज, कपड़े के टुकड़े, मिट्टी के खिलौने, देवघर या मंदिर की पेटी जैसी चीजें उसके कमरे में हों। बागबानी करने, प्राणियों की परवरिश करने, नाटक खेलने, फूल-पत्तियाँ एकत्रित करने तथा रेत में खेलने जैसे कार्यकलापों के लिए उसे अवसर उपलब्ध कराये जाएँ।

परिवार शिक्षा :- गिजू भाई का विलक्षण विचार था कि युवक-युवतियों को विवाह बंधन में बंधने से पूर्व बालकों के लालन-पालन की शिक्षा दी जानी चाहिए। गृहस्थ आश्रम सम्बन्धी यह शिक्षा भावी माता-पिता को परिवार में जन्म लेने वाले बालकों के प्रति अपने कर्तव्यों का बोध करायेगी।

कैशोर्य शिक्षा :- गिजू भाई लड़के-लड़कियों की सह-शिक्षा के समर्थक थे। उनका मानना था कि बालक-बालिकाओं के मध्य स्वाभाविक अंत:क्रिया से ही उनका स्वस्थ विकास होता है। वे चाहते थे कि सहज यौन आकर्षण उदात्त प्रेम में परिणत हो, ऐसी शिक्षा, वातावरण व आदर्श किशोरों के सम्मुख रखे जायें। बालकों को मैत्रीपूर्ण जीवन साधना के अवसर प्रदान किये जाये ताकि वे एक दूसरे के सहगामी, सहधर्मी व पूरक बन सकें।

नैतिक शिक्षा :- गिजू भाई कहते हैं कि मनुष्य शरीर की शक्ति बढ़ा सकता है, बुद्धि का वैभव प्राप्त कर सकता है, परन्तु अगर मनुष्य आत्मा की शुद्धि प्राप्त करने में पूरी जिन्दगी व्यतीत कर दे तब भी सफलता दूर ही रहेगी। यह विकास इतना कठिन, इतना सूक्ष्म है कि मात्र कथा-कहानी सुनाकर या उपदेश देकर नहीं किया जा सकता है। वे कहते हैं कि सत्य पाठ पढ़ाकर बालक से सत्य की अपेक्षा रखने वाला व्यक्ति या तो मूर्ख होता है, अज्ञानी होता है या ढोंगी। इस प्रकार गिजू भाई उपदेशात्मक रूप से नीति शिक्षण की व्यर्थता सिद्ध करते हैं। वे कहते हैं कि नीति शिक्षण का राग अलापने वालों की नसों में अनीति के भयंकरतम कीटाणु घुस गये लगते हैं। चूंकि वे अपने अंदर की अनीति से भय खाते हैं, उससे लड़ने में सक्षम नहीं हैं, अत: उसे दुनिया से हटाने के लिए लड़ रहे हैं। वे कहते हैं कि नीति शिक्षण मनुष्य को आत्मा की स्वतंत्रता से भ्रष्ट करता है। मनुष्य स्वयं अनीति पर चलता है पर चाहता है कि बालक नीतिवान बने। यह कदापि सम्भव नहीं है।

धार्मिक शिक्षा :- गिजू भाई बालकों को धार्मिक शिक्षा देने का भी समर्थन नहीं करते हैं। उनका कहना है कि बालकों के सुकुमार मस्तिष्क ईश्वर, आत्मा, परमात्मा व धर्म जैसे गहन विषयों को ग्रहण नहीं कर सकते हैं। उनके अनुसार धर्म के उत्तम तत्वों तथा महापुरुषों के प्रेरक प्रसंगों को कथा-कहानियों के रूप में शिक्षा से जोड़ा जा सकता है। धर्म से जुड़े कर्मकाण्ड, पाखण्ड व अंधविश्वास से बालकों को बचाने का वे आग्रह करते हैं।

दलित शिक्षा :- गिजू भाई दलितों की शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे। समता व समानता उनके जीवन का आदर्श था। जाति व धर्म के आधार पर कोई भेदभाव उन्हें स्वीकार न था। उन्होंने स्वयं

पहलकदमी करते हुए अछूत बालकों को शिक्षा देना प्रारम्भ किया। इसमें उन्हें काफी विरोध भी सहन करना पड़ा, पर वे संघर्षरत् रहे। छुआछूत, रुढ़िवादिता तथा जातीय संकीर्णताओं का वे निषेध करते हैं।

मूल्य शिक्षा :- गिजू भाई शिक्षा द्वारा स्वातंत्र्य, निर्भयता, स्वावलम्बन, सत्य, प्रेम, अहिंसा, त्याग, मैत्रीभाव, दया, अपरिग्रह, सहिष्णुता, सेवाभाव, सामाजिक संवेदनशीलता, स्वच्छता, सदाचरण, सादगी व सरलता, सद्-असद् विवेक, वैज्ञानिक अभिवृत्ति जैसे मूल्यों का विकास करने पर बल देते हैं। उन्होंने आत्म-साक्षात्कार, सौन्दर्य, प्रेम, स्वाधीनता, नियमन व स्वातंत्र्य जैसे मूल्यों को अत्यन्त मौलिक रूप से परिभाषित किया है।

प्रकृति-शिक्षा :- गिजू भाई बालक को प्रकृति-शिक्षा दिये जाने का प्रबल समर्थन करते हैं। उनका कहना था कि अपने बालक को प्रकृति से दूर रखकर क्या हम उसको देव बनायेंगे अथवा दानव? प्रकृति द्वारा दिया गया शिक्षण ही गिजू भाई की दृष्टि में उत्तम सामाजिक शिक्षण है। इस शिक्षण से उसका नैतिक विकास सहज स्वाभाविक बनता है और वह धार्मिक विकास के सुदृढ़ आधार के रूप में चिरस्थायी रहता है। प्रकृति-शिक्षण में स्व-शिक्षण का मूल भी निहित है। गिजू भाई कहते हैं कि प्रकृति की शिक्षा धैर्य एवं विश्वास की पोषक होती है। प्रकृति ही मनुष्य की आत्मा एवं देह की प्रथम धाय है। अत: उसे चाहिए कि वह बाल्यावस्था से ही प्रकृति के अवदान से अपने प्राणों को भर ले। अपने आत्मिक विकास के तत्व उसे प्रकृति से ही ग्रहण कर लेने चाहिएँ।

वर्तमान भारतीय संदर्भ में गिजू भाई के शैक्षिक चिंतन की प्रासंगिकता

राष्ट्र एवं समाज की दशाओं के साथ-साथ शैक्षिक दशाओं में भी निरंतर परिवर्तन होता रहता है। ज्ञान-विज्ञान के विकास का प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ता है। वाद-प्रतिवाद- संवाद, तत्पश्चात् इसी क्रम की निरंतर पुनरावृत्ति से ही विचारों का विकास होता है। देश-काल व परिस्थितियों के अनुरूप इन विचारों की उपयोगिता के परीक्षण-पुनर्परीक्षण की प्रक्रिया सदैव चलती रहती है। वस्तुत: विकास का आधार ही यह है।

गिजू भाई ने मॉण्टेसरी से प्रभावित होकर बाल-शिक्षा जगत में प्रवेश किया, इसे वे स्वयं स्वीकारते हैं। अत: उनकी पद्धति से प्रभावित होना भी स्वाभाविक ही है। परन्तु वे किसी अन्य के अक्षरश: अंधानुकरण का भी विरोध करते हैं। वे कहते हैं कि मॉण्टेसरी की शोध के मूल में जो तत्त्व विद्यमान हैं, उन्हें लोगों को समझना है। ये तत्व मॉण्टेसरी के नहीं हैं, न इटली या यूरोप के हैं अपितु संपूर्ण विश्व के हैं। जिसका विकास हम साधना चाहते हैं उसका अवलोकन किया जाना चाहिए। अवलोकन द्वारा यह ढूँढ़ा जाए कि उसके विकास में अवरोधक या रोचक बातें क्या-क्या हैं? यह एक

वैज्ञानिक सत्य है अतएव सार्वत्रिक है। गिजू भाई सावधान करते हैं कि इस सत्य को आप संकीर्ण या संकुचित न कर डालें। आप इसे चाहे जो नाम दीजिए, भले ही आप इसे मॉण्टेसरी-पद्धति कहें। इसे आप नाम से मत बाँधना। इसकी वफादारी इसके यथार्थ परिपालन में है। यह परिपालन आप निर्मल एवं स्वतंत्र बुद्धि से करना, दृढ़ता व निर्भयता से करना। कहीं आप पोथी-पण्डित मत बन जाना कि देखें मॉण्टेसरी क्या करती हैं अथवा गिजु भाई ने क्या लिखा है या तारा बेन का क्या कहना है? ऐसा कहकर आप अपनी उलझन का हल निकालने की आशा मत रखना। अपनी परेशानी आपको स्वयं हल करनी हैं। मैंने तो आपको सिर्फ रास्ता दिखाया है, अब समाधान आपको ही करना है। प्रत्येक बालक का नया-नया अनुभव करके आपको ही उसके मन की खोज करनी है और विकास का मार्ग खोलना है। अपने निजी अनुभवों को आप पूरा सम्मान दीजिए, उसी से सच्चे शिक्षण का उद्भव होगा। जिस (शिक्षण) पद्धति के सिद्धान्त मानवजाति को गुलाम-मानसिकता से मुक्त करना चाहते हैं, अगर आप उसी पद्धति के गुलाम हो जायेंगे तो उद्देश्य निरर्थक चला जाएगा। प्रत्येक पद्धति सत्य का शोध चाहती है और सत्य-शोधन यथार्थ अनुभव में निहित है-यथार्थ अनुभव उसी को होता है जो स्वयं अपनी आँखों से देखता है, कानों से सुनता है, जो स्वयं विचार करता है, जो भ्राँतियों और आचारों से तटस्थ रहता है, जो सत्य समझी जाने वाली भूल को स्वीकार करता है और जो सत्य के समक्ष असत्य को छोड़ने के लिए तैयार रहता है। पद्धति आप से यही चीज माँगती है।

गिजू भाई शिक्षकों से कहते हैं कि यहाँ के आलीशान भवनों में चलने वाली खर्चीली मॉण्टेसरी-पद्धति को आप लोगों ने देखा है। उनके अनुसार आप कहीं यह मत समझ लेना कि इन तमाम के बिना मॉण्टेसरी पाठशाला चल नहीं सकती। वस्तुतः मॉण्टेसरी पाठशाला का जन्म इटली के गरीब लोगों की झोंपड़ियों में ही हुआ है। अतः जब तक हम अपने गरीबों तक इस पद्धति का लाभ नहीं पहुँचायेंगे तब तक इस पद्धति की सच्ची जीत नहीं होगी। जिस जगह शारीरिक गँदगी है और दिमागी अँधेरा है वहीं इस पद्धति का प्रकाश ले जाना होगा। आप हरिजनों व निर्बल वर्ग को इस पद्धति का लाभ पहुँचायेंगे तभी उसका खर्च सार्थक सिद्ध होगा। आप शिक्षक हैं। पढ़ाना आपका काम है। पैसों के लिए अपनी शक्ति वैश्य बेचता है। पैसों का मोह छोड़ देंगे तभी आप गरीबों की तथा गांवों की सेवा कर सकेंगे। अगर आपको सचमुच ऐसा लगे कि आज हमारे देश ने निर्मल बुद्धि का, सच्ची क्रिया-शक्ति का दिवाला ही निकाल दिया है तब तो आप जहाँ सघन अंधेरा हो, जो अधिक असहाय हों, जो साधनविहीन हों, उन्हीं के पास जाना और उन्हें आगे लाने के लिए परिश्रम करना।

"मॉण्टेसरी-पद्धति में देश-काल के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए। प्रत्येक देश के मनोविज्ञान के अनुकूल बनकर हमें मॉण्टेसरी के ही स्तरानुकूल अपने शिक्षण साधनों की योजना बना लेनी

चाहिए। इससे हमारा व्यक्तित्व बनेगा और राष्ट्रीय प्राण को क्षति नहीं पहुंचेगी।' ऐसा कहने वाले लोग गट्टा-पेटियों के बदले क्रमशः छोटे-छोटे चूल्हों-तपेलियों को आँख की इंद्रिय के विकास उपकरण के रूप में हमारे समक्ष रखते हैं। गिजू भाई ऐसे विद्वानों की सोच से सहमत नहीं हैं। वे प्रश्न करते हैं कि गट्टों में ऐसा क्या विदेशी तत्त्व है और चूल्हों-तपेलियों पर क्या हिन्दुस्तान का ही एकमात्र हक है? वस्तुतः इस प्रकार की कोई भी सोच हमारी संकीर्णता की ही परिचायक है। गट्टा-पेटी कोई इतनी मँहगी चीज भी नहीं है कि हम इसे भारतीय विद्यालयों में उपलब्ध न करा सकें। गिजू भाई कहते हैं- "कतिपय मर्यादाओं के साथ मेरी मान्यता है कि मन सार्वभौम है अतएव मन:व्यापार देश-काल से अबाधित होते हैं। मैं भारतीय-मन, अमेरिकी-मन, अफ्रीकी-मन आदि भेद स्वीकार नहीं करता। इन सभी मनों में जो अंतर है वह विकास की भिन्न-भिन्न श्रेणियों का है। कदाच यूँ भी कहा जा सकता है कि अफ्रीकी-मन बाल-मन है, पश्चिमी देशों का मन युवा-मन है और भारतीय-मन वृद्ध-मन है। यह कथन एक तरह से विनोदपूर्ण कथन है। अगर कदाच मन की सार्वभौमिकता को स्वीकार न करूं तब भी चूल्हे-तपेलियों से जब तक मॉण्टेसरी-पद्धति के सिद्धांतों को न स्वीकारूँ तब तक देशानुकूलता अथवा राष्ट्र प्रेम के वहम से उन्हें मैं गट्टों के स्थान पर कबूल नहीं करूँगा। एक बात सबको बतानी है कि डॉ0 मॉण्टेसरी ने प्रबोधक-साहित्य अपनी स्वेच्छाचारिता से नहीं बनाए थे। ये साधन तो स्वयं बालकों ने अपने आप बनाए हैं। जिस समय बालक अपने साधन ढूँढ़ रहे थे, उस समय उन्हें अनिवार्य सहायता की आवश्यकता थी वही सहायता मॉण्टेसरी ने उन्हें उपलब्ध की। साधनों को तो डॉ0 मॉण्टेसरी बालक के अंत:करण को उनके द्वारा व्यक्त करने की वस्तु मानती है। जब से स्वतंत्र बालक की आत्मा अमुक वस्तु के माध्यम से व्यक्त होती है और उस वस्तु से संबंधित अपने संबंध को बालक अमुक रीति से व्यक्त करता है तब वे वह वस्तु अंतर को व्यक्त करने योग्य हैं, ऐसी डॉ0 मॉण्टेसरी की मान्यता है।"

बालमंदिर अगर प्रयोग के लिए ही है, ऐसा मानें तो वह उक्त अर्थ में मॉण्टेसरी ही हो सकता है, यह मंदिर इटालियन, अमेरिकन या इंग्लिश होना जरूरी नहीं। इटली के बालक विद्यालय में बूट पहने-पहने खाना खाते हैं, इसमें मॉण्टेसरी-पद्धति को कोई लेना-देना नहीं। इटली के बालक अपने स्वाभाविक आहार मेंढकों को पत्थरों से मारने में मजा लेते हैं, वही व्यापार भारत में पतिंगों को निर्दोष भाव से पकड़कर उड़ाने में परिणत होता है तभी तो मॉण्टेसरी-पद्धति के रहस्य का कोई अर्थ है। मेंढ़क खाने वाले इटली के बालक मेंढकों को मारें, और अहिंसक व दया-वृत्तिप्रदान भारत के बालक पतिंगों को पकड़कर उनके रंगों के मजे लें और छोड़ दें तो इन दोनों क्रियाओं में मॉण्टेसरी की दृष्टि से बाल मानस के ही दर्शन होते हैं। फर्क सिर्फ देश-काल वातावरण का ही है। परिस्थिति के फर्क के कारण

देश-काल, जो सार्वभौम मानस को मर्यादित करते हैं वे किसी भांति का विसंवाद खड़ा नहीं करते। अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय बालमंदिर मॉण्टेसोरियन बना रह सकता है, भले ही इटली, अमेरिका या यूरोप की पाठशाला से उसका रूप, रंग-ढंग व उपकरण भिन्न ही क्यों न हो!

गिजू भाई स्वयं मानते हैं कि इंद्रिय विकास में स्वाद व घ्राण संबंधी प्रयोग शेष हैं। खगोल, भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र आदि विषयों के प्रति बालकों के स्वाभाविक व्यापार कैसे हो सकते हैं, ये अवलोकन अभी अधूरे हैं। अगर हम इन नई दिशाओं में प्रयोग कर सकें और सिद्धांतों के अनुसार नए साधन बना सकें तो वे आद्य-प्रणेता डॉ० मॉण्टेसरी को भेंट में दिये जा सकेंगे।

गिजू भाई मॉण्टेसरी पद्धति को अपनाने व फैलाने के लिए दृढ़-संकल्प थे। उनका कहना था कि भारतीय मॉण्टेसरी-पद्धति को भारत में अपनाते वक्त हम इसे भारतीय प्राण से अलंकृत करेंगे। मॉण्टेसरी-पद्धति यहाँ प्रयोग-भूमि ही बनी रहेगी, भले ही वह हिंदुस्तान के छप्परों नीचे, हिन्दुस्तान की जमीन पर, हिन्दुस्तान के आसन पर बैठे। हम मॉण्टेसरी वाली टेबल-कुर्सियों के बजाय बालकों को अपने (मन से) चित्र बनाने का काम पाटों (बाजोट) पर करने को देंगे। भारतीय मॉण्टेसरी पाठशाला के बालक नाश्ता लेंगे, पर टेबल-कुर्सी पर बैठकर या जूते पहने नहीं। मॉण्टेसरी-गृह में बालकों को हम कला का वातावरण देंगे, पर हमारी पुष्प-सज्जा व श्रृंगार का काम मिट्टी के पात्रों में बबूल, आंवला या नील के पत्तों से ही हो जायेगा। भारतीय मॉण्टेसरी बालकों के हाथ में वाद्य-यंत्रों के लिए इकतारा और मंजीरे होंगे। प्लास्टिसीन के बजाय कुम्हार के यहां की सादी माटी से बालक तरह-तरह के खिलौने बनायेंगे। हमारी पाठशाला के आंगन में बालक राई, मैथी, तुलसी, मरवा, कनेर, बारहमासी आदि के बीच घूमेंगे। यहां के बगीचों में आंवला भी होगा।

वे कहते हैं कि सब जरूरी चीजें यहाँ होंगी। इस देशी पाठशाला में हाथ पोंछने के लिए ट्वाल ही होगा, पैर पोंछाने के लिए पाँवदान के बिना काम नहीं चलेगा। खाने के लिए हाथ धोना अनिवार्य होगा और खाने के बाद कुल्ले भी करने पड़ेंगे। बालों के संवारकर रखना होगा, नाक पोंछने के लिए रूमाल जरूरी होगा और मल-मूल के लिए निर्धारित स्थान तो होंगे ही। ये सब नहीं होंगे तो मॉण्टेसरी पाठशाला नहीं बनेगी।

बाल-शिक्षा में सुधार लाने का संकल्प गिजू भाई ने लिया था। उनका निश्चय था कि हमें मॉण्टेसरी पाठशाला स्थापित करनी ही पड़ेगी, और वह भी हमारी अपनी आबोहवा में ही। हमें अपने देश का शास्त्रीय दृष्टि से अवलोकन करके उसके आंकड़ों पर बालकों की पढ़ाई का प्रबंध करना चाहिए। स्वतंत्रता और स्वयं-स्फूर्ति का वातावरण (याने प्रयोग-भूमि की स्वाभाविक आधारभित्ति) हमारे यहां भी हो। शास्त्रीय शोध के लिए सत्यनिष्ठा, तटस्थता, अमताग्रह चाहिए साथ ही समाज को

रूढ़ियों व धार्मिक कट्टरता से मुक्त होना चाहिए। इनके अलावा बाल-विकास को मापने के तथा
विकास के तमाम सहायक साधन भी यह प्रयोगशाला स्वतः माँग लेगी। यह प्रयोगशाला, धर्म, जाति
या देशों के फर्क को स्वीकार नहीं करेगी। भारत के बच्चे आज शरीर व मन से कहाँ हैं, और अगला
कदम किसमें निहित है, यह खोज यह प्रयोगशाला हिन्दुस्तान के लिए ही करेगी। जिस प्रकार
मॉण्टेसरी-पद्धति का अर्थ स्पेन अपने लिए, स्विट्जरलैंड अपने लिए, आयरलैंड अपने लिए करता
है वैसे ही हिंदुस्तान भी (अपना मौलिक) करेगा। ऐसी प्रयोगभूमि को जब तक हम स्थान-स्थान पर
स्थापित नहीं कर देंगे तब तक समझ लें कि हमारा काम बहुत धीमा है।

गिजू भाई राष्ट्र विकास का मूल ग्राम्योदय में ही देखते थे। ग्राम्य-शिक्षा का हल करके ही
राष्ट्रीय प्रगति का लक्ष्य हासिल करना संभव है। उनकी दृष्टि में गाँव की शिक्षा का हल ही राष्ट्रीय
जीवन का समाधान था। वे कहते हैं कि बाल-जीवन के प्रश्नों का हल ढूँढ़ने के लिए हम मॉण्टेसरी
को वहाँ भी ले जायेंगे। स्वावलंबन और स्वतंत्रता ये दोनों मॉण्टेसरी-पद्धति के प्राण हैं। ये चीजें
मॉण्टेसरी-पद्धति के पास न होतीं तो हमें उसकी कोई जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन गाँवों को आज
श्रममय जीवन की आवश्यकता है। हमारे वर्तमान जीवन की यही एक महान् बुराई है कि वह प्रमादी
और परावलंबी बन गया है। गाँव इसी कारण से लूटे जाते हैं कि वे अज्ञान में डूबे हैं, वहमों के अंधेरे
में गर्क हैं, बुद्धि की जड़ता में खोये हैं। यही वजह है कि गांव आज सबसे अधिक भयत्रस्त है और
गांव याने हम सब-हम, हमारे शहर, हमारा संपूर्ण राष्ट्र। इन गाँवों के लिए हमें यह मॉण्टेसरी-पद्धति
दूर फेंक देने की चीज लगती, अगर यह निर्भयता की शिक्षा देने वाली न होती, स्वावलंबी बनाने
वाली न होती, निर्मल ज्ञानदात्री न होती, गुलामी से मुक्ति देने वाली न होती।

प्रो0 अनिल सद्गोपाल कहते हैं कि हमारे पास गाँधी, टैगोर, डॉ0 जाकिर हुसैन तथा गिजू भाई
बधेका सरीखे दिग्गजों के शैक्षिक चिंतन की समृद्ध विरासत है, परन्तु अपने गैर-जिम्मेदाराना रवैये
के कारण हम जहाँ से चले थे, वहीं टिके हैं। एक ओर भारत में गिजू भाई जैसे बाल-शिक्षा मर्मज्ञों
ने पूर्व प्राथमिक शिक्षा में अनूठे प्रयोग किए और इसका शिक्षा शास्त्र विकसित करने में सृजनात्मक
योगदान दिया, वहीं दूसरी ओर पूर्व प्राथमिक शिक्षा कभी भी राष्ट्रीय एजेन्डे का हिस्सा नहीं बन पाई।
'समेकित बाल विकास सेवाएँ' नामक कार्यक्रम के तहत चलने वाली आँगनवाड़ियाँ 'खिचड़ी-दलिया'
केन्द्र बन कर रह गयी हैं। उनमें पूर्व प्राथमिक शिक्षा का पुट जोड़ने का सरकारी इरादा, हालाँकि, आज
भी कागजों पर मौजूद है। प्रो0 सद्गोपाल की दृष्टि में कुल मिलाकर स्थिति यह है कि पूर्व प्राथमिक
शिक्षा लगभग एक अभिजात व मध्यमवर्गीय प्रक्रिया बन गयी है। इस महत्वपूर्ण शैक्षिक चरण के
संदर्भ में राज्य की सु-परिभाषित भूमिका के अभाव में पूर्व प्राथमिक शिक्षा का पूर्ण बाजारीकरण हुआ

और उससे जुड़ी तमाम विकृतियाँ इस पर हावी हुई। शिशुओं को दाखिले के साथ ही परीक्षा, बोझिल पाठ्यक्रम, भारी भरकम बस्ते, मातृभाषा की जगह अंग्रेजी, खेलकूद व आनंद की जगह अनुशासन आदि विकृतियों का शिकार होना पड़ता है। भारतीय बचपन के लिए बाल-शिक्षा का यह एकांगी, बोझिल एवं संवेदनहीन स्वरूप आज एक गंभीर खतरा बन चुका है।

भारतीय बालक से उसका बचपन छीनकर उसे 'ज्ञान के गलियारे' में बलपूर्वक धकेलते हुए व्यवस्था का अनुशासित व विनम्र चाकर बनाने की दुस्साहसिक कुचेष्टा के विरुद्ध समय रहते यदि हस्तक्षेप नहीं किया गया तो गिजू भाई के स्वप्न अधूरे ही रह जायेगें। बालक के लिए लड़े जाने वाले 'मुक्ति-संग्राम' में हमारी सहभागिता ही गिजू भाई को हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

बाल-शिक्षा के वर्तमान परिदृश्य में सार्थक बदलाव लाना समय की मांग है। इस सम्बन्ध में दीक्षित व शाह[1] का यह कथन ध्यान देने योग्य है - "हमें ऐसी पीढ़ी तैयार करनी होगी जो पुरानी रुढ़िवादी मान्यताओं से मुक्त हो, मनुष्य के व्यक्तिगत अधिकारों का सम्मान करने वाली हो तथा जो मानवता को एक धर्म के रूप में स्वीकार करे। इसके लिए पूरे ढाँचे को बदलना होगा। परम्परावादी सोच को केवल नारों के बल पर नहीं बदला जा सकता है। इस इमारत को तो नींव से ही मजबूत करना होगा। अगर मानव समाज ऐसा नहीं करता तो मानवाधिकारों की रक्षा का सवाल पूर्ण रूप से हल नहीं किया जा सकता।"

भावी शोध हेतु सुझाव

प्रस्तुत अध्ययन गिजू भाई के शैक्षिक चिंतन अर्थात् शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न अंगों पर उनके विचारों तथा वर्तमान भारतीय संदर्भ में इनकी उपादेयता के मूल्यांकन तक सीमित रहा है। सम्बन्धित विषय के अनेक अनछुए आयाम गहन व व्यवस्थित शोध की माँग करते हैं। शोधकर्त्ताओं द्वारा निम्नलिखित शोध विषयों पर शोध कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं।

1. पूर्व प्राथमिक शिक्षकों का प्रशिक्षण कार्यक्रम - गिजू भाई शैक्षिक चिंतन के संदर्भ में
2. पूर्व प्राथमिक शिक्षकों की अभिवृत्तियों का अध्ययन
3. मॉण्टेसरी व किंडरगार्टन बाल-विद्यालयों की कार्य-पद्धति का आलोचनात्मक मूल्यांकन
4. ग्रामीण क्षेत्र में बाल-मंदिरों की सम्भावित भूमिका का आकलन
5. गिजू भाई के भाषा-शिक्षण सम्बन्धी विचारों की व्यवहार्यता का मूल्यांकन
6. प्राथमिक विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा की स्थिति का आलोचनात्मक मूल्यांकन

संदर्भ ग्रंथ सूची

- अखिलेश्वर - आधुनिक भारतीय समाज, बदलाव की चुनौतियाँ, समय प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
- अय्यर, आर.बी. वैद्यनाथ - परिप्रेक्ष्य-बुनियादी शिक्षा और मानवाधिकार, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली, अप्रैल अगस्त, 1999
- आर्यनायकम् - वर्तमान शिक्षा की गम्भीर स्थिति, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, वर्धा, 1954
- आर्यनायकम् - बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा: बेसिक नेशनल एजुकेशन, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, वर्धा, 1985
- अग्रवाल, जे0सी0 - भारत में प्राथमिक शिक्षा, विद्या विहार, नई दिल्ली, 2003
- अग्रवाल, जे0सी0 - राष्ट्रीय शिक्षा नीति, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2003
- अल्टेकर, ए.एस. - एजुकेशन इन एंशियेंट इण्डिया, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, 1982
- अग्रवाल, गिरिराज शरण एवं मीना अग्रवाल- शोध दिशा : शोध के विविध आयाम, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, सितम्बर 2006
- एडम्स, जे0 - दा इवोल्यूशन ऑफ एजुकेशन थ्यौरी, मैकमिलन एण्ड कम्पनी, लंदन, प्रथम संस्करण, 1915
- ब्रूबेकर, जे0एस0 - मॉडर्न फिलासफीज ऑफ एजूकेशन, मैकमिलन एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, द्वितीय संस्करण, 1950
- बुच, एम.बी. (एडी) - III, IV, V सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
- बधेका, गिजू भाई - शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर
- बधेका, गिजू भाई - माता-पिता की माथापच्ची, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर
- बधेका, गिजू भाई - ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर

- बधेका, गिजू भाई - माता-पिता से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर
- बधेका, गिजू भाई - प्राथमिक विद्यालयों में भाषा शिक्षा, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर
- बधेका, गिजू भाई - कथा-कहानी का शास्त्र, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर
- बधेका, गिजू भाई - दिवा-स्वप्न, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर
- बधेका, गिजू भाई - प्राथमिक विद्यालय की शिक्षण-पद्धतियाँ, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर
- बधेका, गिजू भाई - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर
- बधेका, गिजू भाई - प्राथमिक विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर
- बधेका, गिजू भाई - मॉण्टेसरी शिक्षा-पद्धति, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर
- बधेका, गिजू भाई - माता-पिता के प्रश्न, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर
- बधेका, गिजू भाई - चलते-फिरते शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर
- चौबे, सरयूप्रसाद - हमारी शिक्षा समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1983
- चौबे, सरयूप्रसाद - भारतीय शिक्षा दर्शन, दा मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लि0, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1975
- चौबे, सरयूप्रसाद - भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षा शास्त्री, रामप्रसाद एण्ड संस, आगरा, 1968
- डीवी, जॉन - शिक्षा और लोकतंत्र, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 1998
- दामोदरन, के0 - भारतीय चिंतन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, प्रा0 लि0, रानी झाँसी रोड, नई दिल्ली, 1992
- दीक्षित, रमेश चन्द्र एवं अन्य - मानवाधिकार : दशा और दिशा, डायमंड पाकेट बुक्स (प्रा0) लि0 नई दिल्ली, 2001
- दुबे, अभय कुमार - भारत का भूमण्डलीकरण, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, 2003

- दुबे, रमाकान्त – विश्व के कुछ महान शिक्षा शास्त्री, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, दिल्ली
- दुबे, श्यामाचरण – शिक्षा, समाज और भविष्य, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
- गुप्त, एन.एल. – मूल्यपरक शिक्षा – सिद्धांत, प्रयोग एवं प्रविधि, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, 1987
- हुसैन, जाकिर – भारत में शिक्षा का पुनर्निर्माण, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, 1964
- हार्टन, माईल्स व पाओलो फ्रेरे – राह बनाकर चलते हम, शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
- कुमार, आर. – चाइल्ड डेवलपमेन्ट इन इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
- कबीर, हुमायूँ – इण्डियन फिलासफी ऑफ एजुकेशन, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई, 1964
- कबीर, हुमायूँ – भारतीय शिक्षा दर्शन, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1962
- किलपैट्रिक, डब्ल्यू.एच. – एजुकेशन फॉर ए चेंजिंग वर्ल्ड, मैकमिलन एण्ड कम्पनी इण्डिया लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 1932
- कालेलकर, काका – सत्याग्रह विचार और युद्ध नीति, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1965
- खरे, दिनेश – सामाजिक विचारधारा, दिल्ली पुस्तक सदन, दिल्ली, 1961
- मुखर्जी, हिमांशु भूषण – ए स्टडी ऑफ एजुकेशन थाट एण्ड एक्सपेरीमेन्ट ऑफ रवीन्द्रनाथ टैगोर, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, बम्बई, 1962
- मुखर्जी, हिमांशु भूषण – एजुकेशन फार फुलनैस, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, बम्बई, 1962

- मुखर्जी, आर0के0 – डैसटिनी ऑफ सिविलाईजेशन, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1964
- मुखर्जी, आर0के0 – एनसियेन्ट इण्डियन एजुकेशन, मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, द्वितीय संस्करण, 1950
- मशरूवाला, कि0घ0 – शिक्षा का विकास, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1958
- मजूमदार, धीरेन्द्र – शिक्षा और समाज निर्माण, नई तालीम, मई 1964
- माथुर, एस0पी0 – शिक्षा सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1971
- निशांत, रविशंकर – देशवासियों से दो बातें, सुलभ प्रकाशन, नवीन शाहदरा
- नौटियाल, जय प्रकाश – बाल विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2002
- नाइक, जे0पी0 – शिक्षा आयोग और उसके बाद, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1998
- पचौरी, एस0के0 – चिल्ड्रन एण्ड ह्यूमन राइट्स, अनामिका पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली
- पाण्डे, राम शकल – उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2005
- पाण्डे, राम शकल – शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- पाण्डे, राम शकल – महान पश्चिमी शिक्षा शास्त्री, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- शुक्ला, अनिता (समन्वयक) – श्री माँ का शिक्षा दर्शन, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, 2005
- शुक्ला, रमा – शिक्षा के दार्शनिक आधार, आलोक प्रकाशन, अमीनाबाद, लखनऊ, 2005
- सफाया, सी0एस0, सी0एस0 शुक्ला तथा बी0डी0 शैदा– उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, धनपत राय पब्लिशिंग कम्पनी (प्रा0) लि0, नई दिल्ली, 2005

- शर्मा, मणि (1980) – समकालीन शिक्षा का स्वरूप एवं उसकी भावी संभावनाएँ, थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, एम0बी0 बुच, 1978-83
- शर्मा, पं0 नन्द किशोर – भारतीय दार्शनिक समस्याएँ, प्रथम संस्करण, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1976
- शर्मा, रामनाथ – भारतीय शिक्षा दर्शन के मूल तत्व, केदारनाथ रामनाथ प्रकाशन, मेरठ, 1985
- शर्मा, बी0डी0 – शिक्षा, समाज और व्यवस्था, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
- सुखिया, एस0पी0 – शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1991
- सिंह, नामवर – सामाजिक न्याय की अवधारणा, सं0 रमेश उपाध्याय व संज्ञा उपाध्याय, शब्द संधान, दिल्ली, 2002
- सद्गोपाल, अनिल – शिक्षा में बदलाव का सवाल, ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, दिल्ली, 2004
- सोलंकी, अमर सिंह – बुनियादी शिक्षा में अनुबन्ध की कला, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद-14, प्रथम संस्करण, 1962
- सैयदेन, के0जी0 – भारतीय शैक्षणिक विचारधारा, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1969
- श्रीवास्तव, प्रवीण चन्द्र – प्रारंभिक शिक्षा के मूल तत्व, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी, 2006
- सिंह, कंवलजीत व जेड गियर – बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ और भारत, पब्लिक इंटरेस्ट रिसर्च ग्रुप, माध्यम बुक्स, साऊथ एक्सटेंशन, नई दिल्ली, 1996
- सहगल, मनमोहन – शिक्षा दर्शन, दिल्ली पुस्तक सदन, नई दिल्ली, 1958
- सेठ, कीर्तिदेवी – भारतीय शिक्षा दार्शनिक, वैदिक प्रकाशन, इलाहाबाद, 1960

- ठेकेदत्त, के0के0 – एजुकेशन एट दी टर्न ऑफ दी सेन्चुरी, नव-कर्नाटक पब्लिकेशन प्रा0 लि0, बंगलौर, 1999
- थानवी, शिव रतन – आज की शिक्षा - कल के सवाल, धरती प्रकाशन, बीकानेर, 1983
- ठाकुर, रविन्द्रनाथ – शिक्षा, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1968
- तेन्दुलकर, जी0डी0 – महात्मा, भाग-3, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
- उपाध्याय, रमेश व संज्ञा उपाध्याय (सं0)- यूटोपिया की जरूरत, शब्द संधान, शकरपुर, दिल्ली, 2004
- विंगो, जी. मेक्स – फिलोसोफीज ऑफ एजुकेशन : एन इन्ट्रोडक्शन, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा0 लि0, सफदरजंग एनक्लेव, नई दिल्ली, 1975